'प्रबोध-चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प-सूर्योदय' नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)

संस्कृत विषय के अन्तर्गत

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2002
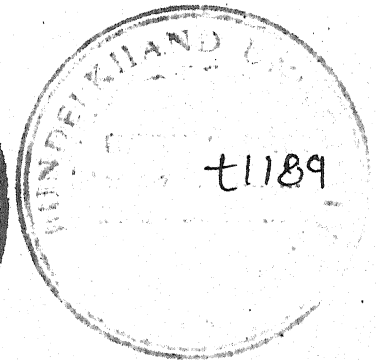
शोध निर्देशिका
डॉ० श्रीमती नमिता अग्रवाल
एम०ए०, पी-एच०डी०
रीडर, संस्कृत विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा

गवेषिका
कु० अनामिका दीक्षित
एम०ए०, संस्कृत
एम०ए० हिन्दी, स्वर्णपदक विजयनी
प्रभारी
साहित्य, दर्शन एवं व्याकरण अनुभाग
चंददास रिसर्च इन्स्टीच्यूट, बाँदा (उ०प्र०)

अनुसंधान केन्द्र: अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा

डॉ० (श्रीमती) नमिता अग्रवाल
रीडर- संस्कृत विभाग
अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि **कु. अनामिका दीक्षित** आत्मजा डॉ चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने बुन्देलखण्ड वि. वि., झाँसी के अन्तर्गत संस्कृत विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु **'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' का तुलनात्मक अध्ययन'** शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में वि. वि. की शोध परिनियमावली की धारा 7 के अन्तर्गत निर्धारित अवधि तक उपस्थिति देकर पूर्ण किया है। 'शोध प्रबन्ध' उत्तर भारत और दक्षिण भारत के महान नाट्यशिल्पियों की नाट्यकृतियों, दुर्लभ पाण्डुलिपियों पर आधारित, सर्वथा नव्य, मौलिक एवं शोध के क्षेत्र में नई मान्यताओं एवं नई अवधारणाओं को स्थापित करने वाला है।

शोध प्रबन्ध मूल्यांकन हेतु वि.वि. में प्रेषित करने की प्रबलतम् संस्तुति करती हूँ।

दिनाँक : 25/12/2002

Namita
शोध-निर्देशक
डॉ. (श्रीमती) नमिता अग्रवाल
रीडर, संस्कृत विभाग
अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा

घोषणा

मैं घोषणा करती हूँ कि कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के अर्न्तगत संस्कृत विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध **'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' का तुलनात्मक अध्ययन'** मेरी नवीन एवं मौलिक कृति है।

दिनांक :

अनामिका दीक्षित

शोधार्थिनी

कु. अनामिका दीक्षित

एम.ए (संस्कृत, हिन्दी)

(स्वर्ण पदक विजयनी)

प्राक्कथन

नाटक एक समन्वित सृष्टि है। प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र प्रणेता भारत के अनुसार ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग अथवा कर्म कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जो नाटक में न दिखाई पड़े। आरम्भ से ही नाटक जीवन के इस विराट क्षेत्र का विषय बनता रहा। महा वैयाकरण पाणिनि नें (अष्टाध्यायी 4/3/129 में) नाटक को संस्कृत 'नट' धातु से व्युत्पन्न माना है। एक दूसरे विद्वान रामचन्द्र गुणचन्द्र नें इसे 'नाट्' धातु से व्युत्पन्न माना है। माकण्ड नामक विद्वान ने 'नट' धातु की अपेक्षा 'नृत' धातु प्रचीनतर माना हैं। बेबर तथा मोनियर विलियम्स जैसे पाश्चात्य विद्वान भी 'नृत' धातु को प्राचीन मानते हैं और 'नट' रुप को उसका प्राकृति भूत मानते है। वैदिक भाष्यकर्ता शायणाचार्य ने वैदिक भाष्य में शायणभाष्य 4/105/23 में 'नट' धातु का तात्पर्य व्याप्नोति और नृत्य का तात्पर्य गात्र विक्षेपण किया है। इस तरह दोनों धातुएँ सम्भवतः ऋग्वेद काल में ही सामान्य अर्थ भेद के साथ प्रयुक्त होती रही हैं। 'अवधविलास' के रचनाकार लालदास ने अभिनय के अन्तर्गत नाटि (नाट्य) नृर्त्य (नृत) और नित्र (नृत्य) कहकर उक्त मतों का समाहार भी कर दिया है। (अवध विलास, द्वितीय विश्राम, पृ0 51)।

लोक में यह भी मान्यता है कि ब्रह्मा की आज्ञा से भरत ने नाट्य वेद रुपी पंचम वेद का सर्जन ऋग्वेद से कथावस्तु, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस को ग्रहण किया है। (नाटयशास्त्र 1/71)।

जहाँ तक रुपक प्रधान नाट्य कृतियों का प्रश्न है, उनका मूल स्त्रोत वैदिक सम्वाद सूक्तों से उद्भूत माना जाता हैं। वेदों के आध्यात्मिक और दाशर्निक तथ्यों को नाटकीय रुप देकर अभिनय द्वारा जनसाधारण के लिए उपयोगी बनाने का क्रम ऋग्वेद

से चला आ रहा है। शुक्ल यजुर्वेद के वाजसनेयी संहिता 30/6 कौषीतकी ब्राह्मण 37/8,29/5, और काठक संहिता 24/3 में यज्ञीय अनुष्ठानों के अवसरों पर नाटकीय अभिनय के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उपनिषदों में वेदान्त के तत्व आख्यानों के माध्यम से व्यक्त किये गए हैं तथा कुछ सम्वाद रुपक कथाओं के रुप में भी प्राप्त होने हैं। प्राचीनतम ताड़पत्र पर अश्वघोष की बौद्ध कृतियों तथा मध्य एशिया के तुरफान में मिली कूची लिपि की मूल प्रतियों से रुपक कथात्मक नाटकों की उत्पत्ति को भी स्वीकार किया जाता है, किन्तु रूपकप्रधान नाटकों की नवीन परम्परा का प्रारम्भ श्री कृष्णमिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' से माना जाता है। श्रीकृष्णमिश्र ने 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाट्य रूपक में जहाँ एक ओर वैदिक एवं उपनिषदों में उपलब्ध तात्विक आख्यानों को कथावस्तु के लिए पहली बार व्यवस्थित रुप से चयन कर, नाटकीय रुप दिया तथा कथावस्तु के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' को रुपक प्रधान नाट्यकृतियों की रचना का मार्ग अन्वेषण करने वाला भी माना जाता है। उन्होने एक ओर वैदिककालीन सांस्कृतिक परम्पराओं को संरक्षण प्रदान किया तो दूसरी ओर को रुपक प्रधान नाटकों की रचना के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गया। दर्जनों श्रेष्ठ नाट्यकृतियाँ रुपक शैली में लिखी गई, जिनमें वैष्णव शैव, जैन, रचनाकार भी सम्मिलित हुए। 'प्रबोध– चन्द्रोदय' की रचना बुन्देलखण्ड के पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्व के सांस्कृतिक केन्द्र कालिंजर (कालिंजर दुर्ग में 11वीं शताब्दी में चेदि राजा कर्ण पर कीर्ति वर्मा की ऐतिहासिक विजय के उपलक्ष्य में हुई, जिसका उद्देश्य कोपानल को शान्त कर सम्राटों तथा सभ्यनागरिकों को युद्ध के विजयोन्माद से बचा कर मानव की आन्तरिक सुख शान्ति की ओर ले चलना था। भृगु नन्द परशुराम ने अनेक बार पृथ्वी को विजित कर रघुकुल के आचरण से द्रवित हो तपस्या का मार्ग ग्रहण किया

था। चक्रवर्ती सम्राट अशोक ने कंलिग विजय के बाद बौद्ध धर्म ग्रहण कर अपने महेन्द्र तथा पुत्री संधमित्रा के साथ सत्य और करुणा के मंगल मार्ग में अग्रसर हुए। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' कीर्ति वर्मा की यशस्वी और दिगन्त व्यापी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाया तथा उन्हें युद्धों से उपराम कर मानव मुक्ति के पुरुषार्थ पन्थ पर अग्रसर करने की प्रेरणा दी। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' ऐतिहासिक, रुपक प्रधान, मौलिक एवं युगान्तव्यापी नाट्य कृति सिद्ध हुई।

'प्रबोध–चन्द्रोदय की कीर्ति प्राचीरों, प्रदेश और समुद्रो को पार करती हुई दक्षिण भारत के कांचीपुरम की ओर गतिशील हुई और दक्षिण भारत के वेंकटनाथ वेदान्त दैशिक तक पहुँची। वेदान्त देशिक संस्कृत और तमिल मणिप्रवाल शैली के शताधिक ग्रन्थों के रचनाकार, दार्शनिक भाष्यकार और रामानुज के विशिष्टाद्वैत के तत्ववेत्ता, गूढ़ार्थ रहस्यों के उपदेष्टा तथा कवि तार्किक सिंह, सार्वदेशिक, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र जैसी महिमामयी उपाधियों से अलंकृत, असाधारण मेधावी, भगवान श्री रंगनाथ वेंकटनाथ के वरद, सारस्वत, सार्वभौम, प्रातिभ एवं भगवान के विग्रह के घण्टावतार के रुप में लोक अभिवंद्य, विद्वत्सभा द्वारा सम्यक समर्चित, आचार्य प्रवर, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक ने 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का सारग्राही अध्ययन कर उससे अभिभूत हो, किन्तु शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन के जगन्मिथ्या सिद्धान्त को न स्वीकार कर, उस नाटक की स्वस्थ प्रतिस्पर्धा में 'संकल्प–सूर्योदय' नामक विशिष्ट नाट्यकृति का निर्माण किया और विशिष्टाद्वैत के भाष्य सिद्धान्तों को आधार बनाकर जगत को भी सार्थक मानते हुए, एक ऐसी नाट्य कृति भारतीय वांगमय को श्रीरंगम की रंगतरंग से प्रदान किया जो एक ओर 'भरत' के नाट्यशास्त्र की भाँति नाट्य सिद्धान्तों की प्रमाणक कृति सिद्ध हुई तो दूसरी ओर उत्कृर्ष दर्शन, काव्य, अलंकृति और गुण–रीतियों से गुम्फित असाधारण मेघावी की रचना के रुप में लोकवन्द्य हुई। गवेषणा के क्षेत्र में मेरी अभिरुचि संस्कृत

साहित्य के इन दो नाट्ककारों की नाट्य कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की ओर प्रेरित हुई, उसके कई प्रेरक सोपान हैं एक ओर तो इन दोनों आलोच्य नाट्यकारों की दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ चित्रकूट से खोज में प्राप्त हो गई। अपने पूज्य पितृ श्री आचार्य प्रवर डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', डी0 लिट्0 द्वारा दुर्लभ पाण्डुलिपियों की खोज में संघमित्रा की भाँति मैं भी निकली थी। ऐसी दुर्लभ पाण्डुलिपियां और उनकी हस्तलिखित टीकाओं के अध्ययन से, आलोच्य नाट्यकारों के अध्ययन से तथा उनके महान अवदान से परिचित हो सकी। एक अन्य प्रेरक सोपान भारतीय साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ पुरोधा प्रो0 विष्णुकान्त शास्त्री, कलकत्ता विश्वविद्यालय, सम्प्रति महामहिम राज्यपाल, उत्तर प्रदेश एवं प्रख्यात विद्वान डॉ0 विद्यानिवास मिश्र का मेरे निवास पर आगमन तथा हमारे द्वारा खोजी गई दुर्लभ पाण्डुलिपियों और इन नाट्यकृतियों पर शोधकार्य करने की प्रेरणा भी मेरे शोध–प्रबन्ध लेखन का एक आन्तरिक सम्बल बन सका। एक अन्य घटक के रुप में मेरे संस्कृत के आचार्य प्रवर प्रो0 राजाराम जी दीक्षित संयोजक, वि0वि0 पाठ्यक्रम एवं शोध समिति भी बने, जिन्होने अध्ययन काल में ही भारतीय दर्शन के सूत्रों और गूढ़तम मन्त्रों के मनस्वी अर्थो का उदघाट्न करके दाशर्निक विषयों की ओर मेरी रूचि को उन्मुख और परिष्कृत किया। नाट्य साहित्य में विशेष अभिरुचि रखने वाली तथा दक्षिण भारत के ही नाट्यकार रामपाणिवाद के नाटकों का अध्ययन करने वाली विदुषी माननीया डॉ0 नमिता अग्रवाल जी का निर्देशन पाकर भी मुझे आन्तरिक प्रसन्नता हुई। विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय प्रो0 रमेशचन्द्रा ने जिस गति से बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय को विकास के आयामों से कीर्ति के शिखर तक पहुँचाया, उनसे भी मुझे बुन्देलखण्ड के महान नाटककार श्री कृष्ण मिश्र और दक्षिण भारत के वेंकटनाथ वेदान्त देशिक की कृति 'संकल्प–सूर्योदय' का

तुलनात्मक अध्ययन करने की अप्रत्यक्ष प्रेरणा मिली। मनः कामना शोध योजना के रुप में पल्लवित हुई। दुर्लभ साम्रगी के संचयन में भारतीय दर्शन और वेदान्त के परम पण्डित डॉ० रामसजीवन त्रिपाठी, तिरुपति के सौजन्य से दक्षिण भारत के महान नाट्य कार की दुर्लभ कृतियां अध्ययनार्थ उपलब्ध हुई। अड्यार पुस्तकालय तिरुपति, चन्ददास शोध संस्थान, बांदा के हस्तलिखित ग्रंथागारों से प्रभूत सामग्री उपलब्ध हुई। देश के विभिन्न संग्रहालयों, पुस्तकालयों एवं विद्वत मनीषियों से जो सन्दर्भ प्राप्त हुए, उनसे मुझे अपरमित सन्तोष का अनुभव हुआ। संस्कृत अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्रीयुत् मघुकर द्विवेदी आई०ए०एस०, डॉ० राजेन्द्र मिश्र, कुलपति सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, डॉ० सुधाकराचार्य त्रिपाठी, डॉ० बाबूलाल गर्ग, श्री भगवानदास गुप्त, डॉ० रामावतार त्रिपाठी, डॉ० रामप्रकाश गुप्त, डॉ० रामगोपाल गुप्त प्रभृति विद्वानों से भी अनेकशः प्रेरणाएँ प्राप्त हुई।

उक्त विद्वानों के अतिरिक्त पुण्य श्लोक पितामह आचार्य, वैयाकरण पं० दीनदयालु दीक्षित, आचार्य पण्डित बलदेव प्रसाद उपाध्याय, आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी, डॉ० वे० कृष्णमाचारी, डॉ० सुरेन्द्र देव शास्त्री, डॉ० भगवानदीन मिश्र, आचार्य मघु सूदन शास्त्री, आचार्य मण्डन मिश्र, डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, ज्योतिषाचार्य पं० शिवबालक त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य पं० रामेश्वर त्रिपाठी, डॉ० सत्यव्रत सिंह एवं अन्याय विद्वानों का अपरमित सहयोग न होता तो मैं अपने शोध–प्रबन्ध को स्तरीय एव प्रामाणिक रुप में कैसे प्रस्तुत कर पाती ? आभार की श्रंखला में जाने कितने नाम हैं, जिनका परिगणन न करके मैं उन समस्त ज्ञान के साधकों, विद्याप्रेमियों को शतशाः नमन करती हूँ, जिन्होने साहित्य, दर्शन, व्याकरण, भाषा विज्ञान, नाट्य शास्त्र आदि विद्याओं को अपनी प्रतिभा के अवदान से कृतार्थ किया है।

वाग्वल्लरी और ललित कीर्ति मंजरी, मातृ वरदायिनी डॉ. शशिप्रभा दीक्षित के असीम औदार्य को जो अनिवर्चनीय, है, उनका आभार वाणी से कैसे व्यक्त करूँ ? कुल देवता पितामह, महामहनीय, सिद्धसारस्वत आचार्य पं0 दीनदयाल दीक्षित की पुण्य स्मृति को, जिन्होने 'सारस्वत' और 'चन्द्रिका', 'पाणिनि' और 'पतंजलि' जैसे भाष्यकारों को आत्मसात किया था, संस्कृत, संस्कृति के लोकार्पण का महाव्रत लिया था, उनको अश्रु आपूरित नयनों से नमन करती हूँ। जिन्होंने तपश्चर्या के संस्कृत वांगम्य में प्रवेश कराया था, और आज जो कीर्ति शेष रह गए है।

महामनस्वी शोध–परीक्षकों के प्रति अग्रिम अभिनंदन अर्पित करती हूँ जिनकी स्नेह और सुसंस्कृत साधना का अक्षुण्ण कीर्ति पराग प्रार्थित प्राणों के अंतरक्षितिज को नव्य–नव्य चेतना से अनुप्राणित करता रहेगा। प्रस्तुत शोध–कृति नाट्यकारों की साधना एवं आराधन की अमर 'अनामिका' बन सके, इसी मनोजयी मनोकामना के साथ–

कु0 अनामिका दीक्षित

एम0 ए0, संस्कृत,

एम0ए0, हिन्दी, स्वर्णपदकविजयनी

शोधार्थिनी

'प्रबोध-चन्द्रोदय' और 'संकल्प-सूर्योदय' नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

विषयानुक्रमणिका

प्रथम परिवर्त्त

विषय प्रवेश : भूमिका

- ❖ काव्य भेदों में नाटक
- ❖ रूपको का विभाजन
- ❖ नाटक कवित्व की चरम सीमा
- ❖ प्रतीक नाट्‌य परम्परा
- ❖ 'प्रबोध चन्द्रोदय' सामान्य परिचय
- ❖ 'प्रबोध चन्द्रोदय' की लोकप्रियता
- ❖ 'संकल्प सूर्योदय' का सामान्य परिचय
- ❖ 'संकल्प सूर्योदय' की लोकप्रियता

काव्य भेदों में नाटक

देश, काल, भाषा, अर्थ बंध और प्रवृत्ति आदि के वैचित्य के अनुसार अनेक साहित्यिक विधाओं का विकास होता रहा हैं। भारतीय काव्य शास्त्र की प्राचीन परम्पराओं तथा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की आधुनिकं मान्यताओं को आत्मसात करते हुए समस्त पद्यमय और गद्यमय साहित्य एवं प्रचलित काव्य रूपों को दो व्यापक वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है।
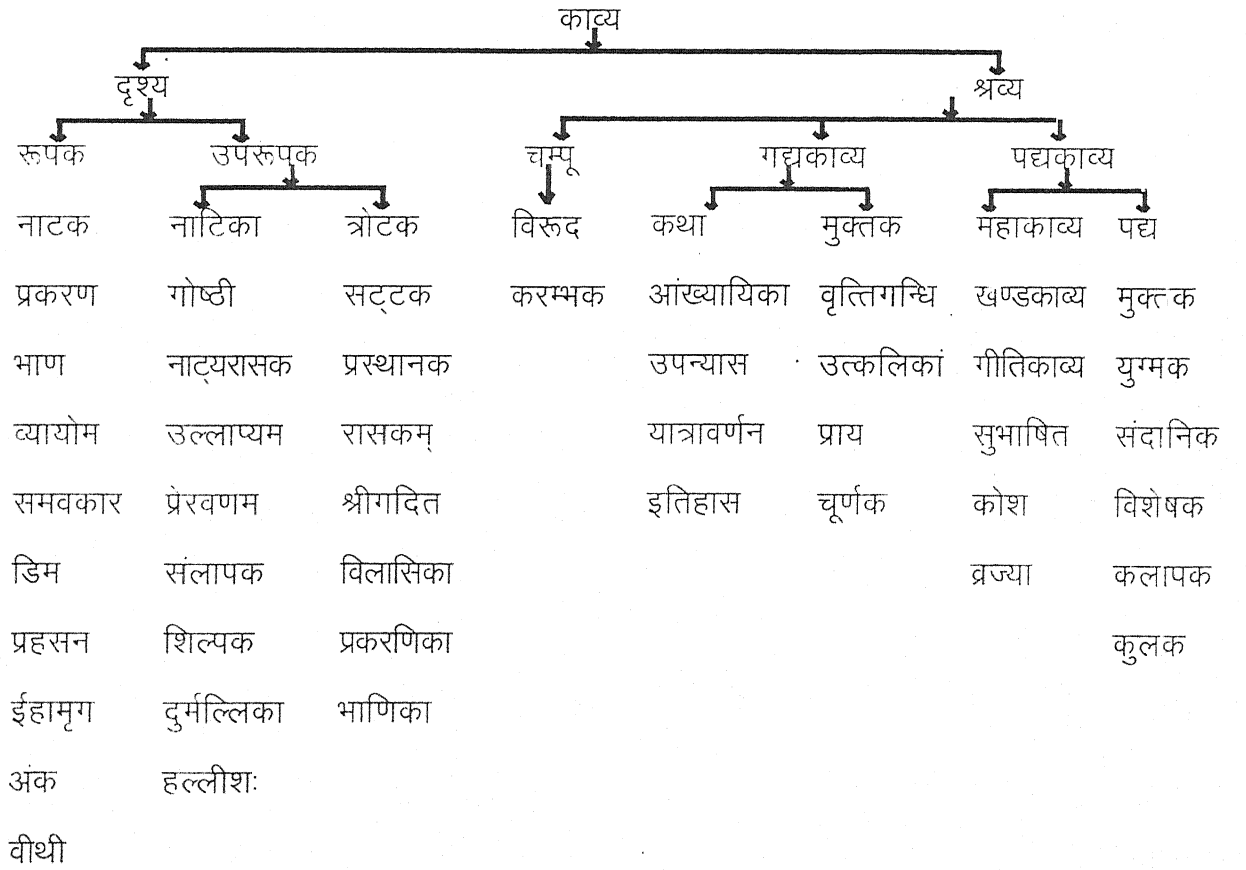
काव्य नाना रूपों का वर्णन संस्कृत अलंकार–शास्त्र में मिलता है। काव्य मुख्यतया दो प्रकार का होता है– (1) श्रव्य काव्य (2) दृश्य काव्य

श्रव्य का अर्थ है सुनने योग्य। जैसे– संस्कृत में कालिंदास का महाकाव्य 'रघुवंश' तथा 'कुमार सम्भव' और हिन्दी में तुलसी का 'रामचरित मानस' तथा केशव दास की रामचन्द्रिका।

वस्तु विचार से श्रव्यकाव्य के मुख्यतयः तीन भेद होते है (1) महाकाव्य (2) खण्डकाव्य (3) मुक्तक।

श्रव्य काव्य के दो विभाग किये जाते हैं (1) रूपात्मक तथा (2) वस्त्वात्मक।

गद्य, पद्य, चम्पू रूपात्मक भेद के अन्तर्गत हैं। छन्दोबद्ध वाक्य को पद्य कहते हैं और छन्दोविहिन वाक्य को गद्य। गद्य तथा पद्य के मिश्रण को चम्पू कहते है।

महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य

महाकाव्य शब्द 'महत्' और 'काव्य' दो शब्दों से मिलकर बना है। इसमें पहला शब्द विशेषण और दूसरा विशेष्य है। महाकाव्य शब्द में विशेष्य का अधिक महत्व होता है। महाकाव्य जीवन के महत् का विवेचन होता है।

'महाकाव्य की कल्पना' को आलकारिकों ने प्रतिष्ठित किया। 'महाकाव्य की महत्ता स्वरूप जन्य नहीं है, प्रत्युत गुणजन्य है। कोई भी काव्य अपने विपुल काय के कारण महाकाव्य की पदवी से विभूषित नहीं किया जा सकता। उसके लिये कतिपय लक्षणों की स्थिति अनिवार्य होती है–

आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श नामक अलंकार ग्रन्थ में लिखा है–

(1) इसमें एक ही नायक होता है जो या तो देवता होता है या उदात्त गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय होता है।

(2) वीर, श्रंगार और शान्त इन तीनों में से कोई एक रस अंगीरस(मुख्य) होता है। और अन्य रस गौण रूप से ही वहाँ निबद्ध किये जाते हैं।

(3) कथानक इतिहास प्रसिद्ध होता है अथवा किसी सज्जन पुरूष का चरित्र वर्णन किया जाता है।

(4) प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार की वृत्त रचना के लिए चुना जाता है, परन्तु सर्ग के अन्त में वृत्त बदल देनें का नियम है।

(5) सर्ग का परिणाम न बड़ा होना चाहिए, न छोटा।

(6) सर्गो की संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी कथानक की सूचना भी अवश्य होनी चाहिए।

(7) कथानक को अलंकृत तथा परिवृंहित करने के लिए नाना प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी स्थान–स्थान पर अपेक्षित होता है, जैसे संध्या, सूर्योदय, प्रदोष, रात्रि, अन्धकार, चन्द्रोदय आदि का तथा वन, पर्वत, समुद्र तथा ऋतुओं का। बीच–बीच में श्रृंगार रस का भी परिपोष किया जाता है और इसलिए स्त्रियों की जल–केलि आदि का भी वर्णन अपेक्षित रहता है। वीर

रस के प्रसंग में लड़ाई, मन्त्रण तथा आक्रमण आदि विषयों का भी सांगोंपांग वर्णन रहता है।

(8) नायक तथा प्रतिनायक का संघर्ष महाकाव्य का मुख्य विषय होता है।

(9) अन्तिम उद्देश्य होता है धर्म तथा न्याय की विजय तथा अधर्म तथा अन्याय का विनाश।[1]

इस प्रकार दण्डी के अनुसार महाकव्य में अग्निपुराण वर्णित विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएँ भी अपेक्षित हैं। जैसे आरम्भ में आशीर्वचन, नमस्कृति अथवा वस्तुनिर्देश तथा कल्पान्तस्थलीं कीर्ति का वैभव आदि।

अतः दण्डी की दृष्टि महाकाव्य के विस्तार—मात्र पर न रहकर उसकी उदात्त और व्यापक जीवनोपयोगिता और विश्वजनीन महत्ता पर विशेष रूप से केन्द्रित रही है। महाकाव्य के लोकरंजकत्व पर उन्होंने बल दिया है। आरम्भिक मंगलाचरण-- विधान में सांस्कृतिक परम्पराओं के निवार्ह की लोक कल्याणकारी प्रवृत्ति विद्यमान हैं।

खण्डकाव्य

खण्ड काव्य मात्रा में महाकाव्य से छोटा हो परन्तु गुणों में उससे कथमणि न्यून न हो 'खण्डकाव्य' कहलाता है। यह महाकाव्य का टुकड़ा न होकर, स्वयं पूर्ण तथा स्वतन्त्र होता है। प्रबन्ध काव्य का आधार कोई निंश्चित कथानक होता है एवं उसके छन्दों में पूर्वापर सम्बन्ध रहता है। प्रबन्ध काव्य को भी दों भागों में विभक्त किया गया है—

(1) महाकाव्य (2) खण्ड काव्य

"आर्चाय विश्वनाथ के अनुसार" खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्य एकदेशानुसारि च"

अर्थात खण्ड काव्य का एकदेशीय रूप होता हैं। महाकाव्य विषय प्रधान होता है, परन्तु खण्ड काव्य मुख्यतया विषयी —प्रधान होता है। जिसमें लेखक कथानक के स्थूल साँचे में अपने वैयक्तिक विचारों को प्रसंगानुंसार वर्णन करता है। यथा मेघदूत खण्डकाव्य का एक सुन्दर दृष्टान्त है। इसमें प्रकृति का वर्णन विशेष रूप से सुन्दर तथा भव्य है। इसमें बाह्य प्रकृति के सौन्दर्य तथा कमनीयता का उज्जवल प्रदर्शन है और साथ ही साथ मानव हृदय के कोमल भावों का भी बड़ा ही रूचिकर प्रयोग किया गया हैं।

मुक्तक – आधुनिक समीक्षकों के अनुसार इसे भावप्रधान और विषय प्रधान भी कहते हैं। भाव प्रधान कविता में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ, भावनाओं और आदर्शो की प्रधानता रहती है।

मुक्तक का अर्थ है सन्दर्भ, प्रकरण आदि से मुक्त या विरहित काव्य। महाकाव्य में सन्दर्भ का बड़ा महत्व होता है। मुक्तक तो उन रस–भरे मोदकों के समान है जिनके आस्वाद मात्र से सहृदयों का हृदय तुरन्त तृप्त तथा उल्लसित हो जाता है।

आाचार्य राजशेखर ने मुक्तकों के पाँच भेद किये है –

(1) शुद्ध, चित्र, संविधानकभू, आख्यानकवान शुद्ध–जिसमें बिना किसी अतिरिक्त सामग्री के किसी भावना का वर्णन होता है।

(2) चित्र–जहाँ शुद्ध मुक्तक में भावों की अनेक चित्र विचित्र कल्पनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

(3) कथोत्थ – किसी अतीत घटना का वर्णन करने वाला मुक्तक ।

(4) संविधानकभू – जिसमें घटना की सम्भावना की जाती है।

(5) आख्यानकवान – जिसमें घटना को कवि अपनी मनोरम प्रतिभा के सहारे बहुत ही विस्तृत कर दिखलाता है।[3]

मुक्तक के दो भेद होते हैं– लौकिक तथा धार्मिक। लौकिक मुक्तक लोक के नाना विषयों के विधान से सम्बन्ध रखता हैं। धार्मिक मुक्तक– विशिष्ट देवता की स्तुति से सम्बन्ध रखते हैं। इसका ही प्रचलित नाम 'स्त्रोत्र' है। संस्कृत में 'स्त्रोत्र' का एक विशाल साहित्य है। ''संस्कृत का भक्त कवि भगवान की दिव्य विभूतियों से चकित हो उठता है, तो कभी भगवान के भी विशाल हृदय, असीम अनुकम्पा और दीन जनों पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्म विस्मृत हो जाता है। इसलिए संस्कृत का मुक्तक साहित्य हृदय के भावों के वर्णन करने में अपनी तुलना नहीं रखता।''[4]

इतरभेद

छन्दोबद्ध रचना पद्य तथा छन्दोविहीन रचना 'गद्य' कहलाती हैं। संस्कृत आचार्यो के मतानुसार 'छन्द' काव्य के लिये आवश्यक वस्तु नहीं हैं। गद्य काव्य दो प्रकार का मुख्यतया माना जाता है– कथा और आख्यायिका।

संस्कृत में इन दोनों प्रकार की रचनाओं को प्रस्तुत करने का श्रेय महाकवि बाणभट्ट को ही है। 'कादम्वरी' को अद्वितीय 'कथा', हर्षचरित को ' आख्यायिका नाम दिया है। कथा किसी प्राचीन आख्यान को कहते हैं, जिसमें प्रतिभा के विलास को दिखाने के लिए कवि को अवसर मिलता है। और आख्यायिका इसके विपरीत वह गद्यकाव्य है, जिसका ऐतिहासिक आधार कोई न कोई अवश्य हो।

गद्य और पद्य के मिश्रण को चम्पूकाव्य कहते हैं। इस मिश्रण का उचित विभाग तो यही प्रतीत होता है कि भावत्मक विषयों का वर्णन पद्य के द्वारा हो और वर्णनात्मक विषयों का विवरण गद्य के द्वारा हो। परन्तु चम्पू के लेखकों ने इस तथ्य का अनुसरण तथा पालन अपने ग्रन्थों में समुचित रीति से नहीं किया। संस्कृत में 'नल–चम्पू', 'रामायण चम्पू', 'भारत चम्पू', आदि का विशाल साहित्य है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार– गद्य पद्यमयं काव्य चम्पूख्यि–भिधीयतें।''[5] चम्पूकाव्य का प्रारम्भिक रूप आर्यशूर की 'जातकमाला, तथा हरिषेण के प्रशस्ति–लेख में देखा जा सकता है।

भाषा के द्वारा भावाभिव्यक्ति का मौलिक माध्यम गद्य ही है। गद्य का आर्विभाव मानव–भाषा के साथ ही हुआ। पद्य तो गद्य का एक नियमित तथा निश्चित प्रकार है। छन्दोंबद्धता ही पद्य की मुख्य पहचान है। छन्दों के नियमों द्वारा निबद्ध गद्य ही पद्य है। पद्य किसी बंधन में अपने आप निबद्ध नहीं होता। इसलिए गद्य कवि की प्रतिभा को परखने के लिये कसौटी है–

''गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति''

संस्कृत गद्य की पहली विशिष्टता–लाघव, लघुकायता है। इसमें अधिक से अधिक अर्थ को कम शब्दों में अभिव्यक्त करने की क्षमता रहती है। ओजगुण के कारण संस्कृत गद्य में विचित्र प्रकार की भावमग्राहिता तथा गाढबन्धता का संचार होता है, जिसमें गद्य का सौन्दर्य पूरे रूप में खिल उठता हैं। ओज का प्रधान लक्षण है, समास की बहुलता और यही ओज गद्य का प्राण है। आचार्य दण्डी के अनुसार –

''ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।''[6]

दर्शनिकों ने अपने विचारों को सुचारू रूप से अभिव्यक्त करने के लिए 'विचार मापक नवीन पारिभाषिक शब्दों की उद्भावना की। गद्य तो विचारों को प्रकट करने का मुख्य साधन है। गद्य लेखकों में सुवन्धु का स्थान सर्वप्रथम है।

नाटक – दर्शनीय और अभिनेय रूप से ही जिसका पूर्ण एवं सम्यक आनन्द ग्रहण करना सम्भव होता है, उसे संस्कृत काव्यशास्त्र में दृश्यकाव्य के नाम से अभिहित किया गया हैं।[7] श्रव्य काव्य का रस श्रवणेन्द्रियों द्वारा अभिनय–दर्शन के बिना नहीं लिया जा सकता। चाक्षुषगोचयोम्यता ही दृश्यकाव्य का मौलिक वैशिष्ट्य है। आधुनिक व्यवहार में 'नाटक' शब्द का प्रयोग दृश्यकाव्य के अर्थ में रूढ़ हो चला है। प्राचीन भारतीय संस्कृत काव्य–शाास्त्र के अन्तर्गत नाटक 'दृश्यकाव्य' के एक भेद 'रूपक' के एक उपभेद मात्र के रूप में वर्णित है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कह कर नाटक की सर्वाधिक रमणीयता भी घोषित की गई है।

नाटक शब्द मूलतः संस्कृति की नट् धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है 'अनुकरण करना।' 'अवस्थानुकृतिर्नाटयम' के अनुसार मूल ऐतिहासिक पात्रों को अवस्था की अनुकृति ही नाट्य हैं।

आचार्य भरत ने भी नाटक को लोक स्वभाव का अनुकरण अथवा लोक वृत्त का अनुकरण स्वीकार किया है। यहाँ स्वभाव तथा वृत्त विस्तृत अर्थ वाले शब्द हैं इसके अन्तर्गत लोक जीवन के समस्त अन्तर्बाह्य रूपों का वेशभूषा, कार्यव्यापार, वाणी व्यवहार, भावादि सभी का समावेश है।

आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वेशभूषा, क्रियाकलाप आदि बाह्य रूपों का ही नहीं, अपितु नाना अनुभावों के द्वारा स्थायी, संचारी आदि मानसिक विकारों के अभिनय का ही सूक्ष्म विधान है। वस्तुतः यहाँ अनुकरण का अभिप्राय अभिनय ही है। यह अवस्था रूप तथा व्यवहारादि की अनुकृति अभिनेता नट के द्वारा ही की जाती है।''[9] इसमें कविकर्म संस्पर्श नहीं है। क्योंकि कविकर्म तो आत्माभिव्यञ्जक की एक अलौकिक दशा है। काव्य, दिव्य प्रतिभाजन्य अलौकिक सिद्धि है, वह कला नहीं, क्योंकि कला में मानस के बौद्धिक संसर्ग का कल्पनात्मक अवतरण है जो अनुकृति को मूर्त रूप देता है जबकि काव्य में मानस के आत्मिक संसर्ग की अभिव्यक्ति रूपात्मक विद्या है जो सभी विद्याओं में श्रेष्ठ है और अभिनय एक कला है, उपविद्या है। अतः अभिनेता से बड़ा कवि है तथा अभिनय से बड़ा काव्य।[10] एक कुशल नाटककार अपने पात्र के मनोगत रागादि को भी ठीक उसी तरह वर्णित करता है, जैसे उसके बाहरी रूप को।

किसी भी नाटक की सफलता भी उसी समय स्वीकार की जा सकती है जबकि नाटककार ने पात्रों की आभ्यान्तर –प्रकृति को सुन्दर तथा धार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया हो। भारतीय अलंकार शास्त्र में इस सिद्धान्त की महत्ता इसी ओर संकेत करती है और दृश्य काव्य के क्षेत्र में इसकी आत्म प्रतिष्ठा भरत मूनि के भी बहुत पहले नन्दि केश्वर तथा कई अन्य आचार्यो द्वारा हो चुकी थी। इस प्रकार नाट्य का एकमात्र लक्ष्य मानव तथा मानवेतर प्रकृति का चित्रण हैं।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में दृश्यकाव्य रूपक तथा 'नाट्क' के पर्याय –रूप के ड्रामा (Drama) शब्द प्रचलित है जिसका प्राचीनतम रूप यूनान में उपलब्ध होता है। ड्रामा के मूल में 'सक्रियता' का अर्थ विद्यमान है, यद्यपि व्यवहारिक रूप से अरस्तू जैसे आचार्यो द्वारा ड्रामा को जीवन की अनुकृति भी कहा गया है। इस दृष्टि से नाट्क और ड्रामा के व्यवहारिक अभिप्राय में अन्तर है। इसी से भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण का मौलिक अन्तर भी निर्दिष्ट हो जाता है। भरतीय नाटकों में 'अनुकरण' और 'अभिनय' का तत्व तथा पाश्चाव्य नाटकों में 'सक्रियता का तत्व प्रबल रहा है।,

भारतीय नाटकों के चार उपकरण होते है– पाठ्य (संवाद), गीत (गायन), अभिनय (हाथ पैर आदि का प्रक्षेप) तथा रस (हृदय को आकृष्ट करने वाला अलौकिक आनन्द विशेष) इन चारों को ब्रह्मा ने क्रमशः ऋग्वेद से, सामवेद से, यजुर्वेद से और अथर्ववेद से ग्रहण किया। इस प्रकार ब्रह्मा ने चारों वेदों से पूर्वोक्त चारों तत्वों को ग्रहण कर नाट्य का आविर्भाव किया।

संस्कृत नाटकों में मनोरज्जन तो नाट्य का बाह्य और दृष्ट फल है। परन्तु विदेशी नाटककारों ने आनन्द को ही प्रथम स्थान दिया है। सुधार को गौण माना है।

रूपको का विभाजन

अवस्थानुकृतिनार्टयम काव्य में नायक की जो धीरोदात्त इत्यादि अवस्थायें कही गई हैं, उनकी अनुकृति को नाट्य कहते हैं। नाटक को रूप भी कहते हैं क्योंकि इसे देखा भी जाता है। रूप का नायक की अवस्था का नट पर आरोप किये जाने के कारण इसे रूपक भी कहते हैं। ''रूपकं तत्समारोपात्'' नाटय रूप और रूपक पर्यायवाची शब्द है।[11] शारदातनय के अनुसार ''नट कर्मेव नाट्यम् स्यादिति

नाटयविदां मतम्।[12] भरतमुनि के नाट्य शास्त्रानुसार नाटक के दश भेद होते हैं जो इस प्रकार हैं –

नाटकं सप्रकरणमको व्यायोग एव च

भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः।।

ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे।[13]

नाटक, प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम, और ईहामृग, इन दश प्रकार के रूपकों के विषय में भरत की धारणाएँ आगे के नाट्य शास्त्रियों के लिए प्रमाणिकता की निकर्ष बनी।

आचार्य भरत मुनि के पश्चात् के आचार्यों ने नाट्य जगत की नवीन उत्पत्तियों को रूपक के और भेदों के रूप में न गृहण कर, उन्हें 'उपरूपक' को संज्ञा प्रदान की है।

धनंजय ने भरत के अनुसार दस प्रकार के रूपकों को स्वीकार कर सर्वप्रथम 'नाटिका' का उल्लेख किया है, जो दशरूपक से पृथक वस्तु है। 'दशधैव रसाश्रयम्' रूपक रसों पर आश्रित होते हैं।[14] वस्तु नेता और रस के आधार पर एक दूसरे से भिन्न स्वरूप वाले दस ही रूपक हैं। ये रूपक के शुद्ध भेद हैं। इनमें से दो या तीन के कतिपय लक्षणों का मिश्रण (संकीर्णता) जिस रूपक में पाया जाता है वह संकीर्ण भेद हैं, जैसे नाटिका एक संकीर्ण रूपक है। आचार्य धनिक ने उपरूपकों को नृत्य भेद माना है।[15] नाट्य भेद नहीं, उपरूपक में आंगिक अभिनय का बाहुल्य होता है।

शारदातनय ने भरत और धनंजय के अनुसार दस रूपकों को स्वीकार कर [16] रूपकों के बीस और प्रकार बतलाये हैं। इस प्रकार ''त्रिंशद्रूपकभेदाश्चप्रकाश्यन्तेऽत्र लक्षणैः'' रूपको के उन्होंने तीस भेद माने हैं।[17] किन्तु भरत्तोत दस रूपकों को 'रसात्मक' और शेष बीस को भावात्मक कहा है।[18] भरत के अनुकरण पर कविराज विश्वनाथ दस रूपक तथा ''अष्टादश प्राहुरूपकाणिमनीषिणः'' कहकर अठारह उपरूपक स्वीकार करते हैं।[19]

'अग्निपुराण' ने सर्वप्रथम भरत के रूपकों को गिनाते हुए नाट्य के सत्ताइस प्रकार स्वीकार किये हैं।[20] विद्यानाथ ने नाट्य के दश भेद कहे हैं और उसके भेदक वस्तु, नेता और रस बतलाये हैं। [21]

विद्वानों ने प्रायः अठारह उपरूपक निम्नलिखित स्वीकार किए हैं–

'नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्ठक, नाट्यरासक, प्रस्थान उल्लाप्य, काव्य प्रेखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरण, हल्लीशक, और भणिका।

कीथ का कहना है कि इन विभागों के समय के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।[22] संस्कृत साहित्य में रूपक और उपरूपक का भेद काल्पनिक नहीं अपितु वास्तविक है और उसके कुछ आधार हैं। शारदातनय स्पष्ट लिखते हैं रूपक नाट्य है और उपरूपक 'नृत्य'। नाट्य रसाश्रित होता है और नृत्य भावाश्रित। रूपक वाक्यार्थाभिनय को कहते हैं और उपरूपक पदार्थाभिनय कहा जाता है।[23] धनंजय का भी यही मत है।

'प्रस्तारतन्त्र' के रचयिता और भरत कोहल के अनुसार– नाट्य के दो भेद हैं– मार्ग और देशी।

मार्ग के 20 भेद होते हैं। उनमें 10 रूपक कहे गये हैं और देशी के 10 भेद होते हैं। इस प्रकार नाट्य के तीस भेद मानते हैं।[24]

भरत और दशरूपककार धनंजय ने नाट्य के दश भेदों को जिन्हें उपरूपक कहते हैं – विशद एवं पूर्ण विवेचन किया है किन्तु उपरूपकों का कोई निरूपण नहीं किया है। धनंजय ने केवल नाटिका की व्याख्या की है। वस्तुतः दशरूपक ही नाट्य के क्षेत्र में प्रधान वस्तु है।[25] अभिनव भारती के अनुसार कोहल संप्रदाय ने सर्वप्रथम उपरूपकों की चर्चा की है। भरत मुनि 'नाट्यशास्त्र' के 18वें अध्याय[26] में, धनंजय ने दशरूपक के तृतीय प्रकाश में[27], रामचन्द्र गुणचन्द्र ने 'नाटयदर्पण' के प्रथम विवेक में नाटक और द्वितीय विवेक में शेष रूपकों का, शारदातनय नें 'भावप्रकाशन' के अष्टम अधिकार में[28], विद्यानाथ नें 'प्रतापरूद्रयशोभूषण' के नाटक प्रकरण[29] में, विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के छठवें परिच्छेद में[30] और हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' के आठवें अध्याय में [31] सभी रूपको के विषय में तत्सम्बन्धित कथा, वस्तु, नेता, रस, अंक, सन्धि और वृत्ति आदि का– रूपक प्रकार और उसकी प्रकृति को दृष्टि में रखकर विवेचन किया है।–

नाटक–

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नाटक का लक्षण इस प्रकार दिया है।

"नाटकं ख्यातवृतं स्यात्पंचसन्धिसन्वितम्

विलासदर्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।
सुख दुःख समुदभूति नानारसनिरन्तरम्
पंचादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः
प्रख्यातवंशी राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान्
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो व गुणवान्नायको मतः
एक एवं भवेदंगी श्रंगारो वीर एव वा
अंकमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्तहणेऽदभुत
चटवारा पंच वा मुख्यः कार्यव्यापृत पूरूषाः
गोपुच्छाग्रसमागृं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।[32]

नाटक का वृत (चरित्र) इतिहास पुराणादि में प्रसिद्ध होना चाहिए, वह मुखादि पॉच सन्धियों से तथा अनेक विभूतियों, समृद्धियों, विलासों एवं श्रृंगारादि अनेक रसों से अव्यवहित होता हुआ सुख दुखादि की अनुभूति कराने वाला होना चाहिए तथा यह अंकों में विभाजित होता है। इसमें अंकों का विभाजन बडी सावधानी से किया जाना चाहिए। एक अंक में एक ही प्रकार की घटनाओं का वर्णन होना चाहिए तथा अगले अंक की भिन्न घटनाओं से सम्बन्ध जोडने हेतु उसमें विन्दु का भी प्रयोग होना चाहिए। इससे अधिकतम दश तथा कम से कम पॉच अंकों वाला नाटक होता है। इसका नायक प्रख्यातवंश का राजर्षि, धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य (कृष्णवत्) अथवा आदिव्य (रामादिवत्) होना चाहिए। एक अंक के अन्दर नायक, देवी तथा गुरूजन आदि चरित्रों के द्वारा उत्पन्न होने वाले अनेक रसों का चित्रण होना चाहिए। क्रोध, दुख, शाप, युद्ध, विवाह तथा अदभुत विषयों का अभिनय अंक के अन्दर नहीं करना चाहिए। श्रंगार या वीर में से कोई एक प्रधान रस होता है, अन्य सभी रस गौड़ होते हैं तथा निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस होता है। नाटक में कुल चार या पॉच मुख्य पुरूष कार्य में संलग्न होते हैं। गोपुच्छ के अग्रभाग के समान अंकों को समायोजित करना चाहिये। नाट्यशाला के विध्नवंश हेतु सर्वप्रथम पूर्वरंग को योजना करनी चाहिए। ''पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति पूर्वरंगः।''[33] पूर्वरंग के 22 प्रकारों में नान्दी सर्वप्रमुख है।

''आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुत्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।

नान्दी में 12 या 8 पाद होना चाहिए। नाटक के नायक धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीरललित, धीरप्रशान्त आदि नाट्यशास्त्रानुसार नाटक के एक अंक में एक दिन से अधिक समय की घटनाएँ नहीं वर्णित होनी चाहिए। इस समय से अधिक अवधि की घटनाएँ प्रवेशकों द्वारा सूचित की जानी चाहिए। इसी प्रकार जब कोई पात्र किसी लम्बी यात्रा पर निकलता हो तो उसका वर्णन करके अंक को समाप्त कर देना चाहिए। प्रवेशक में उत्तम अथवा मध्यम श्रेणी के पात्रों एवं संस्कृत भाषा का प्रयोग नही कराना चाहिये। नाटक के दो अंकों के मध्य अथवा प्रथम अंक के पूर्व प्रवेशक की ही भांति विष्कम्भक का भी प्रयोग हो सकता है।

आचार्य धनंजय ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का ही प्रायः अनुधावन किया है। उन्होंने अपने 'दशरूपक' में नाटक के लक्षणों का निम्नवत विवेचन किया है–

एको रसो अंगी कर्तव्यों वीरः श्रृंगार एव वा[34]
अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽदभुतम्
दूरादध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्।।[35]
संरोधं भोजनं सुरतं चानुलेपनम्
अम्बर गृहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत।।[36]
नाधिकारि वधं क्वापि व्याज्यमावश्यकं नंच
एकाहाचरितैकार्यमित्थमासन्ननायकम्।।[37]
पात्रैरित्रचतुरैरकं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः
पताकास्थानकायन्यत्र बिन्दुरन्ते च बीजवत्।।[38]
एवमकां प्रकंर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः

पंचाकंमेतदवरं दशाकं नाटकं परम।।[39] नाटक के प्रमुख मौलिक भेदक तत्वों वस्तु, नेता और रस को लेकर विद्यानाथ ने नाट्य प्रकरण के तीसरे श्लोक के पश्चात वृत्ति में सभी रूपक भेदों का सुन्दर, संक्षिप्त और प्रमाणिक विवरण दिया है।[41]

नाटयदर्पण कार के अनुसार नर्तनार्थक नट् धातु से नाटक शब्द बना है[42] यही नाट्य रूप भी कहलाता है।

प्रकरण

नाट्यशास्त्र में प्रकरण की कथावस्तु तथा नायक दोनो ही उत्पाद्य अर्थात

कवि कल्पना प्रसूत कहे गए हैं। इसका इतिवृत भी नाटक की ही भाँति रसात्मक होना चाहिए। प्रकरण में किसी ब्राह्मण, वैश्य, सचिव, पुरोहित, मंत्री, अथवा सेनापति का चरित्र वर्णित होता है, इसका नायक उदात्त नहीं होता। इसमें न तो किसी दिव्य पात्र का ही चित्रण किया जाता है और न राज–सम्भोग का ही इसके अन्दर चरित्र केवल बाह्य पात्रों का ही चित्रण किया जाना चाहिए, जिनमें चेट, विट, श्रेष्ठी, वेश्या आदि हो सकते हैं। नाट्यशास्त्रानुसार इसमें मंत्री ब्राह्मण तथा पुरोहित की घरेलू बातों का चित्रण करना चाहिए। साथ ही वेश्या तथा कुलीन स्त्री इन दोनों का चित्रण एक ही स्थान पर नहीं होना चाहिए। नाटक की ही भाँति प्रकरण में भी कम से कम 5 तथा अधिक से अधिक 10 अंक रखने चाहिए, जिनमें नाना प्रकार के रसों तथा भावों आदि का चित्रण होना चाहिए। आवश्यकतानुसार इसमें प्रवेशक का भी प्रयोग किया जा सकता है।[43] नाट्यशास्त्र में प्रकरण की विशेषताओं के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं–

"यन्नाटके मयोक्तं वस्तुशरीर रसाश्रयोपेतम्
तत् प्रकरणेऽपि योज्यं केवलमुत्पाद्यवस्तुस्यात्।।
विप्रवणिक सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्
चरितं यदनेकविधं तज्येज्ञं प्रकरण नाम।।
दासविट श्रेष्ठियुतं वेशस्युपचारकारणेपेतम्।
मन्दकुलस्त्रीचरितं कार्य काव्यं प्रकरणे तु।
यदि वेशयुवतियुक्तं न कुलस्त्रीसंगमो भवेत्तत्र
अथ कुलजनप्रयुक्तं न वैशयुवतिर्भवेत्तत्र।।[44]

दशरूपककार धनंजय ने प्रकरण की परिभाषा देते हुए अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं –

"अथ प्रकरणे वृतमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम
अमात्यविप्रवणिजामेकं कुयच्चि नायकम।[45]
धीर प्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम्
शेषं नाटकवत्सन्धिप्रवेशकरसादिकम्।।[46]
नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्रीगणिका तथा
क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापिद्वयं क्वाचित्।।[47]

कुलजाभ्यन्तराः ब्रह्मा वेश्या, नातिक्रमोऽनयोः

अभिः प्रकरणं त्रेघा संकीर्णं धूर्तसड.कुलम् ।[48]

प्रकरण में लोक स्त्तर का कवि कल्पित (उत्पाद्य) इतिवृत तथा अमात्य, विप्र और वणिक में से कोई एक नायक रखना चाहिए, जो धीर प्रशान्त हो एवं धर्म काम और अर्थ से तत्पर हो किन्तु उसकी कार्य सिद्धि विघ्नों से युक्त हो (सापायम्) शेष प्रकरण सन्धि प्रवेशक और रस नाटक के समान ही रखने चाहिए। साहित्य दर्पण में प्रकरण का लक्षण देते हुए विश्वनाथ कविराज ने कहा है कि –

''भवेंत्प्रकरणे वृतं लौकिकं कवि कल्पितम्

श्रंगारोऽगी नायकवस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक

सापायधर्मार्थकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः

नायिका कुलजा क्वापि वैश्या क्वापि द्वयं क्वाचित्

तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः

कितवधूतकारादिविट चेटकसंकुलः ।[48]

उदाहरणतया– ब्राह्मण नायक– मृच्छकटिक में नायिका कुलीन वेश्या अथवा दोनों हो सकती हैं। उदाहरणतया– कुलीना नायिका पुष्पभूषितम में वेश्या नायिका रंगवृतम् में दोनो प्रकार की नायिका–मृच्छकटिकम् में पाई जाती हैं। अंकों की संख्या दश होती है।''

विद्यानाथ के अनुसार प्रकरण का लक्षण–

''उत्पाद्यभितिवृतम् धीरशान्तोनायकः, श्रृंगाररस्यैव प्राधान्यम् ।[49]

रसार्णवसुधाकर में प्रकरण तीन भेद गिनाये गये हैं शुद्ध, धूर्त और मिश्र, शुद्ध प्रकरण के उदाहरण रूप में 'मालतीमाधव' का नाम लिया गया है। 'कामदत्ता' को धूर्त प्रकरण की कोटि में रखा गया है।

भाणः

भाण वह रूपक है, जिसमें किसी निपुण एवं बुद्धिमान विट के द्वारा स्वानुभूत अथवा किसी अन्य द्वारा अनुभूत धूर्त चरित्र का वर्णन किया जाता है। उसके द्वारा सम्बोधन तथा उक्ति प्रयुक्ति आकाशभाषित के माध्यम से की जानी चाहिए। वह वीर एवं श्रृंगार रस की सूचना शौर्य वर्णन और सौभाग्य (विलास) वर्णन से दें। उसमें अधिकॉशतः भारती वृत्ति हो, एक अंक हो, वस्तु कल्पित हो, अपने अंकों समेत मुख

तथा निर्वहण सन्धियों का सन्निवेश हो और लास्य के दस अंक भी हों। ये लास्यांग इस प्रकार है–

गेय पदं स्थितं पाठयमासीनं पुष्पगण्डिका
प्रच्छेदकस्त्रिगूढं च सैन्धवाख्यं द्विगूढकम्
उत्तमोत्तमकं चान्यदुक्त प्रत्युक्तमेव च।[50]

लास्य के अंगों के प्रयोग से रूपक में आह्यदकता का समावेश हो जाता है इसी लिये नाट्य में इनका विधान किया गया है। साहित्यदर्पण[51] के अनुसार इनका संक्षिप्त स्वरूप यह है–

1. गेयपद– सामाजिकों के समक्ष बैठ कर वीणा आदि वाद्य के साथ अभिनय रहित गायन करना ही गेयपद कहलाता है।
2. स्थित पाठ्य– काम–प्रपीडिता नायिका द्वारा बैठ कर प्राकृत भाषा में गायन किया जाना स्थिति पाठ्य है।
3. आसीन– शोक व चिन्ता विह्वल नारी का वाद्य विहीन तथा आंगिक अभिनय से रहित बैठकर गाना 'आसीन' है।
4. पुष्पगण्डिका– आतोद्य के साथ पुरूष वेश में स्त्री द्वारा विविध छन्दों में गायन का प्रस्तुतीकरण पुष्पगण्डिका है।
5. प्रच्छेदक– अपने प्रियतम की अन्य नायिका में आसक्ति मानकर प्रेम विच्छेद से उत्पन्न क्रोध में सभी का वीणा के साथ गाना प्रच्छेदक कहलाता है।
6. त्रिगूढ– स्त्री वेश को धारण करके पुरूषों द्वारा मधुर अभिनय का प्रस्तुतीकरण त्रिगूढ़ है।
7. सैन्धव – जहॉ किसी पात्र द्वारा रसोचित संकेत को भूलकर वीणा आदि बजाकर प्राकृत वचन कहा जाता है, वहॉ सैन्धव होता है।
8. द्विगूढ– मुख ओर प्रतिमुख से संवलित, चतुस्त्रपद एवं रसभावादि पूर्ण गीत द्विगूढ है।
9. उत्तमोत्तक–कोप, प्रसाद और अधिक्षेप से युक्त उत्तरोत्तर रस का आश्रय, हाव–हेला संयुत विचित्र श्लोक रचना से मनोहर गायन उत्तमोत्मक कहलाता है।
10. उक्तप्रत्युक्त– उक्ति प्रत्युक्ति वाला, उपालम्भ युक्त झूठ युक्त और विलासपूर्ण गीत उक्त प्रत्युक्त होता है। अतः इस लास्यांगों सहित भाण का लक्षण आचार्य

धनंजय के अनुसार इस प्रकार है।

"भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा

यत्रो पर्वणभेदेकों निपुणः पण्डितो विटः।

सम्बोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः.

सूचयेद्वीरश्रृंगारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः।।

भूयसाभारतीवृत्तिरेकांके वस्तु कल्पितम्

मुखनिर्वहणे सांङ्गे लास्यांगानि दशापि च।[52]

आचार्य विद्यानाथ के अनुसार भाण का लक्षण इस प्रकार है–

धूर्तं विटो नायका उत्पाद्यमितिवृत्तम शृंगारवीररयोः सूचनामात्र प्रसारता।[53]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार भाण का लक्षण–

"भाणः स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः

एकाङ्क एवं एवात्र निपुणः पण्डितो विटः

रंङ्गे प्रकाशयेत्स्वेनानुभूतमितरेण वा

सम्बन्धनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः

सूचयेद्वीरश्रृंगारौ शौर्यसौभाग्यवर्णनैः

तत्रेतिवृतमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारती

मुख निर्वहणे संधी लास्याङ्गगानिदशापि च ।[54]

इसका सर्वप्रमुख उदाहरण 'लीलामधुकरम' है।

व्यायोग–

आचार्य धनंजय के अनुसार व्यायोग का लक्षण निम्नवत् है– व्यायोग का इतिवृत प्रसिद्ध हुआ करता है। उसमें किसी प्रसिद्ध और उद्धत नायक का आश्रय लिया जाता है। गर्भ और विमर्श सन्धियॉ नहीं होती। डिम के समान इसमें हास्य और श्रृंगार रसों को छोड़कर छह दीप्त रसों से संवलित होता है। ऐसे युद्धों का वर्णन हुआ करता है, जो स्त्री के निमित्त नहीं लड़ा जाता है। व्यायोग में एक दिन का वृतान्त प्रस्तुत करने वाला एक ही अंक होता है। पात्रों में पुरूषों की संख्या अधिक होती है। स्त्रियों की संख्या स्वल्प होती हैं। इसमें वीर रस प्रधान होता है--

ख्यातेतिवृतोव्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः।

हीनोगर्भ विमर्शाभ्यां दीप्ता स्युर्डिमवद्रसा

अस्त्रीनिमित्त संग्रामो जामदग्नजये यथा।।

एकाहारचरितैकाङ्को व्यायोगोवहुभिर्नरैः।[55]

अभिनवगुप्त, रामचन्द्र गुणचन्द्र आदि कुछ आचार्यों के अनुसार व्यायोग में समवकार की तरह 12 नायक होते हैं। भरत मुनि आचार्य विश्वनाथ के अनुसार व्यायोग का नायक राजर्षि अथवा दिव्य होता है। इसी प्रकार नाट्य दर्पण का कथन है कि व्यायोग में नायिका और दूती आदि पात्र नहीं होते। कौशिकी वृत्ति के अभाव में स्त्री पात्र कम होते हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार व्यायोग का लक्षण इस प्रकार है–

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः

हीनो गर्भविमर्शभ्यां नरैर्वहुभिराश्रितः

एकाङ्कश्च भवेदस्त्रीनिमित्त समरोदयः

कैशिकीवृत्ति रहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः

राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेदधीरोद्धतश्रच सः

हास्य श्रृंगारशान्तेभ्यं इतरेऽत्रांगिनो रसाः[56]

व्यायोग में वीर और रौद्र रस ही अंगीरूप में निवद्ध किए जाते हैं, अतएव गद्य और पद्य ओज गुण से युक्त रहते हैं।

समवकार–

दशरूपककार के अनुसार समवकार का लक्षण निम्नवत है–

कार्यं समवकोरेऽपि आमुखं नाटकादिवत्

ख्यातं देवासुर वस्तु निर्विमशीस्तुसन्धयः[57]

वृत्तयोमन्दकैशिक्यो नेतारोदेवदानवाः

द्वादशोदात्तविख्याताः फलतेषां पृथक्पृथक[58]

बहुवीररसाः सर्वेयद्वदम्भोधिमन्थने

अङ्कैः स्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिश्रृंगारस्त्रिविद्रवः[59]

द्विसन्धिङ्कः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः।।

चतुर्दिनालिकान्त्यौनालिका घटिकाद्वयम्।[60]

वस्तुस्वभावदैवारिकृताः स्युः कपटास्त्रयः।।

नगरोपरोधयुद्धे वाताग्न्यादिकविद्रवाः

धर्मार्थकामैः श्रृगांरो नात्रविन्दुप्रवेशकौ[61]

वीथ्यांगानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा।[62]

नाटक आदि के समान समवकार की भॉति आमुख की योजना करनी चाहिए। इसमें देवताओं और असुरों की प्रख्यात कथा–वस्तु रहती है। विमर्श को छोड़कर शेष संधियॉ होती हैं। कौशिकी की स्वल्पायुक्त सब वृत्तियॉ रहती हैं। इसके नायक बारह होते हैं। इतिहास (पुराण) प्रसिद्ध देवता एवं दानव उदात्त प्रकृति के होते हैं। उन सबके फल भिन्न–भिन्न होते हैं उसमें वीर रस का आधिक्य रहता है जिस प्रकार समुद्र मन्थन नामक समवकार के पात्रों में है। यह तीन अंक वाला रूपक होता है। यह तीन कपट, तीन श्रृंगार, एवं विद्रवों से युक्त होता है। पहला अंक दो सन्धियों (मुख प्रतिमुख) वाला रखना चाहिए और इसका कथानक बारह नाडी (24 घड़ी) का होना चाहिए। शेष दो अंक चारनाडी (दूसरा अंक) और दो नाड़ी (तृतीय) के होने चाहिए। नालिका (नाड़ी) दो घड़ी की होती है। वस्तु स्वभावकृत, दैवकृत और अरिकृत ये तीन कपट होने चाहिए। नगरोपरोध युद्ध, वात (झंझा) और आग आदि द्वारा किए गये तीन विद्रव (उपद्रव) होते हैं। धर्म अर्थ तथा काम से युक्त तीन प्रकार का श्रृंगार होना चाहिए। इसमें विन्दु (अर्थ प्रकृति) एवं प्रवेशक (अर्थोपक्षेपक) नहीं होने चाहिए। जिस प्रकार प्रहसन में वीर्थी के अंगों की योजना होती है, उसी प्रकार इसमें भी यथावश्यक वीथी के अंग समायोजित होने चाहिए।

साहित्य दर्पण के अनुसार समवकार में–

"वृतं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्

संधयो निर्विमर्शास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे।।

संधी द्रावन्त्ययोस्तद्वदेक एका भवे पुनः

नायका द्वादशोदाताः प्रख्याता देवमानवाः

फलं पृथक पृथकतेषां वीरमुख्योऽखिलो रसः

वृत्यो मन्दकैशिक्यो नात्र विन्दुप्रवेशकौ

वीथ्यंगानि च तत्र स्युर्यथालाभं त्रयोदश।

गायत्युष्णिडमुखान्यत्र च्छन्दांसि विविधानि च।।

त्रिश्रृंगारस्त्रिकपटः कार्यश्रचायं त्रिविद्रवः

वस्तु द्वादशनालीभिर्निष्पाद्यम् प्रथमांकगम्।।

द्वितीयेऽङ्के चतसृभिर्द्वाभ्यामंङ्के तृतीयके।
धर्मार्थ कामैस्त्रिविधः श्रृंगारः कपटः पुनः।।
स्वाभाविका कृत्रिमश्च दैवजो विद्रव पुनः।
अचेतनैश्रचेतनैश्रच चेतनाचेतनैः कृतः।।[63]

अर्थात् समवकार के अन्तर्गत–इतिहास– पुराणादि प्रसिद्ध देवासुर सम्बन्ध विषयक कथा निबद्ध की जाती है। इसमें विमर्श सन्धि का अभाव होता है। तथा अंकों की संख्या तीन होती है। इसमें से प्रथम अंक मे दो सन्धियाँ तथा दूसरे व तीसरे अंक में एक–एक सन्धि होती है। नायकों की संख्या 12 होती है, जो देवता तथा मुनष्य होते हैं। वीर रस मुख्य होता है तथा बिन्दु प्रवेशक व कैशिकी वृत्ति का अभाव होता है; परन्तु यथासम्भव 13 वीथ्यङ्ग होते हैं। गायत्री, उष्णिक आदि अनेक प्रकार के छन्द होते हैं। तीन प्रकार का श्रंगार (धर्म, अंर्थ, काम, श्रृंगार) तीन प्रकार का कपट (स्वाभाविक, कृत्रिम, दैवजकपट) तथा तीन प्रकार का विद्रव (चेतन, अचेतन, चेतनाचेतनविद्रव) होता है। प्रथम अंक की कथा 12 नाड़ियों (24 घडी) में द्वितीय अंक की कथा चार नाडी में तथा तृतीय अंक की कथा दो नाडी में सम्पन्न होनी चाहिए।

नाट्यशास्त्र के अनुसार[64] "समवकार में देवासुर– सम्बन्धी वस्तु तथा प्रख्यात एवं उदात्त नायक का चित्रण होना चाहिए। इसमे तीन अंक होने चाहिए, तथा तीन प्रकार के कपटों, तीन प्रकार के विक्षेपों तथा तीन प्रकार के श्रृंगारों का वर्णन होना चाहिए। अपनी योजनाओं द्वारा प्रयुक्त, पर प्रयुक्त, तथा दैव प्रयुक्त ये कपट के तीन प्रकार कहे गए हैं, जिनमें सुख अथवा दुख दोनों की उत्पत्ति हो सकती है। युद्ध अथवा जल से उत्पन्न वायु, अग्नि, अथवा हाथी से उत्पन्न तथा नगरोपरोध से उत्पन्न होने वाले विक्षोभ ही त्रिविध विक्षोभ हैं। त्रिविध श्रृंगार अथवा प्रेम का वर्णन करते हुए नाट्यशास्त्र कहता है कि कर्तव्य, भौतिकलाभ, तथा वासना से सम्बन्धित होने के कारण श्रृंगार भी तीन प्रकार का है। यहाँ इन तीनों के नाम क्रमशः धर्म श्रृंगार तथा काम श्रृंगार बताये गये हैं। समवकार के नायकों अथवा पात्रों की संख्या बारह तथा अभिनय की अवधि अठारह नाड़िका मानी गई है। श्री मनमोहन घोष के अनुसार नाड़िका लगभग 24 मिनट की होती है।

अस्तु समवकार पर्याप्त देर तक चलने वाला रूपक प्रतीत होता है। इसके

अतिरिक्त इसकी एक और विशेषता नाट्यशास्त्र में वर्णित है। वह यह है कि इनके प्रत्येक अंक के विषय भिन्न होते हैं, तथा उनमें परस्पर कोई सन्धि नहीं होती। इस प्रकार इसके अंगों के असम्बद्ध होने के कारण ही सम्भवतः यह बहुत लम्बा हो जाता है। समवकार में उष्णिक तथा गायत्री छन्दो के प्रयोग का निषेध किया गया है।[65] नाटय शास्त्र के अनुसार समवकार में उष्णिक और गायत्री छन्दों का प्रयोग उचित है परन्तु नाट्य शास्त्र के अनुसार स्त्रग्धरा एवं शार्दूल विक्रीडित आदि छन्दों का ही प्रयोग उचित है।[65]

डिम—

डिमो डिम्बो विप्लव इत्यर्थः

तद्योगादयं डिमः, डिमेः सड़धातार्थत्वादिति।[66]

डिम शब्द का अर्थ है—डिम्ब या विप्लव। डिम धातु के संघातार्थक होने से विप्लवादि प्रधान रूपक को 'डिम' कहते हैं। साहित्यदर्पण में डिम का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

''मायेन्द्रजालसंगामक्रोधोदभ्रान्तदिचेष्टितैः

उपरागैश्रच भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृन्तिकः

अंगीरौद्ररसस्तत्र सर्वेऽगानि रसाः पुनः

चत्वोरोऽका मता नेह विष्कम्भक प्रवेशकौ।

नायका देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः

भूतप्रेत प्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्त मुद्धताः।।

वृतयः कैशिकीहीना निर्विमशीश्च संधयः

दीप्ताः स्युः षड्रसाः शान्तहास्यश्रृंगारवर्जिताः[67]

जिसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध हो। वह माया इन्द्रजाल संग्राम , क्रोध और उन्मत्तादिकों की चेष्टाओं तथा उपरागों के वृत्त से व्याप्त हो। ऐसा रूपक डिम कहलाता है। इसका प्रधान रस रौद्र होता है तथा अंड्गों की संख्या चार होती है। विष्कम्भक, प्रवेशक, कैशिकी वृत्ति तथा शान्त, हास्य श्रृंगार (तीनों) रसों का अभाव पाया जाता है। इसके नायकों की संख्या 16 होती है; जो देवता गन्धर्व, यक्ष राक्षस महोरग, भूत प्रेत पिशाचादिक होते हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण त्रिपुरदाह हैं।

दशरूपककार के अनुसार डिम का लक्षण निम्नवत है—

"डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद्वत्तया कैशिकीं बिना
नेतारो देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगः
भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः
रसैरहास्यश्रृंगारैः षडभिर्दीप्तै, समन्वितः
मायेन्द्रजाल संग्राम क्रोधोदभान्तादिचेष्टितै,
चन्द्र सूर्योपरागेश्च न्याय्येरौद्र श्सेऽड़िगनि
चतुरंकश्चतुस्सन्धिर्मिर्विमशो डिमः स्मृतः।[68]

दशकरूपकार अनुसार "डिम शब्द की व्युत्पत्ति डिम संघाते" धातु से जिसका कि अर्थ धातु प्रतिघात करना होता है। इस रूपक में सोलह नायकों के संघात (समुदाय) का चरित प्रस्तुत किया जाता है। अतः इसे डिम कहा जाता है। इसमें इतिहासादि में विख्यात कथावस्तु होती है।[69]

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र का डिम लक्षण नाट्य शास्त्र के ही लक्षण के समान है। इसके अनुसार डिम का इतिवृत पूर्वप्रसिद्ध होता है। यह शान्त, हास्य एवं श्रृंगार रस से रहित, विमर्श सन्धिविहीन शेष रसों और अन्य सन्धियों से युक्त रहता है। इसमें रौद्र रस का निबन्धन अंगीरूप में होता है। चार दिन की घटना का वर्णन होने से इसमें चार ही अंक पाये जाते हैं। प्रत्येक अंक में एक–एक सन्धियों का नियोजन रहता है।इस रूपक में प्रथम अंक के पात्रों द्वारा ही द्वितीय अंक का प्रारम्भ होना चाहिए। इसमें विष्कम्भक एवं प्रवेशक आदि अर्थोंपक्षेपकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किन्तु युद्धादि के वर्णनों में चूलिका तथा अंकमुख इन दोनों अर्थोंपक्षेपको का प्रयोग होता है।

डिम का नायक धीरोद्धत होता है। चार अंक वाले इस रूपक के प्रत्येक अंक में चार–चार नायक होने से कुल मिलाकर सोलह नायक माने गए हैं। इन समस्त नायकों के विभाव, अनुभाव एवं फल आदि का पृथक–पृथक ही वर्णन करना चाहिए। संग्राम आदि का वर्णन होने से डिम में उल्कापात, बज्रपात, सर्यूग्रहण एवं चन्द्रग्रहण आदि का वर्णन रहता है।[70]

ईहामृग –

"ईहा चेष्टा मृगस्येव स्त्रीमात्रार्थ– त्रेतीहामृगः।" जिसमें मृग के समान केवल स्त्री के लिए ईहा अर्थात चेष्टा होती है। वह ईहामृग कहलाता है।[71] इस रूपक में

स्त्री निमित्तक चेष्टा का वर्णन किया जाता है। इसकी कथावस्तु प्रख्यात अथवा कवि कल्पित होती है। इसका नायक दिव्य कोटि का होता है। यह दिव्य मानव पात्रों से भी युक्त रहता है। कवि आख्यानवस्तु के अनुसार अंकों की संख्या रखने में स्वतन्त्र हैं। एक दिन की घटना का वर्णन होने पर चार अंक का नियोजन किया जाता है नाटयदर्पणनुसार लक्षण निम्नवत है।

ईहामृगः सर्वीथ्यंग दिव्येशो दृप्तमानवः
एकांगश्चतुरंकों वा ख्याताख्यातेतिवृत्तवान्
दिव्यस्त्रीहेतु संग्राम[72]

ईहामृग में प्रायः बारह नायक होते हैं। इसमें वीर और रौद्र रस का निबन्धन अंगी रस के रूप में किया जाता है। श्रृंगार रस का निबन्धन न होने के कारण वृत्तियों में कैशिकी वृत्ति प्रयोज्य नहीं है क्योंकि प्रतिनायक नायक की स्त्री में अनुरक्त रहता है। गर्भ और अवमर्श सन्धियों के अतिरिक्त अन्य संन्धियों का नियोजन रहता है। फलताः प्रारम्भ एवं प्रयत्न अवस्था के बाद ही फलागम का वर्णन कर दिया जाता है।

व्याजेनात्र स्वाभावः वाघासन्ने शरीरिण
व्यायोगोक्ता रसाः सन्धि वृत्तयोऽनुचिता रतिः।।[73]

दशरूपकानुसार "

मिश्रमीहामृगेवृत्त चतुरंग त्रिसन्धिमत
नरदिव्यावनियमान्नायक प्रतिनायकौ
ख्यातौ धीरोद्धतावन्त्यो विपर्यासादयुक्तकृत
दिव्यस्त्रियन्च्छितीमपहारादिनेच्छतः
श्रृंगाराभासमप्यस्य किञ्चित्किंञ्चित्प्रदर्शयेत्
संरम्भ परमानीय युद्धं व्याजान्निवारयेत
वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः।।[74]

ईहामृग नामक रूपक में कथावस्तु मिश्रित (प्रसिद्ध व कल्पित का मिश्रण) होती है, जो चार अंकों और तीन सन्धियों (मुख, प्रतिमुख, और निर्वहण) से युक्त होती है। बिना किसी नियम के इसमें नायक एवं प्रतिनायक के रूप में नर और देव (पात्र) होते हैं। जो प्रख्यात एवं धीराद्धत प्रकृति के होते हैं। उनमें से अन्तिम अर्थात्

प्रतिनायक मूल (विपर्यास; भ्रान्ति) से अनुचति कार्य करने वाला होता है। वह उसे न चाहने वाली दिव्यांगना का अपहरण आदि करके उसे पाना चाहता है, इस प्रकार के वर्णन में कवि को कुछ मात्रा में श्रृंगाराभास की योजना भी करनी चाहिए इन (नायको और प्रतिनायक) के विरोध को पूर्णता तक ले जाकर युद्ध किसी बहाने से रोक देना चाहिए और वध की स्थिति तक पहुँचे हुए भी वीर का (महात्मनः) वध भी नहीं करना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ व रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार ईहामृग एक अंक अथवा चार अंक का होना चाहिए। जहाँ अनुचित रीति का चित्रण होता हैं, वहाँ रत्याभास व श्रृंगाराभास हुआ करता है। 'ईहामृग' में प्रतिनायक उससे प्रेम न करने वाली नायिका की प्राप्ति के लिए उद्यत होता है, जिससे रति की उभयनिष्ठता सम्पन्न नहीं हो पाती, इसलिए श्रृंगाराभास ही होता है और श्रृंगार की परिपक्व रसानुभूति नहीं होती। इतिवृत्त में मूलस्त्रोत में वीर का वध यदि वर्णितं भी हो तो भी ईहामृग में उसका प्रस्तुतीकरण नहीं होना चाहिए। नाटयदर्पण के अनुसार तो इसमें वीरवध की सूचना नेपथ्य से भी नहीं दी जानी चाहिए। साहित्यदर्पण के अनुसार ईहामृग का लक्षण–

ईहामृगो मिश्रवृतश्चतुरंक प्रकीर्तितः
मुख प्रति मुखे संधी तत्र निर्वहणं तथा
नरदिव्यावनियमौ नायक प्रतिनायकौ
ख्यातौ धीरोद्धतावन्यो गूढ़भावदयुक्तकृत
दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः
श्रृंगाराभासमप्यस्य किंञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत
पताकानायका दिव्या मर्त्या वापि दशोद्धताः
युद्धमानीय संरम्भं परं व्याजान्निवर्तते
महात्मानो वधप्राप्ता अपि वध्याः स्युस्त्रनो
एकांकोदेव एवात्र नेतेत्याहुः परे पुनः
दिव्यस्त्रीहेतुकं युद्धं नायकः षडितीतरे।।[75]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ईहा मृग में क्रोधोवेश में युद्ध की तैयारी तो हो जाती है परन्तु वह किसी बहाने से टल जाती है। कुछ अन्य आचार्यों के अनुसार

ईहामृग में अंक एक ही होता है तथा देवता ही नायक होता है। जबकि कुछ लोगों के मत में नायकों की संख्या 6 होती है जिनमें किसी दिव्य स्त्री के कारण युद्ध होता है।

अंक—(उत्सृष्टिकांक)

''उत्क्रमणोन्मुखा सृष्टिजीर्वितं यासां वा उत्सृष्टिकाः शोचन्त्यः स्त्रियस्ताभिरंकितत्वादृत्सृष्टिकांकः''

जिनकी सृष्टि अर्थात् जीवन उत्क्रमणोन्मुख है, इस प्रकार की शोकगृस्त स्त्रियों को 'उत्सृष्टिका' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऐसी स्त्रियों की चर्चा करने वाला रूपकभेद 'उत्सृष्टिकांक' कहलाता है।[76]

नाट्यदर्पणकार ने 'उत्सृष्टिकांक' के भी लक्षण में भरत और धनंजय के ही मतों का अनुशरण किया है। इनके अनुसार कोई मर्त्यपुरूष ही इसका नायक हुआ करता है। दुःखात्मक करूणरस का प्राधान्य होने के कारण इसमें दिव्य नायक नहीं होते हैं। क्योंकि दिव्य जनों के सुखप्रधान होने के कारण उनके साथ दुखात्मक करूण रस का सम्बन्ध नहीं होता है। इसके युद्ध का वृत प्रसिद्ध होता है, जो सम्भवतः महाभारत आदि से उद्धत रहता है। ख्यात युद्ध का वृत्त होने से इसमें वध एवं बन्ध आदि के कारण इष्टवियोग आदि की प्रचुरता रहती है। अतएव करूण रस की भी प्रधानतः स्वाभाविक है। शौर्यादि मद से अवलिप्त पात्रों द्वारा वाक–युद्ध होता है, जिनमें परस्पर एक दूसरे के दोषो का वर्णन होता है। इसलिये भारती वृत्ति की भी प्रधानता रहती है। इसमें भूमि निपातन, शिरस्ताडन एवं स्वकेशत्रोटन आदि नाना प्रकार की चेष्टाओं का प्रदर्शन होता है बध एवं बन्ध आदि के ही कारण स्त्रियों के दैवोपालम्भ, आत्मनिन्दा आदि पूर्ण परिवेद का वर्णन रहता है। इसमें उत्तम और मध्यम पात्रों पर अनेक व्यसनों का पड़ना दिखाया जाता है। ये पात्र महाविपत्तियों में भी विषादरहित एवं स्थिर रहते हैं। एक दिन की घटना का वर्णन होने से इसमें एक ही अंक होता है।[77] दशरूपक में उत्सृष्टिकांक का लक्षण निम्नवत है –

उत्सृष्टिकांके प्रख्यातं वृतं वुद्धयाप्रपंचयेत्
रसस्तुकरूणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः
भाणवत्सन्धि वृत्यङ्गैर्युक्तिः स्त्रीपरिदैवितैः
वाचायुद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ।[78]

'साहित्य दर्पण' में अंक का लक्षण निम्नवत् दिया है–

''उत्सृष्टिकांक एकांको नेतारः प्राकृता नरः
रसोऽत्र करूणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम्
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुदध्या प्रपंचयेत
भाणवत्संधिवृत्यागांन्यस्मिंजयपराजयौ
युद्धं च वाचा कर्तव्य निर्वेदवचनं बहु।।''[79]

इसमें जय–पराजय के साथ–साथ वाक्कलह और निर्वेद–परक बहुत से वचन होते हैं। 'शार्मिष्ठाययातिः' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

वीथी –

''वक्रोक्तिमार्गेण गमनाद वीथीव वीथी''

वक्रोक्ति मार्ग से जाने से वीथी के समान होने के कारण यह 'वीथी' है [80] यह रूपक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसमें संध्यगों की पंक्ति रहती हैं अतएव इस रूपक के अनुसार इसमें उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकृति के नायक होते हैं।

इसमें एक दिवस प्रयोज्यवृत्त का प्रदर्शन होने से एक अंक होता है। कवि स्वेच्छा से एक या दो पात्रों का प्रयोग कर सकता है। इसमें जब एक पात्र का प्रयोग किया जाता है तब वह आकाशभाषित समन्वित होता है जब दो पात्रों का प्रयोग किया जाता है तब कथोपकथन, उक्ति प्रत्युक्ति में एक विचित्रता होती है। मुख और निर्वहण इन्हीं दो संधियों का नियोजन रहता है। फलतः आरम्भ अवस्था के बाद फलागम का ही प्रदर्शन होता है। श्रृंगार एवं हास्य का अल्पमात्रा में निबन्धन होने से कैशिकी वृत्ति का भी अभाव रहता है।[81] दशरूपक में वीथी का लक्षण निम्नवत है –

वीथी तु कैशिकी वृत्तौ सन्ध्यंगाङ्कैस्तु भाणवत्
रसः सूच्यस्तु श्रृंगारः स्पृरोदपि रसान्तरम्
युक्ता प्रस्तावनाख्यातरगैरूदधात्यकादिभिः
एवं वीथी विधातन्य द्वयेकपात्र प्रयोजिता।[82]

वीथी की भॉति होने के कारण यह वीथी कहलाती है। वीथी का अर्थ है मार्ग या अंगों की पंक्ति। इसमें अंगों की योजना भाण के समान करनी चाहिए। इसका सूच्य (प्रधान) रस श्रृंगार हो किन्तु उनमें अन्य रसों का भी संस्पर्श होना चाहिए।

वीथी प्रस्तावना के उपुर्यक्त अंगों से युक्त होती है। इस भॉति दो एक पात्रों द्वारा प्रयुक्त वीथी की योजना करनी चाहिए। साहित्यदर्पण में वीथी का लक्षण–

वीथ्यामेको भवेदंकः कश्चिचदेकोऽत्र कल्प्यते
आकाशभाषितैरूकैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः
सूचयेद भूरिश्रृंगारं किंचिदन्यान्रसान्प्रति
मुखनिर्वहणे सन्धी अर्थप्रकृत योऽलिखलाः[83]

इसमें एक ही अंक होता है तथा एक पुरूष को नायक के रूप में कल्पित कर लिया जाता है। उक्ति प्रत्युक्ति की योजना आकाशभाषित के द्वारा होती है। श्रृंगाराधिक्य के साथ अन्य रसों की भी सूचना दी जाती है। इसमें मुख व निर्वहण सन्धियॉ होती हैं परन्तु अर्थ प्रकृतियॉ सभी होती हैं। श्रृंगाराधिक्य के कारण कैशिकीवृत्ति की प्रधानता होती है। वीथी के कुल तेरह अंग बताए गए हैं–

उद्धात्यकावलगिते प्रपंच त्रिगते छलम्
वाक्केल्यधिबले गण्डमवस्यन्दितनालिके
असत्प्रलाप व्यवहारमृदवानि त्रयोदशा।[84]

उदघात्यक, अवलगति, प्रापंच, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिवल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्याहार, मृदव।

2. उद्घात्यक – "गूढार्थपद पर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा
यत्रान्योऽन्यं समालापो द्वेघोदधात्यं तदुच्यते।[85]

जहॉ (दो पात्रों की) पारस्परिक बातचीत (समालाप) या तो गूढ अर्थ वाले पदों तथा उनके पर्यायों की माला के रूप में होती है अथवा प्रश्नोत्तरमाला के रूप में होती है वह दो प्रकार का उदघात्यक कहा जाता है।"

2. अवलगति – यत्रैकत्रसमावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते
प्रस्तुतेऽन्यत्र वाडन्यत्सयात्तच्चावलगितँ द्विधा।[86]

जहॉ एक ही क्रिया द्वारा एक कार्य के समावेश से दूसरा कार्य सिद्ध किया जाता है अथवा एक कार्य के प्रस्तुत होने पर वह न होकर दूसरा सिद्ध हो जाता है वह दो प्रकार का अवलगित कहलाता है।

3. प्रपंच – "असदभूतं मिथः स्तोत्रं प्रपंचो हास्यकत्मतः।

जहॉ पात्र परस्पर एक दूसरे की हास्योत्पादक अनुचित (मिथ्या, असदभुत)

प्रशंसा करें, वहाँ प्रपंच नामक वीथ्यंग माना जाता है।

नाट्यशास्त्र में छल की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। ''अन्यार्थमेव वाक्यं हलमाभिसन्धान हास्य रोष करणम्। इसी से मिलता जुलता लक्षण नाट्य दर्पण में भी दिया गया है। ''क्चोडन्यार्थ छलं हास्य वंचना रोष करणम।''[89]

6. वाक्लेलि –''विनिवृत्यास्य वाक्केली द्विस्त्रिः प्रत्युन्कितोऽपिवा।''[90]

इस (प्रारम्भ किए हुए वाक्य) को रोकर (अधूरा छोड़कर) यो दो तीन बार के कथन प्रतिकथन से 'वाक्केली' हुआ करती है।

नाट्यशास्त्र मे वाक्केली की परिभाषा इस प्रकार है –[91]

''एकद्वि प्रतिवचना वाक्केली स्यात् प्रयोगेऽस्मिन् इसी के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने अपने–अपने वाक्केली लक्षण लिखे हैं। आचार्य अभिनव गुप्त 'अनेक प्रश्नों के उक उत्तर को वाक्केलि कहते हैं।

7. अधिबल – ''अन्योन्यवाक्याधिक्योक्तिः स्पर्धा याडधिवलं भवेत्।''[92]

स्पर्धा के कारण नाटकीय पात्रों द्वारा एक दूसरे की बात के बाद कर कही जाना 'अधिवल' होता है।

8. गण्ड– ''गण्डःप्रस्तुत सम्बन्धि भिन्नार्थ सहसोदितम

जहाँ भिन्नार्थक होते हुए भी प्रस्तुत अर्थ से सम्बद्ध हो सकने वाला वचन सहसा कह दिया जाता है, वहाँ गण्ड होता है।

9. अवस्यन्दित – ''रसोक्तस्यान्यथाः व्याख्या यत्रा वस्यन्दितं हि तत।''[93]

जहाँ भावेश (रस) में कहे गये (वास्तविक) वचन को दूसरे प्रकार की व्याख्या करके छिपा दिया जाय, वहाँ 'अवस्यन्दित' नामक वीथी का अंग होता है।

10. नालिका – ''सोपहासानिगूढार्था नालिकैव प्रहेलिका ।''[94]

उपहास युक्त और छिपे अर्थ वाली पहेली को ही 'नालिका' कहते हैं।

11. असत्प्रलाप– ''असम्बद्ध कथाप्रयोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः'' ।[95]

एक के पश्चात दूसरी (यथोत्तर) सम्बन्ध विहीन उक्ति से युक्त वर्णन को 'असत्प्रलाप' कहते हैं।

12. व्याहार – ''अन्यार्थमेव व्याहारो हास्यलोभकर वचः।''[96]

हंसी के लोभी को उत्पन्न करने वाले ऐसे वचन का प्रयोग, जिसका अर्थ कोई दूसरा ही हो 'व्याहार' (वीथ्यगं) कहा जाता है।

अभिनवभारती[97] में व्याहार शब्द की व्युत्पत्ति 'विविधोऽर्थोभिनीयतेयेन'' मे दी गयी है।[89] नाट्यदर्पण में विविधोऽर्थो अहियतेऽनया इति व्याहारः[98]

12. मृदव –'' दोषा गुणा गुणा दोषा यत्रस्युर्मृदवं हितत्[99]

जहाँ दोष, गुण एवं गुण, दोष हो जाय, वह कथन 'मृदव कहलाता है।

अस्तु वीथी के प्रदर्शन में इन सबकी योजना आवश्यक प्रतीत होती है।''[100] कारण कि जब इन सभी का प्रदर्शन होगा। वीथी नामक रूपक पूर्ण होगा अतः इन तेरहों का प्रयोग एक पात्र द्वारा एक ही अंक में किया जाना दुष्करं समझकर ही कुछ विद्वानों ने इन्हीं वीथी के अंग न मानकर उसके प्रकार अथवा भेद माने है।[101]

प्रहसन – ''भाणवत्सन्धिसन्ध्यंगलास्यांगाकैविनिर्मितम्

भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्धानां कविकल्पितम्

अंगी हास्यरसस्तत्र वीथ्यंगानां स्थितिर्नवा।''[101]

साहित्यदर्पण के अनुसार प्रहसन का लक्षण निम्नवत है इसमें भाण के समान सन्धि, सन्ध्यंग, लास्यांग और अंकों के द्वारा सम्पादित, निन्दनीय पुरूषों का कविकल्पित वृतान्त प्रहसन कहलाता है। आरभटी विष्कम्भक व प्रवेशक का अभाव होता है। हास्य रस प्रधान होता है। वीथ्यंग कहीं होते हैं, कही नहीं भी होते हैं। शुद्ध, संकीर्ण तथा विकृत भेद से प्रहसन तीन प्रकार का होता है।

''तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसकरैः।[102]

शुद्ध प्रहसन –''पाखण्डिविप्रप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम्

चेष्टितं वेषभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोन्वितम्

जो पाखण्डी ब्राह्मण आदि और चेट चेटी एवं विट से संकुल होता है साथ ही उनके चरित्र वेष और भाषा (वर्णन) से युक्त होता है। हास्य वचनों से युक्त होता है, वह शुद्ध प्रहसन कहलाता है।

विकृत प्रहसन – ''कामुकादिवचोवेषैः षण्ढकंचुकितापसैः[105]

विकृतं संकराष्द्वीथ्या सडंकीर्ण धूर्तस ङ्कुलम्।''[103]

जो कामोन्मत्त आदि की भाषा तथा वेषभूषा को धारण कर लेने वाले नपुंसक कंचुकी और तापस पात्रों से युक्त होता है, वह विकृत प्रहसन कहलाता है।

संकीर्ण प्रहसन –'' संकरादवीथ्या संकीर्ण धूर्तसंकुलम्[104]

वीथी के अंगों से मिश्रित और धूर्तो से पूर्ण प्रहसन संकीर्ण होता है।

नाट्यशास्त्र में पात्रों के चित्रण के आधार पर नाट्यशास्त्र में प्रहसन के दो भेद गिनाए गए हैं। शुद्ध एवं प्रकीर्ण।शुद्ध प्रहसन में भगवत, तापस एवं विप्र आदि का चरित्र–चित्रण किया जाता है। प्रकीर्ण प्रहसन में विभिन्न प्रकार के चरित्रों का चित्रण पाया जाता है।[110] नाट्यदर्पण कार ने भी प्रहसन के दो भेद माने हैं– शुद्ध और संकीर्ण। शुद्ध प्रहसन में निन्ध, पाखण्डी अथवा जातिमात्रोंपजीवी ब्राह्मण आदि किसी एक का अश्लीलता और ब्रीडाकारिता आदि से रहित वृत्त होता है। परिहास प्रधान वचनों का बाहुल्य रहता है। संकीर्ण प्रहसन में बहुत से चरित्रों का मिश्रण रहता है।इसमें स्वैरिणी, दास, वेश्या, शम्भली धूर्त, वृद्ध, पाखण्डी विप्र, भुजग एवं भट्ट आदि पात्र विकृत वेष में आते हैं और विकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इन पात्रों का आधार भी विकृत होता है।[106]

यूनानी तथा अंग्रेजी साहित्यकारों ने भी संस्कृत नाटककारों की तरह प्रहसनों के लिए केवल निम्नकोटि का चरित्र ही उपयुक्त माना है।अंग्रेजी नाटककारों ने भी प्रहसन में हास्य प्रस्तुत करने के लिये अनेक ऐसे विषय चुने हैं, जो संस्कृत के प्रहसनात्मक दृश्यों से मिलते जुलते हैं।

1. सौन्दर्य, ज्ञान एवं धन का गर्व
2. अनैतिकता आदि मानसिक कुरूपता
3. भ्रममूलक आशाएँ तथा विचार
4. अनर्गल वार्तालाप
5. अशिष्टता आदि
6. प्रपंचयुक्त कार्य तथा अस्वाभाविक जीवन
7. मूर्खतापूर्ण कार्य
8. पाखण्ड आदि
9. शारीरिक स्थूलता आदि
10. मद्यपान
11. विदूषक आदि

इस प्रकार संस्कृत और अंग्रेजी नाटक के प्रहसनात्मक दृश्यों में बहुत कुछ साम्य है।

प्रहसन का आधुनिक वर्गीकरण – आधुनिक प्रहसनों को चार वर्गों में विभाजित

किया जा सकता है। परिस्थिति प्रधान, चरित्र प्रधान, कथोपकथन प्रधान, विदूषक प्रधान।

(क) परिस्थिति प्रधान – ऐसे प्रहसनों में लेखक को अत्यन्त व्यापक स्थलों का चयन करना चाहिए।

(ख) चरित्र प्रधान – ऐसे प्रहसन अत्यन्त मर्मस्पर्शी होते हैं क्योंकि इनमें हमारी ही भावनाओं का दिग्दर्शन किया जाता है। इसमें पात्र क्रोध, गर्व एवं अहंकार आदि मानवी भावों में से एक अथवा दो का प्रतीक होता है।

(ग) कथोपकथन प्रधान – इस वर्ग के प्रहसनों में कथोपकथन द्वारा हास्य प्रस्तुत किया जाता है। व्यंग्य बाण एवं श्लेष का चमत्कारिक प्रयोग कर तथा उपहास का वातावरण उपस्थित कर कथोपकथन प्रधान प्रहसन पर्याप्त मात्रा में लिखे गए।

(घ) विदूषक प्रधान– कथोपकथन द्वारा विदूषक बड़ी सफलता से हास्य का निर्माण करता है।[107]

उपरूपक – अग्निपुराण में तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान भणिका, भाणी गोष्ठी हल्लीस काव्य, श्रीगदितम् नाट्यरासक, उल्लोप्यक और प्रेक्षणका का वर्णन किया गया है। नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने सट्टक, श्रीगदित, दुर्मिलिता, प्रस्थान गोष्ठी हल्लीसक, शम्या, प्रेक्षणक, रासक, नाट्यरासक काव्य भाणक एवं भाणिका का उल्लेख किया है जिन्हें उपरूपक न कहकर 'अन्यरूपक' की संज्ञा प्रदान की है।

प्रसिद्ध उपरूपक निम्नवत् है –

1. **सट्टक**– यस्त्वेकभाषया भवित।"[108]

अप्राकृत संस्कृतयाा........। नाट्यदर्पणकार के अनुसार सट्टक में एक ही भाषा का प्रयोग होता है इसमें प्राकृत और संस्कृत का मिश्रण नहीं होता किन्तु साहित्यदर्पणकार के अनुसार सट्टक में सम्पूर्ण पाठ भाग केवल प्राकृत भाषा में ही लिखा जाता है।

सट्टकं प्राकृताशेषपाठयं ....।[109]

2. **श्रीगदित** – "श्रीखि दानवशत्रोर्यस्मिन् कुलांगना पत्युः।

वर्णयति शौर्य–धैर्य प्रभृतिगुणानगृतः सख्याः।।

प्रत्या च विप्रलब्धा, गातव्ये व क्रमादुपा लभते।

श्रीगदितमिति... ।[110]

इसकी नायिका कोई कुलांगना होती है। जैसे लक्ष्मी, विष्णु के गुणों का वर्णन करती है वैसे ही वह नायिका भी सखी के सामने पति के शौर्य, धैर्य आदि गुणों का वर्णन करती है।

3. **दुर्मिलिता** – इसमें कोई दूती ग्रामीण कथाओं के माध्यम से एकान्त में चौर्यरत का भेद खोल देती है। पुनश्च युवा और युवती के अनुराग का वर्णन करती है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार इसमें कैशिकी और भारती वृत्ति की प्रधानता पाई जाती है।

4. **प्रस्थान** – इसमें चार अपसार (नृत्यच्छिन्न खण्ड) होते हैं। इसमें प्रथमानुराग, मान, प्रवास आदि श्रृंगारिक वर्णनों के उपरान्त वर्षा एवं वसन्त ऋतु के वर्णनों से श्रृंगार का उत्कर्ष कराया जाता हैं इसके अन्त में वीररस का वर्णन कराया जाता है।[111] भावप्रकाश में प्रस्थान के तीन भेद गिनाए गए हैं।इसके प्रथम भेद यात्रा वर्णन द्वितीय भेद– इसमें एक अंक होता हैं आरम्भ में श्रृंगार रस का वर्णन किया जाता हैं।इसके अन्त में वीर रस का निबन्धन किया जाता है। नाट्यदर्पणकार ने प्रस्थान के इसी स्वरूप को माना है।

प्रस्थान के तृतीय भेद में दो अंक होते हैं कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमें मुख और निर्वहण सन्धि की प्राप्ति होती है। अतएव प्रारम्भ अवस्था के बाद ही फलागम का वर्णन किया जाता है।[112]

5. **गोष्ठी** – इसमें गोष्ठ में विहार करतेहुए कैटभारि के कतिपय व्यापार का प्रदर्शन होता है यथा राक्षसों का मर्दन[113] भाव प्रकाश में भी गोष्ठी को उपरूपक की कोटि में उल्लेख किया गया है।[114]

6. **हल्लीसक** – नाट्य दर्पणकार के मतानुसार इसमें स्त्री पात्रों की अधिकता होती है एवं उन पात्रों का मण्डलीकृत नृत्त होता है। गोपियों के बीच कृष्ण के समान इनमें एक नायक होता है।[115]

7. **शम्या** – सभा में नर्तकी ललित लय के साथ जिसके पदार्थों का अभिनय करती है उस नृत्य को शम्या, लास्य, छलितं एवं द्विपदी आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है।[116]

8. **प्रेक्षणक** – साहित्यदर्पणकार ने प्रेक्षणक को प्रेक्षण की संज्ञा प्रदान की और

इसका निम्नस्वरूप प्रस्तुत किया है।

गर्भावमर्शरहितं प्रेखंणं हीननायकम्

असूत्रधारमेकांकमविष्कम्भक प्रवेशकम्

नियुद्धसम्फेटयुतं सर्ववृत्तिसमाश्रितम्

नेपथ्ये गीयते नान्दी तथा तत्र प्ररोचना।[117]

इसके नेपथ्य में नान्दी और प्ररोचना का पाठ होता है परन्तु सूत्रधार का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसमें गर्भ और विमर्श सन्धि का अभाव पाया जाता है।

9. **रासक** – षोडश द्वादशाष्टौ वा

यस्मिन् नृप्यन्ति नायिकाः

पिन्डीबन्धादिविन्यासैः

रासकं तदुदाहृतम्।।[118]

इसमें नायिकाओं की संख्या सोलह, बारह या आठ होती है ये नायिकाएं पिण्डीबन्ध आदि विशेष ढंग से नृत्य करती हैं।

10. **नाट्यरासक** – इसमें वसन्त ऋतु को पाकर राग के कारण नायिकाओं के सहित राजा के व्यापार का नृत्य द्वारा प्रदर्शन किया जाता है।[112] साहित्यदर्पणकार के अनुसार नाट्यरासक का लक्षण''

''नाटयरासकमेकांक बहुताललयस्थिति

उदात्तनायकं तद्धपीठममर्दोपनायकम्

हास्योऽगंयत्र सश्रृंगारो नारी वासकसज्जिका

मूखनिर्वहणे सन्धी लास्यांगानि दशाऽपि च।।[120]

इसमें एक अंक, उदान्त नायक, अनायक श्रृंगार और हास्य रस का समावेश रहता है। इसमें लास्यांगों का भी नियोजन रहता है। इसकी नायिका वासकसज्जा की कोटि की होती है।

11. **काव्य** – काव्य में आक्षिप्तिका, मात्रा ध्रुवा न टूटने वाला ताल, पद्धतिका एवं छंदनिका आदि का वर्णनं रहता है।

12. **भाण** – ''हरि–हर–भानु–भवानी–स्कन्द–प्रथमाधियं स्तुतिनिबिद्धः।

उद्धतकरणप्रायः स्त्रीवर्जो वर्णानायुक्तः।।[121]

भाण में विष्णु, महादेव, सूर्य, पार्वती, स्कन्द एवं प्रथमाधिप की स्तुति निबद्ध

रहती है। इसमें स्त्री पात्रों का अभाव रहता है। इसके क्रिया व्यापार का वेग अत्यन्त तीव्र रहा करता है।

भाषा की दृष्टि से भाण के तीन भेद होते हैं– शुद्ध संक्रीण एवं चित्र। कथावस्तु की दृष्टि से उद्वत, ललित और ललितोद्वत। इस प्रकार भाण के 9 भेद हैं–

1. शुद्ध उद्धत
2. शुद्ध ललित
3. शुद्ध ललितोद्धत
4. संकीर्ण उद्धत
5. संकीर्ण ललित
6. संकीर्ण ललितोद्धत
7. चित्र उद्धत
8. चित्र ललित
9. चित्र ललितोद्धत[122]

13. **भाणिका** – भाण और भणिका इन दोनों उपरूपकों मे अत्यन्त साम्य है भाण स्वभाव से उद्धत और भाणिका मसृण है। जब भाण में कथानक हरि से सम्बन्धित होता है एवं स्त्रीकृत गाथा, वर्ण तथा मात्रा का प्रयोग किया जाता है तब 'भाण' ही 'भाणिका' की संज्ञा को प्राप्त करता है।

14. **सल्लापक** – सल्लापक की कथावस्तु ख्यात अथवा कल्पित होती हैं। कभी–कभी दोनों का मिश्रण होता है। इसमें वीर और रौद्र रस का मिश्रण रहता है। इसमें तीन अंक होते हैं। प्रथम अंक में विद्रव, द्वितीय में ताल, तृतीय में कपट का वर्णन रहता है। आरभटी वृत्ति होती है। इसके साथ ही साथ सात्वती वृत्ति का भी सन्निवेश रहता है। प्रतिमुख के अतिरिक्त शेष सन्धियाँ होती हैं। अतएव आरम्भ प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम इन चार अवस्थाओं का निबन्धन रहता है।"[123]

15. **पारिजातक** – इसका नायक दिव्य होता है जो उदात्त हुआ करता है एवं नायिका स्वीया या गणिका होती है जो कलहान्तरिता या भोगिनी हुआ करती है इसमें एक ही अंक होता रहता हैं, श्रृंगार और वीर रस का निबन्धन रहता है।[124]

16. **शिल्पक** – शिल्पक में चार अंक होते हैं, इसका नायक ब्राह्मण एवं नायिका

ब्राह्मण अभात्य की कन्या होती हैं इसमें हास्य रस के साथ अन्य रस का पुट रहता है।[125]

17. **कल्पवल्ली** – इसका नायक उदात्त एवं उपनायक पीठमर्द हुआ करता है। इसमें मुख, प्रतिमुख और निर्वहण सन्धियों का समावेश रहता है। हास्य और श्रृंगार रस की प्रधानता होने से कैशिकी वृत्ति रहती है।[126]

18. **विलासिका** – इसकी कथावस्तु ख्यात होती है। नायक हीनकोटि का होता है। इसमें एक ही अंक होता है। श्रृंगार रस की प्रधानता के कारण कैशिकी वृत्ति पाई जाती है, यह गर्भ एवं अवमर्श सन्धि से रहित होता है। अतएव आरम्भ प्रयत्न और फलागम इन्हीं तीन अवस्थाओं का निबन्धन होता है।[127]

प्रतीकात्मक नाटक – प्रतीकात्मक नाटकों का विभाजन–

संस्कृत साहित्य के नाटक में रूपककथात्मक तत्वों का मुख्यतया पांच प्रकार से विनियोग हुआ है।

1. प्रथम भाग में वे कृतियॉ आती हैं, जिनमें अमूर्त भावनाओं और विचारों का मानवीयकरण किया गया है। अशरीरी तत्व शरीरी मानव के रूप में चित्रित किए गए हैं। इन कथानकों में पत्र अशरीरी भाव वृत्तियों के प्रतीक बन कर आते हैं और इन पात्रों का नाम भी प्रायः उन्हीं विशिष्ट वृत्तियों और दशाओं के आधार पर होता हैं जिसका नाटक में उन्नयन होता है। कथानक में प्रस्तुत और प्रतीयमान दोनों अर्थ साथ–साथ समाहित होते हैं, जो कवि को अभिप्रेत है। उदाहरणार्थ प्रबोध चन्द्रोयद[128] 'संकल्प सूर्योदय'[129] और जीवन मुक्ति कल्याण[130] आदि नाटक लिए जा सकते हैं। इनमें विवेक, सन्तोष, मोह, मति, श्रद्धा, अहंकार, शान्ति, करूणा, संकल्प और बुद्धि आदि पात्र है।

2. द्वितीय श्रेणी में वे कृतियॉ आती है, जिनके कथानकों में पात्र अशरीरी भाववृत्तियों के मानवीकृत रूप तो नहीं होते हैं पर अप्रस्तुत अर्थ को वहन करने वाले प्रतीक पात्र अवश्य होते हैं। इनमें पात्र सामाजिक सत्ता रखने वाले व्यक्ति होते हैं। वे भावनात्मक कम वास्तविक अधिक होते हैं। उनमें निश्चितरूप से एक जीवनादर्श निरन्तर प्रतीयमान होता रहता है। उदाहरणार्थ– श्रीमद्भागवद का पुरंजनोपाख्यान (स्कन्ध 4 अध्याय 4 25–29) पुरंजनचरित नाटक आदि।''[131]

3. तृतीय कक्षा ~~में~~ ऐसे कथानक वाली कृतियों की है जिसमें उपर्युक्त दोनों

कोटियों का मेल सा है। जिनमें कुछ पात्र अशरीरी और कुछ पात्र शरीरी सामाजिक (एतिहासिक) है। ऐसी कृतियों के अभिधेय और प्रतीयमान अर्थों के मध्य में श्रेष्ठता तथा प्रमुखता के विषय में निश्चित नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण में, मोहराज पराजय[132] चैतन्य चन्द्रोदय[133] और श्रीदाम, चरित, आदि नाटक हैं, जिनमें आचार्य हेमचन्द्र, कुमारपाल, नरेश, श्रीकृष्ण चैतन्य, काशी मिश्र और गोपीनाथ आदि एतिहासकि एवं शरीरी पात्रों के साथ–साथ विवेक, मोह, शान्ति, मैत्री, अद्वैत और प्रेम, भक्ति आदि अशरीरी मानवीकृत पात्र हैं जो परस्पर व्यवहार एवं वार्तालाप करते हैं, जैसे वे सब एक ही समाज के हों।

4. चतुर्थ कक्षा में – मानवेतर जीव ही जिन कृतियों के कथानकों में पात्र बनकर आये हैं उनकी गणना होती है। वे प्राणी मानव वाणी के प्रयोक्ता और बौद्ध होते हैं इन कथानकों का उद्देश्य नैतिक और धार्मिक होता है। उदाहरणार्थ पंचतन्त्र, हितोपदेश, वृहतकथा से सम्बन्धित अधिकांश कथानक ऐसे ही हैं जो नैतिक अर्थ (प्रतीयमान) को वहन करने वाला मानवेतर प्राणियों से पूरित है।

5. रूपक कथा के इस प्रकार में वे कथानक और कृतियाँ आती हैं। जिसमें पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक, पौराणिक और साम्प्रतिक जीवन की वास्तविक दशाओं से युक्त होकर ही अपने सामूहिक प्रभाव में प्रतीकात्मक और गूढार्थ व्यंजक हो जाती है। इनके भीतर से एक चिरन्तन सत्य प्रतिध्वनित होता है। सम्पूर्ण कथानक प्रकृत अर्थ के साथ – साथ एक गूढ अर्थ की अभिव्यंजना करता है। जो किसी एक जीवन दर्शन की व्याख्या भी होता है। यह एक व्यापक परम्परा है जिसके भीतर अधिकांश कथानक आ सकते हैं। डॉ0 बेबर और डॉ0 आर0सी0 मजूमदार आदि ने बाल्मीकी रामायण को इसी धारणा से रूपक कथा (एलेगरी) कहा है[134] कालिदास के 'कुमार सम्भव', को भी डा0 सी0 कुन्हनराजा इसी कोटि की रूपक कथा कहते हैं।

संस्कृत साहित्य के रूपक कथात्मक नाटक रूपक कथा के प्रथम प्रकारों के अन्तर्गत कथानक की दृष्टि से आ जाते हैं। कथान में कथावस्तु, पात्र और कथानक का उद्देश्य सन्निहित है जिनके अनुसार विवेचन किया गया है।

नाटक कवित्व की चरम सीमा–

नाटक काव्य जगत में सुरम्य कहा जाता है। भारतीय आलोचकों ने काव्य के नाना प्रभेदों में सौन्दर्य तथा चारूता की दृष्टि से उत्कर्षापकर्ष का विवेचन बड़ी

मार्मिकता के साथ किया है। इस विषय में एक विख्यात लौकिक आभार्णक है। काव्येषु नाटकं रम्यम्—काव्यों में नाटक रमणीय होता है, सामाजिक के हृदय को रमाने वाला होता है।

वृक्ष का उत्कर्ष फल में ,सरिता की पिपाशा शमन में, योगी का परमतत्व की प्राप्ति में होता है, वैसे ही नाटक, काव्य का उत्कर्ष है, चरमसीमा है, काव्य रूपी वृक्ष का सुस्वादु मधुर फल है। इसमें समग्रता का विवेचन करते हुए कहा है। ''सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च'' । अस्मिन्नाटके समेतानि तस्माततेन्मयाकृतम्'' ।[135]

काव्य के दो मुख्य भेद हैं – श्रृव्य तथा दृश्य। श्रव्य काव्य श्रवण के माध्यम द्वारा सामाजिक के हृदय को स्पर्श करता है और द्वश्य काव्य नेत्र माध्यम द्वारा दर्शक के हृदय को आकृष्ट करता है। लक्ष्य है एक ही सामाजिक का हृदयावर्जन परन्तु माध्यम भिन्न भिन्न हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि कानों से सुनी गई वस्तु को अपेक्षा नेत्रों के द्वारा दृष्टवस्तु विशेष रोचक तथा संघः हृदावर्जक होती है। अतः लौकिक दृष्टि को आधार मानकर हमारा यह कथन कथमपि आयुक्तिक नहीं कहा जाएगा कि श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य अधिक रोचक, अधिक रम्य तथा अधिक मनोज्ञ होता है। काव्य की सृजना का मूल लक्ष्य प्रयोजन अथवा उपादेयता परमान्द की प्राप्ति कराना है। नाटक ही कराने में समर्थ हैं, । आचार्य वामन अनिषद्ध काव्य मुक्तक की अपेक्षा निबद्ध को श्रेयान मानते हैं ओर निबद्ध काव्यों या संदर्भ काव्यों में दशरूपक को श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं। इस श्रेष्ठता की व्याख्या वे नाटक की तुलना चित्रपट के साथ करते हैं। समग्र सामग्री के अस्तित्व का कारण वे चित्रपट दर्शकों के नेत्रों का कितना अवर्जन करता है? चित्रकार की तूलिका रेखात्मक आकारों में नाना प्रकार के रंगों को भरकर उनमें जीवन का इतना संरचरण कर देती है कि वे एकान्त जीवित पदार्थ प्रतीत होते हैं तथा रंग के रूचिर मिश्रण के कारण चित्रपट एकदम सजीव तथा रोचक हो उठता है। चित्रपट की विचित्रता का कारण है 'विशेषसाकल्य' अर्थात चित्रोपयोगी समस्त विशिष्ट वस्तुओं की पूर्णता। रूपक की भी यही दशा है। रंगमंच के ऊपर शिक्षित नटों के द्वारा उचित भावभंगी के साथ जब रूपक का अभिनय होता है, तब दर्शक के लोचनों के सामने जीवित पदार्थ अपने पूर्ण सुभग वेष में अपनी पूर्ण गरिमा के साथ प्रस्तुत होते हैं। दर्शक जीवन के साथ इतना तादात्म्य तथा एकात्मक देखता है कि आत्मविभोर

हो जाता है और वह भूल जाता है कि वह किसी बाह्य अभिनेय पदार्थ का ही साक्षात्कार कर रहा है। रूपक हमारे जीवन का औचित्यपूर्ण यथार्थ अनुकरण है। धनंजय का कहना है कि रूपकं तु समारोपत।'' श्रव्य काव्य – महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक आदि पाठक पढ़ता है तथा सुनता है। जिस कथानक का साहित्यिक वर्णन उसमें प्रस्तुत किया जाता है उसका मानस प्रत्यक्ष कर के ही वह आनन्दबोध कर सकता है। इस प्रकार श्रव्य काव्य में जीवन के साथ सम्पर्क परोक्ष ही होता है, परन्तु दृश्य काव्य में वास्तविक जीवित व्यक्तियों का अनुकरण हम शिक्षित नटों के द्वारा अनुकूल वेशभूषा के साथ इतनी सुन्दरता से पाते हैं कि वर्ण्य विषय एकदम जीवित सम्पन्न बन हमारे इन विलोचनों के सामने ही झूलने लगता है, नाटक में जीवन के साथ सम्पर्क अपरोक्ष होता है। जीवन की यथार्थता का केवल अभिव्यक्ति यहाँ सम्पन्न होती है। अतः रूपक चित्र के सादृश मनोज्ञ है और समस्त काव्य प्रकारों में मनोज्ञतम है।[136]

आचार्य वामन ने रूपक की श्रेष्ठता का द्वितीय कारण बतलाया है ''दशरूपकस्यैव सर्व हीदं विलसित यत् कथाख्यायिके महाकाव्यमिति।''[137] कथा, आख्यायिका तथा महाकाव्य यह दशरूपक का ही विलास है। नाट्य में केवल कथनोंपकथन के ही द्वारा कथानक की मुख्य घटनाएँ दर्शकों के सामने रखी जाती हैं। अनेक वस्तुओं की तो केवल सूचना ही दी जाती है इन्हें सूच्य अंशों को पूर्ण कर यदि छन्दोमयी वाणी में कवि कथानक का वर्णन करता है तो वही बन जाता है। महाकाव्य और यदि गद्य के माध्यम द्वारा कथानक का चित्रण करता है तो यह हो जाता है कथा या आख्यायिका। अतः नाटक ही साहित्यिक रचना का चरम अवसान है। रसस्निग्ध रचना का अन्तिम रसपेशल विकास है।

काव्य–समीक्षण के दो पक्ष होते हैं – कविपक्ष तथा सामाजिक पक्ष अथवा कारक पक्ष और भावक पक्ष। सारस्वत तत्व के ये ही कवि और सहृदय ही दो उपादेय उपकरण हैं। कवि अपने प्रतिभाचक्षु के द्वारा अदृश्य पूर्व तत्वों का साक्षात्कार कर अपनी शब्दतूलिका से उनका उन्मीलन करता है । सहृदय अपनी भावयित्री प्रतिभा के आधार पर इन शब्दार्थमय चित्रण के अन्तर्निहित आनन्द का अपनी वासना के द्वारा अनुभव करता है। परमाहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में कवि तथा सहृदय को 'शाश्वत तत्व' के उन्मीलन का आश्रय माना है।–

"सरस्वत्यास्तत्वं कवि– सहृदयाख्यं विजयताम्।[138]

कारयित्री प्रतिभा का जितना चमत्कार रूपक में दृष्टिगोचर होता है, भावयित्री प्रतिभा का उतना ही प्रभाव उसमें स्पष्टतर होता है। रसवत्ता की दृष्टि से और रसास्वाद के उत्कर्ष की दृष्टि से दोनों प्रकार से रूपक श्रृव्य काव्य की अपपेक्षा निःसन्देह मनोज्ञ होता है।[133]

नाटक रसवत्ता की पूर्ति का चरम दृष्टान्त है। रसवत्ता का आश्रय है औचित्य। जिस नाटक में औचित्य का जितना अधिक सहयोग होता है, वह नाटक उतना ही अधिक रसपेशल होता है। भरतमुनि का एतद्विषयक महत्व सम्पन्न सिद्धान्त है।

"वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषः वेषानुरूपश्च गतिप्रचारः

गति प्रचारानुगतं च पाठ्य पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः।[140]

वय के अनुरूप रहता है वेष के अनुसार होता है, वेष गति प्रकार, तदनुगत होता है पाठ्य तथा पाठक के अनुरूप ही रहता है अभिनय। इस औचित्य की परम्परा के विद्यमान रहने के कारण नाट्य में रसवत्ता पूर्णरूपेण विद्यमान रहती है। इसी विशिष्टता को लक्ष्य में रखकर अभिनवगुप्त का कहना है कि "तत्र नाटये ह्युचितैभाषावृत्तिकाकुनेपथ्यप्रभृतिभिः –

पूर्यते च रसक्ता। सर्ग बन्धादौ तु नायिकाया अपि संस्कृतैवोक्तिरिति बहुतरमनुचितम्।[141]

नाट्य में भाषा, वृत्ति, काकु, नेपथ्य आादि के औचित्य संवलित होने के हेतु रसक्ता की पूर्ति होती है, परन्तु काव्य में इतना औचित्य दृष्टिगत नहीं होता। महाकाव्य की नायिका अपनी स्वाभाविक प्राकृत भाषा को छोड़कर संस्कृत में बोलती है। यह सर्वथा अनुचित है। आलोचकप्रवर अभिनवगुप्त का कथन है कि काव्य तो मुख्यतः दशरूपकात्मक ही होता है।

काव्य तावन्मुख्यतों दशरूपकात्मकमेव।[142]

सामाजिक के हृदय में रसोन्मेष काव्य का प्रधान लक्ष्य है। भारतीय रसशास्त्र काव्य में सहृदयपक्ष की प्रधानता स्वीकार करते हैं। पश्चिम में काव्य 'कविप्रतिभाव्यापारगोचर' होता है तो भारत में वह 'सहृदय चर्वणाव्यापारगोचर' माना जाता है। रस की प्रतीति के लिये सामाजिक का 'सहृदय' होना नितान्त आवश्यक

है। अभिनवगुप्त की व्याख्या के अनुसार सहृदय वही होता है। जिसका मनोमुकुर काव्य के अनुशीलन के अभ्यास से काव्य के निरन्तर अध्ययन तथा चिन्तन से नितान्त विशद हो जाता है, जिससे वह वर्णनीय वस्तु के साथ तन्मय होने की योग्यता रखता है–

''येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय–तन्मयी भवन योग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।[143]

अतः सहृदय का हृदय कवि के हृदय के साथ इतना साम्य रखता है कि स्फुट तथा प्रकीर्ण पद्यों के श्रवणमात्र से ही वह आनन्द की अनुभूति कर लेता है। परन्तु ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं जब सहृदय का भी हृदय चिन्ता तथा उद्वेग से कलुषित तथा विक्षिप्त होता है। हृदय का उद्वेग चित्त को इतना विक्षिप्त कर देता है कि रूपक के पढ़ने तथा सुनने पर भी पठन तथा आकर्षण मात्र से उसे रस का आस्वाद नहीं होता। ऐसी दश में उसके लिये भी अभिनय की विपुल मनोरंजन सामग्री का अपेक्षा रहती है। अतः नाटक उनको दो प्रकार से सहायता पहुँचाता है। प्रथम तो नटों के द्वारा रूपक के अभिनय से वह वर्णनीय वस्तुओं को प्रत्यक्ष तथा जीवित रूप में चित्रित करता है। उचित वेश–भूषा जवनिका की सज्जा, रंगमंच की सजावट, नेत्ररंजक चित्रकारी तथा विभाव, अनुभाव एवं संचारी के अभिनय आदि के द्वारा दर्शकों को वर्ण्य वस्तु में जीवन की सत्यता प्रतीत होते लगती है। उनके लिये शकुन्तला किसी अतीत काल की कोई विस्मृत नायिका नहीं रहती, मालिनीतट पर हिमालय तलहटी में रचा गया महर्षि कण्व का आश्रम किसी अज्ञात अतीत युग की स्मृति उदबुद्ध नहीं करता, प्रत्युत रंगमंच के चारू चित्र तथा नट के कौश्ल पूर्ण अभिनय से वस्तुएं जीवित वर्तमान की सजीव मूर्तियॉ ही प्रतीत होती हैं, रसिक नटों के द्वारा प्रस्तुत संगीत की माधुरी श्रोताओं के ऊपर अपना विचित्र प्रभाव जमाती है। उनका हृदय अपने स्वगत दुखों से कितना भी दबा क्यों न हो, शोक तथा क्रोध आदि रस प्रतीति से प्रतिकूल प्रवृत्तियों के उदय के कारण कितना भी संकट संकीर्ण तथा ग्रंथिल क्यों न हो गया हो, उदात्त संगीत की स्निग्ध माधुरी उनके श्रवणों को सिक्त कर हृदय की ग्रन्थि भन्जन करने में सर्वथा कृतकार्य होती है।[11] अहृदय की सहृदय रूप में परिणति का सर्वप्रधान साधना है नाट्क ''निजसुखादिविवशीभाव' अपने सुख दुख आदि भावों के वश में होना–रसास्वादन के लिये महनीय प्रत्यूह है

जिसका निराकरण अभिनय, अँगहार, संगीत तथा सजावट आदि नाटकीय उपकरणों के द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। अभिनवगुप्त का स्पष्ट कथन है–

''निजसुखादिविवशीभूतश्च कथं वस्त्वन्तरे संविदं विश्रामयेदिति तद्रूपप्रत्यूहव्यपोहनाय प्रतिपदार्थनिष्ठैः साधारण्य महिम्ना संकलभोग्यत्वसहिष्णुभिः शब्दाविविषयमयैः अतोद्यगान–विचिमण्डप–विदग्धगाणिकादिभिः उपरून्जनं समाश्रितं येन अहृदयोऽपि सहृदयवैमल्याप्रात्या सहृदयीक्रियते।[144]

साहित्यिक कलात्मक अनुभूति के लिये काव्य के समस्त प्रभेदों में रूपक सबसे श्रेष्ठ है तथा रसास्वाद की पूर्ति, क्योंकि इसका प्रभाव केवल सहृदयों के ऊपर ही नहीं होता, प्रत्युत समस्त व्यक्तियों पर, चाहे वे सहृदय हो या अहृदय समभावेन पड़ता है। अतः जीवन की सत्यता की अनुभूति की दृष्टि से , रसवत्ता से स्निग्ध होने की दृष्टि से रूपक काव्य प्रभेदों में सर्वथा अभिराम, हृदयंगम तथा रमणीय है।[145] रस के उन्मेष का सर्वाधिक रम्य प्रतीक नाट्क है। नाट्य रस की अभिवन व्याख्या ''नाट्यमेव रसः रससमुदायों हि नाट्यम्[146] नाटय ही रस है। रस समुदाय ही नाट्य है। इसका तात्पर्य है नाट्य रस के उन्मीलन का प्रधान है। नाट्यरस के उपकरणभूत विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव का अभिनय प्रस्तुत कर उनका दर्शको के हृदय में साक्षात् अनुभव कराता है। यही योग्यता जब श्रव्य काव्य को प्राप्त होती है तभी काव्य में रस का आस्वादन उत्पन्न होता है। ~~अतः रूपक कवि की प्रतिभा का आस्वादन उत्पन्न होता है~~। अतः रूपक कवि की प्रतिभा का एकमात्र विलास है अथवा नट की अभिनयकला का संवलित चमत्कार है। साधारणतया समझा जाता है कि नाटक 'प्रयोग प्रधान' होता है तथा श्रव्य काव्य 'वर्णन प्रधान' होता है। और नाटक में नट की कला कवि की कला की अपेक्षा समधिक मनोज्ञ होती है।

नाटक की लोकप्रियता तथा श्रेष्ठता का एक आधार सर्वजनग्राह्यता भी है इसे शिक्षित, अशिक्षित आबाल–वृद्ध, नर–नारी सभी देखकर आनन्द प्राप्त कर सकते है। नाटक में नाना प्रकार की कलाओं का समन्वय होता है। नृत्त, नृत्य, संगीत वाद्य, अभिनय, चित्र मूर्ति आदि कलाओं से युक्त नाटक होता है। इसमें विविध ा लोकाचारों लोक क्रियाओं का वर्णन होता है।

देवताओं के आग्रह से ही इस अदभुत की उपलब्धि, विधाता से हुई थी और

उनकी लोकहित की कामना से सारी सृष्टि की धरा पर नाटक का अवतार हुआ। नाटक के विकास में भरत मुनि को नाट्यशास्त्र तथा उसके प्रयोगों से नाटक की रमणीयता वसुन्धरा, पर शैनैः शैनैः व्याप्त होती गई । भरत में अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है।

''न तदज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न तत्कला
न तद्विधा न स योगों नाटयेऽस्मिन्न यद्वश्यते
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्न सर्वशास्त्र प्रदर्शकम्
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।।[147]

जीवन के अशेषपक्षों का समावेश नाटक के ही व्यापक विषय में हो जाता है। अशेष अभिरूचियों की आत्यंतिक अभिलाषा का शमन भी नाटक से हो जाता है। नाटक की रमणीयता कहीं तो हृदय की मर्मस्पर्शिनी गीत लहरी पाठकों अथवा दर्शकों को भावना लोक में विचरण कराती है। और कहीं कथोपकथनों की सजीवता, मनोहरता आह्लादित कर दार्शनिक गम्भीरता उड़ा ले जाती है। पाषाणकी पाषाणता भी पिघल कर पलायन कर जाती है नाटक के प्रभाव से। कहीं करूणा का अजस्त्र प्रवाह , कहीं हास्य का फौव्वारा, कहीं विस्मय का विवर्त तो कहीं श्रृंगार की तरंग से नाटक सर्वसाधारण के हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। नाटक की इस सर्वाधिक रमणीयता की पुष्टि स्वयं कविकुल गुरू कालिदास ने की''

नाट्यं भिन्न रूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समायधनम्[148]

नाटक, काव्य के सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन की सिद्धि में तो परम सहायक है ही परन्तु इसके साथ ही अन्य प्रयोजन की सिद्धि भी करता है। अर्थ प्राप्ति रूप प्रयोजन की सिद्धि केवल काव्यकर्ता को ही होती है परन्तु नाटक तो काव्यकर्ता, अभिनेता तथा अभिनय कराने वाले को भी अर्थ प्राप्ति कराता है। अपने वर्ण्य विषय द्वारा समाज को व्यवहार की शिक्षा देता है, धार्मिक वर्णनों द्वारा मोक्ष के लिये पथ प्रशस्त करता है, तथा सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति कराता है। नाटककार को यश दिलाता है तथा प्रेक्षकों को प्रीति दिलाता है। इसके साथ ही कान्तासम्मित उपदेश की भॉति प्रभावकारी केवल नाटक भी होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रयोजनों की सिद्धि कराने से नाटक, काव्य जगत में सुरम्य कहा जाता है।

प्रतीक नाट्य परम्परा

संस्कृत साहित्य में वैदिक धर्म प्रतिपादक कंसवध, बलिबन्ध, त्रिपुरदाह और अमृत मन्थन आदि रूपक जिसका आज उल्लेख मात्र महाभाष्य और नाटयशास्त्र में मिलता है। प्राचीनतम वैदिक साहित्य के संवाद सूक्तों तथा महाव्रत अनुष्ठानों में प्रतीकात्मक नाटकीय तत्वों की उपलब्धि होती हैं। ऋग्वेद के संवाद सूक्त संस्कृत नाट्य साहित्य के प्राचीनतम उपकरणों की दृष्टि से प्रसिद्ध है ही, उनमें प्रतीकात्मकता का निर्वाह किया गया है। यह संवाद मस्तिष्क में विचार और अनुमान के लिए गति पैदा कर देते हैं कि इनमें एक रहस्यात्मक और रूपककथात्मक व्याख्या छिपी हुई है।[149]

महाब्रत यज्ञीय अनुष्ठान में एक श्वेत वृत्ताकार चर्मखण्ड के लिए शूद्र तथा वैश्य में संघर्ष होता है, जिसमें वैश्य की विजय होती है। यह वर्णन रूपक कथात्मक है, जहॉ वैश्य आलोक का, शूद्र अन्धकार का प्रतीक है और इन दोनों का युद्ध सूर्य की प्राप्ति के घोर संघर्ष का द्योतक है।[150]

डॉ0 कीथ कंसवध नाटक को भी प्रकृति के संघर्ष का एक रूपक मानते हैं। शीत (कंस) के ऊपर ग्रीष्म (कृष्ण) की विजय के रूपक से रूप में इस रूपक की वे व्याख्या करते हैं। ''इसमें कंसवध काला और कृष्ण पक्ष अरूण मुँह बनाकर अभिनय करते हैं। कीथ इसमें भी अंधकार और प्रकाश के संघर्ष तथा अंधकार के ऊपर प्रकाश की विजय का रूपक स्वीकार करते हैं।[151]

अश्वघोष –

संस्कृत के विशुद्ध रूपक कथात्मक रूपकों की उत्पत्ति वैदिक युग की समाप्ति और लौकिक संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक काल में हुई है। वैदिक धर्म का हास और बौद्ध धर्म का विकास उस युग की विशेषता थी। उस समय यज्ञों के कर्मकाण्डीय आडम्बर के अत्यधिक बुद्धिगत होने से जनता सरल, आचार–प्रधान बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हो रही थी। उस युग का प्रबुद्ध वर्ग दार्शनिक विचारों की ओर उन्मुख हो रहा था। और हिन्दुओं के उपनिषदों एवं दर्शनों तथा बौद्वों के भी दर्शनों को प्रदुर्भूत होने का वातावरण निर्मित हो चुका था।[152]

बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अश्वघोष ने नाटकों का प्रणयन किया। अश्वघोष की तीन नाटकों वाली ताड़पत्रों पर हस्त लिखित प्रति डॉ0 ल्यूडर को 1911 ई0 में

मध्य एशिया के तुरफान नामक स्थान में खोज करने पर मिला है। डॉ ल्यूडर को वहाँ ताडपत्रों पर लिखित नाटकों की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई हैं, इन प्राचीन पाण्डुलिपि की खोज रूपक कथात्मक नाटक साहित्य के इतिहास में एक महान और अद्वितीय घटना है। इन प्राप्त नाटकों में प्रथम नाटक निश्चित रूप से अश्वघोष की रचना है। इन नाटकों के रूप में ज्ञात होता है कि नाटक बहुत पहले अपनी साहित्यिक प्रौढ़ता को पहुँच चुका था जो अपने पीछे एक सुन्दर विकास के इतिहास की अपेक्षा रखती है।

डॉ0 विमल चरण ला का कहना है कि ''प्राचीनतम नाटक जो हस्तलिखित ताड़पत्रों पर प्राप्त हो सके हैं। अश्वघोष की बौद्ध कृतियॉ हैं। इन तीन बौद्ध नाटकों में जो तुरफान में खोजे गए है, एक का लेखत्व निश्चित है, क्योंकि ताड़पत्र की प्रथम नाटक की हस्तलिखित प्रति में अन्तिम अंक में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि यह कृति अश्वघोष का शारिपुत्र प्रकरण नामक रूपक है।[153]

डॉ0 ला का कहना है कि'' बुद्ध चरित, सौन्दरनन्द और शारिपुत्र प्रकरण की हस्तलिखित प्रति ये तीनों कृतियॉ अश्वघोष की हैं, हम विश्वास के साथ सन्देह रहित होकर स्वीकार करते हैं।[154]

डॉ कीथ का कहना है कि ''यह कृतियॉ अश्वघोष की ही है, यही अधिक संभव है, इसकी अपेक्षा कि यह किसी दूसरे तत्कालीन अज्ञात लेखक की हो।[155]

डॉ0 एस0एन0 दास गुप्ता और डॉ0 एस0के0डे0 भी स्वीकार करते हैं कि ''शारिपुत्र प्रकरण और साथ के अन्य दोनों नाटकों से अश्वघोष की पूर्ण विकसित नाटयकला का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ये तीनों कृतियॉ अश्वघोष की हैं।[156]

डॉ0 आ0सी0 मजूमदार ने इन कृतियों के विषय में अपना निर्णय देते हुए लिखा है कि ''

मध्य एशिया के तुरफान में मिली नाटकों की मूल प्रतियॉ, जो 'कूची' लिपि में है, प्रथम शती ई0 के नाटककार अश्वघोष की हैं। ये तीनों कृतियॉ पूर्ण सम्भावना के साथ अश्वघोष की हैं और प्राचीनतम प्राप्त रूपक है।''[157]

तुरफान में प्राप्त सभी संस्कृत रूपक जो एक ही में सम्बद्ध है और सामान्य दिखावे में एक समान है; निःसन्देह एक ही व्यक्ति अश्वघोष की रचनायें हैं।[158]

डॉ0 ल्यूडर को शारिपुत्र प्रकरण के साथ रूपक कथात्मक नाटक का भी एक

पत्र प्राप्त हुआ है। उस कृति के हस्तलिखित ताड़पत्र का मूल रूप जो ल्यूडर ने प्रकाशित किया है।[158]

मूल के अनुसार कीर्ति, धृति, बुद्धि रूपक कथात्मक पात्र है, जो रंगमंच पर आते हैं और वार्तालाप करते है। बाद में बुद्ध स्वयं उपस्थित होते हैं उनका अन्य पात्रों के साथ वार्तालाप होता है या नहीं क्योंकि कृति यही से अप्राप्त है। सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं। इस नाटक में पहली बार भावों और वृत्तियों के मानवीकृत पात्र तथा यथार्थ पात्रों का योग होता है।

अश्वघोष रचित एक रूपक कथात्मक नाटक का उल्लेख भरत कोष में आया है।[159] जिसका नाम 'राजपुत्रीयम्' दिया गया है, जिसमें भरत कोष के अनुसार बौद्ध धर्मों को पात्ररूप से परिकल्पित कर बुद्धमहिमा वर्णित की गई है।'' इस नाटक को गौण नाटकों में स्वीकार किया गया है। इस गौण नाटक कक्षा में प्रबोध चन्द्रोदय, संकल्प सूर्योदय और चैतन्य चन्द्रोदय आदि नाटक कहे गये हैं।[160]

ईसापूर्व के प्रतीक नाटक –

1912 में स्वर्गीयम0म0टी0 गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम सीरीज से भास के नाम से 13 नाटक प्रकाशित किये। भास के 13 नाटकों में 'दूतवाक्य' और 'बालचरितम्' नामक दो ऐसे नाटक हैं, जिनमें रूपक कथात्मक पात्र हैं।[161]

दूतवाक्य एकांकी व्यायोग है। यथा– दूतकार्य के लिये भगवान श्री कृष्ण को अभिमानी दुर्योधन बांधना चाहता है, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण अपना विराट रूप धारण कर लेते हैं और आयुध वर सुदर्शन को बुलाते हैं।[162]

सदुर्शन अनुगृहीतोऽस्मि।''

बाल चरित नामक भास के सात अंकों वाला नाटक में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंसवध तक की कथा वर्णित है।इसके प्रथम अंक में भगवान के आयुध–चक्र शाऽर्गसंख और नन्दक है द्वितीय अंक में श्री एवं शाप रूपक कथात्मक पात्र रंगमंच में उपस्थित किये गये हैं और उनसे वार्तालाप कराया गया है।[163]

द्वितीय श्रेणी में प्रबोध चन्द्रोदय नाटक– अश्वघोष के पश्चात प्रतीक नाटकों में एक दीर्घकालिक व्यवधान आता है जिसके विषय में नहीं कहा जा सकता कि यह किन कारणों से आया और रूपक कथात्मक नाट्य परम्परा का विच्छेक बना। कृष्ण मिश्र का प्रबोध चन्द्रोदय एक अत्यन्त प्रसिद्ध रूपक कथात्मक नाटक है। जिसको

लिखकर कृष्ण मिश्र ने इस परम्परा को पुर्नर्जन्म दिया। 'दृढतापूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि श्री कृष्ण मिश्र एक मृतप्राय परम्परा की पुनः स्थापना कर रहे थे अथवा स्वयं एक नयी परम्परा को जन्म दे रहे थे।[164] प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में षष्ठ अंक है। सभी पात्र प्रतीकात्मक हैं। शेष नाटक की विस्तार से चर्चा आगे करेगें।

1100 ई0 से 1600 ई0 पर्यन्त – यशपाल का मोहराज पराजय, वेदान्त देशिक का 'संकल्प सूर्योदय', .कविकर्णपूर का 'चैतन्य–चन्द्रोदय', भूदेव शुक्ल का 'धर्मविजय' वादि चन्द्र का 'ज्ञान–सूर्योदय', और श्री निवास का 'भावनापुरूषोत्तम, इस काल की कृतियाँ हैं, जिनमें मोहराज पराजय और ज्ञान सूर्योदय जैन नाटक तथा शेष वैष्णव नाटक है।[165]

मोहराज पराजय – प्रबोध चन्द्रोदय कृष्ण मिश्र के रूपक कथानक नाटक का अनुकरण जैन कृतियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए, आकर्षक एवं लाभदायक माध्यम समझ कर किया। परन्तु गणों में वे कृष्णमिश्र को न पा सके किन्तु उनको प्रयत्न शीघ्र ही अस्तित्व में आया और यशपाल नामक लेखक ने मोहराज पराजय अथवा 'मोहपराजय' नामक नाटक की रचना की।[166] लेखक के विषय में नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है, कि यशपाल जाति में मोढ़ वैश्य थे। उनके पिता का नाम धनददेव और माता का रूकमिणी देवी थी। यशपाल गुजरात के चालुक्य नरेश कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल या अजय देव के मंत्री थे। अजयपाल का राज्यकाल 1229 ई0 1232 ई0 है। इसी समय के मध्य में नाटक की रचना हुई होगी।[167]

मोहराज पराजय नाटक का सर्वप्रथम अभिनय 'थारपद्र में' जो सम्भवतः गाखार की राजधानी थी।[168]

इसमें प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र के प्रयत्नों द्वारा गुजरात नरेश कुमार पाल का जैन धर्म गृहण करना, पशुओं की हिंसा का निषेष करनां, हेमचन्द्र के उपदेशानुसार निसन्तान मरने वालों की सम्पत्ति को राज्याधीन न करना तथा जुवां, मांस, सेवन, मद्यसेवन, पशुबन्ध, चोरी आदि कुमारपाल, हेमचन्द्र और कृपासुन्दरी आदि ऐतिहासिक एवं मनुष्य पात्र है। तथा पुण्यकेतु, विवेक, कृपा सुन्दरी (यह ऐतिहासिक और गुण दोनों है) और मोह आदि अमूर्तसत् और असत् गुणों के प्रतीक मानवीकृत पात्र हैं।

इस प्रकार नाटक में मूर्त और अमूर्त, कल्पित और यथार्थ दोनों प्रकार के

पात्रों का समन्वय किया गया है। पात्र परस्पर मिलते हैं और वार्तालाप करते हैं। राजा का विवाह कृपासुन्दरी के साथ करा कर 'नाटिका' की श्रृंगारिकता, उपयोगिता को भी कवि ने लाने का प्रयास किया है।[169]

नाटक का प्रारम्भ नान्दी से होता है। उसके तीन पद्यों में तीर्थंकरों ऋृषभ, पार्श्व और महावीर की स्तुति है। 'मोहराज पराजय' में पॉच अंक हैं। मोहराज पराजय को अद्योपान्त विशुद्ध रूपक कथात्मक नाटक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसमें मानवीय गुणों के साथ–साथ ऐतिहासिक मूर्तपात्र भी हैं, जो कि नाटक में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कथानक की दृष्टि से भी रूपककथात्मक की अपेक्षा नाटक का इतिवृत ऐतिहासिक के रंग में अधिक ओत प्रोत, मनोहर और प्रभावशाली है। यह नाटक सरल संस्कृत भाषा में लिखा गया है, जिसमें दीर्ध समासों और कृत्रिम गद्य का आडम्बर पूर्ण प्रयोग प्रयत्नपूर्वक दूर रखा गया है।[170] साहित्यिक दृष्टि की अपेक्षा इसका ऐतिहासिक महत्व अधिक है।[171] लेखक ने मागधी और जैन महाराष्ट्री का प्रयोग किया है।

'मोहराजपराजय', 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के अत्यन्त निकट है क्योकि कुछ समय पश्चात् यह लिखा गया है और उससे क्योंकि द्वितीय आता है। अतः गुणों की दृष्टि नहीं अपितु समयक्रम की ओर प्रयत्न की दृष्टि से है।[172]

संकल्प सूर्योदय – 13वीं शती का 'संकल्प सूर्योदय' वेकेन्टनाथ वेदान्त देशिक का उच्च कोटि का आद्योपान्त विशुद्ध रूपक कथात्मक नाटक है।[173] यह वेदान्त दर्शन और वैष्णव धर्म के विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादक नाटक है जिसको आचार्य कृष्णमिश्र के प्रबोध–चन्द्रोदय' का एक प्रत्युत्तर कह सकते हैं।

संकल्प सूर्योदय नाटक में 10 अंक है जिसमें देहधारियों के गुण रूप विवेक सुमति व्यवसायदि और मोह, दुर्भीति, लोभादि पात्र रूप में कल्पित किये गये हैं। 'पुरूष का संसार से छुटकारा' नायक का अभिष्ट प्रयोजन है। शान्त रस प्रधान नाटक है। नाटक में प्रस्तावना, विष्कम्भक के अतिरिक्त 10 अंक हैं। अत्यन्त विद्वता और साहस के साथ शान्त को मुख्य रस स्वीकार किया गया है। इसे हम आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त का प्रभाव कहेगें। डॉ0 कीथ ने इसकी विशालता और श्रेष्ठता की ओर संकेत करते हुए इसे 'चैतन्य–चन्द्रोदय' आदि से श्रेष्ठ कृति कहा है।[174] शेष विस्तार से आगे वर्णन होगा।

चैतन्य चन्द्रोदय— चैतन्य देव के पार्षद 'शिवानन्द सेन' के पुत्र 'परमानन्ददास' का जन्म 1524 ई0 में हुआ। चैतन्य देव ने इन्हें 'कर्णपूर' की उपाधि प्रदान की। परमानन्ददास के लिखे हुए नौ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। (1) आर्याशतकम् (2) चैतन्य चरितामृतम् (3) आनन्द बृन्दावन चम्पू (4) चैतन्य चन्द्रोदय नाटक इनमें प्रमुख रचना है।[175]

'चैतन्य—चन्द्रोदय' एक सुप्रसिद्ध रूपककथात्म्क नाटक हैं।[176] इस नाटक का अभिनय श्री नीलगिरि स्थित भगवान पुरूषोत्तम की रथ यात्रा के उत्सव के समय प्रतापरूद्र देव की आज्ञा से हुआ था।

इस नाटक में स्वानन्दावेश, सर्ववतार दर्शन, दान, विनोद, सन्यास—परिग्रह, तीर्थाटन, प्रतापरूद्रानुगृह, मथुरागमन और महामहोत्सव नामक क्रमशः 10 अंक हैं।

यह नाटक महाप्रभू चैतन्य के जीवनवृत को जानने के लिये बड़ा ही प्रमाणिक तथा उपादेय है। वस्तुतः पुरी और नवद्वीप में चैतन्य के जीवन का यह नाटकीय लेखा है। इसमें चैतन्य की सफलताओं का वर्णन है। इसके पात्रों में मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पात्रों का मिश्रण है। इसके रूपक कथात्मक पात्रों में मैत्री, प्रेमभक्ति, भक्तिदेवी, विराग, और अधर्म आदि हैं। पौराणिक पात्रों में नारद तथा राधा, कृष्ण और कलि आदि हैं। मूर्त ऐतिहासिक पात्रों में चैतन्य और उनके शिष्य नित्यानन्द, श्रीवास, गोपीनाथाचार्य, काशीमिश्र आदि हैं। अद्वैत (अद्वैतानन्द) ऐतिहासिक एवं रूपक कथात्मक दोनों है। इस नाटक को आद्योपान्त विशुद्व रूपक कथात्मक नहीं कह सकते ।

डॉ0 एस0 एन0 दास गुप्ता का कहना है कि "यह वास्तव में एक रूपक कथात्मक नाट्य नहीं है।[177]

यह कृति धूमिल धार्मिक उपदेशों से दुर्बल चरित्र—चित्रणो से, अलंकारों की सजावट से, न तो चैतन्य के जीवन की आध्यात्मिक विशेषताओं की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति कर सकी है और न अधिक वैशिष्य, नाट्य, या ऐतिहासिक रचना के रूप में ही प्राप्त कर सकी है।[178]

धर्म विजयं नाटकम्— भू देव शुक्ल का धर्मविजय नाटक मुगल सम्राट अकबर के समय ओर इसके कुछ उपरान्त की रचना है। अकबर की नीति के फलस्वरूप हिन्दू मुसलमानों का मेल और इस मेल के कारण यवनों के कामुक आचरण समाज को पतन की ओर ले चले थे। दुराचारी अपने छल छद्मों से सज्जनों को भी दुराचार

में आबद्ध कर देते हैं, बहुत कुछ यही परिस्थितियॉ नाटक की उदभव काल में थीं।

तत्कालीन विभिन्न देशीय दुराचार और धूतों के धर्म की आड में किये गये कुकर्मों का सामाजिक लेखा इस नाटक से भली भॉति ज्ञात होता है। समाज में अधर्म के प्रसार, राज्य की ओर से धर्म के विषय में दण्डनीति का अभाव होने के कारण होता है। यह तथ्य इस नाटक से निकलता हैं। नाटककार और उसका समय नाटककार भूदेवशुक्ल के विषय मे 'धर्मविजय नाटक की प्रस्तावना[179] और रस विलास[180] नामक कृति के उपसंहार में लिखित पद्य से जो कुछ ज्ञात होता है वह यह है–

भूदेव द्रविड़ ब्राह्मण थे या गौड़, निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता रस विलास में इन्होंने लिखा है–

''श्रीकण्ठदीक्षित गुरोर्ज्ञाता काव्यप्रकाशिका
इत्यावेदितम्स्माभिर्नवं नात्र प्रकल्पितम्।।''
''जम्बूसरः स्थिति जुषः शुकदेवसूरे,
भूदेव पण्डित कविः प्रथमस्तनूज।।''

भूदेव शुक्ल की निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है– धर्मविजयनाटक रस विलास, आत्मतत्वप्रदीप, ईश्वरविलास दीपिका, रूक्मिणी विलास ओर रामचरित। धर्मविजय नाटक के पांच अंक हैं, 77 पृष्ठ के इस नाटक में 229 श्लोक हैं। श्लोक प्रायः सभी बड़े हैं। अनुष्टुप और आर्या आदि छोटे छन्द बहुत कम हैं। यह नाटक आद्योपान्त विशुद्ध रूपक कथात्मक है जिसमें धार्मिक जीवन के लाभों का रूपककथात्मक चित्रण हैं। यद्यपि आलोचक इसे विशेष साहित्यिक गुण सम्पन्न स्वीकार करने में सहमत नहीं हैं।[181]

विधर्मी शासक के होने पर राजा के आश्रय से वंचित धर्म की जो दुखावस्था होती है, उसी को उद्देश्य में रखकर ही उसके प्रतिकार के उपाय वाले विचारों से युक्त, यह नाटक मुगल साम्राज्य के उत्कर्ष काल का हैं, इसमें धर्म विप्लव को दूर करने का अत्यन्त उपयोगी चित्रण है। इस नाटक के ग्रन्थकार ने धर्म को नायक और अधर्म को प्रतिनायक बनाकर उनके अनुकूल ऊर्ध्वगति, पण्डित, संगति, दुराचार, व्यभिचार आदि पात्रों की कल्पना कर, अधर्म के द्वारा धर्म के ऊपर पहले आक्रमण दिखाकर, बाद में बद्ध परिकर धर्म से अपने परिवार द्वारा अधीन का

उच्छेदकृति के पर्यवसान मे प्रदर्शित किया गया है। धर्म की मुख्य राजधानी काशी क्षेत्र को मानकर, वहीं कवि ने अधर्मका प्रसाद दिखलाया हैं। सत्कर्मों का शोभन फल और असत्कर्मों का अशोभन फल कवि के द्वारा नाटक में दिखाया गया है। नाटक के पर्यवसान में राजा धर्म और विद्या का वार्तालाप उल्लेखनीय है।[182] भय प्रदर्शन से ही सामान्य जन धर्मानुसरण में प्रवृत रहता है। भय ऐहिक, पारलौकिक दोनों प्रकार का होता है।

यह नाटक भक्ति भाव समन्वित रचना इसलिये कही जा सकती है कि राजा नाटक के अन्त में हरिहर चरणानुराग की ही कामना करता है और विद्या उसे अचल भक्ति का वरदान देती है।[183]

लेखक ने अत्यन्त सरल और प्रसाद गुणमयी कविता रची है। वैदर्भी रीति से सुशोभित उसके पद्य हृदयग्राही हैं।

सालंकृतिर्गुणवती च विलीन दोषा
चेतोजनेन विदुषामपि रंजयन्ती
श्रृंगारहास्य करूणादि रसैः समेता।
साभारती भरततापस मान्य मूर्तिः।[184]

ज्ञान सूर्योदय – 'ज्ञान सूर्योदय' रूपक कथात्मक नाटक वादिचन्द्र की रचना है। कवि वादिचन्द्र मूलसंघ के अनुयायी भटटारक थे। ज्ञान सूर्योदय के अतिरिक्त इन्होंने श्रीपाल आख्यान, पवनदूत, सुलोचना चरित, यशोधरचरित आदि ग्रंथों की रचना की है।[185] इनका समय 1580 है।[186] इनकी पुस्तक की प्रति अप्राप्त है।

भावना पुरूषोत्तम – इस रूपक कथात्मक नाटक के रचयिता रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित अथवा श्री निवास अतीन्द्रयाजिन है। इनका समय 16वीं शती है। यह नाटक पांच अंकों का है। यह नाटक अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

1600 ई0 से 1900 ई0 पर्यन्त – इस काल में वैष्णव शैव और अन्य लेखकों ने अपना योगदान दिया है। इस युग की प्रमुख रचनायें– आनन्दराय मखी का 'विद्यापरिणय' और 'जीवानन्दन'। सामराज दीक्षित 'श्रीदामन चरित', गोकुल नाथ उपाध्याय का 'अमृतोदय', 'नल्लाध्वरी' के 'जीवन्मुक्ति कल्याण' और 'चित्तवृत्तिकल्याण', 'श्रीकृष्ण दत्त मैथिल का 'पुरंजन चरित', वरदाचार्य का 'यतिराज विजय', जगन्नाथ का 'सौभाग्य महोदय' रामदेव का 'विद्धन्मोदतंरगिणी', जात देवस का 'पूर्ण पुरूषार्थ

चन्द्रोदय' मल्लरी आराध्य का 'शिव लिंग सूर्योदय' नृसिंह कवि का 'अनुमिति परिणय' वेकंटाचार्य का 'शुद्ध'सत्व' और नरसिंह कवि का 'चित्सूर्यालोक'।

विद्यापरिणय और जीवानन्दन – आनन्दराय मुखी के नाटक विद्यापरिणय[187] और जीवानन्दन 17वीं शती के उत्तरार्ध और 18वीं शती के प्रारम्भ में लिखे गये है। विद्यापरिणय की प्रस्तावना के अनुसार लेखक ने 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प सूर्योदय' का अनुसरण कर शिव भक्त होने के कारण शैव नाटक लिखे हैं। जिनमें शिव भक्ति को ही मोक्ष का साधन कहा गया है।[188] विद्यापरिणय में लेखक ने इस जगत को, स्पष्ट रूप से, शिव का बनाया हुआ, एक नाटक बतलाया है।

"आनन्दराय महान शैव और सरस्वती के उपासक थे। इनकी प्रसिद्धि 'वेदकवि' के नाम से थी।[189] डॉ0 कृष्णामाचारी[190] और डा0 एस0एन0 दास गुप्ता एवं डा0 एस0के0डे0 का कथन है कि "इन दोनों नाटकों का वास्तविक लेखक वेदकवि था। उसने अपने आश्रयदाता आनन्दराय[187] पेशवा के नाम पर अपने नाट्कों का लेखकत्व कर दिया है।"

विद्यापरिणय – इसमें सात अंक हैं जिनमें अद्वैत वेदान्त के साथ श्रृंगार रस का मंजुल सांमजस्य दिखलाया गया है। यह लेखक की प्रथमकृति है। इसमें जीवात्मा और विद्या का मानवीयकरण कर, उन्हें नायक और नायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए उनका विवाह कराया गया हैं। विद्या, अविद्या, निवृत्ति, प्रवृत्ति और विषयवासना आदि भावमय पात्रों का परस्पर इस प्रकार अभिनय एवं संवाद प्रस्तुत किया गया है कि जिससे अध्यापन विद्या, मानव जीवन की निःसारता और संसार की परिवर्तन शीलता आदि की अभिव्यंजना होती है। गूढ़ विषयों का निरूपण करने के लिए कवि ने जीवात्मका, जिसे इस ग्रंथ में जीवराज कह कर सम्बोधित किया गया है। और विद्या की प्रणय कथा कल्पित कर श्रृंगार रस का समावेश करते हुए पाठकों के हृदय पर आसाधारण प्रभाव डालने का सफल प्रयास किया है। मानव जीवन की क्षण भंगुरता एवं निःसारता का कवि ने अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।[191]

शिव भक्ति के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति दिखलाना नाटक का प्रधान उद्देश्य है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की शैली पर लेखक ने जैनमत, सोमसिद्धान्त, चावार्क और सौगत आदि पात्रों का सन्निवेश किया है। नाटक की भाषा सरल और सुबोध है। प्रसाद गुणमयी रचना का एक उदाहरण –

विलीय स्वा विद्या जन यवनिकायामथवहन्
विचित्रं नैपथ्यं नटसि शिव नानात्मकतया
स्वयं जागत्पश्यत्यपि च परमानन्द भरितो
जयत्याश्चर्य जगदिति भवन्नाटक मिदम्।।[192]

जीवानन्दनः

डा0 एस0एन0 दास गुप्ता के अनुसार यह लेखक की प्रथम कृतृि है।[193] इसमें सात अंक हैं। आयुर्वेद और वेदान्त दर्शन का यह सुन्दर सम्मिलन है। असाध्य रोग राज्यक्षमा की सुगम चिकित्सा इसमें चित्रित की गई है। असाध्य रोग भी शिव की आराधना से सुसाध्य हो ज़ाते हैं। यक्ष्मा के प्रबल होने प़र भी भगवान श्री चन्द्रमौलि साम्ब की उपासना से पारद गन्धक आदि रसायनों की प्राप्ति करके नवजीवन, आरोग्य और बल पुष्टि प्राप्त हो सकती है, इस तथ्य को नाट्य कला, कौशल से कवि ने स्पष्ट कर दिया है।[194]

आयुर्वेदीय तत्वों को नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास लेखक ने किया हैं। गलगण्ड, पाण्डु, उन्माद, कुष्ठ, गुल्म और कर्णमूल आदि रोगों को मानवीकृत कर उन्हें पात्र रूप सें प्रस्तुत करना एक साधारण विषय नहीं। अति सुन्दर पात्र कल्पना, कमनीयकविकर्म वैदग्ध्य, मनोहर शब्दावली और आयुर्वेदि साहित्य काम वेदान्त एवं योग आदि विविध शास्त्रों के रहस्यों को स्पष्ट करने में भी कवि का कौशल श्लाध्य है।

शिव भक्ति के साथ–साथ आयुर्वेदशास्त्र से मुख्य सिद्धान्तों का उपदेश भी जनता को देना लेखक का उद्देश्य था। नाटक में नायक के पक्ष में जीवराजा (नायक), बुद्धि (नायिका), विज्ञान शर्मा (मंत्री), ज्ञान शर्मा (मन्त्री), धारणा, प्राण, विचार, औषधियाँ, शिवभक्ति, स्मृति, श्रद्धा आदि पात्र हैं।

प्रतिनायक के पक्ष में–राजयक्ष्मा (प्रतिनायक), विषूची (प्रतिनायक), पाण्डु (मंत्री), सन्निपात स्वास–कास, गलगण्ड, व्याक्षेप, मत्सर, काम और क्रोध आदि पात्र हैं।[195]

डा0 कीथ इन दोनों शैव नाटकों को गुणहीन कहते हैं।[196] जीवनानन्दन तो स्पष्टतः अध्यात्मवेद तथा आयुर्वेद के सिद्धान्तों को कविता और नाटक के माध्यम से समझाने का नवीन प्रयास है। जिसमें शिवभक्त लेखक ने शैवमत को सम्मिलित कर दिया है। नाटक की भाषा सरल, सुबोध एवं कवित्वमय है।

मन्त्रिन् जन्मैव दोषः प्रथममथ तदप्याधिमिः व्याधिभिश्चे
ज्जुष्टं कष्टं बतातः किमधिकमपि तु त्वन्मतेर्वभवने
देव्या भक्तयाः प्रसादात् परमशिवमहं वीक्षय कृच्छाणि तीर्णः
सर्वाणि परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः।[197]

श्रीदामन चरित –

इनका समय 17वीं शती के उत्तरार्ध है। श्रीदामन चरित की रचना के लेखक सामराज दीक्षित बुन्देलखण्ड के तत्कालीन स्वामी आनन्दराय विनोद के लिए किया था। ~~इनकी अन्य रचनाए,~~ धूर्तनर्तक नाटक, त्रिपुरसुन्दरी स्त्रोत और काव्येन्दु प्रकाश लेखक की अन्य रचनाएँ हैं। डॉ0 कृष्णमाचारी के अनुसार श्रीदामन चरित 1681ई0 की रचना है।[198] श्रीदामन चरित नाटक अभी तक कहीं से प्रकाशित नहीं हुआ है। एच0 एच0 विल्सन के अनुसार उनका सक्षिप्त कथावस्तु प्रस्तुत करते है। यह पांच अंकों का नाटक है। जिसकी कथावस्तु श्रीमदभागवत कें दशम स्कन्ध से ली गई है। इसमें श्रीदामन का चरित्र है। यह नाटक विशुद्ध रूपककथात्मक न होकर पौराणिकता के मिश्रण के कारण मिश्रित कहा जा सकता है।

अमृतोदय –

मिथला के गोकुलनाथ द्वारा रचित अमृतोदय नाटक बडा ही पाण्डित्यपूर्ण है।[199] इनके पिता का नाम पीताम्बर और माता का नाम उमा देवी था। लेखक ने अमृतोदय के अतिरिक्त मदालसा नाटक, शिवशतक और रसमहार्णव नामक गृन्थों की भी रचना की है। डा0 एम कृष्णामाचारी इनका समय 17वीं शती स्वीकार करते हैं।[200] डा0 एस0 एन0 दास गुप्ता और डा0 डे0ने अमृतोदय का रचना काल 1693 ई0 निर्धारित किया है।[201]

यह नाटक पांच अंकों का है। इसमें 'साधन चटुष्टयसंपत्ति' नामक प्रस्तावना और क्रमशः 'श्रवणसम्पत्ति', मननसिद्धि', निदिध्यासन, धर्मसम्पत् 'आत्मदर्शन' और अपवर्ग प्रतिष्ठा 'नामक अंक है। इस नाटक का नायक अपवर्ग है, जो विवेक का पुत्र है। इसकी माता श्रुति है। इस नाटक में जीवात्मा के आवागमन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर प्रलय तक की घटनाओं का समावेश हुआ है। नाटक में आन्वीक्षिकी, श्रुति, कथा, पक्षता, परामर्ष, निर्वेद, श्रद्धा, विविदिषां, निर्जर, पुरूषोत्तम, पुरूष, बुद्धमार्ग, अर्हत, सिद्धान्त, पाशुपत सिद्धान्त,

कर्मकाण्ड, ब्रह्मविद्या, मीमांसा, सांख्य, योग' सरस्वती और वैष्णव सिद्धान्त रूपक कथात्मक पात्र है। पंतञ्जलि और जाबालि आदि मानव पात्र है।

यह एक लघु काव्य सुन्दरनाटक है। जिसकी भाषा सरल, सरस एवं प्रसादगुणमयी है, इसके प्रथम अंक में 23, द्वितीय में 198, तृतीय में 34, चतुर्थ में 84, पंचम अंक में 26 पद्य हैं। प्राकृत भाषा का प्रयोग कम हुआ है। प्रसादगुण सम्पन्न इस सरल एवं मधुर कृति में लेखक ने अपनी गौड़ी वृत्तिं रचना की क्षमता के सूचक कुछ पद्य लिखे हैं।

जीवनमुक्ति कल्याण–और चित्रवृत्ति कल्याणम्

इनके रचयिता का नाम भूमिनाथ था।[203] किन्तु इन्हें नल्लादीक्षित, नल्लाकवि तथा नल्लाध्वरी भी कहते थे। जीवनमुक्तिकल्याण तथा चित्तवृत्तिकल्याण रूपक कथात्मक रचनाएं हैं।[204] श्रृंगार सर्वस्वभाण और सुभद्रा परिणयनाटकं इनकी प्राथमिक रचनाएँ हैं। अद्वैतरसमंजरी इनका वेदान्त ग्रन्थ है।[205] लेखक की इन रचनाओं का समय 17वीं शती को उत्तरार्ध और अठारहवीं शती का प्रारम्भ है। गल्लाध्वरी का चित्तवृत्तिकल्याण नाटक अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। जीवनन्मुक्ति कल्याण नाटक टी0के0 बालसुब्रह्मण्य अय्यर ने संपादित कर प्रकाश में पहुंचाया है। इस नाटक में पांच अंक हैं, यह एक लघु काय और सरलता से अभिनेय कृति है। इसके छोटे छोटे सम्वाद अत्यन्त प्रभावशाली है। यह नाटक शान्त रस से परिपूर्ण है। औपनिषदिक अर्थ का प्रकाशक अद्वैत सिद्धान्त मर्मोदघाटक यह नाटक अनेक सूक्ष्म वेदान्तिक तथ्यों का अत्यन्त कलात्मक ढंग से साधारण शैली में स्पष्ट करता है। कथावस्तु का ~~वस्तु का~~ विकास अत्यन्त चतुरता के साथ हुआ है।''[206]

पुरञ्जन चरित –

पुरञ्जन चरित की प्रस्तावना में लिखा है कि ''श्रीकृष्णदत्त मैथिल का लिखा हुआ यह नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसका कथानक श्रीमद्भागवत के पुरञ्जनोपाख्यान की कथा पर आधारित हे। यह नाटक 18वीं शती में लिखा गया है। नागपुर नरेश भोंसला के प्रधान मंत्री देव जी पुरूषोत्तम के समक्ष अभिनय करने के लिये इस ग्रन्थ की रचना हुई थी।[206] जो लेखक के संरक्षक थे।

पुरञ्जन चरित नाटक उपनिषद् और शास्त्रीय संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ एवं पारंगत मस्तिष्क की देन है। इस नाटक में कालिदास तथा अन्य महाकवियों की

प्रतिच्छाया और अनुकरण स्थान–स्थान पर उपलब्ध होता हैं, भगवान विष्णु के दश अवतारों के वर्णन में कवि ने जयदेव के गीत गोविन्द की शैली का सफलतापूर्वक अनुकरण किया है।[207] लेखक का व्याकरण के असाधारण शब्दों पर पूर्ण अधिकार है। जिसका प्रयोग लेखक ने रूचिपूर्वक किया। कथावस्तु के निर्माण में लेखक सर्वाधिक सफल हुआ हैं। सूत्रधार की उक्ति में लेखक बाण और दण्डी की शैली का प्रयोग करता है।[208]

यह कृति अलंकारों से अलंकृत और अनेक छन्दों से युक्त है। इस नाटक में पांच अंक हैं। पुरंजन प्रसञ्जन प्रथम अंक, 26 श्लोक हैं, पुरञ्जनरञ्जन द्वितीय अंक जिसमें 19 श्लोक हैं। पुरञ्जनरञ्जन तृतीय अंक 23 श्लोक हैं। पुरञ्जन समञ्जन चतुर्थ अंक 21 श्लोक हैं। अन्तिम पुरंजन दुखभंजन पंचम अंक जिसमें 29 श्लोक हैं। लेखक ने कुछ नये पात्रों को सम्मिलित कर तथा कथा में भी अभीष्ट संस्कार कर कृति का नाटकीय स्वरूप खड़ा किया है।

नाटक का ध्येय भक्ति की उत्कृष्टता का प्रतिपादन है।[209]

यतिराजविजय

यतिराज विजय[210] नामक रूपक कथात्मक नाटक जिसे 'वेदान्त विलास' भी कहते हैं। वरदाचार्य या अम्मल कृत है। वरदाचार्य कांची में वैष्णव उपदेशक थे। इनका समय 17वीं शती का उत्तरार्ध 18वीं शती का पूर्वार्द्ध है। प0ई0वि0वीर राघवाचार्य इन्हें 14वीं शती का स्वीकार करते है।[211] नाटक में 6 अंक हैं। जिसमें रामानुज सम्प्रदाय की महिमा का वर्णन है। यह कृति उपलब्ध नही है।

सौभाग्य महोदय

सौभाग्य महोदय नाटक जगन्नाथ शीघ्र कवि द्वारा रचित[208] एक रूपक कथात्मक कृति है। लेखक का समय 17वीं शती का उत्तरार्ध है। जगन्नाथ कवि काठियावाड़ के निवासी थे। इस नाटक में प्रायः सभी अलंकार भाव नगर नरेश महाराजा बख्त सिंह की राजसभा में उनके सभासद के रूप में उपस्थित किये गए। यह कृति अभी अप्राप्त हैं।

विद्वन्मोदतरंगिणी –

रूपक कथात्मक नाटक के लेखक रामदेव अथवा वामदेव चिरन्जीव नाम से प्रसिद्ध थे। इस कृति में विविध धर्मों और सम्प्रदायों को पात्र बनाकर वार्तालाप

कराया गया है तथा अनेक दार्शनिक तथ्यों को सुलझाने का प्रयास किया गया है।

पूर्ण पुरूषार्थ चन्द्रोदय

इसके रचयिता जात वेदस विश्वामित्र गोत्र के थे 1800 ई0 में मालावार में रहते थे। सोमयाज्ञ करके वे सन्यासी हो गये थे। इस नाटक में राजा दशाश्व (आत्मा) का जिसके अधिकार में इन्द्रियॉ रूपी अश्व हैं। आनन्दपाकावली से सम्मिलन उपस्थित किया गया है। विभिन्न मत–वाद राक्षसों के रूप में उपस्थित किये गये हैं। और इनका विनाश दिखलाया गया है। इसमें सुश्रद्धा और सुभक्ति का मेल कराया गया है।[213]

शिवलिंग सूर्योदय

'शिवलिंग सूर्योदय' मल्लरी आराध्य रचित है। यह एक शैव रूपक कथात्मक नाटक है। इस नाटक में पांच अंक हैं। वीरशैव सम्प्रदाय की श्रेष्ठता की स्थापना का प्रयत्न लेखक ने इस कृति में किया है। यह नाटक कल्यानपुर के स्थानीय शासक वासवेश्वर की प्रसन्नता के लिए 1800ई0 में लिखा गया है।

अनुमिति परिणय–

नृसिंह कवि की यह कृति अनुमान के न्याय सिद्धान्त की व्याख्या करती है। इस नाटक में परामर्श की पुत्री अनुमिति का परिणय न्याय रसिक के साथ दिखाया गया है।

शुद्ध सत्व–

यह अनन्ताचार्य के पुत्र मदभूषि वेकंटाचार्य की रचना है। इस नाटक में रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

चित्सूर्यालोक–

महाग्निचिन्न नरसिंह कवि जिसे नरसिंह, कवि कहते हैं रचित चित्तसूर्यालोक एक रूपक कथात्मक नाटक है।[214] इनका समय 19वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

उपर्युक्त रूपक कथात्मक नाटकों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न पुस्तकालयों में रूपक कथात्मक नाटकों की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। जो अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं, के रूपक कथात्मक नाटकों की सूची इस प्रकार है –

जो डॉ0 एम0 कृष्णामाचारी और डा0 राधवन ने दी हैं–

1. कष्णानन्द वाचस्पति विरचित नाट्यपरिषद

2. नृसिंह रचित 'शिवनारायण महोदय'
3. धनश्याम निर्मित प्रचण्डराहुदय
4. नारायण शास्त्री द्वारा रचित–ब्रह्मविद्या
5. विद्यानाथ कृत–सत्संगविजय
6. जयन्तभट्ट रचित–सत्मन्नाटक
7. सुन्दरदेव विरचित–मुक्तिपरिणय
8. जीवदेव निर्मित–भक्ति वैभव
9. शिवकवि लिखित–विवेकचन्द्रोदय
10. रामानुज रचित–विवेक विजय
11. वैकुण्ठमणि विरचित–'शान्तिरस' मिथ्याज्ञान खण्डन
12. बालकवि लिखित–गौर्वाणविजय
13. अनन्तराम रचित–स्वानुभूतिरूपक
14. शुक्लेश्वर निर्मित–प्रमाणादर्श नाटक
15. धर्मदेव गोस्वामीकृत–धर्मोदय नाटक

19वीं शती के पश्चात् संस्कृत रूपक कथात्मक नाटकों की परम्परा विच्छिन्न नहीं हुई। बीसवीं शती के प्रसिद्ध रूपक कथात्मक नाटक जीवसंजीवनी है। इसके रचयिता वेकंटरमणय्या है। यह बंगलौर से 1949 ई0 में प्रकाशित हुआ।

(1) प्रबोध चन्द्रोदय सामान्य परिचय

नाटककार

कृष्णमिश्र रचित 'प्रबोध–चन्द्रोदय' संस्कृत के रूपक साहित्य में एक विशिष्ट प्रकार का निदर्शनभूत आदि ग्रन्थ है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में उल्लिखित कीर्तिवर्मा अपने चन्देल वंश का एक नितान्त पराक्रमी राजा था। उसके अनेक शिलालेख बुन्देलखण्ड के भिन्न–भिन्न स्थानों में उपलब्ध होते हैं। जिससे उसके राज्य के विस्तार का संकेत मिलता है। वह राजा विजयपाल का पुत्र था, जो अपने ज्येष्ठ भ्राता देववर्मा के अनन्तर सिंहासनारूढ़ हुआ। महोबा के पास 'कीरत सागर' नामक तालाब उसी का बनाया हुआ है। इसके नाम से सोने के सिक्के भी मिले हैं। कीर्तिवर्मा का समकालीन मालवा का राजा भोज परमार था। कलचुरिराजा कर्ण देव को हरा कर गोपाल ने कीर्तिवर्मा को राज्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया था इस घटना

का उल्लेख 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की प्रस्तावना में दिया गया है।

गोपालों भूमिपालान् प्रसभमसिलतामात्रमित्रेण जित्ता साम्राज्ये कीर्तिवर्मा नरपति–तिलको येन भूयोऽभ्यषेचि। इस प्रकार कीर्तिवर्मा का समय 11वीं शती का अन्तिम भाग है और 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के निर्माण का यही युग है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' का सामान्य परिचय

परमार्थतत्व (पुरूष) वस्तुतः एक है, परन्तु माया से उसका संयोग होता है। उसका पुत्र मन। उसके दो पुत्र हैं। विवेक ओर महामोह। महामोह के वंशजों की शक्ति बढ गयी है। इससे विवेक और उसकी संतानों के लिये भय उत्पन्न हो गया है।

(2) कथावस्तु

प्रथम अंक – नाटक का आरंम्भ रति के साथ वार्तालाप करते हुए काम ने यह बात बतलायी है। काम को विश्वास है कि उसने अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए काफी कार्य कर लिया है। केवल एक खतरा उस भविष्यवाणी से है जिसके अनुसार विवेक एवं उपनिषद के संयोग से प्रबोध का उदय होगा, परन्तु वे दोनों बहुत समय से अलग हैं। तथापि अपनी एक पत्नी मति के साथ बात करते हुए राजा विवेक के वहाँ पहुचने के पहले ही वे दोनों भाग जाते हैं। विवेक को यह जानकार प्रसन्नता होती है कि मति उसके साथ उपनिषद के पुर्नमिलन के पक्ष में है और इस कार्य को सम्पन्न कराने के लिये उद्धत है। द्वितीय अंक में ज्ञात होता है कि महामोह अपने राज्य नाश के भय से आतंकित हैं। वह दंभके द्वारा पृथ्वी के सबसे बड़े मुक्ति स्थान काशी पर तुरन्त अधिकार करने का प्रयत्न करता है। दंभ का पितामह अहंकार काशी पहुंचता है, और वहाँ पर अपने संबन्धियों को देखकर प्रसन्न होता है। महामोह विजेता के ठाटवाट से नयी राजधानी में प्रवेश करता है। देहात्मवादी चार्वाक उसका पक्षपोषण करता है परन्तु एक बुरा समाचार है, धर्म ने विद्रोह का झंडा खडा किया। उपनिषद् सोचती है। कि विवेक से फिर मेल कर लें। तृतीय अंक– शान्ति अपनी सखीं करूणा के सहारे आती है। वंह अपनी माँ श्रद्धा के वियोग में शोकाकुल है। वह दिगम्बर, जैन धर्म, बौद्धधर्म, दर्शन और सोमसिद्धान्त में श्रद्धा की निष्फल खोज करती है, उनमें से प्रत्येक अपनी पत्नी के साथ दिखाई पड़ता है। बौद्धमत (भिक्षु) और जैनमत (क्षपणक) झगडते हैं। सोमसिद्धान्त (कापालिक) आता है। और उन्हें सुरारस से मत्त करके श्रद्धा की पुत्री शान्ति को खोजने के लिये

उनको साथ लेकर चल देता है।

चतुर्थ अंक – विष्णु भक्ति विवेक के पास युद्ध आरम्भ करने का संदेश लाती हें विवेक अपने नायकों वस्तु विचार, क्षमा सन्तोष आदि को संगठित करता है।

पंचम अंक – युद्ध समाप्त होता है। महामोह और उसकी संताने मर चुकी हे। परन्तु महामोह एवं प्रवृत्ति के निधन पर शोक करता हुआ मन उदिग्न है। वैयासिकी सरस्वती उसे भ्रान्ति से मुक्त करती है।

षष्ठ अंक– मरने के पहले महामोह ने मुधमती के द्वारा पुरूष को भ्रान्त करने के लिये भेजा था। उसकी सहचरी माया ने भी उद्योग में सहायता की अन्ततः विष्णुभक्ति आ कर फलप्राप्ति की प्रशंसा करती है और नाटक समाप्त होता है।

नायक –

पुरूष पात्र –	सूत्रधार	विवेक प्रधाननायक
	वस्तुविचार	विवेक भृत्य
	सन्तोष	सज्जनों का सहचर
	पुरूष	उपनिषद का पति
	प्रबोद्योदय	उपनिषद से उत्पन्न पुरूष का पुत्र
	वैराग्य	निदिध्यासन संकल्प मन के पुत्र
	पारिपार्श्वक	पुरूष, सारथी प्रतिहारी
	महामोह	प्रतिनायक
	चार्वाक	मोह का मित्र
	काम, क्रोध, लोभ, दम्भ अहंकार (मोह के मंत्री)	
	मन	संकल्प रूप
	दिगबर	भिक्षु कापालिक सोमसिद्धान्त
	वटु शिष्य, पुरूष, दौवारिक	
स्त्री पात्र	नटी	
	मति	विवेक की स्त्री
	श्रद्धा	शान्ती की माता
	शान्ती	विवेक भगिनी
	करूणा	शान्ती की सखी

मैत्री	श्रद्धा की सखी
उपनिषद	वेदान्त विद्या
विष्णु भक्ति	उपनिषत्सखी
सरस्वती	विष्णु भक्ति सखी
क्षमा	विवेक दासी
मिथ्या दृष्टि	मोह की पत्नी
विभ्रमावती	मिथ्या दृष्टि की सखी
रति	काम की पत्नी
हिंसा	क्रोध की पत्नी
तृष्णा	लोभ की पत्नी

छः अंकों के इस नाटक में वैष्णवमत के अद्वैत सिद्धान्त का पक्षपोषण किया गया है, इसमें वैष्णव धर्म के साथ वेदान्त का समन्वय है। मोह के पंजे में फँस जाने के कारण पुरूष अपने संच्चे स्वरूप के ज्ञान से भी वंचित हो जाता है। विवेक के द्वारा जब मोह का पराजय होता है तभी पुरूष को शाश्वत ज्ञान उत्पन्न होता है। विवेक पूर्वक उपनिषद् के अध्ययन करने तथा विष्णु भक्ति के आश्रय लेने से ही ज्ञान रूपी चन्द्रमा का उदय होता है। इस विषय का प्रतिपादन बड़ी ही युक्ति तथा सुन्दरता के साथ किया गया है। पात्रों में सजीवता है, इसमें अमूर्त पदार्थ श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, दम्भ, हिंसा आदि हैं। मूर्त रूप से कल्पित होकर नाटक के पात्र बनाये गये हैं। साधारण रीत्या मूर्त पदार्थों को ही नाटकों में पात्र कल्पना की जाती है। यह ठीक उसके विपरीत है। कहीं तो समस्त पात्र अमूर्तात्मक हैं, और कहीं मूर्त तथा अमूर्त का मिश्रण प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अंक में दम्भ और अहंकार का वार्तालाप अतीव हास्योत्पादक है। इसी प्रकार के हास्य मिश्रित कौतुहल जैन, बौद्ध तथा सोम सिद्धान्त के परस्पर वार्तालाप के अवसर पर दर्शकों को होता है। कृष्णमिश्र उपनिषदों के रहस्यवेत्ता थे। कवित्व का चमत्कार इस नाटक में कम नहीं है। अद्वैत वेदान्त तथा वैष्णव धर्म का समन्वय इस नाटक की महती विशेषता है। आत्मकल्याण का मार्ग बताते समय सरस्वती का उपदेश कितना रमणीय है।

नित्यं स्मरन जलदनीलमुदारहार केयूरकुण्डलकिरीटधरं हरिवा।

ग्रीष्मे सुशीतमिव या हृदमस्तशोकं ब्रह्म

प्रविश्य भज निर्वृतिमात्मनीनाम्

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की प्रसिद्धि हिन्दी के प्राचीन कवियों में खूब थी। इसके फलस्वरूप तुलसीदास ने अयोध्याकाण्ड में पंचवटी के वर्णन प्रसंग मे जिस आध्यात्मिक रूपक की योजना की है। इसमें इस नाटक के प्रसिद्ध पात्रों को भी अपनाया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास ने (16वीं शतक) में इसका छन्दोबद्ध अनुवाद ही विज्ञान गीता के नाम से किया। इसमें नैतिक और दार्शनिक विषयों का निरूपण किया गया है। कृष्णमिश्र अपने प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित के सिद्ध रचनाकार हैं। उनके वसंत तिलक तथा तुकांत प्राकृत पद्य भी मार्मिक हैं। इस नाटक 'शान्त रस' प्रधान है। यह नाटक में श्री कृष्ण मिश्र ने गम्भीर दार्शनिक चिन्तन को अभिनेय सार्थकता से संयुक्त कर दिया है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की लोक प्रियता

यह एक महान रूपक कथात्मक कृति है, जिसमें समस्त मानव जीवन का चित्रण रूपक कथात्मक पद्धति पर मानवीय गुणों और वृत्तियों का मानवीय करण कर किया गया है, किसी एक गुण या दोष का नहीं। प्रबोध चन्द्रोदय नाटक स्वनाम से ही अपने गम्भीर दार्शनिक विषय को सूचित करता है। इसमें मानव हृदय की शक्तियों को अर्न्तविरोध का सफल उपस्थापन और मानव हृदय की दो स्वाभाविक वृत्तियों का परस्पर संघर्ष चित्रित किया गया है।

कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक का अनुसरण करने वालों की संख्या न्यून नहीं है। भारतीय साहित्य की एक अत्यन्त विशिष्ट ध्यानाकर्षक उत्पत्ति के रूप में स्वीकार किया जाने योग्य है।[215] धार्मिक और दार्शनिक रूपक कृति के रूप में – जिसमें भाववाचक मानवीय कृतियॉ और प्रतीकात्मक पात्र मनुष्यों की भांति कार्य करते हैं। यह एक महत्वपूर्ण जीवित कृति है।''[216] यद्यपि पात्रों के कार्य में नाटकीयत्व की शक्ति की पूर्णतः सबलता नहीं कही जा सकती है।[217]

यद्यपि भावपूर्ण दार्शनिक मन्तव्यों को सामने रखकर एक मनोरंजक नाटक का निर्माण कार्य अत्यन्त कठिन है। फिर भी कृष्णमिश्र अपनी रचना में यह कर सके हैं। उन्होंने मानव आत्मा के सनातन संघर्ष का मनोहर कलापूर्ण नाटकीय चित्र प्रस्तुत किया है। किसी भाव को चेतन मानव की भांति चित्रित करने के प्रयत्न में

पूर्ण सफलता की आशा नहीं की जाती, फिर भी यदि प्रौढ़ प्रतिभा और चित्रण क्षमता कवि के पास है तो वह इस दिशा में भी निर्जीव अमूर्त चित्रों में उष्ण रक्त और प्राणों का संचार कर सकता है।

भारतीय नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार कृष्णमिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय को सुखान्त नाटक के रूप में निपुणता के साथ प्रस्तुत किया है और समान्य नाटकीय नियमों का पालन करने का प्रयंत्न किया है। 'प्रबोध–चन्द्रोदंय' नाटक के कथोपकथन अत्यन्त सुन्दर बन पडे हैं। उनके कथनों में संस्कृत भाषा का माधुर्य एवं व्यवहारोपयुक्तता, ध्वन्यात्मकता और प्रसादिकता दीख पड़ती है। पात्रानुकूल, विषयानुकूल, वातावरण के अनुकूल भाषा है। यद्यपि इस नाटक में सूक्ष्म भावों का मानवीयकरण किया गया है, और साथ ही उनकी व्यक्तिगत विशेषता भी व्यक्त की गई है। फिर भी रचना की प्रतीकात्मकता बुद्धिगम्य, तर्क संगत, आध्यात्मिक, व्यायाम शून्य और नीरसता से रहित है। रोचकता के कारण पाठक की उत्सुकता आदि से अन्त तक बनी रहती है। इन सब गुणों के होने पर भी नाटक के चरित्र बुद्धि वेध होकर ही रह जाते हैं। उनके मनुष्यत्व में हमें विश्वास नहीं होता और न हम सहानुभूति प्रगट करने के लिए अपने को बाध्य पाते हैं। पात्र अपनी मानवीय दुर्बलताओं तथा भारतीय आदर्शों को लेकर प्रस्तुत होते हैं। लेखक ने अमूर्त भावों को मानव का रूप देने में कितनी नाटकीय सफलता पाई है। इस क्षेत्र में पाश्चात्य नाटककार अधिक सफल हुये हैं। फिर भी संस्कृत साहित्य में कृष्ण मिश्र इस क्षेत्र में सर्वाधिक सफल कलाकार हैं। काम, क्रोध, अहंकार आदि के चित्र अत्यन्त सफलता के साथ अंकित किये हैं। यथा प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में काम नामक पात्र का चरित्रिक चित्रण –

काम – उन्तुङ्गपीवरकुचद्वयपीडिताङ्
मालिगिंतः पुलकितेन भुजेन रत्या।।
श्रीमांजगन्ति मदयन्नयनाभिरामः
कामोऽयमेति मदधूर्णितनेत्रपद्मः।[218]

क्रोध नामक पात्र का चरित्रिक चित्रण कितना सुन्दर बन पड़ा है यथा–

क्रोध – अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि
धीरं सचेतनमचेतनतां नयाभि।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति।

धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति।[219]

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में दम्भ की चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

गङ्गातीरतरङ्ग शीतलशिलाविन्यस्त भास्वदवृसी
संविष्टाः कुशमुष्टिमण्डितमहादण्डाः करण्डोज्जवलाः
पर्यायग्रथिताक्षसूत्रवलयप्रत्येक बीजंगृह
ब्यग्राग्राङ्गुलयो हरन्ति धनिनां वित्तान्य हो दाम्भिकाय।''[220]

अतः आचार्य कृष्ण मिश्र ने पात्रों का चरित्र युक्ति पूर्ण ढंग से दिखलाया है। कृष्ण मिश्र ने नाटय शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार ही घटनाक्रम और इतिवृत के अंगों उपागों की व्याख्या की है, तथा अपनी कृति का आकार प्रकार निर्धारित किया है, किन्तु प्रतीत यही होता है कि जैसे उन्होंने यह सब नाटक को विभिन्न घटनाओं का उत्तरोत्तर स्वाभाविक विकास, प्रत्येक दृश्य और प्रसंग सहेतुक वा एक शब्द भी अनावश्यक न हो। नाट्यशास्त्र के अनुसार ''नाटकों की कथावस्तु किसी राजा या देवता की प्राख्यात कथा होना चाहिए। प्रधान पात्र भी प्रख्यात वंशोदभव राजर्षि या देवता कहे गये हैं। पुण्यशाली धर्मार्थिक उदात्त नायक का चरित्र वीर या श्रृंगार रसमय चित्रित होना ही नाटक के लिये आपेक्षित है। किन्तु 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में रूपककथात्मक नाटक होने के कारण जैसा कि रूपक कथा के लिये आवश्यक है कथावस्तु दार्शनिक और धार्मिक है, जो प्रस्तुत के साथ–साथ एक प्रतीयमान अर्थ भी रखती है। अतः इसके पात्र मानव गुणों एवं वृत्तियों के मानवीकृत प्रतीत पात्र हैं जो वास्तविक और ऐतिहासिक मानव नहीं हैं। रस नाटक का मूल तत्व है। जिसका परिपाक उच्च कोटि का है। इनका नाटक वीर, श्रृंगार रस का परिपाक कराने वाला न होकर शान्त रस की ओर बढ़ते हैं। और अन्त में उसका परिपांक करा लेते हैं। अतः कृष्णमिश्र का 'प्रबोध–चन्द्रोदय' अन्य संस्कृत नाटकों से अपनी एक पृथक विशेषता रखता है।

वस्तुतः कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध–चन्द्रोदय' संस्कृत साहित्य में एक नई धारा का सूत्रपात करता हैं। 10वीं शती ईस्वी तक नाटकों के कथानक राजघरानों से सम्बन्धित अथवा दैवी होने पर भी प्रेम प्रधान और प्रायः रोमान्समय होते थे।

कृष्ण मिश्र ने इस क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति दी और धर्म प्रधान दार्शनिक कथानक एवं अमूर्त पात्र मय नाटकों की सृष्टि की ओर साहसपूर्ण पद बढ़ाया।

कोई भी प्रतिभाशाली महान लेखक आगत परम्परा के मध्य एक नई परम्परा को जन्म देता हैं और अपने अद्वितीय व्यक्तित्व द्वारा इसका पथ प्रशस्त कर जाते हैं। अतः कृष्ण मिश्र का प्रबोध चन्द्रोदय एक ऐसी ही कृति है।

संस्कृत के सभी आचार्य कृष्णमिश्र की प्रतिभा की दीप्ति के प्रभाव को स्वीकार करने से परांगमुख नहीं हुए। वास्तव में कृष्णमिश्र एक महान दार्शनिक थे, उनमें प्रतिभा और नाट्य कला की भी कमी नहीं थी। उन्होंने संस्कृत साहित्य को एक नई धारा व परम्परा दी जो बहुत दिनों तक चलती रही और जिससे बहुत सा साहित्य निर्मित हुआ। प्रायः सभी भारतीय और पाश्चात्य समालोचक 'प्रबोध–चन्द्रोदय' को संस्कृत नाटक के ह्रासयुगीन नाटकों में सबसे अधिक आकर्षक व महत्वपूर्ण स्वीकार करते हैं।[221]

कृष्ण मिश्र कवि एवं दार्शनिक दोनों थे उनकी कविता अन्य दार्शनिक कवियों की तरह जटिल नहीं है। प्रबोध चन्द्रोदय के पद्यों में प्रवाह एवं प्रसाद है। किसी पदार्थ के वर्णन में उस वस्तु की रूप रेखा प्रस्तुत कर देना इनके पद्यों की प्रधान विशेषता है। आचार्य भर्तृहरि के नीतिश्लोक बहुत प्रसिद्ध है उनके पढने से हृदय में सात्विक सुख का उदय होता है, और यही कारण है कि इस दार्शनिक कवि ने भी अपने पात्रों के मुंह से समय–समय पर कुछ नीतिश्लोक कहलवाये हैं जो अतिहृदय ग्राही हुए हैं।

श्रीदेवी जनकात्मजा दशमुखस्यासीद गृहे रक्ष्सो
नीताचैवरसातलं भगवती वेदत्रयी दानवैः
गन्धर्वस्य मदालसा च तनयां पातालकेतुश्छला
विपुल श्रोणी भरे त्युन्नमत् दैत्येन्द्रोऽपललोचनेति
पीनोतुङ्ग पयोधरौति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति
दृष्टा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानिति
प्रत्यक्षाशुचिपुस्तिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चष्टितम्।।

इन उक्तियों के पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे भर्तृहरि की कविता ही पढ रहे हैं। दुनियॉ के झमेले से अत्यासक्ति होने पर मनुष्य का मन सदा चिन्तित तथा कष्टपतित रहा करता है, इस बात से सन्तोष दिलाने के लिए स्त्री पुत्रादिकों से अनासक्ति रखने के लिये वैराग्योपदेश दिये जाते हैं उनमें भी एक चमत्कार होता है। देखियें –

पान्थानामिवं वर्त्मनि क्षितिरूहां नाद्यामिव भृश्यतां
मेघानामिव पुष्करे जलनिघौ सांयात्रिकाणामिव
संयोगः पितृमातृबन्धुतनय भातृप्रियाणां यदा
सिद्धों दूरवियोग एव विदुषां शोकोदयः कस्तदा

वैषयिक सुखों के लिये मन में जो स्वाभाविक अभिलाषा हुआ करती है, उसकी इस नाटक में खूब निन्दा की गई है। इस ग्रन्थ का प्रतिपादनीय विषय है। अद्वैतवेदना सम्मत मोक्ष प्रकार, उसके साथ विष्णुभक्ति का संयोग हो जाये तो वह और चमक उठता है, इस बात को श्रीकृष्ण मिश्र ने पद तदर्थ तथा कथाविन्यास द्वारा इतनी मार्मिकता. से प्रस्तुत किया है कि. ग्रन्थ का अन्तिम अंक चमत्कारातिशयाद्यायक हो उठा है।

भक्ति का स्वरूप सदा से मधुर रूप में वर्णित होता रहा है और वहीं उसकी वास्तविक रूपरेखा होती है। भक्त का एक मधुर चित्र इस नाटक में देखिए–

तोयार्द्राः सुरसरितः सिताः परागैर्स्र्चन्तश्च्युत कुसुमैरिवेन्दुमौलिम्
प्रोदगीतां मधुपरूतैः स्तुतिं पठन्तो नृत्यन्ति प्रचललता भुजैः समीराः

अर्थात वायुरूप भक्त शिवभक्ति में ओत–प्रोत है, वह गंगा स्नान करके विभूति से अपने अंगों को स्वच्छ बना रहा है, उसकी विभूति पराग ही है, वृक्षों से फूल चू रहे हैं। मानों वह भक्त वायु अपने आराध्य के ऊपर फूल चढ़ा रहा है, भ्रमर शब्द कर रहे हैं, मानों वह महिम्नः स्त्रोत का मधुर परायण कर रहा है, लतायें झूल रही हैं मानों वह भक्ति की प्रचुरता में नाच रही हैं। जिन्होंने वैद्यनाथ आदि शैवतीर्थों में भक्तों की भावना की तन्मयता में विभूति रमाये तथा 'करवन हरव दुख मोर' इत्यादि नचारियॉ गाते देखा है, उन्हें इस पद की मधुरता अनायास प्रतीत हो जायगी।

अतः इस प्रकार कह सकते हैं कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' अत्यन्त लोकप्रिय नाटक है। हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य की विभिन्न विद्याओं में चाहे वो नाटक हो या काव्य रूपक प्रधान रचनाओं की एक लम्बी श्रंखला पाई जाती है। रूपकों का प्रयोग या तो सम्पूर्ण कथानक में देखने को मिलता है। या तो मनोवैज्ञानिक रूप से पात्रों की प्रस्तुतीकरण में इन सभी कृतियों में अधिकांश रूप से लेखकों ने प्रबोध चन्द्रोदय को आधार मान कर रचनाएं लिखी हैं। किसी कृति की लोकप्रियता का इससे बढकर

और क्या उदाहरण हो सकता है। कोई भी महान कृति अपने में वैचारिक दार्शनिक और सांस्कृतिक सभी उत्कृष्टताएं रखती ही है। किन्तु किसी महानकृति के लिये ये भी आवश्यक है कि उसके पीछे परवर्ती रचनाकार उस परम्परा अथवा शैली का अनुगमन करें। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' विचार तथा शिल्प दोनों स्तरों पर अपनी परम्परा को प्रभावित करती हैं। वस्तुतः ये कृति लोकमानस रचना धार्मिकों में अत्यन्त लोकप्रिय रही।

'संकल्प- सूर्योदय' सामान्य परिचय

महान दार्शनिक कवि वेंकटनाथ वेदान्त देशिक का 'संकल्प–सूर्योदय' एक उच्च कोटि का आद्योपान्त विशुद्ध रूपक कथात्मक नाटक है।[222] यह वेदान्त दर्शन और वैष्णव धर्म के विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादक नाटक है, जिसे कृष्णमिश्र के 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का एक प्रत्युत्तर कह सकते है। इसमें निरूपाधिक सुहृद भगवान का 'इसको मुक्त करूंगा' यह जो अध्यवसाय रूप सत्य संकल्प है। मुमुक्षुवों का मोक्ष साधन है तथा उपनिषदों का सिद्धान्त है। इस नाटक का प्रतिपाद्य विषय है।

नाटककार –

संकल्प सूर्योदय के रचयिता, विशिष्टाद्वैत मत के महान प्रतिष्ठापक वेंकटनाथ वेदान्त देशिक हैं। इनका समय 13वीं शती का उत्तरार्ध है।[223] यह एक महान दार्शनिक थे। यदि वेदान्त का उद्देश्य मानव को सन्मार्ग से उसके गन्तब्य पर पहुंचाना है, और उसे यात्रा और गन्तव्य के विषय में पूर्णज्ञान कराते हुए जीवन यात्रा में उसका पथप्रदर्शन करना है, तो निश्चय ही वैष्णव आचार्य वेंकटनाथ जिन्होंने अपने जीवन काल में ही वेदान्त देशिक की उपाधि प्राप्त की थी इस नाटक की रचना करने के वास्तविक अधिकारी थे।

जनश्रुति के अनुसार यह विश्वास है, कि नाटक को लेखक ने एक रात्रि में लिखा है। किन्तु इस जनश्रुति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। जनश्रुति के ही अनुसार ही नाटक की रचना प्रबोधचन्द्रोदय के प्रतिपक्ष में की गई थी, किन्तु दोनों लेखकों का समसामायिक होना अनैतिहासिक है। नाटक रचना का स्थान श्री रंगम है। नाटक की रचना मलिककाफूर के दक्षिण आक्रमण के पहिले हुई होगी।

संकल्प सूर्योदय की प्रस्तावना के अनुसार वेकंटनाथ अनन्त सूरि के पुत्र थे, जो कान्ची में रहते थे। इनकी माता का नाम तोताद्रि था। वेंकटनाथ का जन्म 1268

ई0 भाद्रपद शुक्ल दशमी को हुआ।[224] इनके गुरू का नाम आत्रेय रामानुज था, जिससे इन्होंने विभिन्न शास्त्रों एवं दर्शनों का अध्ययन किया था। देशिक महान शास्त्री उद्भट विद्वान थे। श्री रंगराज की आज्ञा से इन्हें वेदान्ताचार्य कविता किंक सिंह की उपाधि प्राप्त हुई थी। अलंकार शास्त्री इनकी गौड़ी वैदर्भी और पांचाली रीति समन्वित कविता की प्रशंसा करते थे।[225]

जनश्रुति के अनुसार लेखक ने श्रीरंगम जाकर प्रतिवादी विद्वानों को परास्त कर संकल्प सूर्योदय की रचना की वेकंटनाथ का स्वर्गवास 1369 में हुआ। इनके जीवन चरित को चित्रित करने वाले लगभग 40 ग्रन्थ है।[226] वेदान्तदेशिक ने 'संकल्प–सूर्योदय' के सहित 60 ग्रन्थ संस्कृत भाषा में और 55 ग्रन्थ मणिप्रवाल (संस्कृत द्रविड़) भाषा में लिखे हैं।[227]

नाटक का संक्षिप्त कथासार –

नाटक में 10 अंक हैं जिसमें देह धारियों के गुण रूप विवेक सुमति व्यवस्थादि और मोह दुर्मति लोभादि पात्र रूप से कल्पित किये गये हैं। इनमें विवेक और सुमति आदि सात्विक गुण हैं और मोह एवं दुर्मति तामस तथा राजस गुण हैं। परावर शुद्धाशुद्ध आदि का विवेचन रूप विवेक इसका धीरोदात्त नायक हैं। 'पुरूष का संसार से छुटकारा' नायक का अभीष्ट प्रयोजन है। संसारिक ताप से अत्यन्तद मनुष्य शरीर की रक्षा का इच्छुक, विवेक नायिका सुमति आदि को साथ लेकर पुरूष में सांसारिक विषय सुखों की विरक्ति पैदा कर उसे समाधि में लगाने का प्रयत्न करता है। मोह जो प्रतिनायक है और विवेक का शत्रु है। दुर्मति पत्नी आदि सहायकों को साथ लेकर पुरूष में भौतिक सुख लोलुपता पैदा कर उसे संसार में ही अत्यन्त आसक्त रखने के लिये तत्पर होता है। अन्त में विवेक सपरिवार मोह को पराजित कर पुरूष को परब्रह्म की समाधि में स्थापित कर भगवान की कृपा से होने वाले भगवत्संकल्प के द्वारा संसारोन्मुक्त कर परब्रह्म के अनुभव रूप मोक्ष साम्राज्य को प्राप्त करता है। यही नाटक का संक्षिप्त कथा सार है।

नाटक के पात्र–

नायक पक्ष–	विवेक	–	राजा (नायक)
	सुमति	–	रानी
	व्यवसाय	–	सेनापति

	तर्क	–	सारथी
	संस्कार	–	शिल्पी
	दृष्टप्रत्यय	–	दूत
	संकल्प	–	भगवददास
	पुरूष	–	निः श्रेयस अधिकारी
	बुद्धि	–	पुरूष पत्नी
	विष्णुभक्ति	–	भगवददासी
	श्रद्धा	–	सुमति की सखी
	विचारणा	–	सुमति की सखी
	गुरू	–	सिद्धान्त
	शिष्य	–	वाद
	नारद	–	देवर्षि
	तुम्बुरू	–	देवर्षि
प्रतिनायक पक्ष–	महामोह	–	प्रतिनायक
	दुर्मति	–	मोह की पत्नी
	काम	–	मोह का सेनानायक
	क्रोध	–	मोह का सेनानायक
	रति	–	काम की पत्नी
	वसन्त	–	काम का सखा
	राग, द्वैष, लोभ–		मंत्री
	तृष्णा	–	लोभ की पत्नी
	दंभ/दर्प	–	मोह के कुटुम्बी
	कुहना	–	दंभ की पत्नी
	असूया	–	दर्प की पत्नी
	स्तम्भ	–	कंचुकी
	संवृतिसत्य	–	दूत
	अभिनिवेश	–	कोषाध्यक्ष
	दुर्वासना	–	कोषाध्यक्ष की पत्नी

नाटक में शान्त रस –

इस कृति का मुख्यं रस शान्त किन प्रमाणों के आधार पर स्वीकार किया है? इस विवाद ग्रस्त विषय का विवेचन नाटक की प्रस्तावना में ही कर दिया है। प्राचीन नाट्य-शास्त्री भरत, घनंजय, धनिक और शारदातनय आदि नाटक के क्षेत्र में शान्त रस की सत्ता अस्वीकार कर देते हैं।[228]

वेदान्त देशिक ने इस प्रश्न को नटी के मुख से प्रस्तावना में उठाया है।[229] सूत्रधार उसी स्थल पर कहता है–

आर्ये / न खलु संभवामितानहं भरतागम पारद्वस्वनः

कह कर नटी की शंका का खण्डन करता है। वेकंटनाथ ने अभिनव भारती का अनुकरण करते हुए यहॉ तक कह दिया कि शान्त ही एक रस है, अन्य रस तो उसके विकार मात्र हैं।[230]

''ललितमनसां प्रीत्यै विभृ द्रसान्तरभूमिका

मनवमगुणौंयस्मिन्नाट्ये रसो नवमः स्थितः।

अनादि काल से चले आते, रागद्वैषादि से रहित चित्त के असम्भव होने से शान्त रस भी संभव नहीं है। इस तर्क का खण्डन लेखक ने बड़ी सुन्दरता से किया है। शम के समस्त व्यापार उपरति रूप होने से उसका अभिनय असंभव है, इसका भी निराकरण लेखन ने किया –

असभ्यपरिपाटिकामधिकरोति श्रृंगारिता

परस्पर तिरस्कृति परचिनोति वीरायितम्

विरूढगतिरदभुतस्तदलमल्पसारैः परैः

रामस्तु परिशिष्यते शाभितचित्तखेदोरसः [231]

डा0 कीथ ने इसकी विशालता और श्रेष्ठता की ओर संकेत करते हुए इसे 'चैतन्य–चन्द्रोदय' आदि से श्रेष्ठ कृति कहा है।[232]

संकल्प–सूर्योदय की लोकप्रियता

वेंकटनाथ वेदान्त देशिक की नाट्यकला संस्कृत साहित्य का गौरव है, और वह पूर्णतया मौलिक है। वेदान्त देशिक को सूक्ष्म भावों का गहरा अनुभव है। उन्होंने अपने भावुक हृदय से संसार में जो अनुभूति प्राप्त की उसको अपने नाटक में अभिव्यक्ति प्रदान की।

नाटक के महान लेखक ने अपने समक्ष रूपक कथात्मक नाटक रचना का दुष्कर कार्य रखा है, और उसमें आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त की है। नाटक के पात्र कतिपय गुणों के केवल प्रतीक हैं। नाटककार की कला द्वारा इतने सजीव बना दिए गये हैं कि हम उनके वास्तविक स्वभाव को भूल जाते हैं और उन्हें यथार्थ मानव समझने लगते हैं।

नाटक के कथानक की व्याख्या सरल कार्य नहीं है। वास्तविक जटिलता नाटक की दार्शनिकता में न होकर उन उपकरणों और कथोपकथनों में है, जिनका प्रयोग लेखक ने अपने विशिष्ट दर्शन की रेखाओं को पुष्ट करने के लिए किया है। 'संकल्प-सूर्योदय' का इतिवृत्त एक सनातन संघर्ष की कहानी है। यह संघर्ष सृष्टि के प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। और प्रत्येक मनुष्य में न्यूनाधिक मात्रा में वर्तमान है। यह मानव के आध्यात्मिक और भौतिक सिद्धान्तों का संघर्ष है। नाटक का निष्कर्ष मानव अन्तरात्मा की अन्तिम विजय की ओर संकेत करता है। नाटककार ने इस इतिवृत्त को दो राजाओं के कथानक में ढाल कर चित्रित किया है। एक ओर महान सम्राट विवेक अपने समस्त शुभ अनुयायियों के साथ हैं तो दूसरी ओर महामोह का अशुभ दल उसके साथ है।

नाटकीय पात्रों का चयन अत्यन्त उपयुक्त मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया है। उदाहरणार्थ विवेक का जीवन साथी सुमति है। जिसका अर्थ है जीवन में विवेक का सुमति से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। यह सम्बन्ध किसी आकस्मिक घटना वश न होकर आत्मसंयम सिद्धान्त के अनुसार मानव के लिए अच्छा होना ही बुद्धिमानी और श्रेयस्कर है।

संस्कृत भाषा साहित्य में यह नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध है और एक ऊंचे स्थान का अधिकारी है।

मानव जीवन भौतिक और आध्यात्मिक दो पक्षों के मेल से निर्मित हुआ है। मानव जीवन में अपनी प्रबल सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से इन्हीं दो शक्तियों में निरन्तर संघर्ष चला करता है। एक ओर उच्च आध्यात्मिक शक्ति विवेक अपनी अन्य सम्बन्धित शक्तियों की सहायता से उस मार्ग को ग्रहण करने का प्रयास करता है, जो मुक्ति वा ईश्वर के साथ सम्बन्धित होने से अलौकिक आनन्द की ओर ले जाता है तो दूसरी ओर मानव की निम्न भौतिक शक्ति मनुष्य को सारहीन भौतिक सुखों

की मृगतृष्णा की ओर आकृष्ट करने का प्रयास करती है। इसी संघर्ष का चित्रण लेखक ने नाटक में अत्यन्त सफलता के साथ किया है।

वेदान्त देशिक के इन विचारों के आलोक में यह विश्वास करना संगत है कि उन्होंने परम्परा मुक्त पद्धति का त्याग कर नाट्य निर्माण की एक नवीन सरणि का उद्घाटन किया।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटककार की निपुण कला भारतीय संस्कृति के सौरभ से सनकर अधिक अभिराम तथा प्रभविष्णु बन गया। षष्ट अंक में सब तीर्थों के दोषों का उद्घाटन कर उन्हें अयुक्त सिद्ध कर कवि 'हृदय गुहा' को ही समाधि के लिए उपयुक्त बतलाया है। नोंकझोंक की भाषा में तीर्थों की निन्दा देखने ही योग्य है–

सा काशीति न चाकशीति भवि साऽयोध्येति नाध्यास्ते

साऽवन्ती न च कल्मषादवति सा कांचीति नोदंचति

धत्ते सा मधुरेति नोत्तमधुरां मान्यापि नान्या पुरी

या वैकुण्ठ कथा सुधार सभुजां रोचेत नो चेतसे।।

यह नाटक एक महान विशिष्टाद्वैत की कृति है। वस्तुतः प्रत्येक नाटक की एक अन्तरात्मा होती है और उसका विकास भीतर से बाहर की ओर होता है। अधिकांश भारतीय और यूरोपियन नाटकों का एक बड़ा दोष यह है कि उनमें किसी एक केन्द्रीय विचार धारा का अभाव रहता है। और वे काल्पनिक सम्वादों से परिपूर्ण दृश्यों के जमघट मात्र होते हैं। आधुनिक नाटक तो समस्याओं के उठाने के नाम पर सामाजिक उद्देश्य से इतने भराक्रान्त बन जाते हैं कि उनमें कलात्मक आकर्षण रह ही नहीं जाता है। कुछ नाटकों में अभिनेता ही नाटकों का नियमन करते हैं। न कि नाटक अभिनेताओं का। कुछ नाटकों में नाटक का नियन्त्रण न तो स्वयं नाटक में रहता है और न अभिनेताओं के हांथ में, बल्कि उसका सम्पूर्ण नियमन दृश्यों को सजाने वाले कलाकार के द्वारा सम्पन्न होता है। निचले स्तर के नाटकों में इन सबके ऊपर विदूषक का प्राधान्य हो जाता है।

लेकिन वेदान्त देशिक के नाटक में इन सभी त्रुटियों का अभाव है। उनके नाटक में एक अभ्यन्तरीण विचार-धारा वर्तमान है जो सम्पूर्ण नाट्यवस्तु को अधिशासित करती है, और अभिनेताओं को भी अपने नियंत्रण में कर लेती है। कथानक, घटना, कथोपकथन, चरित्र चित्रण, कविता तथा आध्यात्मिक उद्देश्य इन

सभी तत्वों का उनके नाटकों में अभिराम सामंजस्य उपलब्ध है जो अभिनेताओं तथा सामाजिकों, दोनों को समरूपेण प्रभावित करता है। नाटकीय प्रभाव के सम्पूर्ण तत्व उनमें दृष्टिगोचर होते हैं और वे सभी नाटक की केन्द्रीय भीतरी आत्मा के द्वारा शासित एवं संचालित हैं। इनसें प्रभावित होकर 17वीं आनन्द राय के 'चैतन्य–चन्द्रोदय' आदि का प्रणयन हुआ।

वास्तव में यह एक आश्चर्यजनक कृति है, जिनके दार्शनिक निष्कर्षों से सहमत न होने पर भी कोई विरला ही ऐसा होगा, नाटक की प्रशंसा न करें चाहे वह किसी भी धार्मिक मत को मानने वाला क्यों न हो। यदि केवल संस्कृत में रचना की दृष्टि से ही विचार किया जाय तो यह नाटक संस्कृत साहित्य में एक ऊँचे स्थान का अधिकारी है। यद्यपि सामान्य जनता को आकर्षित करने की दृष्टि से यह कृति अधिक लोक रंजक नहीं सिद्ध हुई। इसका कारण यह है कि उच्चस्तर की कोई भी कृति जो दार्शनिकों और विद्वानों के लिए आकर्षण का स्थान है जन सामान्य के लिये उतनी हृदय ग्राही नहीं हो सकती है।

'संकल्प–सूर्योदय' की प्रेरणा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' से अवश्य मिली किन्तु 'संकल्प–सूर्योदय' दक्षिण भारत में इतना लोकप्रिय हुआ कि दक्षिण भारत के शिवभक्त तथा नाटकों के रचनाकार 'संकल्प–सूर्योदय' को आधार मानकर उसके प्रतीकात्मक तथा अमूर्तभावों के मूर्तन की शैली को आधार मानकर अपनी कृतियों को रचा। 'अनन्तराय' के दो रूपक कथात्मक शैली की कृतियॉ हैं। 'विद्यापरिणयन' के रचनाकार ने स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है कि यह जगत भगवान शिव की बनाई हुई एक नाट्य-स्थली है। शैव नाटककारों ने भी 'संकल्प–सूर्योदय' का अनुगमन किया है। यह अनुगमन 'संकल्प–सूर्योदय' की लोक प्रियता का ही प्रमाण देना है।

—संदर्भ—

1. काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, पृष्ठ 19।
2. साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ, पृष्ठ 2।
3. काव्य मीमांसा, राजशेखर, पृष्ठ ।
4. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत आलोचना, पृष्ठ 65।
5. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ ।
6. काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, पृष्ठ ।
7. साहित्य दर्पण, दृश्यं तत्राभिनेयं, पृष्ठ ।
8. लोकस्वभावनुकरणाच्च नाट्यस्य सत्वमीप्सितम् नाट्य शास्त्र काव्य माला पृष्ठ 10।
9. रामदिगतसीताविषयक रत्यादिरेव रसः सहृदयेन काव्योपत्ति लिंगैरादावनुमयिते। ततस्तस्य कमनीय विभावाध्ध भिनय प्रदर्शन निपुणे रामाडनुकारिणि नटे सादृश्यज्ञानरूप दोष दारोपः साक्षात्कारात्मको धर्म्यशे त्लौकिक रामोडयं सीताविषयकरतिमानित्याकारक चमत्कृतिरिति हेतुः। (काव्य प्रदीप) पृष्ठ 63।
10. अतः अभिनेतुभ्यः कवीन एवं बहुमन्यावहे, अभिनयेभ्यः काव्यमेवेति भोण श्रृंगार प्रकाश।
11. साहित्य निकेतन, दशरूपक, डा0 त्रिगुणायत, कानपुर, पृष्ठ 1–7।
12. अधिकार, गा0ओ0सी0, भाव प्रकाशन, अंक 2, सन् 1930, पृष्ठ 46।
13. नाट्य शास्त्र, गा0ओ0सी0 भाग–2, 18/2–3, पृष्ठ 407।
14. धनंजय कृत, दशरूपक, पृष्ठ 8।
15. दशरूपक अवलोक, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, पृष्ठ 1–8।
16. अधिकार, भट्टाचार्य, गा0ओ0सी 1930, अंक 8, पृष्ठ 221।
17. तदुपरिवत्, अंक 8, पृष्ठ 221।
18. तदुपरिवत्, अंक 8, पृष्ठ 221।
19. साहित्य दर्पण, डा0 सत्यवृत सिंह, 6/3, पृष्ठ 361।
20. 'अग्नि पुराण' डा0 आनन्दाश्रम, सं0 ग्रन्थावलि, 338/1–4, पृष्ठ 422।
21. प्रताप रूद्रयशोभूषण, नाटक प्रकरण, 2–3 बम्बई 1909 पृष्ठ ।
22. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ 349।
23. 'भाव प्रकाशन' अधिकार 7, पृष्ठ 180–181।
24. हिस्ट्री आफ क्लासिकल, कृष्णमाचार्य, संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 543।

25. आन दिन नेम दशरूपक, डा0 राधवन जे0ओ0आर0, अंक 6, पृष्ठ 278।
26. गा0ओ0सी0 भाग 2 1934, पृष्ठ 407, 447।
27. साहित्य निकेतन कानपुर, पृष्ठ 149।
28. गा0ओ0सी0 बड़ौदा, 1930 पृष्ठ 221–254।
29. राजकीय ग्रन्थ माला, बम्बई 1909 पृष्ठ 102–131।
30. चौ0स0 पुस्तकालय, वाराणसी पृष्ठ (1957 प्रकाशित)।
31. महावीर जैन, विद्यालय बम्बई 1938 पृष्ठ 432–444।
32. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ ।
33. तदुपरिवत् – पृष्ठ ।
34. धनंजय कृत, तृतीय प्रकाश, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, दशरूपक, 33 श्लोक, पृष्ठ 201।
35. तदुपरिवत्, पृष्ठ 202।
36. तदुपरिवत्, पृष्ठ 202।
37. तदुपरिवत्, पृष्ठ 203।
38. तदुपरिवत्, पृष्ठ 203।
39. तदुपरिवत्, पृष्ठ 203।
40. महावीर जैन, विद्यालय बम्बई, 1938, पृष्ठ 432–444।
41. नाटकमिति नाटयति विचित्रं रंजनाप्रवेशेने सभ्यानां ह्रदयं नर्तयति इति नाटकम् (नाट्यदर्पण पृ025)।
42. आचार्य भारत, डॉ शिवशरण शर्मा, पृ0 91।
43. नाटय शास्त्र– भरत पृष्ठ ।
44. दशरूपक– धनंजय, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 204।
45. तदुपरिवत्, पृष्ठ 204।
46. तदुपरिवत्, पृष्ठ 205।
47. तदुपरिवत्, पृष्ठ 205।
48. साहित्य दर्पण, पृष्ठ ।
49. महावीर जैन, विद्यालय बम्बई, 1938, पृष्ठ 432–444।
50. दशरूपक– धनंजय, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 210।
51. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ ।

52. दशरूपक– धनंजय, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 209।

53. महावीर जैन, विद्यालय बम्बई, 1934, पृष्ठ 432–444।

54. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, पृष्ठ ।

55. दशरूपक– धनंजय, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 214।

56. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, अंक 3 पृष्ठ 10।

57. दशरूपक, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 215।

58. तदुपरिवत्, अंक 3, पृष्ठ 215।

59. तदुपरिवत्, अंक 3, पृष्ठ 215।

60. तदुपरिवत्, अंक 3, पृष्ठ 215।

61. तदुपरिवत्, अंक 3, पृष्ठ 215।

62. तदुपरिवत्, अंक 3, पृष्ठ 215।

63. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ ।

64. आचार्य भरत, डॉ0 शिवनाथ शर्मा, घोष नाट्यशास्त्र, अंग्रेजी अनुवाद, भाग1, पृष्ठ 363।

65. 'नाट्य दर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 111।

66. 'नाट्य दर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 111।

67. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ ।

68. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 213।

69. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 213।

70. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 21।

71. 'नाट्य दर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 116।

72. तदुपरिवत्, पृष्ठ 12।

73. तदुपरिवत्, पृष्ठ 116।

74. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 219।

75. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, पृष्ठ ।

76. नाट्य दर्पण, पृष्ठ 115।

77. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 22।

78. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 218।

79. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, अंक 3 पृष्ठ 5।

80. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 116।

81. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 24।

82. दशरूपक, अंक 3, पृष्ठ 217।

83. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ ।

84. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 185।

85. तदुपरिवत्, पृष्ठ 185।

86. तदुपरिवत्, पृष्ठ 188।

87. तदुपरिवत्, पृष्ठ 188।

88. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, पृष्ठ ।

89. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ ।

90. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 190।

91. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, पृष्ठ ।

92. दशरूपक– धनंजय, सं0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 191।

93. तदुपरिवत्, पृष्ठ 198।

94. तदुपरिवत्, पृष्ठ 193।

95. तदुपरिवत्, पृष्ठ 194।

96. अभिनव भारती, पृष्ठ ।

97.नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 118।

98.दशरूपक, धनंजय, डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 195।

99.आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृष्ठ 95–96।

100.साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ ।

101.दशरूपक, धनंजय, डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अंक 3, पृष्ठ 211।

102. तदुपरिवत्, पृष्ठ 212।

103. तदुपरिवत्, पृष्ठ 212।

104. तदुपरिवत्, पृष्ठ 112।

105. नाट्यशास्त्र भरतमुनि, अंक 21, पृष्ठ 106।

106. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, रमाकान्त तिवारी, पृष्ठ 20–21।

107. भाव प्रकाश, नवम अधिकार, पृष्ठ 255।

108. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, रमाकान्त तिवारी, पृष्ठ 25–26।

109. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 190।

110. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, 276वीं कारिका,

111. भाव प्रकाश, नवम अधिकार, पृष्ठ 255।

112. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 191।

113. भाव प्रकाश, नवम अधिकार, पृष्ठ ।

114. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 191।

115. भाव प्रकाश, नवम अधिकार, पृष्ठ ।

116. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 191।

117. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त तिपाठी, पृष्ठ 28।

118. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, पृष्ठ 286–287।

119. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृष्ठ 191।

120. तदुपरिवत्, पृष्ठ 192।

121. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, पृष्ठ 287–299।

122. तदुपरिवत्, पृष्ठ 28

123. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त,डा0 रकामान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 30।

124. तदुपरिवत्, पृष्ठ 30।

125. तदुपरिवत्, पृष्ठ 30।

126. तदुपरिवत्, पृष्ठ 30।

127. तदुपरिवत्, पृष्ठ 30।

128. तदुपरिवत्, पृष्ठ 31।

129. नि0सा0प्रे0 बम्बई, 1935।

130. अडयार लाइब्रेरी, मद्रास, 1948।

131. श्री शंरक गुरू, श्री रंग्म 1944।

132. गा0ओ0सी0, बडौदा, 1918।

133. नि0सा0प्रे0, बम्बई, 1906।

134. ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, कृष्णचार्य, पृष्ठ 17।

135. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि, पृष्ठ ।
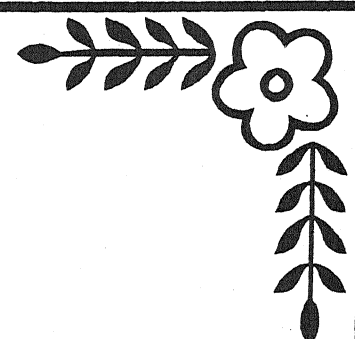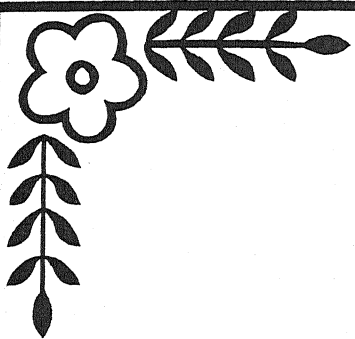
136. काव्यालंकार सूत्र, वामन, 1/3/30–31

137. संस्कृत आलोचना, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 106–107।

138. काव्यालंकार सूत्र, वामन, 1/3/31

139. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त, लोचन का मंगल स्लोक, पृष्ठ ।

140. संस्कृत आलोचना, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 108–109।

141. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि, पृष्ठ 14/68 ।

142. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त, पृष्ठ 212।

143. तदुपरिवत्, पृष्ठ 212।

144. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, पृष्ठ 11।

145. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त, पृष्ठ 212।

146. तदुपरिवत्, पृष्ठ 282–283।

147. संस्कृत आलोचना, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 111–112।

148. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त, पृष्ठ 292।

149. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि, पृष्ठ ।

150. कालिदास, रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ 214।

151. दि संवाद सूक्ताज आफ ऋगवेद, आल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेस नागपुर 1946, पृष्ठ 26।

152. ऋग्वेद मण्डल, 10, सूक्त 95।

153. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 452।

154. इतिहास प्रवेश, जयचन्द्र विद्यालंकार, पृष्ठ 67।

155. अश्वघोष, रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, 1946, पृष्ठ 10।

156. अश्वघोष, डा0 ला, पृष्ठ 11।

157. तदुपरिवत, पृष्ठ 11।

158. संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृष्ठ 83।

159. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ 73–77।

160. दि एज आफ इम्पीरियल यूनीवर्सिटी, पृष्ठ 643।

161. तदुपरिवत्, पृष्ठ ।

162. Turfan Exped Sanskrit Bruchstucke Budohstischer Dramen, वर्लिन 1911

163. भरत कोष, रामकृष्ण कवि, पृष्ठ 316।

164. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0 कृष्णाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 67।

165. तदुपरिवत्, पृष्ठ 72।

166. भास नाटक चक्रम, देवधर, 452—455।

167. बाल चरित भास नाटक चक्रम, देवधर पृष्ठ 522—528।

168. हिस्ट्री आफ संस्कृत् लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, .पृष्ठ 480।

169. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक, नाटक एक अध्ययन, कृष्ण कान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 110।

170. मोह पराजय, सं0 मुनि चर्तुविजय, गायकवाड ओरियन्टल सिरीज बडौदा, 1918।

171. संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृष्ठ 254।

172. हिस्ट्री आफ क्लासिकल, संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ 679।

173. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक, नाटक एक अध्ययन, कृष्ण कान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 111।

174. संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृष्ठ 255।

175. हिस्ट्री आफ संस्कृत रिचरेटर, दास गुप्ता और डे, पृष्ठ 485।

176. तदुपरिवत्, पृष्ठ 484।

177. संकल्प सूर्योदय, सं0 के निवासाचारी, कांजीवरम्, 1917,।

178. संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृष्ठ 253।

179. लेखक और उनकी रचनाओं के विषय में 'वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेन्ट इन बंगाल पाट2 और 7, ले0एस0के0डे0।

180. चैतन्य चन्द्रोदय, संस्करण काव्यमाला, नं0 87, नि0सा0प्र0 बम्बई1906, पं0 केदार नाथ और पं0 वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री।

181. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, पृष्ठ 485।

182. तदुपरिवत्, पृष्ठ 485।

183. धर्म विजय नाटक, नारायण शास्त्री, प्रकाशित सरस्वती भवन, टेकस्ट नं0 35 बनारस, 1930 सं ।

184. रस विलास, संपादक प्रेमलता शर्मा, पूना, 1952।

185. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, पृष्ठ 486।

186. धर्म विजय, नारायण शास्त्री, 5/46—47, पृष्ठ 72—73।

188. तदुपरिवत्, 5/60–61, पृष्ठ 76–77।

189. तदुपरिवत्, 5/32, पृष्ठ 69–70।

190. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ 362।

191. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ 683 ।

192. विद्या परिणय, सं0 शिवदत्त और काशीनाथ पाण्डुरंग, काव्य माला बम्बई, नि0सा0प्रे0, 1893।

193. तदुपरिवत्, 1/47–48, 7/38

194. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 626।

195. हिस्ट्री आफ क्लासिकल, संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ 681।

196. तदुपरिवत्, पृष्ठ 681।

197. विद्या परिणय, 4/18–19।

198. तदुपरिवत्, 7/38।

199. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ 786 ।

200. संस्कृत साहित्य के रूप कथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0कृष्णकान्त त्रिपाठी पृष्ठ 130।

201. तदुपरिवत्, पृष्ठ 130।

202. संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ 253।

203. जीवनानन्दन, 1/19।

204. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, फुटनोट, पृष्ठ 486।

205. काव्य माला, 59, 1997 में प्रकाशित।

206. हिस्ट्री आफ क्लासिकल, संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ 679।

207. तदुपरिवत्, फुटनोट, पृष्ठ 486।

208. तदुपरिवत्, पृष्ठ 680।

209. प्रकाशक श्री शंकर गुरूकुलम् श्रीरंगम, 1944 ई0, पृष्ठ ।

210. प्रस्तावना, जीवन मुक्त कल्याण, प्रथम अंक।

211. प्रस्तावना, प्रथम अंक, पुरंजनचरित।

212. पुरंजन चरित, प्रथम अंक।

213. तदुपरिवत्, प्रस्तावना, प्रथम अंक,

214. तदुपरिवत्, प्रथम अंक, श्लोक 3।

215. यतिराज विजय, सं0 के0वीर राघव ताताचार्य, कुम्भकोणम्, 1902 ई0

216. जर्नल आफ वेकेंटेश्वर ओरियन्टल इन्सटयूट 2–1 1914 ई0।

217. हिस्ट्री आफ क्लासिकल, संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ681।

218. संस्कृत साहित्य के रूप कथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0कृष्णकान्त त्रिपाठी पृष्ठ 139।

219. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, फुटनोट, पृष्ठ 682।

220. संस्कृत साहित्य के रूप कथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0कृष्णकान्त त्रिपाठी पृष्ठ 140।

221. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, पृष्ठ 449।

222. ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, मैकडानल, पृष्ठ 366–367।

223. इण्डियाज पास्ट, मैकडानल, पृष्ठ 116।

224. प्रबोध चन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 1/10,

225. तदुपरिवत, 2/29।

226. तदुपरिवत्, 2/5।

227. संस्कृत ड्रामा, डा0 कीथ, पृष्ठ 243।

228. संकल्प सूर्योदय, सं0 के श्रीनिवासाचार्य, कांजीवरम्, 1914।

229. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिचरेटर, दास गुप्ता और डे, पृष्ठ 487।

230. इण्डियन एफरमिरिस वोल्यूम 1 पार्ट, 1 पृष्ठ 2 प्र0 एल0डी0 स्वामीकन्नू, पिल्लई।

231. संकल्प सूर्योदय, वेदान्त देशिक, सं0 कष्माचार्य, प्रस्तावना, 1/18।

232. तदुपरिवत्, अडयार लाइब्रेरी, पृष्ठ 57–59,

233. तदुपरिवत्, वि0 कृष्णामाचारी, पृष्ठ 24–37, ।

234. ना0शा0 काव्यमाला, 6/15, द0रू0 4/43–45 भाव प्रकाशन, प्र0 अधि0, पृ0 47।

235. संकल्प सूर्योदय, वेदान्त देशिक, सं0 कष्माचार्य, प्रस्तावना, पृष्ठ 46।

236. तदुपरिवत्, प्रस्तावना, 1/3, ।

237. तदुपरिवत्, प्रस्तावना, 1/18, प्रस्तावना, पृष्ठ 49।

238. संस्कृत ड्रामा, डा0 कीथ, पृष्ठ 253।

द्वितीय परिवर्त्त

व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व

- 'प्रबोध चन्द्रोदय' के रचनाकार
  श्री कृष्ण मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- 'संकल्प सूर्योदय' के रचनाकार
  वेंकटनाथ का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- हस्तलिखित एवं प्रकाशित प्रतियों का परिचय,
  रचनाकाल

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

'प्रबोध चंद्रोदय' के रचनाकार का परिचय :–

संस्कृत साहित्य में रूपक प्रधान नाट्य परम्परा के प्रवर्तक श्रीकृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध चद्रोदय' की रचना के द्वारा प्रतीक नाटकों की परम्परा को एक नई शैली को समृद्धि प्रदान किया। वे प्रतीक नाट्य परम्परा के जनक कहे जाते हैं और प्रतीक नाट्य परम्परा के प्रेरक, किंतु इतने महान नाट्य शिल्पी का जीवन वृत्त कुतुहल और अनुमान का विषय बना हुआ है, न तो नाटककार ने अपनी कृति में ऐसे सर्वमान्य उल्लेख सन्निविष्ट किए हैं, जिनके आधार पर उनके जीवन सूत्रों का प्राकलन करके स्पष्ट जीवन वृतान्त तैयार किया जा सके। अन्य वहिर्साक्ष्यों से भी कोई निश्चित सामग्री उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में नाटककार के सम्बन्ध में, उनके काल–निर्धारण के सम्बन्ध में मुझे अनेक सूत्र अनुसंधान के द्वारा प्राप्त हुए हैं, जिनके आधार पर उनका काल निर्धारण किया गया है।

आचार्य बलदेव प्रसाद उपाध्याय के अनुसार 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक 'जेजाक भुक्ति' के चंदेलवंशीय राजा कीर्ति वर्मा के समक्ष गोपाल की प्ररेणा से अभिनीत हुआ था। चेदि के राजा कर्ण ने (जो 1042 ई0 में जीवित थे) कीर्ति वर्मा को परास्त किया, परन्तु सेनापति गोपाल ने अपने बाहुबल से उन्हें परास्त कर, कीर्ति वर्मा को पुनः राज्यासन पर स्थापित किया। इससे प्रतीत्त होता है कि 'गोपाल' कीर्ति वर्मा के सेनापति थे।[1] इस न्याय से कीर्तिवर्मा का समय 11वीं सदी उत्तरार्द्ध तथा नाटककार का समय भी 11वीं सदी उत्तरार्द्ध का सिद्ध होता है।

'प्रबोध–चंद्रोदय' में जिस कीर्ति वर्मा का उल्लेख प्राप्त होता है, वह चंदेलवंशीय नितांत पराक्रमी राजा था। उसके अनेक शिलालेख बुंदेलखंड के भिन्न–भिन्न स्थानों में उपलब्ध होते हैं। वह राजा विजयपाल का पुत्र था, जो अपने ज्येष्ठ भ्राता देववर्मा के अनन्तर सिंहासनारूढ़ हुआ। महोबा के निकस्टथ 'कीरत सागर' नामक तालाब का निर्माण उसी के द्वारा कराया गया। इसके नाम से सोने के सिक्के भी मिलते हैं, जिस पर 'श्रीमत् कीर्ति वर्म देव' अंकित है। देवगढ़ में उपलब्ध शिलालेख सं. 1154 (1093 ई0) का है, जिसे इनके मंत्री वत्सराज ने खुदवाया था। खजुराहो में लक्ष्मीनाथ के मंदिर का एक लेख (1161 विक्रमी) कीर्तिवर्मा के ही समय का है। मालवा का राजा भोज परमार भी कीर्ति वर्मा का समकालीन था। कलचुरि राजा कर्णदेव को परास्त कर गोपाल ने कीर्तिवर्मा को राज्य सिंहासन पर

प्रतिष्ठित किया था। इस घटना का उल्लेख 'प्रबोध चंद्रोदय' की प्रस्तावना में मिलता है –

"गोपालो भूमिपालन प्रसभमसिलतामात्र मित्रेण जित्वा"।

साम्राज्ये कीर्तिवर्मा नरपति तिलको येन भूयो अभ्यषेचि"।।[2]

आचार्य कृष्णकांत त्रिपाठी के अनुसार 'प्रबोध चंद्रोदय' की प्रस्तावना में गोपाल के प्रति जो संकेत हैं, उससे तो यह ज्ञात होता है कि गोपाल मिश्र को प्रस्तुत नाटक की रचना के लिए प्रोत्साहित किया करता था और उसके द्वारा अपने मित्र चंदेल राजा कीर्तिवर्मा को चेदिराज कर्ण पर विजय की स्मृति को अमिट करना चाहता था। 'प्रबोध–चंद्रोदय' की प्रस्तावना से स्पष्ट सिद्ध है कि यह नाटक कीर्तिवर्मा की विजय और कर्ण की पराजय के उपरान्त इस महान ऐतिहासिक धटना के उपलक्ष में कीर्ति वर्मा की राजसभा में गोपाल की आज्ञा से अभिनीत हुआ था।[3]

'प्रबोध–चंद्रोदय' में ऐतिहासिक व्यक्तित्व कीर्ति वर्मा, कर्ण और गोपाल विषयक उल्लेख हैं और इनके सम्बन्ध में जो ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे भी नाट्यकार के रचनाकाल तथा जीवन समय का प्रमाण मिलता है।

प्रयाग में एक शिलालेख के अनुसार कर्ण का पिता गांगेय देव जिसे कीर्तिवर्मा के पिता विजयपाल चंदेल राजा का समकालीन कहा गया है– 1041 ई0 में मरा और उसका लड़का कर्ण तभी चेदि के सिंहासन पर बैठा।[4] इस कर्ण की पराजय चंदेल सेना द्वारा गोपाल के नायकत्व में हुई और कीर्ति वर्मा को चंदेल राज्य की प्राप्ति हुई।[5]

एक दूसरा ताम्रलेख जो कुम्हीं (जबलपुर) नाम स्थान से प्राप्त हुआ है, उससे गांगेय देव के प्रयाग में मरने और कर्ण के तत्पश्चात् गद्दी पर बैठने एवं कीर्ति वर्मा पर आक्रमण का समर्थन होता है।[6] कालिंजर और मऊ के शिलालेखों में कीर्तिवर्मा की विजय का वर्णन है। इन शिलालेखों से कर्ण का राज्यकाल 1043–1068 ई0 प्रमाणित होता है।[7] देवगढ़ से प्राप्त शिलालेख के अनुसार कीर्ति वर्मा का अंतिम समय 1097 ई0 के आसपास का है। यह शिलालेख कीर्तिवर्मा के मंत्री वत्सराज ने लिखा है।[8] इन सभी अभिलेखों एवं प्रमाणों से भलीभाँति प्रमाणित होता है कि श्रीकृष्ण मिश्र का काल 11वीं शताब्दी है। कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोध चंद्रोदय' उसकी कीर्ति का अमर स्तंभ है। संस्कृत साहित्य में एक नवीन नाट्यधारा का प्रवर्तक है। यह नाटक जेजाक भुक्ति के चंदेलवंशीय राजा कीर्तिवर्मा के शासन काल में कालिंजर महानीलकंठेश्वर के समक्ष अभिनीत हुआ था। नाट्य साहित्य के क्षेत्र में यह रूपक कथात्मक परंपरा का जनक है।[9] विद्वानों ने 'प्रबोध–चंद्रोदय' को नाट्य क्षेत्र में प्रतीकात्मक

शैली का एक जीवंत नाट्य बताया है।[10] महामोह पाश से आबद्ध होकर मानव अपने सत्य स्वरूप के ज्ञान से वंचित हो जाता है। विवेक के द्वारा जब मोह पराजित होता है, तभी पुरुष को शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति होती है। विवेकपूर्वक उपनिषद् के अध्ययन करने तथा विष्णु भक्ति के आश्रय लेने से ही ज्ञान रूपी चंद्रमा का उदय होता है।

'प्रबोध-चंद्रोदय' की ख्याति हिन्दी के प्राचीन कवियों में पर्याप्त रही है। अयोध्याकांड में तुलसीदास ने पंचवटी के वर्णन प्रसंग में इसी नाटक के प्रसिद्ध पात्रों को रूपक–योजना में स्वीकृत किया है। आचार्य कवि केशवदास ने (16वीं शताब्दी) में विज्ञानगीता के नाम से इस नाटक का छंदोबद्ध अनुवाद किया है। जैन नाटककार एवं कवि यशपाल ने 'मोहपराजय' में कृष्ण मिश्र के इसी प्रतीक नाटक का अनुसरण किया है।[11]

प्रबोध चंद्रोदय की लोकप्रियता उसकी टीकाओं से भी ज्ञात होती है। भारतीय विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित 'प्रबोध चंद्रोदयम् प्रकाश संस्कृत हिंदी टीकोपेतम' की भूमिका अवतारणा में श्री रामचंद्र मिश्र ने 'प्रबोध चंदोदय' की दो प्रमुख टीकाओं की चर्चा की है–

''अस्य ग्रंथस्य टीकाद्वयं मया दृष्टम् – 1 एका नाण्डिल्य गोप मंत्रिशेखर कृता 2 अन्या रामदास दीक्षित कृता अभ्यामतिरिक्तोअस्याङ्गल भाषानुवादोअपि दृष्टि पथम् समारूढः।[12]

'प्रबोध-चंद्रोदय' की एक प्राचीन पांडुलिपि डॉ. चंद्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' द्वारा खोजी गई है, जिसकी प्रति 'चंददास शोध संस्थान' बांदा के हस्तलिखित ग्रंथागार में सुरक्षित है।

श्री कृष्ण मिश्र प्रतिभाशाली नाटककार थे, वे सुबोध विद्वान थे। उपनिषदों और विभिन्न दर्शनों का उनका ज्ञान असाधारण था। वे वेदांत दर्शन के मर्मज्ञ थे। संस्कृत भाषा और व्याकरण पर उनका असामान्य अधिकार था। वे एक महान दार्शनिक कवि थे। अलंकार और रस शास्त्र के ज्ञाता थे। नाट्य–शास्त्र के अधिकारी विद्वान थे।[14] वस्तुतः वे उपनिषदों के रहस्यवेत्ता थे। इस पर विद्वानों ने आपत्ति की है।[15] किंतु वे जैन, बौद्ध और सोम सिद्धांतो से भलीभाँति परिचित थे। आध्यात्मिक तत्वों के निरूपण में उन्होंने तर्क एवं वेदांत, वैष्णव और शैव दर्शनों के सिद्धांतो और पंडितों का आश्रय लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री कृष्ण मिश्र यौगिक अभ्यास में भी कुशल थे। उनको विश्वास था कि श्रद्धा और विष्णु भक्ति द्वारा व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान, शांति एवं मुक्ति का मार्ग प्रदान किया जा सकता है। मुक्ति प्राप्त करके उन्होंने साधारण लोगों को भी मुक्ति का मार्ग बताया। विष्णुभक्ति पर उनकी अगाध निष्ठा दिखाई पड़ती है। बौद्धों के वाह्याचार पर उनका विश्वास नहीं था।

श्री कृष्ण मिश्र ने किसी वेदांत एवं अद्वैत साधक के चरणों में बैठकर अध्यात्म ज्ञान प्राप्त किया था। 'प्रबोध चंद्रोदय' में नाटककार ने निवृत्तिमार्गीय सघना का संबल बताया है, प्रवृत्ति के पारिवारिक जनों में काम, रति, लोभ, हिंसा और अहंकार आदि को दम्भ और तृष्णा को शांति तथा मुक्ति के मार्ग में बाधक बताया है, साथ ही निवृत्ति के पारिवारिक जनों में मति, करुणा, शांति, श्रद्धा, क्षमा, संतोष, वस्तु विचार को सहयोगी बताया है। उपनिषद् पर लेखक की गहरी आस्था प्रतीत होती है। उपनिषद् के माध्यम से ही प्रबोध का उदय होता है। विष्णुभक्ति सर्वोपरि हैं। वही संरक्षण देती हैं। वस्तुतः कृष्ण मिश्र का व्यक्तित्व परमार्थ से पूर्ण है। वे जीवन से समता का साक्षात्कार कराने वाले महान साहित्य स्रष्टा एवं द्रष्टा है।

जन्मभूमि :—

श्रीकृष्ण मिश्र के निवास देश के सम्बंध में कतिपय विद्वानो ने उन्हें 'बिहार' के होने का उल्लेख किया है और अपने तर्क में कहा है कि कृतिकार ने द्वारका, मथुरा, चित्रकूट को छोड़कर 'मंदार' बिहार स्थित तीर्थ का सादर उल्लेख किया है तथा गौड़ों की दांभिकता का उपहास प्रस्तुत किया है। यदि श्रीकृष्ण मिश्र 'बिहार' से सम्बंधित न होते तो गौड़ों से परिचित कैसे होते?[17] यह धारणा मैथिल पंडित श्री रामचंद्र मिश्र टीकाकार की है। इस सम्बंध में मुझे अनुसंधान में जो नए सूत्र प्राप्त हुए हैं, वे श्रीकृष्ण मिश्र को बुंदेलखंड निवासी होने का प्रमाण देते हैं। इस संबंध में मेरे तर्क इस प्रकार हैं—

1. श्रीकृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध चंद्रोदय' की रचना कीर्ति वर्मा की विजय के उपलक्ष में की थी। कीर्तिवर्मा पहले कर्णदेव से पराजित हो चुका था, पुनः सेनापति गोपाल के अदम्य उद्योग से वह कर्ण को पराजित कर अपना राज्य वापस पाने में समर्थ हुआ था। अतः 'गोपाल' (सेनापति) के अनुरोध पर श्रीकृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध चंद्रोदय' की रचना की थी, अस्तु रचनाकार का सम्बंध बुंदेलखंड से प्रमाणित होता है।
2. कीर्तिवर्मा, गोपाल सभी ऐतिहासिक पात्र हैं, जिनका सम्बंध कालिंजर, खजुराहो, महोबा से है, अतः ऐतिहासिक साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि श्रीकृष्ण मिश्र बुंदेलखंड से सम्बंधित है।
3. जेजाकभुक्ति नामक चंदेल राज्य में खजुराहो, महोबा, कालिंजर में, कीर्तिवर्मा की राज्यसभा में 'प्रबोध चंद्रोदय' का निर्माण हुआ तथा वह प्रथमबार अभिनीत हुआ। अतः रचनाकाल व स्थापना तथा अभिनय स्थान की दृष्टि से श्रीकृष्ण मिश्र बुंदेलखंड के रचनाकार

सिद्ध होते हैं।

किसी भी रचना के पीछे कोई प्रबल प्रेरक कारण होना चाहिए। यदि रचनाकार बुंदेलखंड का न होकर कहीं अन्यत्र से संबंधित होता तो वह या तो यहां आकर किसी राजा के द्वारा पुरस्कृत होना चाहता अथवा राजाश्रय में प्रतिष्ठित होना चाहता, किंतु ऐसा कोई संकेत नाटक में नहीं मिलता, बल्कि बुंदेलखंड के राजा कीर्ति वर्मा की विजय से रचनाकार स्वयं उद्दीप्त है। यदि मातृभूमि के अनुराग की प्रबल प्रेरणा न होती तो बुंदेलखंड की विजय के उपलक्ष्य में यह नाटक न लिखा गया होता और विजय पर्व में न अभिनीत हुआ होता।

जिन लोगों ने श्रीकृष्ण को बिहार का होने का उल्लेख किया है, वस्तुतः वे स्वयं बिहार के ही हैं, सर्व प्रथम श्रीकृष्ण मिश्र को बिहार का कहने वाले विद्वान श्री रामचंद्र मिश्र हैं, जो राजकीय संस्कृत महाविद्यालय रांची में प्राध्यापक थे। उनका अनुसरण बाद के विद्वानों ने भी किया। डा. कृष्णकांत त्रिपाठी आदि ने भी रामचंद्र मिश्र विहार वालों का दृष्टिकोण अपनाया किंतु श्री रामचंद्र मिश्र ने जो तर्क बिहार के सम्बंध में दिये हैं, वे पर्याप्त प्रमाण नहीं माने जा सकते। 'मंदार तीर्थ' के वर्णन मात्र से तथा गौड़ जाति की हेय प्रवृत्ति का परिचय मात्र उन्हें बिहार का मूल निवासी नहीं सिद्ध करता।बुद्ध, बौद्ध विहारों और बौद्ध मठों का सम्बंध अधिकांश रूप में विहार प्रांत से है, उसके प्रति श्रीकृष्ण मिश्र ने अपने 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में तीव्र विरोध व्यक्त किया है, अतः वे बिहार के नहीं हो सकते।

श्रीकृष्ण मिश्र रूपक नाट्यकारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रतिभाशाली हैं। उनका बुंदेलखंड निवास, कीर्ति वर्मा के दरबार में गोपाल से उनकी मैत्री अंतःसाक्ष्य से पुष्ट एवं भलीभाँति प्रमाणित है। वे कीर्तिवर्मा तथा गोपाल के समकालीन सिद्ध होते हैं। कीर्तिवर्मा 11वीं शताब्दी के ऐतिहासिक पात्र हैं। अतः श्रीकृष्ण मिश्र भी 11वीं शताब्दी के सिद्ध होते है।

'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का प्रथम बार जब मंचन बुंदेलखंड क्षेत्र में हुआ तो कीर्ति वर्मा के विजयपर्व का एक अनिवार्य अंग बन गया और इस नाटक की भूरि–भूरि प्रशंसा दर्शकों तथा राज्य–कर्मियों एवं नाट्यविदों द्वारा की गयी। नाटक का मंचन इतने भव्य स्तर पर किया गया, जिसके कारण इसकी ख्याति देश–देशांतरों में फैलने लगी। सुदूर दक्षिण में भी 'प्रबोध चंद्रोदय' चर्चा का विषय बन गया, कालांतर में इस नाटक की प्रतिस्पर्धा में ही वेदांत देशिक ने 'संकल्प सूर्योदय' की रचना की। 'प्रबोध चंद्रोदय' को जहां एक ओर भारी सम्मान एवं राजकीय संरक्षण मिला, वहीं अपनी प्रभावकारी प्रस्तुति एंव नाट्य रचना के कारण उन्हे प्रतिस्पर्धा का भी सामना करना पड़ा। 'प्रबोध चंद्रोदय' की प्रथम अभिनीत दृश्यावली, उसकी

दार्शनिक प्रस्तुति एवं उसके सांस्कृतिक वैशिष्टय की ऊँचाई एक साथ बुंदेलखंड और कीर्तिवर्मा के मित्र राजाओं के यहां भी फैल गयी।

वेंकटनाथ वेदांतदेशिक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

वेंकटनाथ रामानुजाचार्य के मत को प्रौढ़ता प्रदान करने वाले कवि, दार्शनिक, नाटककार थे, जिन्हें 'वेदांत देशिक' उपाधि से जाना जाता था। इनका जन्म कांची में शक संवत 1190 (1268 ई.) भाद्रपद शुक्ल दशमी को हुआ था। पिता का नाम था अनंतसूरि तथा पितामह का नाम पुंडरीकाक्ष था, तथा गुरू का नाम आत्रेय रामानुज था। श्री रंगराज की आज्ञा से इन्हें 'वेदांताचार्य कवितार्किक सिंह' की उपाधि प्राप्त हुई थी।[18] अलंकार शास्त्र के विद्वानों एंव आचार्यों ने इनकी विभिन्न रीतियों से समन्वित कविता की प्रशंसा की है। दो दशकों से अधिक समय तक इन्होंने नाना विद्याओं का अध्ययन किया और अनेक बार शांकर भाष्य प्रबुद्धजनों को सुनाया था। जनश्रुति के अनुसार वेदांत देशिक ने 'श्रीरंगम' में जाकर प्रतिवादी विद्वानों को परास्त कर 'संकल्प सूर्योदय' की रचना की थी। वेंकटनाथ ने अपने जीवन के 101 वर्ष पूरे कर 1369 में स्वर्गवासी हुए [19] । तिरुपति के भगवान वेंकटेश्वर के प्रसाद तथा आशीर्वाद से जन्म होने के कारण वे वेंकेटनाथ के नाम से प्रख्यात हुए। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार 'वेदांत देशिक' तीव्र बुद्धि तथा प्रतिभा से मंडित होने के कारण न्याय, मीमांसा, रामानुज दर्शन के विशेषज्ञ सिद्ध हुए। वैष्णव आगम तथा द्राविड़ अम्नाय के भी प्रौढ़ विद्वान थे। ब[illegible]लै संप्रदाय के आचार्य रूप में आदृत तथा पूजित थे।[21]' वेदांत देशिक ने अपने ग्रंथों में 'श्री वैष्णव' मत को पुष्टता एवं प्रौढ़ता प्रदान की। इनका कार्य क्षेत्र प्रमुख रूप से कांची तथा श्रीरंगम था। इन्होंने भारत के प्रधान तीर्थों का विधिवत भ्रमण कर सम्पूर्ण देश के धार्मिक आचारों के विषय में विशिष्ट अनुभव प्राप्त किया था।[22]

वेदांत देशिक कवि, नाटककार, दार्शनिक सभी रूपों में समादृत हैं।जहां एक ओर वे सरस कवि हैं, वहीं दूसरी ओर प्रकांड सर्वशास्त्र तत्वज्ञ विद्वान भी। वेदांत देशिक में दार्शनिक उद्भटता है, साथ ही नाट्यकार का कौशल। अपने काव्य एवं नाटक में उन्होंने आचार्य रामानुज के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

शिक्षा :–

वेंकटनाथ ने अपने बाल्यकाल में अपने पिता अनंत सूरि जो परम वैष्णव, वेदांत विद्या के धुरंधर पंडित थे, से विद्या ग्रहण की। वेंकटनाथ के जीवन में वेदांत के संस्कार दृढ़ हो गए। प्रारंभिक शिक्षा के अनंतर उन्होंने वशिष्टिाद्वैत के वेदांत पंडित प्रवर धुरम्मलाचार्य से

विशिष्ट शिक्षा प्राप्त की। वेंकटनाथ अहर्निशि गुरु की सेवा तथा शास्त्र अध्ययन में लगकर वेद, व्याकरण, साहित्य, दर्शनादि शास्त्रों, श्रीमद् रामानुजाचार्य के द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत से संबंधित ग्रंथों, ब्रह्म सूत्र के श्रीभाष्य का गहनतम् अध्ययन किया। बीस वर्ष पूर्ण होने पर वेंकटनाथ विविध शास्त्रों में पारंगत होकर, गुरुकृपा से, वाग्मिता के लिए लोकप्रिय होने लगे। गुरु ने उन्हें 'देशिक' उपाधि से अलंकृत किया। वेंकटनाथ ने विद्वत गोष्ठियों में अपने मौलिक, पांडित्यपूर्ण निष्कर्षों से, रसालंकार अलंकृत काव्यमाधुर्य से विशिष्टाद्वैत दर्शन का तत्वबोध कराने में अद्वितीय ख्याति को प्राप्त किया और 'वेदांत देशिक' जैसी परम सम्मानित उपाधि से अलंकृत हुये। वेंकटनाथ सर्वशास्त्र नैपुण्य होकर विद्वतवर्ग, तार्किक, दार्शनिक सभी महानुभावों से सम्मानित होकर विशिष्ट ख्याति को वरण किया और विद्वतजनों के मध्य कवि तार्किक चक्रवर्ती', 'कवि दर्शन केसरी', 'सर्व तंत्र स्वतंत्र' आदि नाना उपाधियों से लोक में सम्मानित हुए।

उपनयन विवाहादि संस्कार :—

महापुरुष यद्यपि लौकिक परंपराओं तथा कर्म के बंधन में बंधकर नहीं रह जाते किंतु विप्र कुल में जन्म होने के कारण उनका आठ वर्ष की उम्र में उपनयन संस्कार हुआ और गुरु गृह में विद्यारंभ के लिए गए। उनका विवाह भी अत्यंत सुशील सुंदर कन्या से हुआ। तदनंतर गृहस्थ धर्म के विधिवत पालन हेतु कांचीनगर में अनासक्त भाव से रहते हुए, भगवान श्री वरदराज के चरणों में पराभक्ति धारण कर, शास्त्र चिंतन और रचनाकर्म में समर्पित रहे।'

कृतित्व :—

वेदांत देशिक का व्यक्तित्व जितना विराट है, उनका कृतित्व भी उतना ही विशाल है। उन्होंने दर्शन, काव्य, नाटक आदि क्षेत्रों में विपुल साहित्य की रचना की है। यहां हम उनकी प्रमुख कृतियों का परिचय देंगे।

नाटक :—

'संकल्प-सूर्योदय' वेदांत देशिक कृत 13वीं सदी का दस अंको से विभक्त एक ऐसा प्रतीक नाटक है, जिसमें मोह को पराजित कर ज्ञान के उदय का वर्णन किया गया है। 'संकल्प-सूर्योदय' प्रौढ़ तथा गंभीर नाटक है। यह नाटक 'प्रबोध-चंद्रोदय' की प्रतिस्पर्धा में लिखा गया तथा इसकी लोकप्रियता इसकी टीकाओं से भलीभाँति प्रमाणित होती है। 'संकल्प-सूर्योदय' की 6 प्रमुख टीकाएं उपलब्ध हैं, जिनमें अहोवेल कृत प्रभाविलास, नृसिंहराज कृत 'प्रभावली', श्रीनिवास का विवरण, भ्रीमाष्य नारायण की तथा केवल नारायण

की व्याख्या, अज्ञातनामा टीकाकार की प्रभावली उल्लेखनीय है –

there are about 6 commentaries on the work and none of them has till now been brought to light by a critical edition. the commentaries that are now available are -

1. prabhavilasa by ahobala of Atreya family.
2. prabhavali by Nasimharaja.
3. prabhaviti (Anongmous).
4. vivarama by srinivasa of kausika family.
5. Vyakhya by sri bhasya Narayana of srivatsa family.
6. Vyakhya by sri narayna of s'srivatsq family (different from the avobe)

'संकल्प-सूर्योदय' एवं उसकी विभिन्न हस्तलिखिति एवं प्रकाशित प्रतियां :–

'प्रभावली' नामक टीका जिसमें एक से लेकर पांच अंक तक थे, उसे पंडित सीरीज बनारस द्वारा प्रकाशित किया गया और अंक 6 से 10 तक कांजीवरम के तेलगू संस्करण में उपलब्ध हैं –

Prabhavali (anonymous) No. 3 was published in the pandit series, Benaras, for acts 1 to 5] and in conjeevaram Telugu edition for acts 6 to 10.

प्रभावलिास (अहोवलकृत प्रभा विलास टीका और नृसिंम्हराव कृत प्रभावली टीका सहित) 'संकल्प-सूर्योदय' का सम्पादन पंडित वी. कृष्णमाचार्य द्वारा दो भागों में अडयार लाइब्रेरी, अडयार मद्रास से 1948 ई० में प्रकाशित किया गया। प्रथम भाग में 1 से 5 अंक तथा दूसरे में 6 से 10 अंक हैं। अडयार लाइब्रेरी मद्रास द्वारा प्रकाशित 'संकल्प-सूर्योदय' में जिन प्रतियों का उपयोग किया गया है, उनका विवरण इस प्रकार है–

1. palm-leaf good, grantha, complet no. 30f, 16.
2. palm-leaf, much injured grantha, complete 26.1.12.
3. palm-leaf, injured, grantha, complete No. 26 E 1
4. palm-leaf injured, grantha, incomplete No. 26 A. 31
5. palm-leaf injured, Telugu, incomplete No. 19 D. 22

6. Paper injured, Telugu, incomplete No. 9 F. 10

7. palm-leaf injured, Telugu, incomplete No. 29 M. 11

Prabha vilasa commentry

1. A paper good Devanagary, complete No. 54 CC.
2. palm-leaf injured, Grantha, incomplete No. 30 F. 21
3. palm-leaf injured, Grantha, incomplete No. 30 F. 33
4. palm-leaf injured, Grantha, incomplete No. 29 A. 6

Prabha vali commentry

5. paper good Grantha, complete No. 39 A. 16 (2 vals)
6. paper good Grantha, complete (the M.S. blonging to the madras Govt. orientl M.S.S. Library)

'संकल्प-सूर्योदय' की एक प्राचीन टीका चंददास शोध संस्थान बांदा के हस्तलिखित ग्रंथों के भंडार में सुरक्षित है। जिसे संस्थान के निदेशक डा. चंद्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने चित्रकूट से खोजा था, इसके टीकाकर श्री रामदास दीक्षित हैं। यह टीका बहुत विद्वतपूर्ण है। यह प्रति हस्त निर्मित कागज पर 12X5 इंच के आकार में काली स्याही से लिखी गई है। टीकाकार ने अत्यंत विद्वतापूर्ण ढंग से प्रचीन पाठ को सुरक्षित किया है। प्रति प्राचीन एवं जर्जर दशा में उपलब्ध है।

'संकल्प-सूर्योदय' के अन्य प्रकाशित संस्करण :–

1. कांजीवरम, के.ओ.एल इंस्टीच्यूट सीरीज नं. 4 (दो संस्करण) 1901 तथा 1904 ई0 में प्रकाशित, तेलगू संस्करण।
2. सत्‌संप्रदाय सजीवंत सभा, कांचीपुरम द्वारा प्रकाशित ग्रंथ संस्करण।
3. एम.एम.सी. नरसिम्हाचार्य, मद्रास द्वारा तमिल अनुवाद के साथ प्रकाशित ग्रंथ संस्करण।
4. पंडित सीरीज बनारस द्वारा देवनागरी संस्करण (1 से 5 अंक तक)
5. बानी विलास प्रेस श्रीरंगम द्वारा अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित देवनागरी संस्करण (12 से 5 अंक तक)
6. वेदांतदेशिक ग्रंथरत्न माला सीरीज, कांचीपुरम द्वारा 1941 ई0 में प्रकाशित देवनागरी संस्करण।

वेंकटनाथ वेदांत देशिक ने विपुल साहित्य की रचना की। संस्कृत भाषा में, तमिल

भाषा और उसकी मणि प्रवाल शैली में वेदांत देशिक ने 119 ग्रंथ लिखे हैं। उनको मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है। श्री वैष्णव संप्रदाय का साहित्य, विशिष्टाद्वैत दर्शन से सम्बंधित साहित्य, काव्य, नाट्य साहित्य। उनके ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. शतदूषणी :– शतक परंपरा में विशिष्टाद्वैत स्थापना का ग्रंथ है। इस ग्रंथ पर श्री रंगनाथचार्य ने वेंकटनाथ को वेदांताचार्य की उपाधि दी थी।

2. तत्वमुक्ता कलाप :– विशिष्टाद्वैत सिद्धांत रीतियों और वेदांत रहस्यों को प्रकाशित करने वाला पद्य ग्रंथ है। इनमें पद्य संख्या 500 है। इसमें जड़ द्रव्य, जीव नायक, बुद्धि अद्रव्य आदि स्वरूपों का निर्णय किया गया है।

3. सर्वार्थ सिद्धि :– 'तत्वमुक्ताकलाप' ग्रंथ की व्याख्या इस ग्रंथ में मिलती है।

4. अधिकारण सारावलि :– आचार्य रामानुज के श्री भाष्य के अनुसार ब्रह्म सूत्राधिकरण विषय का संग्रह 56 श्लोकों में लिखा गया है।

5. अधिकरण दर्पणम् :– यह ग्रंथ रत्न लुप्त प्राय है। जनश्रुति के आधार पर इसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के विषय और विभागों का वर्णन किया गया है।

6. सच्चरित्र रक्षा :– इस ग्रंथ में श्री वैष्णव समय, सुदर्शन पांचजन्य धारण, द्वादश उर्ध्व पुण्य धारण आदि विषयों का श्रुति, स्मृति, पुराण आदि के प्रमाणों के साथ वर्णन है।

7. निरपेक्ष रक्षा इस ग्रंथ में निक्षेप, प्रपत्ति, शरणागति, न्यास इत्यादि विषयों का निरूपण किया गया है।

8. श्री पांच्चरात्ररक्षा :– इस ग्रंथ में भागवत शास्त्र में वर्णित प्रख्यात पांच्यरात्रि का प्रमाण पूर्वक वर्णन है। इसमें सिद्धान्तव्यवस्थापनम, नित्यानुष्ठान स्थापनम् और नित्य ग्रंथव्याख्यानम् के त्रय अधिकारों का निरूपण है।

9. न्याय परिशुद्धि :– यह ग्रंथ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, स्मृति, प्रमेय पंच अध्यायों में विभक्त है। इसमें गौतमी न्याय सूत्र को आधार बनाया गया है।

10. शेश्र्वर मीमांसा :– जैमिनीय सूत्रों की व्याख्या की गई है।

11. मीमांसा पादुका :– सेश्र्वर मीमांसा प्रतिपादित विषयों का पद्यात्मक संग्रह है। इसमें 173 पद्य है।

12. तात्यपर्य चंद्रिका :– रामानुजाचार्य के सिद्धांतों के आधार पर श्री भगवद् गीता का भाष्य है।

13. गीतार्थ संग्रह रक्षा :– श्री भगवद् गीता के नाना व्याख्याओं के मध्य समन्वय स्थापित

करके गीता की व्याख्या की गई है।

14. न्याय सिद्धांजनम् :– न्याय के परिशुद्ध रूप को, परिच्छेदों के संग्रह हेतु षट् परिच्छेदों में जड़ द्रव्य, जीव, ईश्वर, नित्य विभूति, बुद्धि, अद्रव्य संज्ञका' के अंतर्गत विवेचन किया गया है।

15. तत्व टीका :– श्रीमद्भागवत के रामानुजीय श्री भाष्य का विवरण प्रस्तुत ग्रंथ में प्राप्त होता है।

16. ईशावास्योपनिषद्भाष्यम् :– श्री रामानुज के वेदार्थ संग्रह श्री भाष्य की व्याख्या की गई है।

17. रहस्य रक्षाः– इसमें श्री वैष्णव समाचार का स्वरूप, महिमा, अंग, अनुष्ठान आदि का वर्णन है।

18. वादित्रय खंडनम् :– यह ग्रंथ अत्यंत संक्षिप्त, स्वललित है। इसमें श्री शंकर भास्कर यादव प्रकाश मत का खंडन किया गया है।

19. चकार समर्थनम् :– यह ग्रंथ लुप्त प्राय है इसमें द्राविड़ वैभव का उल्लेख बताया जाता है।

20. न्यास विशंति : सव्याख्या :– इसमें भक्ति प्रपत्ति एवं न्यास अनुष्ठानों के प्रकार का वर्णन है।

21. द्रमिड़ोपनिषतात्पर्यरंगावली :– श्री शठ को दिव्य सूरि की गाथा को प्रबंध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

22. द्रविणोपनिषत्सार :– 26 पद्यों में शठ कोप गाथा का संग्रह है।

23. यादवाभ्युदय :– श्री कृष्ण अवतार से भारत युद्ध समाप्त तक की कथा अत्यंत मनोरम एवं ललित रूप में, प्रबंधात्मक शैली में प्रस्तुत की गई है।

24.'यादवाम्युदय':– ये महाकाव्य वेदांत देशिक की अप्रतिम रचना है। 24 सर्गों में विभक्त यह महाकाव्य भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं की वर्णनात्मक रचना है। वृंदावन, मथुरा तथा द्वारका से संबद्ध कृष्ण लीलाओं का मनोहारी वर्णन हृदयावर्जक है। रासलीला का रसोत्कर्ष भी विलक्षण है। भारत भूमि तथा अन्य प्रदेशों की भौगोलिक स्थितियों का वर्णन कवि के विशद ज्ञान का परिचायक है। अप्पय दीक्षित ने इस काव्य के वैशिष्ट्य से अनुप्राणित होकर इस पर सुबोध व्याख्या भी लिखी है। काव्य और दर्शन का विचित्र समन्वय है–

यथा नियच्छत्ययमिन्द्रिया श्वान जीवाश्रयं देहरथे निबद्धान[23]

तथाअर्जुनस्यनंदनधुर्य नेता बभूव नान्येन निदर्शनीया।।

अंतर्यामी श्री कृष्ण जीवाश्रय देह रथ में निबद्ध इंद्रिय रूपी अश्वों का नियमन करते हैं। उसी प्रकार अर्जुन के रथ के सारथी बनकर भौतिक अश्वों का नियमन करते हैं। इसी प्रकार माया का दोला उनके दार्शनिक चित्रों को अभिव्यक्ति करने में कितना समर्थ है–

स्थिर घृतिरधिरोप्य रत्नडोलां गुण घटितामिव माधवाः स्वमायाम्।

अगमवत गतागतान्यमीक्षां सुकृतजुषः स्तयमंगना स्वतंत्र।।

सर्वथा स्वाधीन कृष्ण ने भाग्यवती स्वीय अंगनाओं के सत्वादि गुणों से घटित स्वीय माया जैसी दृढ़ रज्जुवाली दोला पर चढ़ाकर स्वयं ही बार–बार झुलाया।)

वेदांतदेशिक की काव्य प्रतिमा, उनकी अलंकृत शब्द योजना, रूपकादि अलंकारों का विन्यास रोचक तथा मनोरम है। मेघमाला का एक रूपक दर्शनीय है। मेघमाला का नाना उपमानों से अभेद उपस्थापन –

अक्ष्णोरज्जनवर्तिका जवनकिा विधुन्नटीनामियं
स्वर्गंगायमुना वियज्जवलनिधेर्वेलातमालाटवी
वर्षाणांकबरी, पुरंदर दिशा ल़ंगार कस्तूरिका
कंदर्पद्विपदर्पदान लहरी कादंबिनी जृम्यते।

इस महाभाष्य पर आचार्य स्वामी रामसजीवन त्रिपाठी तिरुपति का मत दृष्टव्य है–

'महनीय गुणगणसमलंकृतायां महाकाव्यपरंपरायां श्रीमतांवेंकटनाथवेदांतदेशिककस्य 'यादवाम्युदय' नामक महाकाव्य किमपि सरसं वस्तु पुरस्कुर्वेद भगवतः श्रीकृष्ण जन्मनः प्रग्रति महाभारत युद्ध परिसमाप्ति यावद् भूमारहरणपूर्वकं 'धर्मा विरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभा।' इति गीतोवित्त आदर्श समवस्थापयत् स्वमहि षीमः सह द्वारकायां' विहार वर्णनात्मकं पावनं दिव्यंचरित्रम् प्रस्तुपालमनः गौरवम विभर्ति।

स्त्रोत साहित्य 24

भक्तकवि वेदांतदेशिक ने लगभग 25 स्तोत्रों की रचना की है, जिसमें रंगनाथ,बालगोपाल आदि देवों की भक्तिपेशल स्तुति निबद्ध की है। इसमें मुख्य स्तोत्रों के नाम इस प्रकार हैं :–

1. वरदराज पंचाशत

कांची के देवाधिदेव वरदराज की स्तुति 51 पद्यो में की गई है।

2. हयग्रीव स्तोत्रं

32 श्लोकों में भगवान हयग्रीव की स्तुति वर्णित है।

3. अष्टभुजाष्टक

अष्टभुजाधारी विष्णु की 102 श्लोकों में स्तुति की गयी है।

4. अच्युत शतकं

102 छंदो में, प्राकृत भाषाओं में अच्युत भगवान की स्तुति की गई है।

5. गरुड पंचाशत

52 श्लोकों में गरुड़ भगवान की स्तुति वर्णित है।

6. यतिराज सप्तति

रामानुज स्वामी की स्तुति 74 श्लोकों में वर्णित है।

7. गोदा स्तुति

29 श्लोकों में आंडाल की स्तुति की गयी है।

8. पादुका सहस्र

भगवान रंगनाथ की पादुका की प्रशस्ति में निबद्ध यह काव्य 32 पद्धतियों मे विभक्त हैं। यह स्तोत्ररत्न सरस, रसपेशल तथा भक्तिभावों से युक्त होने के साथ–साथ उपनषिद् के तत्वों से युक्त है। स्त्रोत साहित्य में पादुका सहस्र महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। 'पादुका सहस्र' से प्रेरित होकर वेंकटाध्वरी ने 'लक्ष्मी सहस्र' नामक अनुपम स्तोत्र की रचना की।

वेदांत देशिक के सामने दक्षिण भारत के संत आलवारों तथा उनके अनुयायियों की भक्तिभाव से पूरित तमिल रचनाओं और पांचरात्र संहिताओं का विशाल साहित्य एक ओर था, तो वादरायण के ब्रह्सूत्र के बौधायन एवं द्रमिलाचार्य प्रमृति के भक्तिपरक व्याख्यानों के परिवेश में उपस्थित संपूर्ण वैदिक वांगमय, जिनमें कि उपनिषदों का प्राधान्य था, दूसरी ओर था आलवार साहित्य। श्री वैष्णव संप्रदाय में आलवारों के उपदेशों का वेदों के समान ही आदर है। ये द्रमिलोपनिषद अथवा तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध है। द्रमिलोपनिषद और वैदिक उपनषिदों में समन्वय स्थापित करने के कारण ही वेदांत देशिक को उभय वेदांताचार्य कहा गया है।[25]

24. हंश संदेश

'मेघदूत' की परंपरा में वेदांत देशिक ने 'हस संदेश' काव्य की रचना की। 'मेघदूत' में अपने स्वामी राजराज के कोप का भाजन प्राकृतभोग का लोलुप यक्ष दक्षिण से उत्तर की

ओर अपनी कामरसावलम्बन भूता कांता को लक्ष्य बनाकर कामरसोद्दीपक तामस कृष्णवर्ण मेघ को दूत बनाकर भेजता है, जिसका कथानक कवि कल्पित है। हंससंदेश में राघवेंद्र रामचंद्र संकल्प से दयिता के विरह का अनुभव करते हुए अपनी सहधर्मचारिणी जानकी को लक्ष्य बनाकर, उत्तर से दक्षिण की ओर शुक्लवर्ण सात्विक राजहंस को दूत बनाकर भेजा जिसका कथानक विश्व-विश्रुत है।[28] हंस संदेश की रचना मंदाक्रांता छंद में दो परिच्छेदों में लिखी गयी है। प्रथम आश्वास में 60 श्लोक हैं तथा दूसरे में 50 श्लोक हैं। हनुमान से लंका में सीता की स्थिति जानकर रामचंद्र ने हंस को दूत बनाकर इस काव्य में भेजा है। प्रथम आश्वास में वेंकटाचल से लंका तक का मार्ग वर्णित है तथा द्वितीय में लंका में सीता की दशा का वर्णन तथा राम द्वारा संदेश का कथन है।

'हंस संदेश' कवि प्रतिभा, अलंकार वैशिष्ट्य एवं रस से स्निग्ध है। अलंकार प्रधान,उपमाओं की माला दर्शनीय है –

दावासक्तं वनमिव नमः संध्ययेवानुविद्धं
सिंदूरांकं द्विपमिव हरि स्वाम्बरेणेन त्रुष्टम
विद्युदभिन्नं धनमिव सखे। विद्रुमारण्य योगाते
देहे नैकं मिथुनमिव च द्रक्ष्यसि त्वं पयोधिम।

उत्तर हंस संदेश में विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता है। राम का कथन है कि वर्षाकाल के बीत जाने पर तुम्हारे विहार योग्य शरद ऋतु में रात्रि के गर्वहास के समान चंद्रालोक द्वारा व्याकुल होने वाली 'देवांगनाओ के विरहजन्य अश्रुओं को बढ़ाती हुई चंद्रकांतमणि की भूमि में जल कणिकाएं निकल रही हैं।

काले यस्यां व्यपगत घने त्वदविहारों चितेस्मिन
चंद्रालोकै र्विलुलितधियां शर्वरीगर्व हासैः
स्वर्ग–स्त्रीणां विरह जनितां वाष्पमुदवेलयन्तो
निष्यन्दंते सलिलकणिका चंद्रकांतास्थलीनाम।[30]

वेदांतदेशिक की यह कृति मद्रास,कुंभकोणम तथा बंगलौर से टीका सहित प्रकाशित है। इस पर अनेक टीकाएं हैं, जिनमें मुख्य हैं रंगनाथ आचार्य (प्रकाश),श्रीनिवास आचार्य, श्वेतारण्य नारायण शास्त्री (मद्रास, 1902) श्रीकृष्ण, ब्रम्हतंत्र परतन्त्र स्वामी (रसास्वादिनी, कुम्भकोणम, 1915–16)।

25. सुभाषित नीवी – यह ग्रंथ 12 पद्यतियों में निबद्ध सुभाषितों का संग्रह है।

26. वैराग्य पंचकम– यह पांच श्लोक वाला वैराग्य मूलक संग्रह है।

27. समस्या सहस्रम – यह ग्रंथ लुप्तप्राय है, इसमें सुभाषित एवं सुनीति बोधक 1 हजार समस्याओं का निरूपण किया गया है।

28. पादुका सहस्रम – इसमें श्री रंगनाथ की पादुकाओं से संबंधित 32 पद्धतियों में 8 हजार श्लोक हैं।

29. अच्चुअसअअः – इसमें प्राकृत भाषा के 101 श्लोकों में भक्ति श्रृंगार प्रवृत्ति का वर्णन है।

30. दयाशतकम् – इसमें श्री वेंकटनाथ तथा श्री निवास की गाथा से सम्बंधित 105 श्लोक हैं।

संस्कृत भाषा तथा मणिप्रवाल भाषा से संयुक्त ग्रंथ इस प्रकार हैं – रहस्यत्रयसार, परमत भंग, गुरुपरंपरासार, परमपदसोपानम्, हस्तिगिरि महात्म्य, स्तेयाविरोधा, लघु रहस्यनाम्ना प्रथिता, संप्रदाय ग्रंथा (संप्रदाय परशुद्धि, तत्व पदवी, रहस्यपदवी, तत्व नवनीतम्, रहस्य नवनीतम्, तत्व मातृका, रहस्य मात्रृका तत्व संदेश, रहस्य संदेश विवरणं, तत्व रत्नावली, तत्वरत्नावली विशेष संग्रह, रहस्य रत्नावली, रहस्यरत्नावली हृदयम् तत्वत्रय चुलकं, रहस्यत्रय चुलकम्, शारदीय इत्याहत्थ रहस्यानि, सारसार, शारदीप, अभयदानसार, तत्वशिखामणि, रहस्य शिखामणि अंजलि वैभवम्, प्रधान सतकं, उपकार संग्रह, सार संग्रह, मधुर कवि हृदयम् मुनि बाहन भोग, विरोध परिहार)

द्रविण भाषा से संबंधित 18 ग्रंथ प्रमुख हैं –

भुमणिक्कोवै (मणित्रयमाला) पंदुप्पां (कंतुकगाथा) कभलपा आम्मानैप्पा, ऊशलषा, एशलषा, अडैक्कणुत, अर्थपंचकम, श्री वैष्णव दिनचर्या, पन्निरूनाभम, विरुच्चिन्नमालै, गीतार्थसंग्रहगाथा, नवरत्न माला, अहारनियम, तिरुमंत्रच्चुरुक्कु, द्वयच्चुरुक्कु, चरमश्लोकच्चुरुक्कु प्रबन्धसार

निगम परिमलम् :– यह ग्रंथ लुप्त प्राय है। इसमें श्री शठ कोपदिव्य सूक्तियों की विस्तृत व्याख्या होना बताया जाता है।

शिल्पसार :– इसमें शिल्पशास्त्र का सारसंग्रह रूप है ।

वेंकट वेदांत देशिक के विपुल कृतित्व का वर्गीकरण संक्षिप्त रूप में इस प्रकार किया जा सकता है –

1. स्त्रोत साहित्य पादुका सहस्रादय — 29 प्रबंधाः
2. व्याकरण साहित्य — 1 एकएव

3. पूर्व मीमांसा साहित्य	2 द्वौ
4. अनुष्ठानोपयोगिमः	13 त्रयोदश
5. शिल्प साहित्य	1 एकः
6. ज्योतिष साहित्य	1 एकः
7. वैद्यक साहित्य	1 एकः
8. प्राकृत साहित्य	2 द्वौ
9. वेदांत साहित्य	
वेदांत प्रकरणत्मकाः	4 चत्वारः
तत्वामुक्तावल्या पादपः	
वेदांतानुबंधिन	3 त्रयः
10. वेदांत सार संग्रहात्मकौ	2 द्वौ
11. पूर्वाचार्य व्याख्यारूपात्मकः	10 दश
12. तमिल साहित्यं	113 त्रयादशोत्तर शत संख्याः
13. काव्य साहित्य	4 चत्वारः
14. नाटक (संकल्प सूर्योदय)	1 एकएव

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि 'प्रबोध चंद्रोदय' और 'संकल्प सूर्योदय' के नाटककारों का व्यक्तित्व उनके कृतित्व में प्रतिविंबित होता है। श्रीकृष्ण मिश्र की एक ही नाट्य कृति प्रबोध चंद्रोदय मिलती है, वेंकट वेदांत देशिक का साहित्य विपुल परिमाण वाला है। दोनो नाटककारों का व्यक्तित्व महान है। दोनो बौद्धिक हैं, दार्शनिक हैं, भक्त और कवि हैं, कुशल नाटककार हैं। श्रीकृष्ण मिश्र के व्यक्तित्व में अद्वैत दर्शन के शंकराचार्य और उनकी प्रस्थानत्रयी का प्रभाव परिलक्षित होता है, वेंकट वेदांत देशिक के व्यक्तित्व में रामानुजाचार्य के प्रस्थानत्रयी और तमिल प्रबंधम् का प्रभाव भी परिलक्षित होता है, श्रीकृष्ण मिश्र से वेंकट वेदांत का व्यक्तित्व अधिक व्यापक सर्वतंत्र स्वतंत्र एवं उच्च कोटि के आचार्यत्व से भी युक्त है। दोनो नाटककारों का व्यक्तित्व आंतरिक चेतना के आधारभूत तत्वों पर आधारित है।

संदर्भ संकेत

1.अ. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 592 ।

ब. प्रबोध चंद्रोदय आफ कृष्ण मिश्र हू लिब्ड एबाउट दा इन आफ डा इलेविंद सेंचुरी संकल्प–सूयोर्दय, श्री वेंकटनाथ प्रणीतः, द्वितीय भाग पृष्ठ 1, अडयार पुस्तकालयात् प्रकाशितः मद्रपुरी 1948.

2. 'प्रबोध चंद्रोदय', श्रीकृष्ण मिश्र, पृष्ठ 3 ।

3. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा. कृष्णकांत त्रिपाठी, पृ0 88।

4. मध्य प्रदेश का इतिहास, डा. हीरालाल, पृ0 37, का.न.प्रचा.सभा.संवत 1996।

5. तदुपरिवत् पृष्ठ 38।

6. आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडियाटॅर इन दी सेंट्रल प्राविनसेज कनिंघम भाग 9 पृष्ठ 87।

7. इंडियन एंटीक्वेरी, वि.ए, स्मिथ, 37, 1908 ई0, पृ 143।

8. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलाल तिवारी पृष्ठ 47:48।

9. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, दास, गुप्ता एंड डे। पृष्ठ 449।

10. ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, मैकडालन, पृष्ठ 366–67।

11. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 591।

12–अ. 'प्रबोध चंद्रोदयम्' प्रकाश, संस्कृत, हिंदी, टीकोपेतम, टीकाकार श्री रामचंद्र मिश्र, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1, वर्ष 1978।

ब. चंद्रदास शोध संस्थान हस्तलिखित प्रति, हस्तलिखित ग्रंथों की विवरिणका भाग–1

13. 'प्रबोध चंद्रोदय' 2/13.3/8

14. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन, कृष्णकांत त्रिपाठी, पृ0 90।

15. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य वलदेव उपाध्याय पृष्ठ 592।

16. 'प्रबोध चंद्रोदयम्' प्रकाश संस्कृत हिंदी टीकापेतम्, श्री रामचंद्र मिश्र, पृ0 8, भारतीय विद्या भवन वाराणसी 1।

17. तदुपरिवत्, पृष्ठ 8 ।

18. संकल्प सूर्योदय, चंद्रदास शोध संस्थान प्रति, प्रस्तावना, 1/12

19अ. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन, कृष्णकांत त्रिपाठी पृष्ठ 115।

ब. यादवाभ्युदय महाकाव्य समीक्षणम्, आचार्य रामसजीवन त्रिपाठी पृष्ठ 809।

20अ. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 237।

ब. इंडियन एफरमिरिस वोल्यूम 1, पार्ट 1, पृष्ठ 250, एल.डी. स्वामी कन्नू पिल्लई।

स. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन, कृष्णकांत त्रिपाठी, पृष्ठ 115।

21. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वल्देव उपाध्याय पृष्ठ 237।
22. तदुपरिवत् पृष्ठ 238 ।
23. यादवाभ्युदय महाकाव्य, आचार्य रामसजीवन त्रिपाठी, पृष्ठ 89 ।
24. संकल्प सूर्योदय, पंडित वी. कृष्णमाचार्य, अडयार लाइब्रेरी मद्रास।
25. वेदांतदेशिक विरचित न्याय सिद्धांजनं, संपादक पंडित श्री नीलमेघा चार्य पृष्ठ 9, संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी।
26. तदुपरिवत्, पृष्ठ 10 ।
27. तदुपरिवत, पृष्ठ 10 ।
28. संकल्प सूर्योदय, संपादक पंडित वी. कृष्णमाचार्य, अडयार लाइब्रेरी मद्रास।
29. तदुपरिवत् ।
30. यादवाभ्युदय महाकाव्य समीक्षणम्, आचार्य रामसजीवन त्रिपाठी, पृष्ठ 6

तृतीय परिवर्त्त

विषय वस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

- ❖ वस्तु भेद
- ❖ आधिकारिक कथावस्तु
- ❖ प्रासंगिक कथावस्तु
- ❖ कथावस्तु की दृष्टि से साम्य
- ❖ कथावस्तु की दृष्टि से वैषम्य
- ❖ 'प्रबोध-चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प-सूर्योदय' की कथावस्तु की तुलनात्मक समीक्षा
- ❖ मौलिक उद्भावनाएं
- ❖ पंच अर्थ प्रकृतियाँ, पंच अवस्थाएं
- ❖ पंच नाट्य संधियाँ एवं नाटकीय तत्व प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय
- ❖ प्रतीक नाटक परम्परा के श्रेष्ठ नाटक

विषय वस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

वस्तु भेद--

''कथावस्तु नाटक का वह मूलाधार है, जहाँ से नाटक का सारा विकास, उसकी सारी परिणति और संभावनाएँ अपने लिये ठोस भूमि पाती हैं। कथावस्तु ही नाटक में घटित समस्त घटनाओं और कार्यों की समुचित व्याख्या और अर्थबोध देती है।''[1] नाट्यशास्त्र के अनुसार[2]– ''वस्तु एवं शरीरं' ऐसा उल्लेख मिलता है। अतः वस्तु नाट्य का शरीर है और हिन्दी के नाट्ककार डॉ0 रामकुमार वर्मा के अनुसार– ''नाटक जीवन की प्रभाव पूर्ण अनुकृति है, चाहे वह जीवन का वर्तमान रूप हो, अथवा अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों से लिया गया हो। नाटककार की सफलता इसी बात में है कि वह दर्शकों और श्रोताओं के सम्मुख तत्कालीन जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत कर सके।[3]

''हमारे जीवन के चारों ओर घटनाओं का अविराम प्रवाह रहता है, जो न प्राणों के तत्व का अत्यन्त रहस्यमय संकेत करता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन घटनाओं को सजीव दृष्टि से देखकर, उनकी व्यंजना में कथावस्तु का निर्माण कर लिया जावे। कथावस्तु हमारे अत्यन्त निकट होगी। कला चातुर्य केवल इस बात में है कि घटनाओं को अधिक से अधिक घनीभूत कर उन्हें कार्यकारण की मनोरंजक श्रृंखला में कस लिया जावे।''[4]डा0 लक्ष्मीनारायण के अनुसार–''नाटक की परिकल्पना प्रस्तुतीकरण स्तर से जिस प्रकार बिना अभिनेता और दर्शक के असंभव है, ठीक उसी प्रकार 'नाटक' की रचना अपने सृजन के स्तर से बिना जिज्ञासापूर्ण घटना, संवेद्य स्थिति के, कलात्मक चयन के कठिन है– ऐसी घटनाएँ, स्थितियाँ, कार्यव्यापार जो अपनी मौलिकता, अप्रत्याशितता और अपने अनोखेपन तथा निरालेपन से हमें विमोहित कर लें।''[5]

नाट्यकार किसी नायक की पूरी कहानी को ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं करता, वरन अपने कौशल से वह उसकी कुछ चुनी हुई, घटनाएँ छाँट लेता है, तथा पात्रों एवं रसों का संयोग करके उसे एक सुन्दर नाट्य का रूप देता है। इस प्रकार किसी भी वस्तु अथवा कथा से इतिवृत अथवा घटनाओं का सुनियोजित ढाँचा तैयार करना एक कुशल नाट्यकार का काम होता है।

कथावस्तु दो प्रकार की होती है–" वस्तु च द्विधा।[6] धनंजय के अनुसार–" तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासगिकं विदुः"[7] उनमें मुख्य कथावस्तु को आधिकारिक और अंगरूप वस्तु को प्रासंगिक कहते हैं।

आधिकारिक कथावस्तु– नाटयशास्त्र के अनुसार–आधिकारिक कथावस्तु इस प्रकार है–

अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः
तन्निर्वृतमभिव्यापि व्रतं स्यादाधिकारिकम्।।[8]

नाटक का फल अधिकार है और उस फल का भोक्ता अर्थात् नायक 'अधिकारी'। अधिकारी से सम्बन्ध रखने वाली कथा 'आधिकारिक' कहलाती है। यह कथा आदि से अन्त तक चलती है। 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक में नायक 'विवेक' के द्वारा प्रबोध की उत्पत्ति से रूप फल की प्राप्ति तक चलने वाली वस्तु आधिकारिक है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में राजा 'विवेक' का भगवत संकल्प के द्वारा संसारोन्मुक्त कर परब्रह्म के अनुभव रूप मोक्ष को प्राप्त कराना नायक का अभीष्ट प्रयोजन है। इन दोनों नाटकों में 'विवेक' नायक है, जो प्रतिनायक 'मोह' से संघर्ष कर विजय प्राप्त करता है। इसमें अधिकारी विवेक है। फल प्रबोधोत्पत्ति, 'संकल्प-सूर्योदय' नाटक में अधिकारी विवेक, फल, मोक्ष प्राप्ति है।

प्रबोध–चन्द्रोदय में आधिकारिक कथावस्तु–

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के प्रथम अंक में काम रति का संवाद तथा विवेक और मति का वार्तालाप है जिसमें विवेक मति से कहता है कि प्रिये, काम शुद्ध पुरुष को बन्धन में डालकर और उसकी मुक्ति के लिये प्रयत्नशील और हमें पापी कहता है। मुक्ति के द्वारा आनन्दमय पुरुष के बन्धन का कारण पूँछने पर विवेक कहता है, कि कुशल व्यक्ति भी नारियों से प्रताड़ित होते हैं। माया ने पुरुष को बन्धन में डाल रखा है। उपनिषद् के साथ हमारा सम्बन्ध होने से प्रबोध की उत्पत्ति होगी और यह बन्धन तभी छूटेगा। मति ने इसका विरोध नहीं किया।द्वितीय अंक में– मोह ने दम्भ को बुलाकर कहा कि विवेक ने प्रबोधोदय की प्रतिज्ञा की है तथा तीर्थों में शम आदि को प्रेषित किया है। इसी समय दक्षिण दिशा से अंहकार आकर कहता है कि यहाँ के अत्यन्त मूर्ख निवासी भी पाण्डित्य का गर्व करते हैं। इसके बाद दम्भ के आश्रम का वर्णन है। तत्पश्चात चार्वाक ने महामोह के पूछने पर कुशल क्षेम के बाद कहा कि कलि

के द्वारा विरोध होने पर भी विष्णु भक्ति नाम की योगिनी का प्रभाव और प्रचार शीघ्रता से बढ़ रहा है, जो हमारे लिए असह्य है। इसी समय मदमान का पत्र लेकर पुरी से एक पुरूष आता है। उसके पत्र से ज्ञात होता है कि शान्ति माता श्रृद्धा के साथ विवेक से उपनिषद् का सम्मेलन करने के लिए रात–दिन प्रयत्नशील है। तृतीय अंक में श्रृद्धा को मिथ्या दृष्टि ग्रस्त कर लेती है। चतुर्थ अंक में विवेक द्वारा वाराणसी पर चढ़ाई और पंचम अंक में विवेक का महामोह से युद्ध और विवेक द्वारा मोह का पराजित होना। षष्ठ अंक में विष्णु भक्ति के प्रसाद से पुरूष को मुक्ति मिल जाना।

संकल्प–सूर्योदय की आधिकारिक कथावस्तु–

'संकल्प–सूर्योदय' की आधिकारिक कथावस्तु का सार इस प्रकार है– संकल्प–सूर्योदय में दार्शनिक विषयों का प्रस्तुतीकरण बड़ी प्रौढ़ता तथा गम्भीरता के साथ किया गया है। प्रथम अंक में (स्वपक्ष) में परतत्वरूपी भगवान विष्णु के उस संकल्प की चर्चा है जो केवल पुरूषों को संसार से मुक्त करने में समर्थ होता है। द्वितीय अंक (परपक्ष–प्रतिक्षेप) सांख्ययोग, जैन–बौद्ध, पाशुपत, मीमांसक, शांकर भासकर तथा यादवीय मतों का संक्षेप में निराश करता है। तृतीय अंक (मुक्त्यु पायारम्भ) में दृढ़ संकल्प–युक्त चित्त से मुक्त्युपायभूत समाधि का आरम्भ उपयोगी बतलाया गया है। चतुर्थ अंक में (कामादिव्यूहभेद) योगयुक्त साधक के पूर्वाभ्यास से उत्पन्न काम आदि व्यसनों के दूरीकरण का उपाय बतलाया है। पंचम अंक (दम्भाद्युपालम्भ) प्राकृतजनों की प्रतारणा के लिए योगी द्वारा प्रयुक्त दम्भ, असूया आदि का वर्णन करता है। षष्ठ अंक (स्थान विशेष संग्रह) भोग के लिए उपयुक्त स्थानों तथा तीर्थों में मन्दार, कलधौतगिरि, गन्धमादन, गान्धारग्राम, हिमालय, नेपाल, साकेत जनपद, मथुरा, सालिग्राम, वाराणसी, विन्ध्याचल, कावेरी, बद्रिकाश्राम, यादवाचल पर्वत, अगस्त्य आश्रम, पाण्डय देश आदि का वर्णन करता है। सब तीर्थों का उद्घाटन कर उन्हें अयुक्त सिद्ध कर कवि हृदय गुहा को ही समाधि के लिए उपयुक्त बतलाया है। नोंकझोंक की भाषा में तीर्थों की निन्दा की गई है। सप्तम अंक (शुभाश्रय का निर्धारण) इसमें विभिन्न अवतारों की कथा वर्णित है। अष्टम अंक में मोहादि की पराजय और नवम अंक में समाधि का पूर्ण होना व दशम अंक (निः श्रेयस लाभ) में मोक्ष प्राप्ति तक चलने वाली कथा आधिकारिक कथावस्तु है।

प्रासंगिक कथावस्तु–

''सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।''[10] इनमें अनुबन्ध सहित (दूर तक चलने वाला) प्रासंगिक वृत्त पताका कहलाता है और एक प्रदेश में रहने वाला प्रकरी। जिस प्रकार 'पताका' (ध्वजा) नायक का असाधारण चिन्ह होती और उसका उपकार करती है, इसी प्रकार यह इतिवृत्त नायक (तथा तत्सम्बन्धी कथा) का उपकार करता है, इसलिये इसे 'पताका' कहते हैं। जो प्रासंगिक वृत्त थोड़ी दूर तक चलता है, वह प्रकरी कहलाता है। पताका के नायक का अपना कुछ स्वार्थ भी रहता है किन्तु प्रकरी का नायक या नायिका का अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। इस प्रकार कथावस्तु के दो सहायक अंग है।

'प्रबोध--चन्द्रोदय' की कथावस्तु में विष्णु भक्ति की कथा 'पताका' है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में विष्णु भक्ति का वृतान्त इस प्रकार है–'' विष्णु भक्ति वत्से श्रृद्धा, वीरक्षयकर इस युद्ध में बलवान महामोह से अभियुक्त वस्तु विवेक का क्या समाचार होगा? इसी से हमारा ह्वदय विकल है, यद्यपि प्रमाण से अभ्युदय का निश्चय किया जाता है। फिर भी हितैषियों का ह्वदय अनिष्ट की आंशका ही किया करता है और विशेषकर चिन्ता का कारण यह हो रहा है कि बहुत दिनों से श्रृद्धा नहीं आई है, श्रृद्धा समीप जाकर भगवति प्रणाम करती हूँ। विष्णुभक्ति श्रृद्धे तुम्हारा स्वागत है। तब विष्णुभक्ति द्वारा युद्ध का वृतान्त पूछने पर श्रृद्धा का कथन–आपके केशवायतन से हटते ही सूरज की लालिमा के कुछ कम हो जाने पर विजय घोषणा से आहूत अनेक वीरवर सिंहनाद करके दिशाओं की–शब्दग्रहणा समर्थ बनाने लगे, सतत चारी रथ में लगे हुए घोड़ों के खुर पड़ने से भूमण्डल के धूलिसमूह से सूरज छिप गये, प्रबलतर कर्णताल से आस्फालन से उड़ते हुए मत्त गजकुम्भ के सिन्दूर से दशदिशाओं में सन्ध्या होने लगी, प्रलय मेघ की तरह भयंकर युद्धारंभ उनके साथ हम लोगों का हुआ, तब हमारे महाराज ने महामोह के पास नैयायिक दर्शन को दूत बनाकर भेजा। उसने महामोह से जाकर कहा– आप, विष्णुभगवान के मन्दिरों, नदी के तटों, पवित्र कानन भूमियों तथा पुण्यात्माओं के ह्वदय को छोड़कर म्लेच्छ देश में अपने अनुचरों के साथ चले जाइये, अन्यथा तलवार की धार से कटी आपकी देह से बहने वाले रक्त के लिये श्रंगाल गण मुँह फैलाकर फूत्कार शब्द करते हुए दौड़ेगें। तदनंतर भंयकर ललाट तट में भौंहे नचाकर कुद्ध महामोह ने कहा इस अविनय का फल विवेक भोगे। ऐसा कहकर स्वयं पाखण्डागमों को पाखण्ड तर्क शास्त्रों के साथ युद्ध करने के लिये नियोजित

किया आदि वृतान्त विष्णुभक्ति का पताका नामक कथावस्तु है। संकल्प सूर्योदय' नाटक में भी विष्णुभक्ति का इसी प्रकार वृतान्त 'पताका' है। विष्णुभक्ति–

''महाराज दिष्टया त्वया जिताः शत्रवः। पुरूषश्चाशेषविकृतिप्रसूत्या प्रकृत्या अनिदंप्रथमबम्भ्रम्य माणगर्भजन्म जरामरणादिचक्रयन्त्रमारोप्य क्रीडन्त्या निपीड्यमानो निवृत्ति धर्म प्रभृतिनिश्रेणि का क्रमेण निः श्रेयसप्रासादसमारोहणाय नियोजितः। अहो नु खलु भवन्तमनवधिक वैभवमवधारयामि।[11]

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में वैयासिकी सरस्वती की कथा प्रकरी है– मन रोकर, देवी अब प्रवृत्ति कहाँ है, उनका तो कुटुम्ब व्यसन के सुनने से उत्पन्न शोकानल से, हृदय जल गया, वह चल बसी। मन हे देवि, तुम मेरे बिना स्वप्न में भी प्रसन्न नहीं रहती, मैं भी तुम्हारे बिना स्वप्न में निर्जीव के समान हो जाता हूँ। फिर भी भाग्य के फेर से तुम मुझसे दूर कर दी गई हो तथापि जो यह मन जीवित है, इससे यह प्रतीत होता है कि प्राण बड़े कठिनाई से निकलने वाले होते हैं। तदुपरान्त सरस्वती द्वारा मन को उद्बोधित करना– इस तरह उदास क्यों हो, तुम तो पदार्थों की अनित्यता को पहले से ही जानते हो। तुमने ऐतिहासिक उपाख्यान भी पढ़ा है क्योंकि ''ब्रह्मा इन्द्र सहित देवता एवं असुर, मनु आदि ऋषिगण, असंख्य समुद्र तथा पृथ्वी सौ कल्पों की आयु प्राप्त करके भी नष्ट हो गये, फिर सिन्धु के फेन के सदृश पंच तत्वात्मक शरीर के पंचत्व प्राप्त कर लेने पर लोगों को शोक उत्पादक मोह क्यों हुआ करता है।''[12] इसलिये पदार्थों की अनित्यता की भावना किया करो। जिसे वस्तुओं की अनित्यता दीखने लगती है उसे शोक का आवेग नहीं सताता है और सदा एक ब्रह्म ही सत्य है और सभी कल्पित अतः अनित्य हैं, तो फिर जिसे ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान हो गया है उसके लिए मोह एवं शोक का विषय नहीं रह जाता है। और स्नेह सभी अनर्थों का मूल है–''मनुष्य विषलता के समान भयंकर दुःखदायी प्रियसंज्ञक (पुत्र स्त्री आदि) बीज बोते हैं, उनसे शीघ्र ही प्रेमरूपी विद्युत अग्नि के समान सन्तापदायक अंकुर निकल आते हैं। स्नेह अंकुरों से देह को भूसी की अग्नि के समान जलाने वाले ज्वालायुक्त सहस्त्र शिखर वाले शोकरूपी वृक्ष पैदा होते हैं।''[13] यद्यपि बात ऐसी ही है फिर भी शोकानलदग्ध मैं प्राणधारण नहीं कर सकता हूँ यह अच्छा हुआ कि अन्त समय तुम्हारे दर्शन हो गए। सरस्वती, आत्महत्या, करना तो अत्यन्त धृणित कार्य है। और इन अपकारियों के सम्बन्ध में तुमको इतना आवेश क्यों हो रहा है क्योंकि इन पुत्र कलत्र

आदि के द्वारा क्या पुरूषों का उपकार किया जायेगा, या किया जा रहा है। ये पुत्र कलत्रादि परिग्रह तुम्हारे सुख के लिए नहीं है तथा वियोग में मर्मभेदी व्यथा पहुँचाते हैं फिर भी लोग बहुत से प्रयत्न करते हुए, तदर्थ (उन पुत्र कलत्र आदि के लिए) महान कष्ट सहन करते हैं, पापी इन पुत्र कलत्र आदि के द्वारा क्या क्या दुष्कार्य नहीं कराया गया? भरी हुई कितनी नदियाँ नहीं पार करनी पड़ी, कौन से पर्वत नहीं लाँघने पड़े, क्रूर प्राणियों के संचार से भयंकर कितने जंगली प्रदेशों को नहीं पार करना पड़ा तथा धनमद से म्लानमुख दुष्ट धनिकों के पास नहीं जाना पड़ा, और ममतावश ही ऐसा मोह होता है क्योंकि ''घर के पालतू मुर्गे को विलाड़ के द्वारा खा जाने पर जो दुख होता है, वह ममतारहित चटक पंछी या चूहे के खाये जाने पर नहीं होता, अतः सभी अनर्थों की जड़ ममता के अच्छेद का ही प्रयत्न करना चाहिए। शरीर से कितने कीड़े उत्पन्न होते हैं, जिनको यत्नपूर्वक शरीर से हटा दिया जाता है परन्तु यह सासांरिक मोह है जिसके कारण (शरीर से उत्पन्न) पुत्र आदि को अपत्य संज्ञा प्रदान कर उनके लिये अपने देह को सुखाया जाता है। तब मन कहता है देवी, ऐसा ही हो फिर भी ममता की गाँठ छूटती नहीं है। सरस्वती–वत्स अब तुम्हारा हृदय उपदेश के योग्य हो गया है अतः इतना और कहा जाता है– जब पिता पुत्र या मित्र की मृत्यु हो जाती है तब मूर्खबुद्धि लोग छाती पीटकर शोक से पीड़ित हुआ करते हैं। परन्तु जो संसार का असारत्व या इसके विरस परिणाम को जानने वाले हैं, उनके लिये वियोग शान्ति सुख प्रदान करने वाला तथा वैराग्य दृढ़ करने वाला हुआ करता है। तत्पश्चात वैराग्य उत्पन्न होता है। मन कहता है, बेटा तुम्हें देखने से मेरा शोकावेग शान्त हो गया। वैराग्य, तात इसमें शोक की क्या बात? क्योंकि ''रास्ते में पथिकों की तरह, नदी में गिरने वाले तट वृक्षों की तरह, पुष्कर क्षेत्र में मेघों की तरह और समुद्र में नौयात्रियों की तरह जब माता, पिता, बन्धु, पुत्र भाई तथा प्रिया का साथ हुआ करता है तब उनसे वियोग तो निश्चित ही है फिर विद्वानों को इसमें क्या शोक करना है। आप विश्वास करें। प्राणियों का ममत्वपाश निरन्तर अभ्यास के कारण दृढ़ हो गया है और स्नेहरूपी सूत्र में पिरोया हुआ है। क्या आप ऐसा कुछ उपाय जानती हैं जिसके द्वारा उससे छुटकारा पाया जा सके? इस पर सरस्वती–पदार्थो की अनित्यता का विचार ही ममतोच्छेद का प्रथम उपाय है। क्योंकि इस अनन्त पर परम्परायुक्त संसार में न जाने कितने करोड़ मां, स्त्री, पुत्र, चाचा, पितामह गुजर गये होगें, इसलिए

यहाँ मित्रों या आत्मीयजनों की संगति बिजली की चमक की तरह क्षण भंगुर है, इस बात को बारम्बार हृदय में रखकर सुखी रहा करो। अतः भगवती आपकी अनुकम्पा से हमारा मोह तो दूर हो गया, किन्तु आपके मुख चन्द्र से निर्गत विमल उपदेश रूप अमृत से घुल जाने पर भी हमारे हृदय को शोक के वेग कभी–कभी मलिन कर देते हैं, इस ताजे शोक प्रहार की दवा आप बताएं। सरस्वती अकाण्ड में आये हुए हृदय भेदी तथा नूतन गाढ़शोक प्रहारों को भूल जाना ही महौषध है। फिर मन के यह पूछनें पर कि शान्त विषय कौन सा है, इस पर सरस्वती वह विषय मन को बताती है– "सदा मेघ श्यामवर्ण, हारकेयूरकुण्डलधारी भगवान का स्मरण करते हुये अथवा ग्रीष्म ऋतु में शीतल जलाशय की सदृश वीतशोक ब्रह्म में अभेद भावना के द्वारा प्रवेश कर आत्मशान्ति प्राप्त करो। प्रकरी में नायिका या नायक का अपना स्वार्थ नहीं होता यथा यहाँ सरस्वती नामक नायिका है। उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है और 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में विष्णु अवतारों की कथा प्रकरी है यथा व्यवसाय अवतारों का वर्णन इस प्रकार करता है सर्वप्रथम महावराह अवतार, नृसिंह अवतार, भगवान वासुदेव वा कल्कि अवतार को बड़ी ही चमत्कारिक शैली से प्रस्तुत करता है।

'अतः अंग वृत्त प्रासंगिक वृत्त कहा जाता है। यह वृत्त मुख्य वृत्त का अनुयायी होने के कारण आधिकारिक वस्तु का अवयव है। कोई भी वृत्त स्वभावतः ही मुख्य या प्रासंगिक की संज्ञा को प्राप्त करता है, अपितु समस्त फलों में कवि को जिस फल का उत्कर्ष अभिप्रेत रहता है, उससे युक्त वृत्त को 'मुख्य वृत्त' कहते हैं। इससे अतिरिक्त चरित उसका अंग होने से 'प्रासंगिक वृत्त' कहलाता है।''[14]

नाट्यदर्पणकार के अनुसार–सर्वत्र मुख्य वृत्त के लिए किए गए प्रयत्न के द्वारा ही प्रासंगिक वृत्त की सिद्धि करनी चाहिए। क्योंकि उसके लिए अलग प्रयत्न करने पर तो वह भी मुख्य वृत्त ही बन जाएगा।[15]

पताका स्थानक– दशरूपककार के अनुसार पताकास्थानक इस प्रकार है–''
प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम्
पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम्।

जो किसी अन्य वस्तु के कथन द्वारा आगन्तुक प्रस्तुत वस्तु का सूचक होता है, वह पताकास्थानक कहलाता है, वह समान इतिवृत्त तथा समान विशेषण (भेद से दो प्रकार) का होता है।

कवि कभी–कभी रूपक में एक स्थान पर भविष्य में घटित होने वाली घटना का संकेत करा देता है यह सूचना पताका या ध्वजा की भांति भावी वृत की सूचना देती है इसलिये पताका स्थानक कहलाती है। दूसरे प्रकार का पताकास्थान 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में इस प्रकार है– ''सर्वथा लोकायतमेव शास्त्रं यत्र प्रत्यक्षमेव प्रमाणं पृथिव्यप्तेजोवायवस्तत्वानि अर्थकामौ पुरूषार्थौ भूतान्येव चेतयन्ते। नास्ति परलोकः। मृत्युरेवापवर्गः। तदेतदस्मदभिप्रायानुबन्धिना वाचस्पतिना प्रणीय चार्वाकाय समर्पितम्। तेन च शिष्योपशिष्यद्वारेणास्मिँल्लोके बहुलीकृतं तन्त्रम्।[16]
अर्थात् शास्त्र तो बौद्धागम है, जिसमें प्रत्यक्ष ही प्रमाण तथा पृथ्वी, जल, तेज और वायु तत्व हैं अर्थ और काम दो ही पुरूषार्थ हैं भूत ही चेतन है। परलोक नहीं है। मृत्यु ही मोक्ष है।

इन दोनों प्रकार के चरितों की भी अभिव्यक्ति की प्रक्रिया की दृष्टि से चार भेद हैं– सूच्य, प्रयोज्य, अभ्यूह्य अर्थात् कल्पनीय और उपेक्ष्य।[17] नाटक में समग्र घटनाओं के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं होती। कार्य की सिद्धि के लिए उनमें परिष्कार करना, काट छाँट करना आवश्यक होता है। जो घटनाएँ कार्य की सिद्धि में सीधा लगाव या सम्बन्ध रखती है, उन्हें काट–छाँट कर अलग करना तो पड़ता है, परन्तु कथा को अखण्ड बनाये रखने के लिए उनकी सूचना तो अवश्य ही दी जाती है। ऐसी ही घटनाएँ 'सूच्य' कहलाती हैं।''[18] प्रयोज्य वृत्त 'सूच्य' के ठीक विपरीत होता है। यह नट आदि के द्वारा वाचिकादि अभिनयों से सामाजिकों के सामने प्रत्यक्ष जैसा किया जाता है। अतएव इसे प्रयोज्य कहते हैं। जिसका स्वयं वितर्क किया जाए, वह 'ऊह्म' कहलाता है। जैसे अन्य स्थान पर पहुँचने के लिये गमन आदि की स्वयं ऊह्म अर्थात् कल्पना की जाती है, क्योंकि पैरों से चले बिना दूसरे स्थान पर नहीं पहुँचा जा सकता है। यथा प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के द्वितीय अंक में कथा प्रसंग इस प्रकार है– महाराज मोह का आदेश है–कि पुत्र दंभ, मन्त्रियों के सहित विवेक ने प्रबोधोदय–के लिये प्रतिज्ञा की है। तीर्थों में शमदम आदि को भेज दिया है। यह हमारे कुल का विनाश उपस्थित है। आप लोग सावधानीके साथ प्रतिकार करें। पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ मुक्ति का स्थान वाराणसी नगरी हैं। आप वहाँ जाकर चारों आश्रमों में पारलौकिक कल्याण में विघ्न हों। ऐसा प्रयत्न करो।[19] ब्रीड़ा आदि के जनक होने से जिसकी अवहेलना अथवा उपेक्षा कर दी जाय, वह 'उपेक्ष्य' कहलाता है। किन्तु कथावस्तु का

कुछ भाग ऐसा होता है जिसका रंगमच पर उपस्थापन नीरसता को ही जन्म देता है। ऐसी वस्तु सरस स्थलों को जोड़ने और वस्तु की अविच्छिन्नता बनाये रखने के लिए आवश्यक भी होती है। अतएव उसकी सूचना मात्र दी जाती है। उस वस्तु को सूच्य कहा जाता है। सूचना देने के प्रकारों को अर्थोपक्षेपक कहा जाता है।[20]
दशरूपककार के अनुसार–

"नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः।।[21]

भारतीय नाट्यपरम्परा के अनुसार कुछ घटनाओं का रंगमंच पर अभिनय करना वर्जित है, जैसे किसी की मृत्यु आदि। अतः सूच्य वस्तु के प्रकार इस प्रकार है– अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत।[22]
विष्कम्भक,चूलिका, अंकास्य, अंकावतार और प्रवेशक इन पंच अर्थोपक्षेपकों के द्वारा सूच्य का प्रतिपादन करना चाहिए।

1. **विष्कम्भक**– दशरूपककार के अनुसार विष्कम्भक बीते हुए और आगे होने वाले कथा–भागों का सूचक संक्षिप्त अर्थ वाला तथा मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त जो अर्थोपक्षेपक है, वह विष्कम्भक कहलाता है।[23] एक या अनेक मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक शुद्ध कहलाता है और मध्यम तथा अधम पात्रों द्वारा मिलकर प्रयोजित विष्कम्भक संकीर्ण कहलाता है। किन्तु नाट्यदर्पणकार के अनुसार विष्कम्भक स्मृति द्वारा उतने ही दूर के अतीत काल के अर्थ का वर्णन करना चाहिए, जिनका स्मरण सामान्य रूप से मनुष्य को हो सकता हो। वें घटनाएँ बहुत प्राचीन होनी चाहिए। पुनश्च यह दो अंकों के बीच के कथाभाग को जोड़कर कथासूत्र को अविच्छिन्न बनाता है[24] और इसके दो भेद हैं शुद्ध तथा संकीर्ण। अतः शुद्ध विष्कम्भक में समास रहित तथा अदीर्घ समासयुक्त संस्कृत भाषा के माध्यम से मध्यम पात्रों द्वारा अंक के आदि में सूचित कराना चाहिए और अधम पात्रों के उपस्थित रहने से विष्कम्भक संकीर्ण हो जाता है इसमें प्राकृत का प्रयोग होता है। विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का रहना आवश्यक है।[25] 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के प्रथम अंक में संकीर्ण विष्कम्भक का प्रयोग इस प्रकार है– राजा विवेक और मति प्रवेश करते हैं राजा–प्रिये तुमने इस पापी काम की मतवाली बातें सुनी। हम लोगों को पापी कहकर निन्दित करता है, मति आर्यपुत्र क्या अपना दोष लोग देख लेते हैं। और अंहकारी दुरात्मा एवं

पापी मद आदि कों से यह चिदानन्दमय नित्यनिष्कलंक जगदीश्वर बहुत दिनों से, बन्धन में डालकर दीनदशा को पहुँचाया गया है। इस प्रकार ये पुण्यात्मा हैं और उनकी मुक्ति के लिए तत्पर हम लोग पापी है। दुर्जन विजयी हुये। मति आर्यपुत्र यह परमेश्वर आनन्द और सौन्दर्य की प्राकृतिक स्थिति वाला नित्य प्रकाश स्वरूप त्रिभुवन व्यापी है। तो कैसे इन दुष्टों ने उन्हें बाँधकर महामोहसागर में डाल दिया? आदि संवाद से लेकर राजा के कथन तक कि यदि तुम इस प्रकार से प्रसन्न हो तो हमारे मनोरथ सिद्ध हो गए क्योंकि– जिन अहंकारादि ने विश्व के आदि पुरूष को बांधकर, शरीरों में अनेक प्रकार से विभक्त करके तथा डालकर मृत्यु के धाम पहुँचा दिया है। मेरे द्वारा उन ब्रह्म भिन्न लोगों को विद्या से विधिवत प्रायश्चित कराकर उसे पुनः ब्रह्मैकता की प्रतीति करायी जा रही है।[26] यहाँ तक को कथन मिश्रित विष्कम्भक है, इसमें मति पात्र के द्वारा प्राकृत का प्रयोग कराया गया है।

शुद्ध विष्कम्भक 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में षष्ठ अंक के प्रारम्भ में और सप्तम अंक के प्रारम्भ में इस प्रकार है– कंचुकी– अहं हि देवस्य महामोहस्य दर्पसंभवः स्तम्भो नाम सदागमप्रतिरोधकः प्रतिहारी।

मम च वलिभिरविरलाभिर्वर्ष्म सोपानकल्पं द्रुतपदमधिरूढा दुर्निवारा जरेयम् तदपि नियतिभूम्ना तादृशी वेत्रयष्टिः सह चरति मयासौ शैशवे संग्रहीता।[27]

से कंचुकी के इस कथन तक शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है जो इस प्रकार है– मनोरथरथारूढो विवेकस्तर्कसारथिः दिद्दक्षु संयमस्थानमितः समभिवर्तते।[28]

मिश्रविष्कम्भक–अभिनिवेश के कथन से अष्टम अंक में मिश्रविषकम्भक इस प्रकार है–

हष्यन्ति व्यसनेषु सप्तसु मुधारण्धेषु मत्प्रेरिताः

मोहस्याभिनिवेश एकदुर्गहं कोशाधिकारे स्थितः।[29]

सप्तम अंक में–संस्कार नामक पात्र के कथन से– (श्रुत्वा सहर्षम) किमासीदति शिल्पशालां व्यवसायदत्तहस्तः सुमतिसहायो विवेकः तदहं यथोचितपरि जनकृत्ये वर्तिष्ये।[30]

भरत आदि समस्त नाट्याचार्यों के अनुसार नाटक के किसी भी अंक में आवश्यकतानुसार विष्कम्भक का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु इतना ध्यान रखना चाहिए। अंक के बीच या अन्त में विष्कम्भक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किन्तु कोहलाचार्य[31] का मत इससे विलक्षण है। इनके मतानुसार विष्कम्भक का प्रयाग केवल प्रथम अंक के प्रारम्भ में किया जा सकता है। अन्य अंकों में उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता

अथवा फिर इसका प्रयोग अंक के मध्य अथवा अन्त में कहीं भी किया जा सकता है।

प्रवेशक— प्रवेशक का लक्षण आचार्य धनंजय ने इस प्रकार दिया है—

''तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः

प्रवेशोऽकयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।[32]

(भूत और भविष्य के कथांशो का सूचक) नीच पात्रों द्वारा अनुदात्त उक्तियों से प्रयुक्त दो अंकों के बीच में स्थित तथा शेष (अपदर्शनीय) अर्थ का सूचक 'प्रवेशक' कहलाता है।'' इसमें भी विष्कम्भक की ही भाँति कथानक से सम्बद्ध भागों की सूचना दी जाती है। दोनों में अन्तर यह है कि प्रवेशक में सभी पात्र निम्न कोटि के, प्राकृत बोलते हैं।[33] प्रवेशक का प्रयोग नाटक, प्रकरण, नाटिका और प्रकरणी में करना चाहिए। नाटकादि चार रूपकों में परिमित उपायों के द्वारा मुख्य तथा अवान्तर बहुत से कार्यों का परिज्ञान राजा और उसके सहायक मन्त्री आदि को कराना होता है। अतएव इनमें ही विस्तृत आवान्तर कार्यो का ज्ञान कराने के लिए विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग किया जाता है। 'प्रबोध—चन्द्रोदय' नाटक के द्वितीय अंक में प्रवेशक का वर्णन इस प्रकार है—

महामोहः (विहस्य) अहो, निरंकुशा जडधियः।

आत्मास्ति देहव्यतिरिक्तमूर्तिर्भोक्ता सलोकान्तरितः

आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रथीयसः स्वादुफलप्रसूतौ।।[35]

इस संसार को ये मूर्ख अपनी कल्पना द्वारा विनिमित पदार्थों से छल रहे हैं। देखिए—जो वस्तु है ही नहीं, वह है, इस प्रकार की असत्य बात कहने वाले आस्तिकों ने मुखादि अंगों के समान होने पर भी, जाति व्यवस्था कैसी? यह स्त्री तथा धन दूसरे का है— इस प्रकार का भेद हम नहीं जानते हैं क्योंकि हिंसा अथवा स्त्रियों के साथ यथेष्ट गमन में और दूसरे के धन ग्रहण में असमर्थ से लोग उचित अनुचित का विचार करते हैं, आदि कथन 'प्रवेशक' हैं। प्रवेशक अंक के मध्य में तथा महामोह नीच पात्र हैं और कार्य की उत्तमता के कारण भाषा परिवर्तित है।

अंकास्य— 'अंकान्त पात्रैरऽकस्यं छिन्नांकस्यार्थसूचनात्।''[36]

दशरूपककार के अनुसार—''अंक के अन्त में आने वाले पात्रों के द्वारा (पूर्व अंक से) असम्बद्ध (विच्छिन्न) अग्रिम अंक के अर्थ की सूचना देने के कारण यह अंकास्य कहलाता है। यथा 'प्रबोध—चन्द्रोदय' नाटक में अंकास्य इस प्रकार है— तथापि प्राणव्यय करके भी स्वामी का कार्य करना ही है। अतः धर्म और श्रृद्धा को आहत करने

के लिए महाभैरवी विद्या को भेजता हूँ– शान्ति हम दोनों भी इन अभागों की गतिविधि को देवी विष्णुभक्ति से निवेदन करें।[37] नाट्यदर्पणकार ने भी दशरूपक का अनुसरण किया है।[38] नाट्यदर्पण के अनुसार अंकास्य में उत्तरवर्ती अंक पूर्व अंक से असम्बद्ध रूप में प्रारम्भ होता है। किन्तु भरत मतानुसार 'अंकमुख' वहाँ होता है जहाँ किसी स्त्री या पुरूष पात्र द्वारा अंक की कथा का संक्षेप आरम्भ में ही कर दिया जाता है।[39] उन्होंने इस अर्थोपक्षेपक को 'अंकमुख' की संज्ञा प्रदान की। ''साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ भरत से सहमत है। इनके अनुसार वहाँ एक ही अंक में दूसरे अंक की समस्त कथा की सूचना हो, वह 'अंकमुख' होता है''।[40]

चूलिका– दशरूपककार के अनुसार– चूलिका का लक्षण इस प्रकार है– अन्तर्जवीनकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना। जवनिका के भीतर स्थित पात्रों के द्वारा किसी अर्थ की सूचना देना चूलिका कहलाता है।''[41] इसमें जवनिका के पीछे स्थित पात्र के द्वारा किसी महत्वपूर्ण घटना का वर्णन किया जाता है।[42] 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्रथम अंक में सूत्रधार के सम्वाद में चूलिका का वर्णन इस प्रकार है–

आः पाप शैलूषाधम कथस्मासु जीवत्सु स्वामिनो
महामोहस्य विवेकसकाशात्पराजयमुदाहरसि।[43]

सूत्रधार– आर्ये इतस्तावत। मद्धवचनाच्चायमुपजातक्रोध इव कामः एति। तदपसरणमेवासमाकमितः श्रेयः।

द्वितीय अंक में दम्भ के द्वारा 'चूलिका' का वर्णन इस प्रकार है। दम्भ – अरे भो नागरिको, ये महाराज मोह आ गए। इसलिये चन्दन के निष्यन्द से स्फटिक शिला निर्मित वेदिकाओं का संस्कार करिए। जलयन्त्रों को विमुक्त कर दीजिये, भवनों में जलधाराएं सभी ओर चलें। मणियों से दीप्त तोरणों की पंक्तियाँ सर्वत्र अवलम्बित हों। प्रसादों पर इन्द्रधनुष के समान चित्रवर्ण ध्वजायें फहरायें।[44] 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के चतुर्थ अंक में नेपथ्योक्ति इस प्रकार है–

सज्ज्यन्तां कुम्भभित्तिच्युतमदमदिरामत्तभृंगाः करीन्द्रा
युज्यन्तां स्यन्दनेषु प्रसभजितमरूच्चण्डवेगास्तुरंगाः।
कुन्तैर्नीलोत्पलानां वनमिव ककुभामन्तराले सृजन्तः
पादाताः संचरन्तु प्रसभमसिलसत्पाठायोऽप्यश्ववाराः।।[45]

अतः यहाँ पर महत्वपूर्ण घटना का वर्णन होने से चूलिका नामक वृत्त है और

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में चूलिका इस प्रकार है– यहाँ विवेक नामक पात्र के प्रवेश होने की सूचना दी जा रही है–

मोहाकूपारकुक्षिंभरिरयमनधो मुक्तिवीरूत्प्ररोहः
प्रज्ञासौधैकदपिः प्रतिसमयकथातूलवातूलवेगः
दुःखद्वारोपरोधस्थिरतरपरिघो दूरतः प्रत्युपैति
क्रूरक्रोधाशुशुक्षण्युपशमनसुधासारसेको विवेकः ।[46]

अपि च–

अधराहित चारूवंशनाला मकुटालम्बिमयूरपिंछमालाः
हरिनीलशिलाविभंगनीला प्रतिभाः सन्तु ममान्तिमप्रयाणे ।[47]

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के नवम अंक में प्रायः चूलिका का ही अधिकता से प्रयोग हुआ है।

अंकावतार– जहाँ अंक का अन्त हो जाने पर (अग्रिम) अंक का अभिन्न (अविच्छिन्न) रूप से अवतरण हो जाता है वह अंकावतार कहलाता है। दशरूपक में इसको इस प्रकार पारिभाषित किया है–

''अंकावतारस्त्वंकान्ते पातोऽकस्याविभागतः ।''[48]

नाट्यदर्पणकार ने भी इनका समर्थन किया है। और ''साहित्यदर्पणकार ने इसका इस प्रकार लक्षण दिया है।

1. पूर्व अंक में अग्रिम अंक की वस्तु सूचित हो जाती है।

2. उसे सूचित करने के लिए विष्कम्भक या प्रवेशक आदि का प्रयोग नहीं किया जाता।

3. अग्रिम अंक के पात्रों की सूचना नहीं दी जाती क्योंकि पूर्व अंक के पात्र ही अग्रिम अंक के आरम्भ में रहते हैं।

4. पूर्व अंक की कथा के प्रवाह में ही अग्रिम अंक का आरम्भ हो जाता है।''[49] वह अंकावतार कहलाता है। अन्य आचार्यो का मत है कि जिस अंक में दूसरे सब अंकों के बीजभूत अर्थ की अवतारणा होती है, वह अंकावतार है।[50]

दूर देश का गमन नीरस व्यापारों से पूर्ण होने के कारण नगरावरोध, नीरस एवं अशोभनीय व्यापारों की सम्भावना से पूर्ण होने के कारण राज्य का विप्लव, आलिंगन एवं चुम्बन आदि लज्जाजनक व्यापार से परिपूर्ण होने के कारण सम्भोग, हाथ पैर

आदि का काटना, ब्रीडा दायक आदि अन्य सूच्य अर्थों को विष्कम्भक आदि अर्थोपक्षेपकों के द्वारा ही सूचित किया जाता है।[51]

नाट्य धर्म की दृष्टि से वस्तु भेद–

'साहित्य-दर्पण' में नाटयधर्म के स्थान पर नाट्योक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है।'' वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है– अवस्थानुकृति ही नाटक है। इससे लोकवृत्त का अनुकरण किया जाता है। लोक में सभी बातें एक रूप में नहीं कही जाती। कोई सबकें सामने कही जाती है (सर्वश्राव्य) कोई किसी से छिपाई जाती है तथा दूसरे पर प्रकट की जाती है (नियतश्राव्य), कोई बात किसी से छिपाकर मन ही मन कही जाती है (अश्राव्य)। अतः सामाजिकों को तो सभी बातें सुनानी होती हैं। यदि सामाजिक इन इन बातों को न सुन सकेगा तो कथा प्रवाह में बाधा पड़ेगी और भली–भाँति रसास्वादन न किया जा सकेगा। ये नाट्य के धर्म हैं इनके प्रयोग से नाट्य में स्वाभाविकता रहती है।

''नाट्य धर्म की दृष्टि से वस्तु के तीन प्रकार माने जाते हैं।''[53] ''सर्वेषां नियतस्यैव श्राण्यमश्राव्यमेव चा''। वस्तु के तीन प्रकार इस प्रकार है– [54]

1.सबके ही सुनने योग्य (सर्वश्राव्य),

2 नियत जनों के ही सुनने योग्य (नियतश्राव्य) तथा

3. किसी के भी न सुनने योग्य (अश्राव्य)। उनमें

1. सर्वश्राव्य– सबके सुनने योग्य वस्तु 'प्रकाश' तथा किसी के भी न सुनने योग्य वस्तु 'स्वगत' कहलाती है।''[55]

जब स्पष्ट संवाद में नाट्यगत सभी पात्र किसी बात को सुनते प्रतीत होते हैं तो वह संवाद सर्वश्राव्य कहलाता है। प्रकाश और स्वगत इसके दो भेद हैं। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में 'प्रकाश' एवं स्वगत वस्तु इस प्रकार है–

अहंकारः – (स्वगतम्) अये दम्भग्राह्मोऽयं देशः। (प्रकाशम्) भवतु। अस्मिन्नासने उपविशामि।[56]

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में सर्वश्राव्य वस्तु इस प्रकार है–

तर्कः– (स्वगतम्) रत्नसानुरामणीय कलग्नचित्तं महाराजं प्रक्रान्तकार्ये संत्वरयामि। (प्रकाशम्) देव, किमसौ केसराय माण केसर, शैलपरिवृतिकाश्चनशिखरिकर्णिकारिथतेन भवता सर्वतः समीक्षितः क्षितिपद्यः।[57]

2. नियतश्राव्य– नियतश्राव्य दो प्रकार का होता है– जनान्त (जनान्तिक) और अपवारित। यथा– ''द्विधाऽन्यन्नाटयधर्मारण्यं जनान्तमवारितम्।[58]

जनान्तिक– वार्तालाप के सन्दर्भ में जो त्रिपताक रूप हाथ (की मुद्रा) के द्वारा अन्यों को बचाकर (अपवार्य) बहुत से जनों के मध्य में दो पात्र आपस में बात करते हैं। वह जनान्तिक हैं। इस सन्दर्भ में 'सहित्य–दर्पण'[59] नाट्य–दर्पण[60] का भी मत दशरूपक के समान ही है।

2. अपवारित– ''रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्''[61] जहाँ किसी पात्र के द्वारा मुँह फेरकर (परावृत्य) दूसरे व्यक्ति से गुप्त बात (रहस्य) कहीं जाती है, वह 'अपवारित' कहलाता है। 'साहित्य दर्पण'[62] में अपवारित का लक्षण दशरूपक के समान ही है।

3– अश्राव्य– 'दशरूपककार' के अनुसार 'अश्राव्य वस्तु' जहाँ कोई अकेला पात्र (एक) दूसरे पात्र के बिना तथा किसी के बिना कहे भी मानो क्या कहते हों? इस प्रकार कहता है वह 'आकाशभाषित' है।[63]

'साहित्य–दर्पण'[64] में आकाशभाषित का लक्षण दशरूपक के अनुसार ही है। ''नाट्यदर्पण में आकाशभाषित –दूसरे पात्र के बिना स्वयं ही प्रश्न तथा उत्तर का कथन 'आकाशोक्ति' कहलाता है।[65]

कथावस्तु की दृष्टि से साम्य

वस्तु संगठन की दृष्टि से 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की कथावस्तु से प्रेरित होकर 'संकल्प–सूर्योदय' की रचना की गई, अतः दोनों के वस्तु संगठन में पर्याप्त साम्य परिलक्षित होना स्वाभाविक है। किन्तु नाट्यरचनाकारों की अपनी मौलिक विचारधारा भी होती है। जिसके कारण उसमें कुछ नयी प्रवृत्तियाँ तथा नवीनप्रतिक्रियाएँ परिलक्षित होती हैं। प्रबोध चन्द्रोदय और संकल्प सूर्योदय के कथानक को आधार बनाकर उसके साम्य और वेषम्य पर विचार करेंगे।

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' के कथानक में साम्य– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं संकल्प सूर्योदय की कथावस्तु के साम्य को निम्नलिखित विन्दुओं के आधार पर विवेचित किया जा सकता है–

1. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' दोनों की कथावस्तु की प्रेरणा और आधारभूत सामग्री, पुराण, उपनिषद्, एवं भारतीय दर्शन, वेदान्त, विशिष्टाद्वैत पर

आधारित है, अतः कथावस्तु की प्रेरणाएँ समान भाव–भूमि पर आधारित हैं।

2. उक्त दोनों नाटकों में आध्यात्मिक जागरण, आत्मा की मुक्ति एवं विष्णु भक्ति आदि के आदर्शों को कथानक से सम्बद्ध किया गया है।

3. उक्त दोनों नाटकों के कथानक की महत्ता इस बात में भी समान रूप से दिखाई पड़ती है कि दोनों ने पुराण, इतिहास, दर्शन से जीवन तत्वों एवं सार्वभौमिक सत्यों को ग्रहण करके अपनी कल्पना और भावना के सहयोग से मानवीय चरित्रों की भाँति अमूर्त को कथावस्तु में मूर्तित किया है।

4. उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु को सार्थकता और सोद्देश्य पूर्ण बनाने में दोनों नाटककारों ने कथानक का निर्माण किया है तथा उसमें प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध तथ्यों का पर्याप्त परिष्कार भी किया है।

5. उक्त दोनों नाटककारों ने पौराणिक कथावस्तु को जीवन सापेक्ष और सार्थक बनाने के लिये काल्पनिक प्रसंगो की भी सृष्टि की है।

6. उक्त दोनों नाटककारों ने कथावस्तु के चयन संगठन और संयोजन में प्रतीकात्मक मूल्यों को दृष्टि में रखते हुए रूपक शैली का निर्वाह किया और कथावस्तु को दोहरे स्तर पर सार्थकता प्रदान कर एक नयी अर्थवत्ता दी। कथावस्तु प्राचीन होकर भी वर्तमान की समस्यों को विशेष रूप से मानवीय प्रवृत्तियों को प्रतिनिधित्व देती है।

7. उक्त दोनों नाटककारों ने कथावस्तु की संरचना में सांस्कृतिक दृष्टिकोण को आध्यात्मिक चेतना के साथ इस प्रकार सम्बद्ध किया है कि उसमें अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार की चेतना का सामंजस्य दिखाई पड़ता है।

8. उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु में नाटकीयता के साथ काव्यात्मकता भी परिपूर्ण है। दोनों नाटकों में श्लोकों और काव्यबद्ध अंशों का समुचित प्रयोग अनुभूति को तीव्र बनाने के लिये किया गया है। अतः दोनों नाटककारों की दृष्टि दार्शनिक होकर कवि दृष्टि भी है।

9. दोनों नाटकों की आधिकारिक कथा वस्तु में जो संघर्ष चित्रित किया गया है उसमें विवेक ओर मोह, धर्म तथा अधर्म का परस्पर संघर्ष चित्रित है और दोनों में अन्त में नायक विवेक की विजय होती है। अतः दोनों नाटक आशावादी तथा औदार्य से परिपूर्ण है।

9. उक्त दोनों नाटकों में प्रयोजन की सिद्धि के लिये अनेक आवान्तर कथाएँ मिलकर

आधिकारिक कथा वस्तु को पुष्ट करती हैं। प्रयोजन की सिद्धि हेतु दोनों नाटककारों ने बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य अर्थप्रकृतियों का सफल उपयोग किया है।

10. दोनों नाटकों की कथावस्तु में एक समन्वित प्रभाव के लिये पंचसंधियों, मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श, निर्वहण का चित्रण किया गया है।

11. दोनों नाटककारों ने कथावस्तु में काट–छाँट तथा परिष्कार करने की दृष्टि से वाच्य तथा सूच्य का प्रयोग किया है। अभिनय की दृष्टि से कथा में जिन प्रसंगों पर विचार किया गया है, वहाँ वाच्य शैली को विकसित किया गया है तथा जहाँ मात्र सूचना से काम चल जाता है, वहाँ सूच्य का प्रयोग किया है।

12. उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु में जिन पात्रों की योजना की गई है उनमें भी पर्याप्त समानता है। दोनों नाटकों की कथावस्तु में आये हुए पात्र मानोभावों के प्रतिनिधि है तथा पात्रों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक योग्यता के अनुसार भाषा में संस्कृत तथा प्राकृत का प्रयोग किया गया है।

13. उक्त दोनों नाटकों की संवाद योजना में मृदु तथा ललित पदों का प्रयोग किया गया है तथा उसकी कथा वस्तु वौद्धिकों को सुख देने वाली है।

14. उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु शिवान्त या सुखान्त है, दुःखान्त नहीं।

15. उक्त दोनों नाटकों में आन्तरिक जीवन की नाना प्रकार की मानसिक वृत्तियों का चित्रण पाया जाता है, उक्त दोनों नाटकों में मानव स्वभाव की विचित्रताओं तथा शील संस्कार आदि का निरूपण किया गया है।

16. उक्त दोनों नाटकों की आधिकारिक कथावस्तु के साथ जिन प्रांसगिक का निर्माण नाटककारों ने किया है, उनमें प्रासंगिक कथाएँ नाटकीयता उत्पन्न करती हैं तथा मूल कथा को सार्थकता प्रदान करती है।

17. उक्त दोनों नाटकों में मूल कथानक के साथ उपकथानकों की सहयोजना में दोनों नाटककारों ने अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया है।

18. उक्त दोनों नाटकों में विष्णुभक्ति को आधार भूत सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है।

19. उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु में हास्य व्यंग्य का उपयोग तो किया गया है। विदूषक के कारण पात्रों और गम्भीर वातावरण के नष्ट होने का भय बना रहता है। अतः दोनों ने न तो विदूषक का ही प्रयोग किया, न ही व्यंग्य प्रधान विषयों को

हास्य का तमासायी बनाया।

20. उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु शान्त रस प्रधान है।

21. उक्त दोनों नाटकों में सांख्ययोग, जैन–बौद्ध, पाशुपत, मीमांसक, शांकर, भास्कर आदि मतों का संक्षेप में प्रयोग किया है।

उक्त दोनों नाटक गम्भीर दार्शनिक नाटक हैं, किसी एक गुण या दोष का नहीं इसमें मानव हृदय की शक्तियों के अन्तर्विरोध का सफल उपस्थापन है। इस उपस्थापन में मानव हृदय की दो स्वभाविक वृत्तियों के चित्र हैं, जिनमें विवेक पक्ष की वृत्तियाँ आत्मज्ञान की ओर प्रवृत्त रहती है, तो दूसरे पक्ष की वृत्तियाँ उसके विमुख रहती हैं।

उक्त दोनों नाटकों में विवेक नायक और प्रतिनायक महामोह को चित्रित किया गया है। उक्त दोनों नाटकों का समाहार अत्यन्त भव्य, सामाजिक सक्रियता, राजनीतिक शान्ति, हिंसा, विप्लव आदि का शमन तथा जीवन की शान्ति और सामरस्य पूर्ण वातावरण के चित्रण के साथ ही नाटकों का उपसंहार होता है। समस्त संघर्षों को पार करके और जीवन के त्रासद वातावरण से ऊपर जाकर जीवन का फलागम प्राप्त होता है। समस्त हलचल भरा जीवन शान्ति सागर में परिवर्तित हो जाता है। विष्णुभक्ति के माध्यम से चित्त वृत्तियाँ भाव भावित हो जाती है और एक अपूर्वरस का संचार होता है। शम के आधार पर जिस शान्ति का साम्राज्य नाटककारों ने स्थापित किया है, व मनोभूमि में एक ऐसी आनन्द की अनुभूति जाग्रत करता है जिसमें किसी एक देशकाल का नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति का पुरूषार्थ प्रतिबिम्बित होने लगता है। यह पुरूषार्थ मात्र भौतिक उपलब्धियों के लिये नहीं, वरन् सम्पूर्ण सृष्टि के मंगलमयी विधान के लिये समर्पित हो जाता है। व्यक्ति का लोक के प्रति य समर्पण ही भगवद्भक्ति का चरम उल्लास है और कांलन्जयी महाशिव का नान्दी प्रसाद है। नाट्यकला की यही सार्थकता है कि वह भगवान शिव के लिये समर्पित हो जाए, जिसमें जीवन का 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं मूर्तित हो उठे।

22. उक्त दोनों नाटकों में आवान्तर घटनाओं का बाहुल्य है। फिर भी इसके इतिवृत्त में विभिन्न घटनाओं तथा प्रसंगों का समन्वय इस कौशल के साथ किया गया है कि दर्शकों की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। सभी घटनाओं का परस्पर एक दूसरे से सम्बन्ध है। उनमें स्वाभाविकता का विनाश कहीं भी नहीं हुआ है। नाट्य सूत्रकारों

ने रंगमंच पर युद्ध के अभिनय को दिखलाने का निषेध किया है। इस दृष्टि से इन्हें युद्ध के दृश्य का वर्णन अपने नाटकों में नहीं करना चाहिए था, किन्तु उन्होंने उसके वर्णन प्रकार को ही बदलकर नाटक में नवीन सौन्दर्य की उपज की है।

उक्त दोनों नाटकों में कथावस्तु की छोटी से छोटी घटनाओं द्वारा दी गई सूचना भी मुख्य कथानक के प्रवाह को आगे बढ़ाने में सहयोगी है। इन नाटकों में प्रयुक्त विष्कम्भकों का प्रयोग नाटककारों के द्वारा बड़े कौशल से किया गया है तथा उनमें सभी आवश्यक घटनाओं की सूचनाएँ यथास्थान दे दी गई हैं, जो कथासूत्र के निर्वाह के लिये आवश्यक है। दोनों नाटककारों की कथावस्तुओं की तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि तुलना करने पर जो विन्दु ऊपर वर्णित किये गये हैं, उनसे दोनों की कथावस्तुआं की घटनाओं में साम्य है। दोनों की कथावस्तु पौराणिक है किन्तु दोनों रूपक प्रधान होने के कारण मनोवैज्ञानिक भी है। दोनों कथावस्तुओं के नायक विवेक है जो अमूर्त होकर भी मूर्त मानव जाति की श्रेष्ठतम प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते है और आन्तरिक संघर्ष के प्रधान नायक सिद्ध होते हैं। दोनों नाटकों की कथावस्तु में कला का आश्रय लिया गया है। दोनों सुखान्त है, दोनों भक्ति प्रधान है, दोनों दर्शनिक आधारभूमि पर है, दोनों का अभीष्ट लक्ष्य मानव कल्याण है। दोनों रूपक प्रधान नाट्य कृतियाँ है। दोनों की कथावस्तुएँ अपनी दार्शनिक आध्यात्मिक और यौगिक विशेषताओं के साथ उच्च स्तर पर स्थित है। दोनों की कथावस्तुएँ अपने–अपने लक्ष्य की पूर्ति में पूर्ण तथा सफल है।

कथावस्तु की दृष्टि से वैषम्य

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प-सूर्योदय' की कथावस्तु में वैषम्य–

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' की कथावस्तु प्रायः समान पौराणिक आध्यात्मिक आधारों पर आद्धत होने के कारण पर्याप्त साम्य रखती है किन्तु 'संकल्प–सूर्योदय', 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की प्रतिस्पर्धा में लिखा गया नाटक है अतः उसमें कुछ मूलभूत अन्तर भी है, जो 'प्रबोध–चन्द्रोदय' से उसको पृथक अस्तित्व प्रदान करता हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की अनुकृति मात्र नहीं है। 'संकल्प–सूर्योदय' के रचनाकार के सामने जो प्रेरणाएँ थी, उनमें से 'प्रबोध चन्द्रोदय' की रूपक योजना भी एक प्रमुख प्रेरणा का कार्य कर रही थी, किन्तु वेदान्त देशिक की दार्शनिक विचारधारा तथा देशकाल की परिस्थतियाँ भिन्न होने के कारण उनके

नाटक की कथावस्तु में जो वैषम्य दिखाई पड़ते हैं, उनमें नाटककार की दार्शनिक विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। दोनों नाटकों के कथावस्तु के प्रमुख वैषम्य निम्नवत है—

1. 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की कथावस्तु का दर्शनिक आधार अद्वैत दर्शन पर आधारित है, जो मुख्यतः उपनिषदों के सिद्धान्तों को लेकर चलता है, अद्वैत या शंकर वेदान्त उपनिषदों के बहुत निकट है, शंकराचार्य जो अद्वैत दर्शन के प्रमुख प्रतिष्ठाता माने जाते है, अपने प्रस्थान त्रयी— उपनिषद्, ब्रह्म सूत्र, और भगवद् गीता में प्रतिपादित सिद्धान्तों का मुख्यतः समर्थन है। अद्वैत के अनुसार ही कथावस्तु में आत्मा को तात्विक पदार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया है तथा आधार शंकर की श्रुतियों के—एकं मेवा द्वितीयम् (छः 2/2), सर्व खल्विम् ब्रह्म (छः 3/14/1), नेह नानास्ति किंचन (4/4/19), आत्मा वा इत्मेक एवग्र आसीत् (एत0 2/1/1) आदि श्रुतियों के सिद्धान्तों का प्रतिफलन उपस्थित किया है तथा आत्मा की सत्ता और आत्मा के आनन्द स्वरूप और उपाधिहीन प्रेम तथा दुःखशून्यता के लिये , ज्ञान और विवेक की प्राप्ति को आवश्यक मानते है। अज्ञान का आश्रय लेनी वाली शक्तियों से युद्ध करके माया और अविद्या को नष्ट करते हैं तथा माहमोह को पराजित करते हैं। इसी सत्य को तथा वेदान्त के दार्शनिक सिद्धान्त को कथावस्तु का विषय बनाया है। इस प्रकार अन्तःकरण की वृत्ति से अविच्छिन्न चैतन्य की स्थिति में आत्मलाभ, आत्मज्ञान और अविद्या की निवृत्ति ही आत्मा के अपने स्वरूप में अवस्थिति है।

'संकल्प—सूर्योदय' की कथावस्तु आचार्य रामानुज के 'विशिष्टाद्वैत' वेदान्त पर आधारित है। शंकर के अद्वैत में जगत को मिथ्या कहा गया है और कर्म के जीवन को विशेष महत्व नहीं दिया गया है। इसके विपरीत, रामानुज जगत को वास्तविक, वर्णाश्रम धर्म को अनिवार्य और भक्ति को मोक्ष का आवश्यक साधन मानते हैं। तत्वमीमांसा में वे भी एक प्रकार का अद्वैतविशिष्टाद्वैत है, रामानुज ने शंकर के मायावाद का विस्तार से खण्डन किया है। शंकर और रामानुज के आत्मविषयक मतों में भी महत्वपूर्ण भेद है। शंकर आत्मा को ज्ञान स्वरूप मानते हैं, किन्तु रामानुज के मत में आत्माज्ञान नहीं ज्ञाता है। आत्मा अपने में अणु है किन्तु उसका धर्मभूत ज्ञान विभु है। रामानुज के दर्शन में भक्तिवाद को भी पुष्ट किया तथा श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में तमिल के आलवार सन्तों की वाणीं को भी महत्व दिया। 'संकल्प सूर्योदय' की

कथावस्तु इसी विशिष्टाद्वैत की दार्शनिक चिन्तन धारा से संपृक्त है, अस्तु दार्शनिक आधारभूत अन्तराल के कारण 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' की कथावस्तु में उल्लेखनीय मौलिक अन्तर का पता चलता है।

2. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' की आधिकारिक कथावस्तु में जहाँ विवेक द्वारा मोह को पराजित करने की समानता है, वहीं अन्तर यह है कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में विवेक का पुत्र 'प्रबोध' है, महामोह को विजित कर प्रबोध की स्थिति में विष्णु भक्ति के माध्यम से पुरूष को शाश्वत ज्ञान प्राप्त कराता है तथा श्रद्धा इसमें सहायक होती है।

जबकि 'संकल्प सूर्योदय' में विवेक महामोह को पराजित करता है और विष्णुभक्ति ज्ञान तथा मोक्ष को प्राप्त कराती है। भक्ति के साथ ही योग की धाराओं का भी समन्वय 'संकल्प–सूर्योदय' में कराया गया है, जहाँ एक ओर विष्णुभक्ति की प्राप्ति होती है, वहीं दूसरी ओर षटचक्र, अष्टांगयोग तथा समाधि की प्राप्ति का लक्ष्य लेकर कथावस्तु विकसित होती है।

'संकल्प सूर्योदय' में योग और समाधि का निरूपण इस प्रकार है–

षडंगमथवाष्टांग समाधिमधिरोक्ष्यतः
अवलम्बनमक्षुद्रा दयैका दानवद्रुहः ।।[67]

3. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्रासंगिक कथावस्तु में विष्णुभक्ति की कथा व वैयासिकी सरस्वती की कथा प्रासंगिक कथा के रूप में विकसित की गई है।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में प्रासंगिक कथाओं में विष्णुभक्ति के अतिरिक्त 'दशअवतारों' की कथाओं का सन्निवेष है।

4. प्रबोध–चन्द्रोदय में नाटककार ने विश्वनाथ पुरी वाराणसी के विराट एवं भव्य रूपों का अत्यन्त उदत्त शैली में जो काव्यात्मक चित्रण किया है। वह नाटककार की वाराणसी के प्रति भक्ति भावना का परिचायक है। वाराणसी को 'मगलं मरणं काशी' कहकर मरण के लिये श्रेयष्कर माना गया है। भले ही संत कवि कवीर ने यह कहकर जो 'कविरा काशी मरे तो रामै कौन निहोरा रे' भले कवीर ने वैष्णव तीर्थ की उपेक्षा की हो, किन्तु श्रीकृष्ण मिश्र ने पवन पावनी वाराणसी के सौन्दर्य की मुक्त कण्ठ से सराहना की है। उसने जलप्रपातों से गिरने वाले जल की राशि की ध्वनि को सुना है, चन्द्र किरणों के समान स्वच्द एवं धवल कान्ति के महलों, शिखरों तथा उसमें

फहराने वाली ध्वज–पताकाओं और शरद काल के बादलों की शोभा का साम्य वाराणसी में देखा है तथा वाराणसी नगरी को भगवान शंकर का शिवार्चन करते हुए चित्रित किया है जिससे पता चलता है कि 'प्रबोध चन्द्रोदय' का नाटककार विष्णु भक्ति के अतिरिक्त शिव भक्त भी है तथा वाराणसी मुक्ति धाम को आडम्बरों से मुक्त कराने के लिये प्रयत्नशील है।

'संकल्प–सूर्योदय' में जिन प्रसिद्ध तीर्थ धामों एवं तीर्थस्थलों का उल्लेख मिलता है, उनमें मन्दार, कलधौत–गिरि, गन्धमादन पर्वत, गान्धारग्राम, हिमालय, नेपाल, साकेत जनपद, मथुरा, सालिग्राम, वाराणसी एवं दक्षिण के तीर्थो में विन्ध्याचल, कावेरी, दक्षिण वद्रिकाश्रम, यादवाचल, भार्गव निवास स्थान, चोल देश, पाण्डय देश आदि उत्तर तथा दक्षिण भारत के तीर्थों का उल्लेख करके राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का संकेत किया है। वहीं योग साधना तथा सामाधि की दृष्टि से बहिरंग तीर्थों तथा तीर्थ स्थलों को योग साधना में बाधक होना बताया है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि–''

परिणमति जनानां संविदानन्दरूपा
निखिलमपि विहाय स्निह्मतीवात्तरागम्
स्वरपरिणतिचित्रां मूर्छनां भूषयदभिः
श्रुतिसुरमिततन्त्रीझंकृतै स्वरैगीतैः ।।[68]

एक ओर जहाँ संगीत के वातावरण की मुग्ध कण्ठ से प्रशंसा की है वहीं ये संगीत आदि की समाधि में वाधक मानते हैं इससे ज्ञात होता है कि वे साधना सिद्धि और समाधि को भी श्रेष्ठतर मूल्य के रूप में स्वीकार करते हैं। उनका इस प्रकार का कथन नाटककार की मानसिक भाव भूमि को तैयार करता है कि कला संगीत आदि के प्रति निष्ठा रखते हुए भी ध्यान और समाधि को जीवन का लक्ष्य मानते हैं। और जहाँ सामान्य रूप से भक्त गण गंगा की कल्कल्याणकारी ध्वनि में गोते लगाते हुए दिखते हैं वहीं वेदान्त देशिक के अनुसार संयमी और तपा धीर पुरूषों के लिये गंगा की लहरों की ध्वनि तंरगें भी वाधा उपस्थिति करती हैं। नाटककार का कथन निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है–

अयमिह विषयस्तपोधनानां न भवति संयमिनां निवासयोग्यः
हरिचरणदीनिपातघोषैर्मुखरितकाननगहरो हिमाद्रिः ।।[69]

मनः शुद्धि, हृदय शुद्धि, आचरण शुद्धि के अतिरिक्त वेदान्त देशिक ने तो स्थान शुद्धि तक को भी महत्व दिया है। कोई स्थान दल अथवा वासना के कारण शापग्रस्त है तो ऐसे स्थलों या प्रसंगों का ध्यान मात्र आ जाने से एकाग्र साधक की चित्तवृत्तियाँ स्खलित हो सकती है, इसी प्रकार का एक दृष्टान्त निम्नवत् है–

सुराधीशस्वैरक्षणकुपितशापयुधवधू
दृषनतादुर्जातप्रशमनपदाम्भोजरजसे।[70]

नाटककार का कथन है कि अहल्या शाप ग्रस्त होकर निवास कर रही थी, वे स्थल भी साधकों के योग्य नहीं है। उक्त प्रकरणों से ये स्पष्ट है कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' के नाटककारों की वैष्णवी दृष्टि भक्ति और योग परक पृथकता लिये हुए है।

5. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की कथा वस्तु षष्ठ अंको में विभाजित एंव व्यवस्थित है। नाटककार ने अंको का नामकरण नहीं किया है। जबकि 'संकल्प–सूर्योदय' की कथावस्तु दश अंकों में विभक्त है, अंकों का नामकरण भी नाटककार ने किया है जो इस प्रकार है – प्रथम अंक (स्वपक्ष–प्रकाश), द्वितीय अंक (परपक्ष–प्रतिक्षेप), तृतीय अंक (मुक्त्युपायारम्भ), चतुर्थ अंक (कामादिव्यूहभेद), पंचम अंक (दम्भाद्युपालम्भ), षष्ठ अंक (स्थानविशेषसंग्रहो), सप्तम अंक (शुभाश्रय निर्धारणं), अष्टम अंक (मोहादिभंगो), नवम अंक (समाधिसंभवो), दशमोऽक (निः श्रेयसलाभो) अंको के विभाजन की व्यवस्था से स्पष्ट है कि 'संकल्प–सूर्योदय' का रचनाकार नाट्य वस्तु के निबन्धन में 'प्रबोध चन्द्रोदय' की तुलना में अधिक सतर्क एवं व्यवस्थित है।

6. 'प्रबोध चन्द्रोदय' की कथावस्तु में जिन पौराणिक पात्रों का उल्लेख है, उनमें सरस्वती प्रमुख है।

'संकल्प सूर्योदय' की पौराणिक कथावस्तु में नारद और तुम्बुरूः जैसे पौराणिक पात्रों का उल्लेख किया गया है।

7. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' के नामकरण में साम्य होकर भी एक अन्तर परिलक्षित होता है। चन्द्र और सूर्य दोनों में प्रतीकात्मक व्यंजनाए है। चन्द शीतलता और आत्मशान्ति का प्रतीक है, सूर्य शाक्ति, ओज और ब्रह्मतेजस का प्रतीक है। इस प्रकार चन्द्रोदय और सूर्योदय दोनों नाटककारों के दृष्टिभेदों को, मूल प्रतीकों के अन्तर को रेखांकित करते हैं।

8. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की कथावस्तु में जिस नायक विवेक का उल्लेख किया गया है, वह दो पत्नियों (मति, उपनिषद्) से समान अनुराग रखता है किन्तु 'संकल्प–सूर्योदय' की कथावस्तु का नायक विवेक एकमात्र पत्नी सुमति को चुनता है। इस प्रकार 'प्रबोध चन्द्रोदय' जहाँ सामाजिक रूप से बहुपत्नित्व वाली सामाजिक व्यवस्था को मान्यता देता दिखलाई पड़ता है, वहीं 'संकल्प–सूर्योदय' का नाटककार एक पत्नी वाली सामाजिक व्यवस्था को मान्यता देता हैं।

9. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की कथा वस्तु में जिस भाषा शैली का प्रयोग किया गया है, वह जटिल, दुरूह अस्पष्ट न होकर सरल भावपूर्ण और प्रसाद तथा माधूर्य गुणों से गुम्फित है, जबकि 'संकल्प–सूर्योदय' की कथा वस्तु में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की भाषा से अधिक संस्कृतनिष्ठ सामासिक, श्लिष्ट प्रतीत होती है। प्रसाद और माधुर्य के अतिरिक्त उसमें ओज का भी प्राधान्य दिखलाई पड़ता है। प्रबोध–चन्द्रोदय के रचनाकार श्रीकृष्ण मिश्र की भाषा में सहजता और सरलता में उनके व्यक्तित्व में नाटककार के अलावा कवि व्यक्तित्व का समन्वय है। किन्तु 'संकल्प–सूर्योदय' में भाषा के स्तरीय और प्रमाणिक प्रयोगों के पीछे वेंकट वेदान्त देशिक का तार्किक, दार्शनिक एवं ज्ञान, वैराग्य, मण्डित योगी, योगीश्वर व्यक्तित्व भी सम्मिलित है, वेदान्त देशिक रामानुज परम्परा से बंधकर भी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले आचार्य कोटि के रचनाकार हैं। अतः उनकी नाट्यकृति में भी आचार्यत्व की प्रतिभा पृथक रूप से प्रतिबिम्बित होती है और कथावस्तु को भी एक नया उन्मेष प्रदान करती है।

11. 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की कथावस्तु में भक्ति, श्रृंगार और करूणा के प्रसगों और उपकथाओं को निबद्ध किया है, जिनसे भक्ति, श्रृंगार और करूण रस की निष्पत्ति होती है। 'संकल्प–सूर्योदय' में भक्ति, करूण एवं वीरता से सम्बन्धित प्रसंगों और उपकथाओं को निबद्ध किया गया है। जिनसे भक्ति रस के साथ वीर रस का भी संचार होता है।

उपर्युक्त दोनों नाटकों में जो अन्तर दिखाई पड़ता है, वह दोनों नाटककारों की मौलिकता को परिलक्षित करता है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं संकल्प–सूर्योदय की मौलिक उद्भावनाएँ–

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की रचना रूपक नाट्य परम्परा के लिये एक नवीन तथा

मौलिक प्रयोग था। यद्यपि वैदिक साहित्य में विशेष रूप से ईश, केन, कठ, मुण्डक, मान्डूक्य, तैतरीय ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि उपनिषदों में रूपक कथात्मक संवाद पाये जाते हैं, देव और दानवों के युद्धों के उल्लेख भी हैं तथा दैत्यों की पराजय और देवताओं की विजय के सन्दर्भ में अंहकार आदि तत्व बोधों के सुन्दर रूपक कथात्मक वृत्त और संवाद पाये जाते हैं। किन्तु 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में नाट्यविधा के अर्न्तगत रूपक कथायें हैं। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की रचना में वेदान्त, बौद्ध सत्यों एवं उपनिषद् में व्यक्त अन्तर्भूत भावों के विखरे उपकरणों को संचित कर अपनी मौलिक दृष्टि का प्रयोग करते हुए ग्यारहवीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड के कालंजर क्षेत्र में कीर्तिवर्मा नरेश की विजय के उपलक्ष्य में जिस रूपक कथात्मक 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में अमूर्त पात्रों को मानवीय कृत शैली में प्रस्तुत किया है, वह वैदिक उपजीव्य ग्रन्थ रत्नों की देन भले ही स्वीकार की जाय, नाटककार पर प्राचीन वैदिक आख्यानों का प्रभाव भले ही परिलक्षित हो, किन्तु नाटककार श्रीकृष्ण मिश्र ने प्राचीन वैदिक इतिहास और दर्शन की परम्परा को 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के माध्यम से ग्यारहवीं शताब्दी में पुनर्जीवन प्रदान किया तथा संस्कृत नाट्य क्षेत्र को अपनी अप्रतिम प्रतिभा के योगदान से आलोकित कर दिया। कलान्तर में रूपक प्रधान रचनाओं की एक लम्बी परम्परा साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचना के लिये गतिशील हो उठी। इसी धार्मिक एवं दार्शनिक रूपक कथात्मक नाटक का प्रभाव उत्तर भारत की परिधि से निकल कर दक्षिण भारतकी ओर गया और 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की परम्परा में उससे प्रेरित होकर उसकी स्वस्थ स्पर्धा में 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक की रचना भारतीय दर्शन के दाक्षिणात्य विद्वान सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रतिभा वाले विशिष्टद्वैत–वाद की 'वाग्लैशाखा' के प्रतिष्ठापक 'वेंकटनाथ वेदान्त देशिक' ने 13वीं शती के उत्तरार्द्ध में श्रीरंगम् में 'संकल्प–सूर्योदय' की रचना की। उसकी प्रेरणा भले ही उन्होंने 'प्रबोध चन्द्रोदय' से ग्रहण की, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने विशिष्टाद्वैत दर्शन को आधार बनाकर इस नाट्यकृति को भक्ति एवं योग से संपृक्त करके इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उसके माध्यम से परिपुष्ट जीवन दर्शन विकसित हो सका। मानव जीवन के आन्तरिक संघर्ष को जिस जीवन्ततः के साथ प्रस्तुत नाटकों में विश्लेषित किया गया है, उससे नाटककारों की नयी दृष्टि, नयी संरचना और नवीन नाट्यकृति का गौरव अक्षुण्यरूप से प्राप्त हो सका है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' दोनों पौराणिक परम्पराओं के नाटक होकर भी मानवमन की जीवन्त समस्याओं को उद्घाटित करने वाले, कथावस्तु को मानवीकृत पात्रों से सजीव बनाने वाले, महान नाट्य–शिल्पी है। अनेक ऐसे प्रंसग है जो नाटककारों की अपनी मौलिक योजना को प्रमाणित करते हैं। कथावस्तु को मनोवैज्ञानिकता, दार्शनिकता एवं गुरूता प्रदान करने के लिये सार्थक प्रयत्न किया गया है। जो पात्र, दर्शन, पुराण और मनोविज्ञान के क्षेत्र से लिये गये हैं, वे न तो शुष्क है और न जीर्ण है। रूपक और मानवीयकरण की शैली द्वारा नाटककारों की मौलिक कल्पना के मणिकांचन योग से प्रभावान हो उठे हैं। मानव की साधना पथ पर आने वाले विरोधों का जहाँ सजीव वर्णन नाटककारों ने किया है, वहीं कथावस्तु को आध्यात्मिक चिन्तन के अनुकूल बनाने के लिए सात्विक पात्रों को संघर्षशील प्रभावीरूप में उपस्थित किया गया है।

नाटककारों की मौलिक कलात्मक दृष्टि का ही परिणाम है कि तत्वों से सम्बन्धित इतिहास को मानवीय रंग में रंगकर, उनमें मिलन और विरह के भावों को आरोपित करके, पात्रों को नये कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। नाटककारों ने कही प्रेम के प्रंसग लिये हैं, तो कहीं रूप और छद्म के, कहीं सरस्वती वैयासिकी मुख्य कथा में सहयोगी बनती है, तो कहीं सात्विकी श्रृद्धा इस अभिनय में सहायक सिद्ध होती है। रति और काम के प्रंसग भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। नारद और तुम्बुरू भी कम आकर्षक नहीं है। पात्रों में सर्वत्र काट–छांट के द्वारा जो रेखाकंन किया है, उसमें मनोविज्ञान ने रंग भरकर चरित्र को जीवन्त कर दिया है।

दार्शनिक विचारों को साहित्यिक नाट्यकृति में रूपान्तरित करने में जिस मौलिक चेतना और कला–कौशल का परिचय आलोच्य नाट्ककारों ने दिया है, वह भी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। वस्तुविन्यास में पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को वे रेखांकित करना नहीं भूलते, सर्वत्र नैतिक आग्रह भी बना रहता है। रोमानी दृष्टि पर नैतिक धारणाएँ नियन्त्रण करती हैं।

नाट्यकृति को काव्यात्मकता प्रदान करना भी आलोच्य नाट्यकारों की मौलिक दृष्टि का परिणाम है। देव, दानव और मानव एक ही देह में सहअस्तित्व के साथ निवास करते हैं। तीर्थ हृदय में ही स्थित हैं, हृदय में ही वृन्दावन, वाराणसी, निवास करते हैं। हृदय ही समाधि स्थली है। इस प्रकार उत्तर, दक्षिण के विभिन्न तीर्थों के

सौन्दर्य वर्णन और उनमें ह्रदय की स्थिति को रूपायित करना नाट्यकला को एक और विशिष्टता प्रदान करती है। पवित्र तीर्थों और नदियों की कलरव ध्वनि भी साधकों के चित्त को अशान्त कर सकती है। जहाँ सामान्य रूप से भक्तगण गंगा की कलकल्याणकारी ध्वनि में गोते लगाते हुए दिखाई देते हैं, अथवा गंगा जल में आस्था के सुमन चढ़ाते हुए दिखते हैं, वहीं गंगा समाधि और ध्यान में डूबे हुए साधकों के लिये विपरीत प्रभाव छोड़ती है। इस प्रकार भारतीय ध्यान और योगसाधना के प्रसंगों से अनेक मौलिक उद्भावनाएँ नाट्यकृतियों में मिलती हैं।

आलोच्य नाट्यकृतियाँ वैचारिक धरातल पर मानव के अस्तित्व, सभ्यता और संस्कृति के तथा मोक्ष आदि की समस्याओं को लेकर चलतीं है। भावुक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से नाटककारों ने समस्या का निरूपण किया है तथा समाधान भी प्रस्तुत किया है। मानव मन के रागात्मक बन्धनों को एक नये भावात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने में, हिंसा अराजकता, तथा आंतक से छुटकारा दिलाकर मनुष्य को शान्ति और आनन्द प्रदान करने की दिशा में ये नाटक संघर्ष और द्वन्द्वों को पार करके जिस आन्तरिक जगत में प्रवेश कराते हैं, वे बाह्य संघर्ष की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं और यह आन्तरिक संघर्ष किसी एक देशकाल तक सीमित नहीं है। अतः सार्वदेशिक और सार्वभौमिक मूल्यों की खोज आत्मानुभूति में की गई है। इस विशिष्ट उद्देश्य को नाट्यरचना में मूर्तित करने के कारण सम्पूर्ण नाटक मानव मन की रसात्मक अनुभूति तथा जिजीविषा से परिचालित होता है। आत्मा की मुक्ति और भक्ति की छाया में जीवन का वैशिष्ट मुखरित हो जाता है। इस प्रकार मानव मन की अन्तर्वस्तु को नाट्य शैली से कलात्मक रूचि के साथ व्यक्त करने में निश्चय ही आलोच्य नाट्ककारों ने नये नाट्य शिल्प को चुना है जो उनकी मौलिकता को पद–पद में उद्घाटित करते हैं। आध्यात्मिक जागरण ही वास्तविक जागरण है। जिस राष्ट्र में उसकी संस्कृति और उसके आध्यात्मिक मूल्य जीवन्त रहते हैं, वहीं राष्ट्र अपने शौर्य और गौरव को अखण्डित रख सकता है। मानवता के सृष्टि बीज बोने में जो कार्य उपनिषदों ने किया था, उसी विराट चेतना को रूपक नाट्य कृतियों के माध्यम से 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' के रचनाकारों ने परिपूर्णता प्रदान की। सांस्कृतिक आध्यात्मिक मूल्यों, आदर्शवाद के नैतिक आग्रह के साथ ही मानव विवेक की संघर्षमय विजय की चेतना के माध्यम से जिन उच्चादर्शों को संस्कृत के

इन दोनों स्वनामधन्य नाटककारों ने नाट्यक्षेत्र में स्थापित किया है, वे न केवल उत्तर और दक्षिण के बीच सांस्कृतिक सेतु बन्धन का कार्य करेंगें वरन् समस्त सृष्टि को मानव मुक्ति का सन्देश देते हुए मानव को मांगल्य की ओर प्रेरित करने का भी प्रयत्न करते रहेगें।

पंच अर्थ प्रकृतियाँ–

नाटक में वस्तु का औदात्य प्रयोजनीय होता ही है। उसका व्यवस्थित गुम्फन भी उसे रमणीयता प्रदान करने में कम कारण नहीं होता। सुन्दर से सुन्दर वस्तु यदि उपस्थापन में ठीक न बन पड़े तो उसकी रमणीयता पराहत हो जाती है और साधारण से साधारण वस्तु गुम्फन की निपुणता से रूचिकर प्रतीत होने लगती है। रचना में इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि जो कुछ समावेश के योग्य हो, उसी का समावेश किया जाय। नाटक रचना इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे दर्शकों में अरूचि उत्पन्न न हो सके, उनके हृदय चमत्कृत हो जायें और वृतान्त भी उपहत न हो। इन प्रयोजनों की सिद्धि के लिये कथाभाग को विभाजित कर और ठीक रूप में अंकों की परिकल्पना कर उसका निर्वाह करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इन प्रयोजनों की सिद्धि के लिये ही 5 अर्थ प्रकृतियों और पांच कार्यावस्थाओं पर आधारित पांच संन्धियों का विवेचन किया गया है और उससे नाट्य रचना का दिशा निर्देशन प्राप्त होता है।[71] फलस्वरूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेक अवान्तर घटनाएँ मिलकर व्यापार करती हैं और तब कहीं जाकर फल की सिद्धि होती है। इन्हें 'अर्थप्रकृति' कहते हैं। 'अर्थ' का तात्पर्य है प्रयोजन या वस्तु का फल और 'प्रकृति' का अर्थ है कारण या 'हेतु'। ये प्रयोजन की सिद्धि के कारण होते हैं और इसलिए इनका नाम 'अर्थप्रकृति' है। ये पाँच प्रकार की होती हैं। बीज, बिन्दु, पताका, तथा कार्य।[72] आचार्य भरत ने भी इन पांचों प्रकृतियों को स्वीकार किया।[73] जो उत्तरवर्ती सभी आचार्यो को मान्य है। किन्तु नाट्यदर्पणकार की अपनी एक विशेष सूझ है। इन्होंने अर्थ प्रकृतियों को 'उपाय' की संज्ञा प्रदान की है। इन उपायों का विभाजन चेतन एवं अचेतन की दृष्टि से एक विलक्षण प्रकार से किया है। 'उपाय' की परिभाषा यही है कि किसी उद्देश्य से जिसका उपादान किया जाय उसे 'उपाय' कहते हैं।' चेतन उपाय के भी दो प्रकार होते हैं– मुख्य और उपकरण भूत। बिन्दु मुख्य चेतन हेतु हैं, क्योंकि एक तो इसका मुख्य कथा से सम्बन्ध रहता है दूसरे यह फल के अनुसंधान के लिये

कथानक को भी बढ़ाता है ओर परिशीलकों की रूचि को भी बनाये रखता है। उपकरणभूत चेतन हेतु को भी दो वर्गों में विभाजित किया है–

1. स्वार्थसिद्धियुक्त होने के साथ परार्थ सिद्धि पर।

2. परार्थसिद्धितत्पर। इसी प्रकार अचेतन हेतु को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– मुख्य एवं अमुख्य। बीज मुख्य अचेतन हेतु है क्योंकि अन्य सब उसके आश्रित रहते हैं एवं कार्य अमुख्य है। इस प्रकार का वर्गीकरण और क्रम नाट्यदर्पण के अतिरिक्त हमें अन्य किसी भी ग्रन्थ में नहीं दिखाई पड़ता है।[74] आचार्य भरत ने अर्थ प्रकृतियों का निम्न क्रम में रखा है– बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। इसके विपरीत नाट्यदर्पणकार ने बीज, पताका, प्रकरी, बिन्दु और कार्य– इस क्रम से इन्हें संजोया है।[75]

नाटककार अपनी आवश्यकता और इच्छानुसार इनमें से किन्हीं का और किसी भी क्रम से उपयोग कर सकता है। और 'पताका' और 'प्रकरी' का प्रत्येक नाटक में पाया जाना अनिवार्य नहीं है। बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य इस प्रकार है–

बीज– दशरूपककार के अनुसार– ''स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।''[76] उस फल का निमित्त बीज कहलाता है, जिसका आरम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत किया जाता है और आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार होता है। नाट्यदर्पणकार ने बीज का लक्षण इस प्रकार दिया है– ''रूपक के आरम्भ में सूक्ष्म रूप से उद्दिष्ट एवं अन्त में फल रूप में पर्यवसित होने वाला हेतु विस्तृत हो जाने से 'बीज' कहलाता है।[77]

यह बीज नाटक के इतिवृत्त का उपाय होता है। यह तत्व इतिवृत्त में धान आदि के बीज के समान पल्लवित होता है। जिस प्रकार कृषक वृक्ष एवं फल आदि की इच्छा से भूमि मे बीज का निक्षेप करता है, उसी प्रकार नायक आदि पात्र भी धर्म, अर्थ एंव काम रूप फल के लिये आमुख के बाद बीज वपन करता है। बीज का उल्लेख सर्वदा आमुख के बाद किसी पात्र के द्वारा किया जाता है। कारण यह है कि बीज नाटक के इतिवृत्त का ही एक अंश होता है, वह प्रस्तावना रूप नहीं हो सकता। कभी–कभी नट के मुख से आमुख में ही बीज का उल्लेख करा दिया जाता है, तब मुख्य इतिवृत्त के प्रारम्भ होने पर कोई पात्र उसे पुनः दुहराता है। जब तक वह किसी पात्र के मुख से पुनः नहीं कहलाया जाता, बीज का रूप नहीं धारण कर सकता। यथा 'रत्नावली', 'सत्यहरिश्चन्द्र', 'यादवाभ्युदय' इत्यादि नाटकों में 'बीजोत्पत्ति' दोहराई

गई है।

भारतीय नाटकों में कोई भी घटना बीज का रूप धारण कर सकती है। इसमें अनिवार्यतः दो पक्षों का संघर्ष ही नाट्य बीज नहीं होता। 'प्रबोध—चन्द्रोदय' नाटक में बीज का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।— जब 'काम' 'रति' से कहता कि विवेक से उपनिषद् देवी में प्रबोधचन्द्र नाम के भाई के साथ उत्पन्न होगी। इस विषय में ये सभी शम दम आदि उद्योग रत है।''[78]

'संकल्प-सूर्योदय' नाटक में प्रथम अंक में उस संकल्प रूप 'पुरूष का संसार से छुटकारा बीज का निरूपण किया गया है।[79] इसी प्रकार यदि नाटक का फल विपत्ति का निराकरण हो तो बीजरूप में विपत्ति का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होता है और परिशीलक को अवसान में विपत्ति—निवारण रूप फल का अनुमान हो जाता है। इसी प्रकार नाट्य बीज के अनेक रूप हो सकते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नाट्यवस्तु किस दशा में जा रही है, इसका संक्षिप्त संकेत कर दर्शकों को नाट्यरसास्वादन के लिये तैयार कर लोना ही 'बीज' का मुख्य लक्ष्य है। यह कभी नायक के आश्रय से प्रकट किया जाता है, कभी प्रतिनायक के और कभी प्रधान सहायक (मन्त्री इत्यादि) के आश्रय से उपनिबद्ध किया जाता है।

बिन्दु— आवान्तर कथा के विच्छिन्न होने पर जो घटना उसे प्रधान कथा के साथ जोड़ने वाली होती है, उसे जोड़ देने के हेतु को 'बिन्दु' कहते हैं। दशरूपककार के अनुसार बिन्दु—'' अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणाम्।''[80]

यह दूसरी 'अर्थ—प्रकृति' है जिस प्रकार पानी में तेल की बूँद डाल देने से वह सारे पानी में फैल जाती है, उसी प्रकार नाटक में कथावस्तु के विकास में जो तत्व चारों ओर बिखरे हुए होते हैं, उन्हें बिन्दु की संज्ञा प्राप्त होती है।

नाट्यदर्पण में प्रायः नाट्यशास्त्र (अभिनवगुप्त) का अनुसरण किया गया है। इन सभी की व्याख्या में कुछ अपनी—अपनी विशेषताएँ हैं— ''बिन्दु रूपक की कथावस्तु का एक प्रधान फल होता है जो महाकार्य कहलाता है।[81] 'भावप्रकाश',[82] 'साहित्य-दर्पण',[83] प्रतापरूद्रयोभूषण[84] आदि में बिन्दु का स्वरूप इसी प्रकार माना गया हैं। भावप्रकाश का लक्षण यह है—

फले प्रधाने विच्छिन्ने बीजस्यावान्तरैः फलैः
तस्याविच्छेदको हेतुः विन्दुरित्याह कोहलः।

जब कथानक का विस्तार होने लगता है तब कभी–कभी अधिक समय तक निरन्तरता तथा एकरूपता बनी रहने से परिशीलकों में वितृष्णा की सम्भावना होने लगती है। कभी–कभी कार्यविधि के अधिक विस्तृत हो जाने से मूल कथानक के प्रमुख पात्र भी दृष्टि से ओझल होने लगते हैं और बीज भी दृष्टिगत नहीं होता। उसके अनुसंधान की भी आवश्यकता पड़ने लगती है। तब बीज तथा प्रमुखपात्रों में किसी का अनुसंधान करने के लिये कथानक में मोड़ आते है। और उनसे कथानक के अधिक विस्तार की सम्भावना बढ़ जाती है। इन मोड़ों को भी बिन्दु की संज्ञा प्राप्त होती है। इस प्रकार के बिन्दु बीज के समान समस्त कथा में व्याप्त होते है। अन्तर केवल यह होता है कि बीज नाटक के प्रारम्भ में निबद्ध किया जाता है, बिन्दु प्रारम्भ में नहीं।

इस प्रकार बिन्दु के उद्देश्य हो गये– एक तो कथानक में स्थान–स्थान पर मोड़ देते हुए नीरसता न उत्पन्न होने देना, दूसरे बीच–बीच में नायक इत्यादि का अनुसरण तथा अनुसंधान करते हुए पाठक या दर्शक का सम्बन्ध बनाये रखना। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में बिन्दु इस प्रकार है–

दंभ और अंहकार द्वितीय अंक में प्रवेश करते हैं और महामोह के प्रबल प्रभाव की वार्ता करते हैं किन्तु साथ ही अंहकार भयभीत होकर दंभ से विवेक के द्वारा उपस्थित मोह के लिये संकट का कथन करता है–"अंहकार–दंभ तुम्हारे माता पिता तृष्णा और लोभ भी तो सकुशल है।– दंभ वे भी मोह की आज्ञा से यहीं है। उनके विना मैं क्षणभर भी नहीं रह सकता हूँ। आपने किसलिये यहाँ आने की कृपा की है। अंहकार– वत्स मैने सुना था कि विवेक से महामोह को महाभय उपस्थित है, इसीको यथार्थतः जानने आया हूँ।"[85] इस कथन में बिन्दु नामक अर्थप्रकृति की योजना हो जाती है।

पताका– नाटकगत पताका चेतन तत्व के रूप में स्वीकार की गयी है जबकि सामान्य पताका अचेतन होती है। नाट्यदर्पणकार का कहना है कि पताका एक तो प्रशस्त होती है, दूसरे किसी राजा के साथ प्रसिद्धि को भी प्राप्त कर लेती है। नाटकगत व्यापक प्रासंगिक इतिवृत्त भी मुख्य नायक के साथ प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है और कार्य सम्पादन में सहायक होने के कारण इसका प्रशस्त्य भी स्वयंसिद्ध है। इसी आधार पर सानुबन्ध प्रांसगिक इतिवृत्त को पताका की संज्ञा दी गई है।

अतः कार्य सम्पादन के लिये नायक को कतिपय सहयोगियों की अपेक्षा होती

ही है। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति थोड़े ही होते हैं जो बिना सहायक के अनायास ही स्वकार्य सम्पादित कर लेते हैं। अतः अधिकांश कथानकों में पताका अपेक्षित होती ही है किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। जो प्रासंगिक कथा मूलकथा के साथ दूर तक साथ–साथ चलती जाती है, वह पताका कहलाती है। पताका नायक की सहायता तो करता ही है, कभी–कभी उसका अपना भी प्रयोजन होता है जो मूल नायक की सहायता से सिद्ध होता है। कथानक के मध्य में गर्भ सन्धि के अर्न्तगत इसकी योजना अधिक समीचीन मानी जाती है। अच्छा यही है विमर्श सन्धि के अन्त तक पताका का कार्य समाप्त हो जाना चाहिए या पताका नायक को अपना फल तो विमर्श तक प्राप्त ही हो जाना चाहिए। वैसे कहीं–कहीं पताका निर्वहण सन्धि तक चलती रहती है, इस विषय में अनिवार्य नियम नहीं बनाया जा सकता।

प्रकरी– प्रकरी शब्द की व्युत्पत्ति है 'प्रकरोतीत प्रकरी' अर्थात जो प्रकृष्ट रूप में सहायता करे, उसे प्रकरी कहते है।[86] प्रकरी मूल कथानक में केवल सहायक होकर ही आती है, उसका प्रयोजन नहीं होता जबकि पताका–नायक का अपना भी प्रयोजन होता है।

कार्य– दशरूपक के अनुसार कार्य–''कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्ध मेकानेकानुबन्धि च।''[87] कार्य व्यापार को भी कहा जाता है और फल को भी। भरत ने दोनों मिलित अर्थो में यह नामकरण किया है। उनकी परिभाषा इस प्रकार है–''जब बुद्धिमान लोग आधिकारिक वस्तु का ठीक रूप में प्रयोग करते हैं, तब उसके लिये जो समारम्भ (व्यापार) होता है उसे कार्य समझना चाहिए। किन्तु बाद के आचार्यो ने फल पर विशेष बल दिया है। दशरूपक में त्रिवर्ग को सम्मिलित या पृथक–पृथक अथवा दो के योग में नाट्यफल या कार्य के लिये स्वीकार किया गया है।'कार्य' नामक सन्ध्यंग प्रबोध–चन्द्रोदय,में दृष्टव्य है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में षष्ठ अंक में प्रबोध का उदय इस प्रकार है–

> ''उद्धामद्युतिदामभिस्तडिदिव प्रद्योतयन्ती दिशः
> प्रत्यग्रस्फुटदुत्कटास्थि मनसो निर्भिद्य वक्षस्थलम्
> कन्येयं सहसा समं परिकरैमेहिं ग्रसन्ती भज
> त्यन्तधनिमुपैति चैकपुरूषं श्रीमान्प्रबोधोदयः।[89]

और प्रबोध के उदय होने पर क्या पाया, क्या खोया, क्या गया? यह स्यूत सा है या

ढाला हुआ सा है, यह कुछ है या कुछ नहीं, इस तरह के वितर्क मार्ग में त्रैलोक्य नहीं ठहर सकता, क्योंकि स्वभाविक प्रकाश से त्रैलोक्य का मूल तम दलित हो जाता है, ऐसा मैं प्रबोधोदय हूँ।'' इस प्रकार प्रबोध का उदय और परम ज्ञान की उपलब्धि होती है, यही कार्य अर्थ–प्रकृति हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में विष्णु भक्ति का उदय और मोक्ष प्राप्ति का वर्णन इस प्रकार है–

विष्णुभक्तिः – नूनमनिकेतो यत्रसायंगृहत्वमास्थितो यथालब्धवृत्तिर्योगी। अथवा

श्रीरंग वृषभाचलं करिगिरि श्रीमद्यदुक्ष्माधरं
साकेतं मधुरामुपैष्यति हरिक्षेत्रं वदर्याश्रमम्
अन्तः संभृतसप्ततन्त्ववभृथादा देहपातोदया
धद्वा संप्रति यत्र कुत्रचिदसौ यत्रैकतानं मनः।[90]

अपि च

स्वयं च व्यक्तक्षेत्रे विपिनविषये वा विधिवशात
प्रंशस्ते दुष्टेवाकुचन समये व्यक्तवपुषः
मुकुन्दस्त्रय्यन्तप्रथिमहिमा सोय्यमनधान
प्रपन्नानुद्वत्य स्वपदमनपायं शमयति।।[91]

उक्त में अर्थ प्रकृति की कार्य का लक्षण दिया गया है।

साहित्यदर्पण का कथन है कि–''जो अपेक्षित साध्य हो, जिसको दृष्टिगत रख कर व्यापार का प्रारम्भ किया गया हो और उसकी सिद्धि के लिए कार्य का समापन किया जाये उसे कार्य कहते हैं।''[92] नाट्यदर्पण में व्यापार पर भी बल दिया गया है– प्रधान नायक, पताका नायक और प्रकरी नायक को प्रधान फल के रूप में जो साध्य अभीष्ट होता है, उसमें प्रारम्भावस्था में उपक्षिप्त बीज का सहकारी होता है अर्थात् उसे सम्पूर्णता प्रदान करने वाला होता है, इस प्रकार का सैन्य, कोश दुर्ग, साम इत्यादि उपाय रूप सभी तत्व जिसमें द्रव्य गुण क्रिया इत्यादि सभी कुछ सम्मिलित हैं कार्य कहा जाता है।''[93]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पांच अर्थ–प्रकृतियों का व्यवस्थापन इस प्रकार किया है– ''किसी वृक्ष का उपमान लो तो बीज, 'बीज' है। बिन्दु उसे सुरक्षित, पल्लवित पुष्पित करने का सोद्देश्य प्रयत्न है, कार्य कुदाल खाद इत्यादि है, पताका किसी स्वार्थ सिद्धि के प्रतिदान में प्रयुक्त माली है ओर प्रकरी क्वचित कदाचित

अनायास उपस्थित होकर सहायता करने वाला हितैषी। 'इस प्रकार किसी नाटक में तीन, चार या पाँच अर्थ–प्रकृतियाँ हो सकती हैं। फल प्राप्ति में जो तत्व जितनी अधिक सहायता प्रदान करता है, उतना उसे महत्व प्राप्त होता है और वैसी ही प्रधानता अभिप्रेत होती है।

पंच अवस्थाएँ

नाट्यदर्पणकार के अनुसार–"मुख्य फल की प्राप्ति के बीजादि उपायों का प्रयोग नायक के प्रधान वृत्त में आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम अवस्थाएँ अवश्य निबद्ध की जाती है।"[94]

नाटक के इतिवृत्त के अन्त में नायक द्वारा धर्म अर्थ एवं काम से सम्बन्धित किसी फल की प्राप्ति करने का वर्णन होता है। इस फल प्राप्ति के हेतु नायक जो कार्य व्यापार करता है, नाट्यशास्त्र उसकी पांच अवस्थाएँ मानता है। इन अवस्थाओं के नाम हैं–

1. आरम्भ
2. प्रयत्न
3. प्राप्ति सम्भव
4. नियता फल प्राप्ति
5. फलयोग।[95]

दशरूपककार के अनुसार अवस्थाएँ इस प्रकार हैं–

"अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः
आरम्भयत्न प्राप्त्याशानियताप्तिफलागमः।"[96]

आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलागम।

1. आरम्भ– "औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे" दशरूपक के अनुसार–"प्रचुर फल की प्राप्ति के लिये उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ कहलाता है।"[97] नाट्यदर्पण भी इनसे सहमत हैं।[98] मुख्य साध्य के प्रति यह विचार आना कि यह इसके द्वारा साध्य है, यही आरम्भ है।'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में आरम्भ इस प्रकार है–

प्रथम अंक में राजा और मति के परस्पर संवाद में मति के द्वारा यह कहने पर–

मतिः – आर्यपुत्र, एवं दीर्घतर निद्राविद्रवितप्रबोधे परमेश्वरे कथं प्रबोधोत्पत्ति र्भविष्यति।[99]

अर्थात् आर्यपुत्र इस प्रकार की दीर्घ निद्रा से जब प्रबोध भगा दिया गया है, तब

परमेश्वर में प्रबोधोत्पत्ति कैसे होगी। आदि वाक्य में आरम्भ नामक अवस्था है। 'संकल्प सूर्योदय' नाटक में आरम्भ नामक अवस्था में– संसारिक ताप से अत्यन्ताद शरीर की रक्षा कैसे होगी आदि कथन में आरम्भ नामक अवस्था है।[100]

2. प्रयत्न– ''प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।[101]

फल के प्रयत्न न होने पर (उसके लिये) अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना ही प्रयत्न कहलाता है।''

''नाट्यदर्पणकार ने भी दशरूपक का मत स्वीकार किया है।[102] तद्नन्तर फल की प्राप्ति न होने पर शीघ्रता के लिये गये व्यापार 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में इस प्रकार है–''तृतीय अंक में शान्ति द्वारा श्रृद्धा की खोज शान्ति– सखिकिर्मान्विष्यते। अन्वेषितैवनीवारांकित सैकतानि सरितां कुलानि वैखानसै राक्रान्तानि सीमच्चषालचमस– व्याप्ता गृहा यज्वनाम् प्रत्येकं च निरूपिताः प्रतिपदं चत्वार एवाश्रमाः श्रृद्धायाः कक्चिदप्यहो खलुमया वार्तापिनाकर्णिता।[103]

खोज तो नीवारयुक्त तटवाले मुनिसेवित नदीकूल, समिध चषाल तथा चमस से पूर्ण याज्ञिकों के घर, सर्वत्र खोज की गई, चारों आश्रमों में अन्वेषण किया, किन्तु श्रृद्धा की चर्चा कहीं नहीं सुनी आदि कथनों में प्रयत्न नामक अवस्था है।

''संकल्प–सूर्योदय' नाटक में चतुर्थ अंक में योगमुक्त साधक के पूर्वाभ्यास से उत्पन्न काम आदि व्यसनों के दूरीकरण का प्रयत्न किया गया है।''[104]

3. प्राप्त्याशा– ''उपायापायाशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्ति सम्भवः।''[105] उपाय के होने तथा विघ्न की शंका होने से जो फलप्राप्ति की सम्भावना (मात्र) होती है, वह प्राप्त्याशा कहलाती है। नाट्यदर्पणकार के अनुसार 'फल सम्भावना किंचित, प्राप्त्याशा हेतुमात्रतः। हेतु मात्र से फल प्राप्ति की किंचित सम्भावना प्राप्त्याशा है[106] यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में तृतीय अंक में कापालिक के द्वारा महाराज को महान कष्ट आ पहुँचा है क्योंकि सिद्धि का मूल है देवी विष्णुभक्ति, उसका अनुसरण सात्विकी श्रृद्धा कर रही है और फिर पंचमो अंक में विवेक के सम्बन्ध में विष्णु भक्ति– वत्से वीरछयकर इस युद्ध में बलवान महामोह से अभियुक्त वत्स विवेक का क्या समाचार होगा? इसी से हमारा हृदय विकल है।[107] और भी विष्णुभक्ति– वत्से, यदप्यभ्युदयः प्रायः प्रमाणादव– धार्यतेकामं तथापि सुहृदामनिष्टाशंकि मानसवत्से, यद्यपि प्रमाण से अभ्युदय का निश्चाय किया जाता है फिर भी हितैषियों का हृदय अनिष्ट की आंशका ही किया

करता है।''

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के तृतीय अंक में समाधि रूपी उपाय के होने पर, चतुर्थ अंक के काम आदि व्यसनों के उत्पन्न होने की शंका, यहाँ पर प्राप्त्याशा नामक अवस्था है।[109]

4. नियताप्ति– नाट्यदर्पण के अनुसार–''नियताप्ति रूपायानां साकल्यात् कर्यानिर्णयः।[110]

उपायों की सफलता से होने वाले कार्य की प्राप्ति का निर्णय 'नियताप्ति' है। दशरूपक के अनुसार–''अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।'' विघ्नों के अभाव से फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति कहलाती है। इस अवस्था में फलसिद्धि के बाधकों का निराकरण और फलप्राप्ति के अभीष्ट साधनों के उपस्थित हो जाने से फल–प्राप्ति निश्चित हो जाती है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में विवेक का महामोह से युद्ध एवं विजय तदनंतर सरस्वती के उपदेश से मन का विरक्त होना। यथा ''भगवति आपकी अनुकम्पा से हमारा मोह तो दूर हो गया है किन्तु आपके मुखचन्द्र से निर्गत विमल उपदेश रूप अमृत से धुल जाने पर भी हमारे हृदय को शोक के वेग कभी–कभी मलिन कर देते हैं। अतः सदा मेघ श्यामलवर्ण, हारकेयूरकुण्डलधारी भगवान का स्मरण करते हुये अथवा ग्रीष्म ऋतु में शीतल जलाशय की सदृश वीतशोक ब्रह्म में अभेद भावना के द्वारा प्रवेश कर आत्म शान्ति प्राप्त करो आदि से मन का विरक्त होना नियताप्ति नामक अवस्था है।[112] अतः 'संकल्प–सूर्योदय' में समाधि का पूर्ण होना और विष्णु के स्वरूप का ज्ञान होना।

त्रिगुणात्मिकया तिरस्करण्या स्थगयामास शुभं य एष मोहः।
स ब्रभूव तदा त्वदाभिमुख्ये दिवसारोपितदीपनिष्प्रकाशः।[113]

अतः यहाँ समाधि के पूर्ण हो जाने पर मोक्ष रूप फल की प्राप्ति नियताप्ति कहलाती है।

5. फलागम– नाट्यदर्पण के अनुसार–''साक्षादिष्टार्थसम्भूतिः, नाटकस्य फलागमः।[114] नायक को साक्षात् अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति 'फलागम' है। दशरूपककार के अनुसार–''समग्रफलसंपत्ति फलयोगो यथोदितः।[115] पूर्णरूप से फल की प्राप्ति ही फलागम है। डा0 शिवशरण शर्मा के अनुसार–''नायक द्वारा किये गये कार्य व्यापार के अन्त में जब अनुकूल फल पूर्णरूप में उपलब्ध हो जाता है, तो इसे फल योग कहा

जाता है।''[116] 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में फलागम इस प्रकार है– षष्ठ अंक में मन के निर्विषय हो जाने पर पुरूष को ब्रह्म का ज्ञान हो जाना–

असौ त्वदन्यो न सनातनः पुमान्
भवान्न देवात्पुरूषोत्तमात्परः
स एष भिन्नस्त्वदनादिमायया
द्विधेव विम्वं सलिले विवस्वतः।।[117]

अर्थात् वह सनातन पुरूष तुमसे भिन्न नहीं है तुम भी पुरूषोत्तम से भिन्न नहीं हो यह परमात्मा तुम्हारी अनादिमाया से भिन्न प्रतीत होता है जैसे एक ही सूर्यबिम्ब जल में तरंग भेद से भिन्न प्रतीत होता है, आदि कथनों से ब्रह्मज्ञान का प्राप्त होना वामन का निर्विषयी होना फलागम है।

'संकल्प–सूर्योदय'– नाटक में मानव का मोह नाश, और विष्णुभक्ति का पुरूष को मोक्ष की प्राप्ति रूप फलागम है। यथा–

इयमखिलमर्थप्रार्थनाकल्पवल्ली
सितमतिभिरनन्यैः सेविता सिद्धवृन्दे
द्युतिभिरविरलाभिर्द्योतयन्ती दिगन्तान्
विशति सुमतिसौधं विष्णुभक्तिर्विशुद्धम्।।[118]

समाधि साधनों के द्वारा विष्णु भक्ति की प्राप्ति का मोक्ष की प्राप्ति–

किं विज्ञानैः किं तपोदानयज्ञैः
किं वान्यैश्च त्वत्परित्यागदीनैः
ज्ञातुं द्रुष्टुं तत्वतश्च प्रवेष्टुं
शक्यं ब्रह्मानन्यभाजा त्वयैव।[119]

अतः परम भक्तिः साक्षात्कार हेतु परम भक्ति रूप विष्णु का साक्षात्कार और मोक्ष प्राप्ति यहाँ फलागम नामक अवस्था है।

यद्यपि नाट्यशास्त्र में अर्थ प्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं का उल्लेख किया गया है तथापि अर्थ प्रकृतियों का सम्बन्ध इतिवृत्त के फल के साथ है। ये उसी फल की सिद्धि के उपाय होते हैं। कार्यावस्था का साक्षात् सम्बन्ध नायक के व्यापार (कार्य) के साथ है। इसलिये भारतीय नाट्यशास्त्र में इन दोनों के आधार पर इतिवृत्त का पांच भागों में विभाजित किया गया है। अवस्था का अर्थ है कायिक, वाचिक और मानसिक

व्यापार। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि फलोत्पत्ति का ''आवेश पांचवी अवस्था है, पूर्ण फलप्राप्ति और उसका उपभोग नाटक का साध्य कहा जा सकता है जिसके बाद नाटक समाप्त हो जाता है।''[120]

पाँच अवस्थाओं से समन्वित होकर पाँच अर्थ प्रकृतियाँ ही क्रम से मुख इत्यादि पाँच सन्धियाँ बन जाती हैं।

पंच नाट्य सन्धियाँ एवं नाट्कीय तत्व

'सन्धि' शब्द 'सम्' पूर्वक 'धा' धातु से निष्पन्न हुआ है। अतः इसका अर्थ होता है सन्ध ान करना। नाटक के किसी भी कथानक का उचित रूप से निर्वाह करने के लिए उसको भागों में विभक्त कर देना चाहिए। इससे कथानक का सन्धान उचित रूप में हो जाता है। नाट्य दर्पणकार के अनुसार नाटक के कथाभाग के अंश, परस्पर अपने रूप से और अंको के साथ मिलते हैं इसलिये सन्धि कहलाते हैं।[121] नाटक की रचना करते समय यदि नाटककार सन्धि के अंगो पर ध्यान देता है तो उसके लिये इष्टार्थ का समावेश करना सुगम हो जाता है। किसी भी नाटक में बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका रंगमंच पर प्रदर्शन उचित नहीं माना जाता है। 'सन्धि' के अंगों का ध्यान रखने से उन निषिद्ध कथांशो का परित्याग भी सफलता पूर्वक किया जा सकता है। अतएव सन्धि के अंगो का ध्यान रखना आवश्यक है। नाटक में चमत्कार लाने के लिये भी इन संध्यंगो की सहायता लेनी पड़ती है। इनका ध्यान रखने से वृतानत क्षीर्ण नहीं हो पाता है। सम्भवः इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भरतमुनि ने कहा है– ''जिस प्रकार अंगहीन मनुष्य युद्ध के अयोग्य होता है, उसी प्रकार अंगहीन काव्य भी प्रयोग के लिए अनुपयुक्त रहता है।''[122]

और यदि नाटककार अपनी नाट्य रचना पर ध्यान दे तो सन्धि एवं सन्ध्यंग उस नाटक में स्वयं ही आ जायेंगे। परन्तु यदि कोई नाट्ककार सन्धि और सन्ध्यंग के फेर में पड़कर नाटक–निर्माण में संलग्न रहेगा तब तो उसका नाटक (नाटक)न होकर सन्धि एवं सन्ध्यंग की उदहरणमाला बन जायेगा। अतः इन सन्धियों का यथा स्थान परित्याग भी कर देना चाहिए। दशरूपककार के अनुसार सन्धि का लक्षण इस प्रकार है–

अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंच सन्धयः।।[123]

पांच अवस्थाओं से समन्वित होकर पांच अर्थ प्रकृतियाँ ही क्रम से मुख इत्यादि पांच सन्धियाँ बन जाती हैं। नाट्यशास्त्र[124] इन पांचों सन्धियों को अनिवार्य मानता है किन्तु अन्य रूपकों में इनमें से कुछ छोड़ दिया जाता है। अभिनवभारती में उद्धृत उपाध्याय मत के अनुसार–"तो प्रत्येक इतिवृत्त पंचसन्धि समन्वित ही होता है।"[125] भारतीय नाटकों में पाश्चात्य नाटकों के समान संघर्ष अनिवार्य नहीं माना जाता। किसी बीज को लेकर नाटक रचना की जाती है, वह बीज ही विकसित होकर कार्य तक पहुँचता है जिसमें व्यापार कारण होता है। कार्यावस्थाओं द्वारा इस बात का पता चलता है कि अमुक बीज किस सीमा तक विकसित हो चुका है। कार्यावस्था के उस भाग को सन्धि की संज्ञा दी जाती है। कार्यावस्थाओं की संख्या पांच है, उसी आधार पर सन्धियाँ होती है। कुछ विद्वानों का विचार है कि सन्धियाँ अर्थ–प्रकृतियों का ही अनुसरण करती है–[126]

सन्धि समन्विति–

मुख सन्धि– आरम्भ तथा बीज का संयोग।

प्रतिमुख सन्धि– यत्न तथा बिन्दु का योग।

गर्भ सन्धि– प्राप्त्याशा तथा पताका का योग।

निर्वहण सन्धि– फलागम तथा कार्य का योग।

किन्तु अर्थ प्रकृतियों के विषय में यह मत भ्रामक है। यह सत्य है कि आरम्भ कार्यावस्था के साथ बीज तथा फलागम कार्यावस्था के साथ कार्य अर्थप्रकृति होती ही है। किन्तु यह बात नहीं कि बीज की प्रतीति अन्यत्र नहीं हो सकती और न यही बात है कि बिन्दु इत्यादि अपने स्थान पर ही आते हैं। यह अपनी आवश्यकता की बात है। प्रकरी कभी पताका से पहले आ सकती है और बिन्दु कभी–कभी कई बार आता है, वह पताका से पीछे भी आ सकता है। अतः सन्धियाँ, अर्थ प्रकृतियों का नहीं कार्यावस्था का अनुसरण करती है। अतः दशरूपककार ने सन्धि का लक्षण इस श्प्रकार दिया है–"अन्तरैकार्थ सम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।[127] एक प्रयोजन से अन्वित होने पर किसी एक आवान्तर प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होना ही सन्धि कहलाता है।"

सन्धियों के प्रकार–

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, सावमर्श और उपहसित। "मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहति।[128]

इन सन्धियों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है–

1. **मुख सन्धि**– नाट्यदर्पण के अनुसार ''नाटक की प्रथम सन्धि 'मुख सन्धि' है। इस सन्धि में रूपक के बीज की सूचना दी जाती है। रस एवं भाव आदि से रमणीय 'मुखसन्धि' प्रारम्भावस्था में होने के कारण मुख के समान है।[129] आचार्य धनंजय ने मुखसन्धि को इस प्रकार निरूपित किया है–

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्ननार्थ रससम्भवा
अंगानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात।[130]

जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है, वह मुखिसन्धि है। बीज और आरम्भ के समन्वय से इसके बारह अंग हो जाते हैं। इसमें एक ओर बीजोत्पत्ति का अवतरण होता है जितना प्रारम्भ के लिये उपयोगी हो इसमें परम्परित रूप से विचित्र रसों का सन्निवेश होता है और रसोपयोगी अर्थ अंकुरित कर दिया जाता है।

इसके बारह अंग इस प्रकार हैं–

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्
युक्ति प्राप्ति समाधानं विधानं परिभावना
उद्वभेदभेदकरणान्यन्वर्थान्यिथ लक्षणम्।।[131]

उपक्षेप परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उदभेद, भेद और करण ये अन्वर्थ नाम हैं–

1. **उपक्षेप**– बीज का (शब्दों में) रखना ही उपक्षेप है। ''बीजन्यास उपक्षेपः।[132]

कथावस्तु का मूलभूत भाग, जो धान्य आदि बीज के समान होता है, बीज कहलाता है। ऐसे बीज के आवाप–मात्र को उपक्षेप कहते हैं।[133] कहने का तात्पर्य यह है कि बीज के समान सूक्ष्म प्रस्तुत इतिवृत्त की सूचना का संक्षेप में निर्देश कर देना 'उपक्षेप' है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के प्रथम अंक में काम का कथन ''विद्यानाम राक्षसी समुत्पत्न्यसे।[134] वाक्य में उपक्षेप नाम सन्ध्यंग।

2. **परिकर**– नाट्यदर्पणकार के अनुसार–'' उपक्षित अर्थ को विशेष वचन के द्वारा थोड़ा से फैला देना 'परिकर' है।[135] दशरूपक में इस प्रकार दिया है– ''तद्बाहुल्यं परिक्रिया। उस बीज की बृद्धि ही परिकर है। प्रबोध–चन्द्रोदय नाटक में इस प्रकार है– कामः बाढम्, सा खलु विवेकनोपनिषद्वेव्यां प्रबोधचन्द्रेण भ्राता सम जनयितव्या।

तत्र सर्व एते शमदमादयः प्रतिपन्नोद्योगाः।

रतिः – आर्यपुत्र कथमेतैरात्मनो विनाशकारिण्या विद्या या उत्पत्तिरेतैदुविनीतैः श्लाध्यते?[137]

3. परिन्यास– बीज का वपन कर देने से तथा उसके पल्लवित होने से जैसे कृषक को फल–लाभ की पूर्ण आशा रहती है वैसे ही नाटक के पात्र को भी बीज का आवाप करने से फल की प्राप्ति की आशा रहती है। इसी आशा का निबन्धन परिन्यास में किया जाता है।[138] दशरूपक में इसका इस प्रकार निरूपण किया है– "तन्निष्पत्तिः परिन्यासः।[139] उस बीज की निष्पत्ति परिन्यास कहलाती है। और प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में इस प्रकार है–

कामः– प्रिये कुलक्षयप्रवृत्तानां पापकारिणां कुतः स्वपरप्रत्यवायगणना। पश्च पश्य– सहजमलिनवक्रभावभाजां भवति भवः प्रभवात्मनाश हेतुः जलधरपदवीमवाप्य धूमो ज्वलनविनाशमनु प्रयाति नाशम्।[140]

अर्थात् प्रिये कुलक्षय में प्रवृत्त इन पापियों की स्वपर का क्या ज्ञान है? देखो स्वभाव मलिन तथा कुटिल पदार्थों का जन्म जनक तथा जन्य दोनों के विनाश का कारण हुआ करता है। जब धूम अग्नि बन जाता है, तब वह आग के साथ ही धूम का भी विनाश कर देता है।

4. विलोभन– "गुणाख्यानं विलोभनम्। गुणो का वर्णन विलोभन कहलाता है। किसी वस्तु (बीज) या पात्र के गुणों का आख्यान करना तथा प्रशंसा करना जिससे उस वस्तु या पात्र के प्रति दृढ़ अभिलाषा जाग उठे विलोभन है।[142] 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्रथम अंक में मति ओर राजा के सम्वाद में देखिए–

राजा–पश्य– असावहंकारपरैर्दुरात्मभि र्निबध्य तैः पापशठैर्मदादिभिः चिरं चिदानन्दमयो निरंजनो जगत्प्रभुर्दीनदशामनीयत।।[149]

अर्थात्– अहंकारी, दुरात्मा एवं पापी मद आदिकों से यह चिदानन्दमय नित्यनिष्कलंक जगदीश्वर बहुत दिनों से बन्धन में डालकर दीनदशा को पहुँचाया गया है। इस प्रकार ये पुण्यात्मा हैं और उनकी मुक्ति के लिये तत्पर हम लोग पापी हैं। दुर्जन विजयी हुये। मति–आर्यपुत्र यह परमेश्वर आनन्द और सौन्दर्य की प्राकृतिक स्थिति वाला नित्य प्रकाश स्वरूप त्रिभुवन व्यापी है। तो कैसे इन दुष्टों ने उन्हें बाँधकर महामोहसागर में डाल दिया। परमात्मा का गुण कथन वा प्रशंसा की गई अतः यहाँ पर विलोभन नामक संध्यंग है।

5. युक्ति– प्रयोजनों का निर्णय करना ही 'युक्ति' है। ''संप्रधनरणमर्थानां युक्तिः।
'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में 'युक्ति' नामक सन्ध्यंग इस पकार है–
राजा– प्रिये

सततधृतिप्युच्चैः शान्तोऽप्यवाप्तमहोदयोऽ
प्यधिगतनयोऽप्यन्तः स्वच्छोऽप्युदीरितधीरपि
व्यजति सहजं धैर्य स्त्रीभिः प्रतारितमानसः
स्वयमपि यतो मायासंगात्पुमानिति विश्रुतः।।[145]

अर्थात् अबाधधैर्ययुत शान्त उन्नत महान उदय को प्राप्त नीतिज्ञ, स्वच्छ हृदय, एवं परम बुद्धिमान भी स्त्रियों के द्वारा छलेजाने पर सहजधीरता से विचलित हो जाते हैं, जिसके कारण माया के संसर्ग से परमेश्वर भी पुमान कहे जाते हैं। नाट्यदर्पण में युक्ति को कर्त्तव्य सम्बन्धी विचार और दोष गुण के विवेचन को 'युक्ति' कहते हैं।[146]
6. प्राप्ति– 'प्राप्ति' सुखागमः।[147] दशरूपककार के अनुसार बीज के सम्बन्ध से सुख का प्राप्त होना ही 'प्राप्ति' है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के प्रथम अंक में 'प्राप्ति' नामक सन्ध्यंग इस प्रकार है– ''आर्य पुत्र, निश्चय ही जिस प्रकार सूर्य का तिरस्कार अन्धकार द्वारा सम्पन्न होता है, उसी प्रकार माया के द्वारा दीप्तिमान् महाप्रकाश के सागर परमेश्वर का भी अभिभव होता है।[148]
7. समाधानं– 'दशरूपकानुसार' समाधान इस प्रकार है– ''बीजागमः समाधानम्।[149] बीज का आगमन समाधान है। 'नाट्यशास्त्रानुसार' 'बीजार्थस्योपगमनं समाधानम्[150] 'साहित्य–दर्पण।[151] में इसका लक्षण समान है। ''नाट्यदर्पण इसका लक्षण– 'पुनर्न्यासः समाहितिः[152] अर्थात् संक्षेप में उपक्षिप्त बीज का फिर स्पष्ट रूप से आधान ही समाध ान है।'' 'प्रतापरूद्रयोभूषण में यही भाव है ''बीजसन्निधानं समाधानम्।[153] नाट्यदर्पण ओर साहित्यदर्पण में दिये गये उदाहरण में दशरूपक से अन्तर है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में 'समाधान' नामक सन्ध्यंग इस प्रकार है–
राजा–प्रिये, अविचार सिद्धेयं वेश्याविलासिनीव माया असतोऽपि भावानुपदर्शयन्ती परपुरूषं वंचयति।
पश्च– स्फटिकमणिवदभास्वान्देवः प्रगाढमनार्यया
विकृतिमनयां नीतिः कामप्यसंगतविक्रियः
प्रभवति तथाऽप्येषा पुंसो विधातुमंधीरताम्।।[154]

8. विधानं– दशरूपकानुसार–''विधानं सुखदुःखकृत्।[155]

सुख और दुःख दोनों को उत्पन्न करने वाला विधान कहलाता है।'' यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में 'विधान नामक' सन्ध्यंग इस प्रकार दृष्टव्य है–

राजा–किसी कारण अथवा प्रयोजन को देखकर माया नहीं प्रवृत्त होती है। यह स्त्रीरूपी पिशाचनियों का स्वभाव है। देखो–

संमोहयन्ति मदयन्ति बिडम्बयन्ति
निभर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति।।[156]

अर्थात् मोहित करती है, मदयुक्त बनाती है, प्रताड़ित करती है, प्रसन्न करती है, कष्ट देती है। हृदय में प्रवेश करके स्त्रियाँ पुरूषों का क्या नहीं कर देती हैं?

9. परिभावना– नाट्यशास्त्रानुसार– ''कुतूहलोत्तरावेगो विज्ञेया परिभावना'। अर्थात् जिसके पश्चात कुतूहल उत्पन्न हो जाता है, ऐसे आवेग को परिभावना कहा जाता है।[157] नाट्य दर्पण में भी 'विस्मयः परिभावना' कहकर यही भाव प्रकट किया गया है।[158] दशरूपक के भी लक्षण का यही भाव है।[159] प्रताप्ररूद्रयोभूषण में भी यही भाव है।[160] साहित्यदर्पण में यह भाव अधिक स्पष्ट हो गया है–

''कुतूहलोत्तरा प्रोक्ता तु परिभावना।। अर्थात् कुतूहलसहित वचन ही परिभावना कहलाती है।[161] अतः 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नामक नाटक में परिभावना नामक सन्ध्यंग का निरूपण इस प्रकार है–

मतिः– आर्य पुत्र, एवं दीर्घतरनिद्राविद्रावित प्रबोधे परमेश्वरे कथं प्रबोधोत्पत्ति भविष्यति।[162]

10. उदभेद– नाट्यशास्त्रानुसार– ''बीजार्थस्य प्ररोहो यः उदभेदः सतु कीर्तितः।[163] 'साहित्य–दर्पण' की भी यही मान्यता है।[164] नाट्यदर्पण के अनुसार– 'स्वल्प–प्ररोह उदभेदः' यह लक्षण देकर अधिक स्पष्ट किया है अर्थात् बीज का थोड़ा सा विस्तार जो भूमि में बोये गये बीज के फूलने के समान है, उद्भेद कहलाता है।[165] अतः दशरूपक का उद्भेद लक्षण उपर्युक्त लक्षणों से भिन्न है– ''उदभेदो गूढभेदनम्।[166] (बीज के अनुकूल) किसी गूढ बात को प्रकट करना ही 'उदभेद' कहलाता है। प्रतापरूद्रयोभूषण ने इन्हीं का अनुसरण किया है।[167]

वास्तव में यदि देखा जाय तो इन विद्वानों के मत में कोई भेद नहीं है, केवल

कहने की शैली में ही अन्तर है। दोनों ही परिभाषाएँ एक ही अर्थ का अवबोध कराती हैं। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाट्क में उद्भेद इस प्रकार है–

राजा–प्रिये

मानिन्याश्चिरविप्रयोगजनितासूयाकुलायाभवेच्छान्त्यादेरनुकूलनादुपनिषद्देव्या मया संगमः। तूष्णीं चेद्विषयानपास्य भवती तिष्ठेन्मूहूर्तंततो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिधाममविरहात्प्राप्तः– प्रबोधोदयः।[168]

अर्थात् चिर विरहोत्पन्न ईर्ष्या से आकुल उपनिषद् देवी को यदि शान्ति आदि अनुकूल बनालें और यदि मेरे साथ संगम हो जाये तथा आप विषयों को छोड़कर क्षण भर के लिए मौन का आश्रय ले लें तो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि का अभाव होने से प्रबोध का उदय उपस्थित हो सकता है। अतः यहाँ गूढ़ भेद का कथन किया गया है।

11. करण– ''करणं प्रकृतारम्भः – प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना 'करण' कहलाता है।[169] अर्थात प्रसंग के अनुकूल किया प्रारम्भ 'करण' है।[170]

कुछ विद्वान बाधाओं के समन को 'करण' मानते हैं। नाट्यदर्पणकार की परिभाषा इस परिभाषा की अपेक्षा अधिक तर्क संगत है क्योंकि प्रस्तुत क्रिया का सम्पादन या तो हमारी बाधाओं का शमन करता है या अभीष्ट की प्राप्ति कराता है।

12. भेद– नाट्यदर्पणकार के अनुसार पात्रों का निर्गम भेदन होता है। अर्थात् जहाँ पात्र रंगमंच से नेपथ्य की ओर चले जाते हैं, वहाँ भेदन होता है।[171] दशरूपक के अनुसार पात्रों को बीज के प्रति प्रोत्साहित करना भेदन है।[172] प्रतापरूद्रयो भूषण में दशरूपक का अनुसरण किया है।[173]

'नाट्यशास्त्र' के अनुसार 'संघातभेदनार्थो यः सः भेदः' पात्रों का अपने–अपने कार्य के अनुसार भिन्न–भिन्न स्थानों में जाने का जो अभिप्राय होता है वह अभिनेता (नटों) के रंगभूमि से निकलने का भी निमित्त हुआ करता है। नाट्यदर्पण के अनुसार भेद का प्रथम अभिप्राय है– दशरूपक के लक्षण को तृतीय मत के रूप में उद्धत किया गया है।[175] साहित्यदर्पण ने केचितु कहकर इस मत का उल्लेख किया है उनका लक्षण इस प्रकार है– 'भेदः संहतभेदनम्' मिले हुओं को पृथक करना ही भेद कहलाता है। ना0द0 के चतुर्थ मत में किया गया है।

इसके दो अन्य रूप भी स्वीकार किये गये हैं जैसे– पात्र प्रयोजन वश कार्यानुष्ठान के लिये जब रंगमंच से बाहर चले जाते हैं उसे भी भेद की संज्ञा दी

जाती है। कुछ लोग भेद की दूसरे रूप में व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार मुख्य कार्य में यदि प्रतिपक्ष संघटित हो और बीज तथा फलोत्पत्ति में निरोध उत्पन्न कर रहा हो तो डालकर उसको विघटित कर देने की प्रक्रिया 'भेद' कहलाती है। अतः 'प्रबोधा–चन्द्रोदय' नाटक में भेद इस प्रकार है– राजा–जिन अंहकारादि ने विश्व के आदि पुरूष को बांधकर, शरीरों में अनेक प्रकार से विभक्त करके, तथा डालकर मृत्यु के धाम पहुँचा दिया है। मेरे द्वारा उन ब्रह्म भिन्न लोगों को विद्या से विधिवत प्रायश्चित् कराकर उसे पुनः बह्मैकता की प्रतीति करायी जा रही है। इसलिए प्रस्तुत कार्य सिद्ध करने के लिये शम आदि को संयोजित करता हूँ।[176]

मुख सन्धि में 12 बीजोदगम सम्बन्धी तत्व सभी रूपकों में अनिवार्य होते हैं क्योंकि मुख सन्धि तो सभी रूपकों में होती है। नाटक का वास्तविक आरम्भ आमुख के बाद होता है। अतः मुख सन्धि के अंग भी आमुख के बाद आते है। इन अंगों में भेद एक ऐसा अंग है जो प्रवेशक, विष्कम्भक तथा दूसरी सन्धियाँ के अंकों के अन्त में अवश्य निबद्ध किया जाता है। क्योंकि पात्रों का निर्गम तो सर्वत्र होता ही है जो भेद का एक प्रमुख रूप है।

2. प्रतिमुख सन्धि– प्रतिमुख सन्धि का लक्षण निम्नवत है–

लक्ष्यालक्ष्यतयोदभेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्
बिन्दुप्रयत्नानुगमादंगान्यस्य त्रयोदश।[177]

जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य रूप में और कुछ अलक्ष्य रूप में उदभेद होता है वह प्रतिमुख सन्धि कहलाती है। बिन्दु (नामक अर्थ प्रकृति) और प्रयत्न (नामक कार्यावस्था)के योग से इसके तेरह अंग होते हैं–

विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी
नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पर्युपासनम्
वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यापि।[178]

विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्णसंहार (ये 13 प्रतिमुख सन्धि के अंग हैं)। इनका स्वरूप इस प्रकार हैं–

1. विलास– प्रतिमुख सन्धि का प्रथम अंग 'विलास' है। स्त्री पुरूषों की उत्कट अभिलाषा की अभिव्यक्ति (विलास) यह उत्कट अभिलाषा रति विषयक भी हो सकती

है और किसी अन्य स्थायीभाव विषयक भी। मुखसन्धि में जिस रस का उपक्षेप किया गया हो उसी के स्थायी का विभावादि से पोषण कर उसे रस पदवी पर पहुँचाना चाहिए और जिसमें वीर रस अंगी हो उसमें उत्साह का पोषण करना चाहिए।[179]

'दशरूपककार' के अनुसार रति के लिये जो इच्छा होती है वह विलास कहलाता है[180] और नाट्यदर्पणकार ने 'विलास' अंग का लक्षण 'नृस्त्रियोरीहा' किया है तथापि रति सम्बन्धी अभिलाषा ही इसका अभिप्राय नहीं है अपितु प्रकृत रस के अनुकूल नायक–नायिका की अभिलाषा 'विलास' है यह अभिप्राय है यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में विलास नामक सन्ध्यंग इस प्रकार है–

दम्भ– निष्यन्दैश्चन्दनानां स्फटिकमणिशिलावेदिकाः संस्क्रियन्तां मुच्यन्तां यन्त्रमार्गाः प्रचरतु परितो वारिधारा गृहेषु उच्छीयन्तांसमन्तात्स्फुरदुरूमणयः श्रेणयस्तोरणानां धूयन्तां सौधमूर्धस्वमरपतिधनुर्धामचित्राः पताकाः।[181]

(चन्दन के निष्यन्द से स्फटिक शिला निर्मित वेदिकाओं का संस्कार करिए। जलयन्त्रों को विमुक्त कर दीजिए, भवनों में जलधराएं सभी ओर चलें। मणियों से दीप्ततोरणों की पंक्तियाँ सर्वत्र अवलम्बित हों प्रसादों पर इन्द्रधनुष के समान चित्रवर्ण ध्वजायें फहरायें)

2. **परिसर्प**– ''दृष्टनष्टानुसर्पणम्। पहले देखे गये और फिर नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प कहलाता है।[182] कथानक के विस्तार में कभी–कभी मुख्य बीज दृष्टि से तिरोहित हो जाता है। उसकी ओर परिशीलकों का ध्यान बार–बार आकृष्ट करते चलना चाहिये। जिससे मुख्य कथानक के अधिक समय तक व्यवहित रहने से अंगीरस का आस्वादन तिरोहितन हो जावे। इस प्रकार छिपे बीज की ओर ध्यान आकृष्ट करना प्रतिमुख सन्धि का दूसरा अंग है।

3. **विधूत**– (सुखप्रद पदार्थों के प्रति) अरूचि (अनादर) ही विधूत कहलाता है[183] और कार्य की कठिनता का निर्देश करते हुए उसके प्रति खेदमिश्रित वितृष्णा की अभिव्यक्ति 'विधूत' नामक संध्यंग है। परन्तु नाट्यदर्पण कार ने समझौते की बातों से विरक्ति को विधूत कहा है। यह प्रतिमुख सन्धि के अधिक अनुकूल पड़ता है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नामक नाटक में विधूत का वर्णन इस प्रकार है–

महामोह– अजी, असत्संग, काम क्रोध लोभ मद मात्सर्य आदि को आदेश सुना दो कि आप लोग सावधान होकर देवी विष्णुभक्ति को मार दें–

महामोहः – भो असत्संग आदिश्यन्तां कामक्रोध लोभमदमात्सर्यादयो यथा योगिनी 'विष्णुभक्ति र्भवदिभरेवावहितैविहन्तव्येति।[184]

4. शम– ''तच्छमः शमः। उस (अरति) की शान्ति शम कहलाती है। अर्थात् जब कोई ऐसी घटना घट जाती है। कि उस कार्य की अशक्यता का भाव जाता रहता है और वह कार्य सम्भव दिखलाई देता है (शम या अरति का शम)। 'नाट्यदर्पण'कार ने शम को ताप प्रतिमुखांग माना है,जहाँ पर पात्रों को अनिष्ट के दर्शन हों, वहाँ ताप प्रतिमुखांग होता है।[185] यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में शम नामक प्रतिमुखांग इस प्रकार है–

महामोहः – श्रृद्धा की तनया है, इस प्रसंग से एक दूसरा उपाय भी हमारी दृष्टि में आ गया है। क्योंकि शान्ति की माता श्रृद्धा। वह परतन्त्र है। इसलिए किसी छल से उपनिषद के पास से श्रृद्धा को हथिया लें। इस तरह माँ के वियोग में शान्ति ढ़ीली पड़ जायेगी।[186] 'संकल्प-सूर्योदय'नाटक के द्वितीय अंक के श्लोक 35 में शम नामक सन्ध्यंग इस प्रकार है– विवेकरस्य गुणश्रेयान व्यवसायश्चभूपतिः स्वपक्षे तिष्ठमानेभ्यः स्वमया गत्य तिष्ठये।

5. नर्म– दशरूपकानुसार नर्म– ''परिहासवचो नर्म अर्थात् परिहास पूर्ण वचन ही नर्म कहलाता है।[187] कभी–कभी किसी व्यक्ति की उत्कण्ठा इत्यादि तीव्र भावना को देखकर कोई सहचर उसे चिढ़ाने के लिये मजाक करने लगता है, (नर्म) कथानक के विस्तार में थोड़ा बहुत मनोरंजन होना चाहिए। कथाभाग को सरस बनाने और गम्भीरता तोड़ने के लिये भी इस प्रयोग किया जाता है।

6. नर्मद्युति– उस नर्म से उत्पन्न द्युति ही नर्मद्युति मानी गई है।[188] कुछ आचार्यो के अनुसार दोष को आच्छादित करने वाला परिहास नर्मद्युति कहलाता है।

7. प्रगमन– 'उतरावाक्यप्रगमनम्।[189] अर्थात् (बीज के सम्बन्ध में) उत्तरोत्तर वचन ही प्रगमन है। नाट्यदर्पण में भी यही कहा गया है।[190] संकल्प-सूर्योदय नाटक के द्वितीय अंक के श्लोक 58 में प्रगमन का प्रयोग किया गया है।

8. निरोध– 'हितरोधो निरोधनम्। हित का रूक जाना 'निरोधन' कहलाता है।[191] नाट्यदर्पण के अनुसार ''इष्ट के रोध से जो दुःख होता है, उसे रोध कहते हैं।[192]

9. पर्युपासन– 'पर्युपास्तिरनुनयः।[193] (क्रुद्ध व्यक्ति को) मनाना ही पर्युपासन कहलाता है। नाट्यदर्पण में इसे सान्त्वन कहा गया है।[194]

10. **पुष्प**– स्वयं कहे गए या दूसरे के द्वारा कहे गए वचन की अपेक्षा से विशेपता युक्त वचन कहना पुष्प है।[195] दशरूपकानुसार– 'पुष्पं वाक्यं विशेषवत्।'[196] संकल्प सूर्योदय नाटक के द्वितीय अंक के श्लोक 87 में पुष्प का प्रयोग किया गया है।

11. **उपन्यास**– किसी भी अर्थ की सिद्धि के लिए की जाने वाली युक्ति को 'उपन्यास' कहते हैं।[197] दशरूपक में इस प्रकार दिया गया है– 'उपन्यासस्तु सोपायम्।[198]

12. **वज्र**– 'वप्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्।[199] प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर (कथन) ही वज्र कहलाता है। नाट्य दर्पण में भी यही लक्षण दिया गया है।[200]

13. **वर्णसंहार**– (ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का एकत्रित होना वर्णसंहार कहलाता है।[201]

आचार्य भरतमुनि का भी यही मत है धनंजय एवं अभिनव गुप्त के अनुसार 'वर्णसम्मिलन को वर्ण संहार कहना चाहिए, न कि विभिन्न जाति के लोगों का समागम। नाट्यदर्पण कार इसी मत के अनुयायी हैं वस्तुतः यदि विचार किया जाय तो अभिनव गुप्त एवं नाट्यदर्पणकार का मत अधिक समीचीन है।

3. **गर्भ सन्धि**– मुख सन्धि में बीज की उत्पत्ति होती है, प्रतिमुख सन्धि में फलप्राप्ति की त्वरा के साथ उसका उद्घाटन तथा विकास होता है और तीसरी लाभालाल की गवेषणा द्वारा जिसमें बीज का औन्मुख्य हो वह 'गर्भ' सन्धि है। इस सन्धि में तृतीयावस्था प्राप्त्याशा का मिश्रण रहता है। प्रतिमुख सन्धि में किंचित प्रकाशित हुए बीज का बार–बार आविर्भाव सन्धि में प्राप्त्याशा से परिच्छिन्न अवस्था में सफलता की सम्भावना के साथ ही साथ विफलता की भी आशंका बनी रहती है। गर्भ सन्धि में फल प्राप्ति की सम्भावना ही पायी जाती है। यही इस सन्धि की विशेषता है। दशरूपककार के अनुसार– ''गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः द्वादशांग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः।[202]

इस सन्धि में मुख्य रूप से प्राप्ति की आशा से निबद्ध बीज के उपाय का प्रकाशन एवं छल की अधिकता का वर्णन होता है। साथ ही साथ इसमें क्रोध एवं हर्ष आदि से होने वाले आवेग से भरे वचनों का भी प्रयोग अधिकता से किया जाता है। इसमें साम दाम, भेद, दण्ड, माया और इन्द्रजाल आदि भी प्रयुक्त होते हैं।[203]

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने भरत का ही अनुसारण करते हुए सन्धि के तेरह अंगों का उल्लेख किया है ये अंग निम्न हैं– संग्रह, रूप, अनुमान, प्रार्थना

उदाहरण, क्रम, उद्वेग, विद्रव, आक्षेप, अधिवल, मार्ग, असव्याहरण और तोटक और आचार्य धनंजय के अनुसार–''अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिनले तथा उद्वेगसंभ्रमाक्षेपा लक्षणं च प्रणयिते।[205] अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिवल, उद्वेग, संभ्रम और आक्षेप इनके लक्षण इस प्रकार है–

1. अभूताहरण–

'अभूताहरणं छद्म।[206] छलकपट का प्रयोग करना ओर इस प्रकार या तो बीज में विघ्न डालना या उसको अग्रसर करना (अभूताहरण) नाटयदर्पणकार ने इसे 'असत्याहरण' कहा है ओर इसके अन्दर झूठ बोलकर किसी बात को छिपाने को सम्मिलित किया है।[207] इसे 'नाट्यशास्त्र'[208] और 'साहित्यदर्पण'[209] ने भी असत्याहरण' स्वीकार किया है।

2. मार्ग– नाट्यदर्पणकार ने किसी सामान्य सत्य का कथन कर उसे प्रकृत से संबद्ध करने को 'मार्ग' कहा है।[210] इसे 'नाट्यशास्त्र' औश्र साहित्यदर्पण[212] में इसी रूप में स्वीकार किया गया है। दशरूपक में इस प्रकार 'मार्ग' सन्ध्यंग बताया गया है– ''मार्गस्तत्वार्थकीर्तनम्।''[213]

3. रूप– नाट्यशास्त्रानुसार–''चित्रार्थसमवाये तु वितकों रूपम्। नाट्यदर्पणकार के अनुसार–''रूपं नानार्थ संशयः।[214] नाना प्रकार के अर्थो का संशयात्मक ज्ञान ही 'रूप' है। प्रबोध–चन्द्रोदय तथा संकल्प सूर्योदय में रूप संन्ध्यंग के प्रयोग पाये जाते हैं।[217]

4. उदाहृति– दशरूपकानुसार–''सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः।[218] (प्राप्त्याशा से सम्बद्ध) उत्कर्ष युक्त कथन उदाहृति कहलाता है। 'नाट्यशास्त्र'[219] साहित्यदर्पण'[220] नाट्यदर्पण में उदाहृति का लक्षण इस प्रकार दिया है– उदाहृतिः समुत्कर्षः। अर्थात् लोकप्रसिद्ध सामान्य वस्तुओं की अपेक्षा किसी वस्तु का जो समुत्कर्ष है वह उत्कर्ष का आहरण (करने वाला) होने से उदाहृति कहलाता है।[221] यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के चतुर्थ अंक में विष्णुभक्ति के उत्कर्ष प्रकट किया गया है–

भ्रूभंगभीमपरिपाटलदृष्टिपात मुद्राढकोपंकुटिलं च तथा व्यलोकि सा वज्रपातहतशैलशिलेवं भूमौ व्याभुग्नजर्जरशिरोस्थि यथा पपात।[222]

(अर्थात् भौंहें टेढ़ी करके रक्त नेत्रों से कोपकुटिल रूप में देवी ने इस प्रकार देखा कि वह वज्राहत शिलाखण्ड की तरह गिरी, उसका सिर जर्जर हो गया ओर उसकी हड्डी

चूर–चूर हो गई)

5. क्रम– आचार्य धनंजय के अनुसार– क्रमः संचिन्त्यामानाप्तिः।[223] सोची हुई वस्तु की प्राप्ति 'क्रम' कहलाता है। दूसरे आचार्य भाव ज्ञान को 'क्रम' कहते हैं। नाट्यशास्त्र में जो क्रम का लक्षण दिया गया था– 'भावतत्वोपलब्धिस्तु क्रमः।[224] उसकी दो प्रकार की व्याख्याएँ धनंजय से पूर्व प्रचलित रही होगी, उन्हीं का यहाँ उल्लेख किया गया है।नाट्यदर्पण में– क्रमो भावस्य निर्णयः' यह लक्षण दो प्रकार की व्याख्या की गई है।[225]

6. संग्रह– 'संग्रहः सामदानोक्तिः।[226] दशरूपककार के अनुसार (प्राप्त्याशा से सम्बद्ध) साम और दान से युक्त कथन ही संग्रह कहलाता है। नाट्यदर्पण कार की भी यही मान्यतः है।[227] यथा 'संकल्प-सूर्योदय'नामक नाटक के सप्तम अंक में 'संग्रह' सन्ध्यंग का उदाहरण इस प्रकार है– प्रवर्तयितुमिच्छतः प्रगुणवृत्तिमन्तर्दृशं गुणत्रयविचित्रिता यवनिकेयमाच्छादिका तदत्र भवदुर्ज्वरज्वलनजन्मभूमौ त्वया दिद्दक्षणमितः परं दृढविलक्षया व्यज्यताम।[228]

7. अनुमाश्न– किसी चिन्ह से किसी बात का निश्चय करना (अभ्यूह) अनुमान कहलाता है।[229] नाट्यदर्पण का भी यही आशय है। 'संकल्प–सूर्योदय' एवं प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में अनुमान सन्ध्यंग का प्रयोग किया गया है।[231]

8. तोटक– नाटयशास्त्रानुसार– ''संरम्भवचनं तोटकं।[232] यह लक्षण किया गया है। जिसका अभिनवभारती के अनुसार भाव यह है कि आवेगपूर्ण वचन ही तोटक हे। यह आवेग हर्ष से, क्रोध से या अन्य किसी निमित्त से हुआ करता है क्योंकि हृदय को तोड़ने वाला वचन होता है, अतकः इसे तोटक कहा जाता है– भिनत्ति यतो हृदयं ततस् तोटकम्।[233] नाट्यदर्पण के तोटकं गर्भितं वचन का भी यही तात्पर्य है।[234] प्रतापरूद्रयोभूषण[235] के अनुसार– 'रोषसंख्धवचनं तोटकम्'
यह लक्षण है जिसमें आवेग के निमित्त रोष मात्र का उल्लेख किया गया है। और साहित्य दर्पण[236] में दशरूपक[237] का ही अनुसरण किया गया है– तोटकं पुनः संख्धवाक। इन सभी लक्षणों में प्रायः समानता है। संकल्प सूर्योदय एवं प्रबाध चन्द्रोदय में रोश का प्रयोग नृसिंह के प्रसंग में किया गया है।[238]

9. अधिवल– परस्पर वंचना में प्रवृत्त दो व्यक्तियों की बुद्धि तथा उनके बलाधिक्य प्रयुक्त सन्धानकारी कार्य ही अधिबल है।[239] और कुछ विद्वान लोग तोटक के विपरीत

भाव को अधिबल कहते हैं।[240] 'प्रबोध–चन्द्रोदय'[241] एवं संकल्प सूर्योदय[242] नाटक में अधिबल का प्रयोग महामोह के कथन में कराया गया है।

10. उद्वेग– दशरूपक के अनुसार–" उद्वेगोऽरिकृता भीतिः।[243] शत्रु से उत्पन्न भय उद्वेग[244] कहलाता है। नाट्यदर्पणानुसार– चोर, राजा एवं शत्रु आदि से होने वाला भय 'उद्वेग' है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में उद्वेग सन्ध्यंग का प्रयोग इस प्रकार है– महामोह ने कहा इस अविनय का फल विवेक भोगें ऐसा कहकर स्वयं पाखण्डागमों को पाखण्डतर्कशस्त्रों के साथ युद्ध के लिये नियोजित किया।[245] संकल्पसूर्योदय नाटक में इस प्रकार है–

तुम्बुरूः – भगवन्, पश्य पश्य। मुषितव्यवसाय इवासौ संप्रति समीक्ष्यते मुखवैमुख्येन। परिजनश्चास्य सांग्रामिक्यां सिद्धौ साशंक इवाभाति। यदुत,

मधुसमयावरोधवदनासवदोहलिनां

वकुलमहीरूहामलधुभिः सुमनोभिरिमाः

मदनधनुष्प्रकाण्ड गुणनिस्त्रुटनावसर

प्रतिनिधिशिंजिनीं प्रजनयन्त्यभितः प्रमदाः।।[246]

बाणोत्पाद भय निमित्त कथन से 'उद्वेग' नामक सन्धंग है।

11. संभ्रम– दशरूपक के अनुसार– शंकात्रासौ च संभ्रमः। शंका और त्रास को सम्भ्रम कहा जाता है।"[247] नाट्यशास्त्र में संभ्रम के स्थान पर 'विद्रव' नामक गर्भ सन्धि के अंग का निरूपण किया गया है। जिसका लक्षण है– शंकाभयत्रासकृतो विद्रवः।[248] और अभिनव गुप्त[249] के अनुसार इसकी दो व्याख्यायें हैं– 1. भयत्रासकृतः भय और त्रास उत्पन्न करने वाली वस्तु की शंका ही विद्रव है।

2. शंकाभयत्रांसकृतः–शंका भय त्रास से किया गया (भाव) विद्रव है। वह भाव क्या है संभ्रम। जैसा कि साहित्यदर्पण में स्पष्ट किया गया है, इस प्रकार शंका भय और त्रास से होने वाली घबराहट का वर्णन विद्रव है।[250]

13. आक्षेप– नाट्यशास्त्र के अनुसार इसका नाम आक्षिप्ति है, जिसका लक्षण है– "गर्भस्योदभेदनं यत् साऽऽक्षिप्तिः।[251]

दशरूपक के अनुसार– गर्भबीजसमुदभेदादादाक्षेपः परिकीर्तितः। [252] गर्भ के बीज का उदभेद (प्रकटन) ही आक्षेप कहा गया है। नाट्यदर्पण का भी यही आशय है।[253] और प्रतापरूद्रयोभूषण एवं साहित्यदर्पण के अनुसार– प्राप्त्याशा की अवस्था में बीज का

प्रकाशन ही आक्षेप है।[254] इसमें बीज की फलोन्मुखता का वर्णन होता है। यथा प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में बीज इस प्रकार है– शान्ति इसमें चिन्ता की क्या बात है? जब आपकी ही कृपा है तो मैं जानती हूँ कि निश्चय राजा विवेक की जीत होगी।[255]

'संकल्प–सूर्योदय'नाटक में 'आक्षेप' इस प्रकार है– मोह की विजय और पुरूष मोचन रूप बीज का उद्‌घाटन–

तुम्बुरूः– (सहर्षम्)

निखिलसुभटश्लाघारेखाविलङ्धनजाङ्धिको
निरवधिबलो मोहः क्रीडन्ननुत्तरणे रणे
विविधनिगमग्रामस्थेयाद्विवेकमहीभृतो
विपदमधुना वीरादस्मादिदंप्रथमां गतः।।[256]

इन गर्भ सन्धि के बारह अंगो को प्राप्त्याशा के प्रदर्शक के रूप में दिखलाना चाहिए। इन अंगों में अभूताहरण, मार्ग, तोटक, अधिवल ओर आक्षेप–ये मुख्य हैं। अन्य अंगों का यथासंभव प्रयोग किया जाता है।

4. विमर्श सन्धि– आचार्य धनंजय के अनुसार–''विमर्श सन्धि का लक्षण– क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।[257] जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से (फलप्राप्ति के विषय में) विमर्श किया जाता है तथा जिसमें गर्भसन्धि द्वारा निर्भिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखलाया जाता है। वह अवमर्श (या विमर्श) सन्धि कहलाती है।

विमर्श या (अवमर्श) सन्धि के अंग इस प्रकार है– तत्रापवादसंफेटो विद्रवद्रवशक्तयः द्युतिः प्रसंगश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश।।[258] अपवाद, संफेट, विद्रव द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसंग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान ये तेरह अंग हैं–

1. अपवाद– दशरूपक का यह लक्षण–'दोषप्रख्यापवादः स्यात्। (किसी पात्र के) दोषों का कथन अपवाद कहलाता है।[259] नाट्‌यशास्त्र[260] और 'साहित्य दर्पण'[261] में इसी प्रकार का लक्षण है। 'नाटयदर्पण' के अनुसार अपने या दूसरे के दोषों को प्रकट करना ही अपवाद कहलाता है।[262] प्रबोध–चन्द्रोदय[263] एवं संकल्प सूर्योदय [264] में अपवाद का उल्लेख इन्द्रिय सुखों के वर्णन में किया गया है।

2. संफेट– नाट्‌यशास्त्र के अनुसार– रोषग्रथितवाक्यं तु संफेटः[265] इसकी छाया

दशरूपक के लक्षण में है संफेटो रोषभाषणम्।[266] (बीज से अन्वित) रोषयुक्त कथनोपकथन (भाषण) ही संफेट कहलाता है। अतः नाट्यदर्पण[267], प्रतापरूद्रयोभूषण[268] साहित्य दर्पण[269] के संफेट का लक्षण प्रायः दशरूपक के समान ही है। प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय में संफेट के प्रयोग मिलते हैं।[270]

3. विद्रव– 'नाट्यशास्त्र[271], नाट्यदर्पण'[272], साहित्यदर्पण'[273] में विद्रव को विमर्श सन्धि के अंगों में नहीं माना गया है। किन्तु दशरूपक[274] ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है–

''विद्रवो वधवन्धादि। इसे प्रतापरूद्रयोभूषण[275] ने दशरूपक के समान ही वर्णन किया है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं संकल्प सूर्योदय नाटकों में विद्रव का प्रयोग काम, क्रोध हिंसा आदि के वध के प्रसंगों में प्राप्त होता है।[276]

4. द्रव– दशरूपकानुसार– 'द्रवो गुरूतिरस्कृतिः।[277] अर्थात् गुरूजनों का तिरस्कार द्रव कहलाता है। इसे नाट्यशास्त्र ने इस प्रकार पारिभाषित किया है–

'गुरूव्यतिक्रमों यस्तु सद्रवः'।[278] नाट्यदर्पण में इस प्रकार पूज्यव्यतिक्रमः।[279] प्रतापरूद्रयोभूषण में–गुरूतिरस्कृतिर्द्रवः।[280] प्रबोध चन्द्रोदय एवं 'संकल्प-सूर्योदय' नाटक में द्रव सन्ध्यंग के प्रयोग बौद्ध आरम्भ तथा बौद्ध तर्क को तिरस्कृत करने के प्रसंग में किया गया है।[281]

5. शक्ति– 'विरोधशमनं शक्ति' विरोध का शान्त हो जाना शक्ति कहलाता है।[282] प्रबोध-चन्द्रोदय[283] में विष्णु भक्ति तथा महामोह के वृतान्त एवं संकल्प सूर्योदय में भी शक्ति सन्ध्यंग का निरूपण किया गया है।[284]

6. द्युति– 'तर्जनोद्वेजने द्युतिः।[285] तर्जन ओर उदवेजन का वर्णन द्युति कहलाता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार–''वाक्यम् आधर्षसंयुक्त द्युतिः।[286] यहाँ आघर्ष का तात्पर्य न्यक्कार, तिस्कार, नीचा, दिखाना है।'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक में द्युति का प्रयोग मोह को नीचा दिखाने के प्रसंग में किया गया है।[287]

संकल्प-सूर्योदय में भी इस उदवेग का कवि ने सफल प्रयोग किया है[288]

7. प्रसंग– 'गुरूकीर्तनं प्रसंगः। गुरूओं को कीर्तन प्रसंग कहलाता है।[289] 'प्रबोध–चन्द्रोदय[290] तथा संकल्प-सूर्योदय[291] में प्रसंग का प्रयोग सफलता पूर्वक किया गया है।

8. छलन– नाट्यशास्सत्र के अनुसार इसका लक्षण है' अपमानकृतं वाक्यं कार्यार्थ

छादनं भवेत् ।[292] 'प्रबोध-चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प-सूर्योदय' में छलन के प्रयोग पाये जाते हैं। वीभत्स आदि रसों के कारण शान्त रस की अवहेलना आदि के कारण पाये जाते हैं।[293]

9. व्यवसाय— दशरूपककार के अनुसार— 'व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। अपनी शक्ति का वर्णन करना व्यवसाय कहलाता है।[294] प्रबोध चन्द्रोदय[295] में सरस्वती के द्वारा आत्म प्रंशसा के प्रसंग में व्यवसाय नामक सन्ध्यंग तथा संकल्प सूर्योदय[296] में प्रत्याहार द्वारा अपनी सामर्थ का कथन होने से 'व्यवसाय' नामक सन्ध्यंग है।

10. विरोधन— दशरूपकानुसार— संरब्धानां विरोधनम्।[297] आवेगपूर्ण पात्रों का अपनी शक्ति का वर्णन करना विरोधन कहलाता है। प्रबोध चन्द्रोदय[298] एवं संकल्प सूर्योदय [299] में प्रयोजन की सिद्धि में महामोह द्वारा विरोध तथा हानि पहुँचाने की स्थिति में विरोध न का प्रयोग हुआ है।

11. प्ररोचना— नाट्यशास्त्रानुसार— 'प्ररोचना तु विज्ञेया संहार्थदर्शिनी।[300] यह लक्षण है, साहित्यदर्पण में भी यही लक्षण है।[301] प्रबोध चन्द्रोदय[302] एवं संकल्प सूर्योदय[303] में भगवद् वचन पुरूष को मोचन रूपी भावी दर्शन कराती है। जिसमें प्ररोचना का प्रयोग किया गया है।

12. विचलन— 'विकत्थना विचलनम्। आत्मशलाघा करना विचलन कहलाता है। [304] यथा—'प्रबोध—चन्द्रोदय' में मन का कथन— नवयौवना नारियाँ, भ्रमरमुखरित वृक्षगण, विकसित नवमल्लिका से सुरभित मन्दानिल, अव्यह मन सभी को पवित्र विवेक द्वारा अज्ञान को समूल दूरकर मृगतृष्णाः जलसदृश देख रहा है।[305] यहाँ मन द्वारा आत्मश्लाघा का वर्णन है यथा संकल्प—सूर्योदय नाटक में विचलन का प्रयोग व्यवसाय के संवाद में किया गया है।[306] पुरूष के द्वारा अपने गुणों को प्रकटित करना 'विचलन' सन्ध्यंग है।

13. आदान— नाट्यशास्त्रानुसार— 'बीज कार्योपगमनमादानम्[307] इसका अभिप्राय है 'फल का समीप होना' इसी भाव को नाट्यदर्पण[308] में स्पष्ट किया गया है। उसके अनुसार फल सार्माथ्य का अर्थ है— मुख्य फल का दर्शन। साहित्य-दर्पण, प्रतापरूद्रयोभूषण में दशरूपक के लक्षण के समान दिया गया है— आदानं कार्यसंग्रहः। यथा प्रबोध-चन्द्रोदय[309] में जल और तरंगों के एकाकार होने का प्रसंग एवं संकल्प-सूर्योदय में राजा का सेनापति से यह कथन आदान के अर्न्तगर्त आता है।

षडंगमथवाष्टांग समाधिमधिरोक्ष्यतः अवलम्बनमक्षुद्रा दयैका दानवद्गुहः।[310] कार्यों का कथन होने से आदान सन्ध्यंग होता है।

5. निर्वहण सन्धि– दशरूपक के अनुसार– बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्[311] ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हितत् जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि में अपने–अपने स्थान पर (यथायथम्) बिखरे हुए (प्रारम्भ आदि) अर्थों का एक (मुख्य) प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है, वह निर्वहण सन्धि कहलाती है। आलोच्य नाटककारों ने सुख प्राप्ति और दुःख हानि के प्रसंगों में निर्वहण सन्धि का सम्यक प्रयोग किया है।

1. सन्धि– 'सन्धिर्बीजोपगमनम्' बीज का (फलागम से अन्वित करके) सन्धान ही सन्धि कहलाती है।[312] अतः मुख सन्धि में न्यस्त बीज का फलागम की अवस्था में आ जाना 'सन्धि' है।[313] 'नाट्यशास्त्र'[314] साहित्य दर्पण[315], प्रतापरूद्रयोभषण[316] में इसी प्रकार का लक्षण है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में सन्धि का स्वरूप निम्नवत है–

पुमानकर्ता कथमीश्वरो भवेत् क्रिया भवोच्छेदकरी न वस्तुघीः।।[317]

अकर्ता पुरूष ईश्वर कैसा होगा और वस्तुज्ञान से संसार की निवृत्ति किस प्रकार होगी? आदि में बीज का सन्धान किया गया है। यथा संकल्प-सूर्योदय[318], संसार की निवृत्ति तथा पुरूष ईश्वर कैसे होगा आदि प्रसंगों में इसका सम्यक प्रयोग किया गया है। यहाँ भगवदभक्ति का फल, वा पुरूषमोचनरूप बीज का उपगमन होने से 'बीज' सन्ध्यंग है।

2. विबोध– 'विबोधः कार्यमार्गणम्' कार्य (फल) के अन्वेषण को विबोध कहा जाता है।[319] नाट्यशास्त्र में 'कार्यस्यान्वेषणं युक्त्या निरोधः' यह लक्षण है।[320] नाट्यदर्पण में निरोधः कार्यमीमांसा यह कहा गया है अर्थात विनष्ट कार्य को बनाने के लिये जो उसका अनुसन्धान किया जाता है वह निरोध है।[321] साहित्य–दर्पण[322] तथा 'प्रतापरूद्रयोभूषण[323] में दशरूपक का ही अनुसरण किया गया है।

3. ग्रथन– ग्रथनं तदुपक्षेपो[324]– उस (फल) के उपक्षेप (सूचना) को ग्रथन कहा जाता है। नाट्यशास्त्र'[325] प्रतापरूद्रयोभूषण[326] का यही मत है। अतः जहाँ फलागम को सूचित किया जाता है वह ग्रथन है यथा 'संकल्प–सूर्योदय'[327] नाटक में फलागम निम्नवत है–

स्वतः सिद्धस्वच्छस्थिरमधुरचिन्ता सुरसरि त्प्रवाहोपश्लिष्टात्प्रणिधिमुख भागादवतरन्

चिदानन्दोदन्वत्यनधगुणरत्नौधभरिते। निमंजत्यन्यस्मिन्नयमपुनरून्मज्जनमिह।। कार्यो की सूचना देना ही ग्रथन है।[327]

4. निर्णय— दशरूपकानुसार— ऽनुभूताख्या तु निर्णयः।[328] अनुभूत (अनुभव किये गये) अर्थ का कथनं निर्णय कहलाता है। नाट्यशास्त्र[329], साहित्यदर्पण[330] में भी इसी प्रकार का लक्षण है। 'संकल्प—सूर्योदय' नाटक में अनुभव के द्वारा कर्मकाण्डोक्त पद्धत्यनुसारिणी मीमांसा का वर्णन निर्णय के अर्न्तगत किया गया है।[331]।

5. प्रसाद— 'प्रसादःपर्युपासनम् आराधना (पर्युपासन प्रसन्न करने करने का प्रयास) ही प्रसाद कहलाता है।[332] नाट्यशास्त्र के अनुसार— 'शुश्रूषाद्युपसम्पन्नः प्रसादः प्रीतिरूच्यते' सेवा आदि से उत्पन्न प्रसन्नता ही प्रसाद कहलाता है।[333] किन्तु दशरूपक के लक्षणानुसार— प्रसन्न करने के लिये जो (सेवा) आदि प्रयत्न किया जाता है वही प्रसाद है। प्रतापरूद्रयोभूषण[334] में दशरूपक का ही अनुसारण किया गया है। यथा 'प्रबोध—चन्द्रोदय' नाटक में प्रसाद इस प्रकार है— शान्ति—मुझे भी महाराज ने उपनिषद् को बुला लाने को आज्ञा दी है। तो हम दोनों ही अपना—अपना कर्त्तव्य करें। यहाँ राजा विवेक को प्रसन्न करने के लिये शान्ति का कथन (प्रसाद) है। संकल्प सूर्योदय नाटक में इस प्रकार है—

व्यक्तौ संनाहसंकल्पौ विश्वगोप्तुरिमौ हरेः
प्रथितावागमग्रामे पक्षीश्वरसुदर्शनौ।।[335]

यहाँ गरूण पक्षी के प्रसाद का वर्णन है।

6. परिभाषण— 'परिभाषा मिथो जल्पः' आपस की बातचीत को परिभाषा या परिभाषण कहा जाता है।[336] नाट्यशास्त्र में निन्दा का सूचक वाक्य परिभाषण है।[337] साहित्य दर्पण में परिनिन्दा का सूचक परिभाषण है।[338] प्रतापरूद्रयो भूषण[339] में दशरूपक का अनुसरण किया गया है। यथा—'प्रबोध—चन्द्रोदय'[340] में परिभाषण इस प्रकार है—

शान्तिः — साधु—साधु। अथ क प्रस्थितास्मि भवती।

श्रृद्धा— आदिष्टाहं स्वामिना यथा विवेकं दृष्ष्टुमिच्छामि। आपास की बातचीत 'परिभाषण' है। यथा संकलप—सूर्योदय नाटक में परिभाषण—

त्वददृष्टया सकृदीक्षिता दिविषदः स्वंस्वं पदं भुंजते।
भोगानत्र च भूभुजामभिमताम् पुष्णासि— तृष्णाधिकम्
किंचोदंचदनुग्रहां कृपणतामालक्ष्य वैलक्ष्यतो

नैराशयप्रमुखानि सौति भवती निर्वाणपर्वाव्यपि।[341]

यहाँ परिभाषण नामक सन्ध्यंग है।

7. आनन्द— दशरूपकानुसार 'आनन्दो वाछिंताप्तिः।[342]

अभीष्ट की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है। प्रबोध चन्द्रोदय[343] में मोहरूपी अन्धकार के दूर होने तथा संकल्प सूर्योदय[344] में साक्षात्कार प्राप्त होने में आनन्द नामक सन्ध यंग का प्रयोग किया गया है।

8. समय— 'समयो दुखनिर्गमः। दुख का दूर हो जाना ही समय कहलाता है।[345] नाट्यशास्त्र ,'नाट्यदर्पण', साहित्यदर्पण ,प्रतापरूद्रयोभूषण में भी इसी प्रकार का लक्षण दिया है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय'[346] नाटक में 'समय' का प्रयोग इस प्रकार है— भगवती विष्णु भक्ति के प्रसाद से मैं सर्वथा कृतार्थ हो गया। संकल्प–सूर्योदय[347] नाटक में 'समय' का निरूपण इस प्रकार है— तदसौ झटिति निस्त्रुटितनिगलयुगलस्त्वया विधातव्यः। अतः दुःख निवृत्ति में 'समय' सन्ध्यग है।

9. कृति— 'कुतिर्लब्धार्थशमनम्' लबध अर्थ का शमन (शान्ति या स्थिरीकरण) कृति कहलाता है।[348] यथा संकल्प–सूर्योदय नाटक में श्रृद्धा— एवमपि प्रतिकूलचिन्ता भर्त्रा न कर्त्तव्या। अद्य व परे वा मोक्षो भविष्यतीति विस्त्रब्धहृदयेन भवितव्यम्।[349]

10. भाषा— दशरूपकानुसार— 'मानाद्याप्तिश्च भाषणम्'। मान आदि की प्राप्ति भाषण कहलाती है।[350] यथा 'संकल्प–सूर्योदय' में 'भाषा' का निम्नवत् प्रयोग हुआ है।

स्वसेवासार्वभौमत्वं भवते परमात्मना

विवेकस्य च वीरस्य यौवराज्यं प्रदित्सितम्।[351] यहाँ भाषा नामक सन्ध्यंग है।

11. उपगूहन— कार्य (फल) का दर्शन (बिना कहे समझ लेना) पूर्वभाव कहलाता है।[352] तथा अदभुत अर्थ की प्राप्ति उपगूहन है। यथा—'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में— असंग होकर कुछ भी विना पूछे निरूद्देश्य भाव से दिशा विदिशाओं में ममन करता हुआ[353] और संकल्प–सूर्योदय नाटक में उपगूहन इस प्रकार है—

ज्वलनदिवसज्योत्स्त्रापक्षोत्तरायणवत्सरान् पवनतपनप्रालेयांशूक्रमादचिरद्युतिम् जलचरपतिं देवाधीशं प्रजापतिमागत स्तरति विरजां दूरे वाचस्ततः परमदभुतम्।। यहाँ उपगूहन नामक सन्ध्यंग है।[354]

12. पूर्वभाव— यथा 'संकल्प–सूर्योदय' में पूर्वभाव इस प्रकार है—

विवेकोऽयं तन्त्वेष्ववितथविशेषग्रहतनु भर्वोदन्वद्वोषप्रतिगमनिकात्मा च सुमतिः। परप्रेमाकारा

त्वमिति समवेतास्त्रय इमे तमः पारे त्यक्तत्रिगुणमपि च त्यक्ष्यथ न माम्।[355]

'प्रबोध–चन्द्रोदय'[356] नाटक में पूर्वभाव 'उपगूहन' इस प्रकार है–

उद्दामद्युतिदामभिस्तडिदिव प्रद्योतयन्ती दिशः प्रत्यग्रस्फुटदुत्कटास्थि मनसो निर्भिद्य वक्षः स्थलम्। कन्येयं सहसा समं परिकरैर्मोहं ग्रसन्ती भज व्यन्तर्धानमुपैति चैकपुरूषं श्रीमान्प्रबोधोदयः। यहाँ अदभुत दृश्य होने से उपगूहन अंग है।

13. उपसंहार– 'वराप्तिः काव्यसंहारः' वरदान की प्राप्ति काव्य संहार कहलाता है[357] यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय'[358] नाटक में उपसंहार इस प्रकार है– पुरूषः– अतः परमपि कि प्रियमस्ति। यतः प्रशान्तारातिरगम द्विवेकः कृतकृत्यताम् नीरजस्के सदानन्दे पदे चाहं निवेशिताः।

विवेक के शत्रु मारे गये, वह कृतकृत्य हो गया और मैं निर्मल सदानन्द पदपर प्रतिष्ठित हुआ। आदि कथन से उपसंहार होता है। संकल्प–सूर्योदय[359] नाटक में उपसंहार इस प्रकार है–

किं विज्ञानैः किं तपोदानयज्ञैः किं वान्यैश्च त्वत्परित्यागदीनै।। अपुनरूदयो मायामोहः स्थलीमधिशायितः स्फुरति मुरभिदभक्तिर्भव्या भवत्यनुपप्लवा सरणिमपुनःप्रत्यावृत्तिं भजत्यनद्यः पुमान् किमिह बहुभिः क्रीडत्यग्रे समीहितमद्यनः। में मोह नाश, विष्णुभक्ति, पुरूष मोचन रूप प्रयोजन के सिद्ध होने से 'उपसंहार' सन्ध्यंग है।

14. प्रशस्ति–

'प्रशस्तिः शुभशंसनम्' शुभ (अर्थ) का कथन ही प्रशस्ति कहलाता है।[360] नाट्यशास्त्र में नृपदेशप्रशान्तिश्च प्रशस्तिः यह लक्षण है इसी प्रकार साहित्य दर्पण में नाट्यदर्पण प्रतापरूद्रयोभूषण में दशरूपक के समान ही लक्षण है। यथा 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्रशस्ति इस प्रकार है–

(भरतवाक्यम्)

पर्जन्योऽस्मिन जगति महतीं वृष्टिभिष्टां विधित्तां राजानः क्षमां गलितविविद्योपप्लवाः पालयन्तुः हत्वोन्मेषोपहत तमसस्त्वत्प्रसादान्महान्तः संसाराब्धिं विषयममतातंकपंक तरन्तु।।[361]

संकल्प–सूर्योदय में प्रशस्ति इस प्रकार है–

(भरतवाक्यम्)

अंगीकुर्वन्त्वकलुषधियो नित्यमध्यात्मविद्या मह्यो धर्मः स्पृशतु वसुधामाशिषः पारवर्ती देवः

श्रीमान्निखधिदयासिन्धुरस्मिन्प्रबन्धेवक्ता श्रोता वचनविषयः प्रीयतां वासुदेवः ।।

यहाँ प्रशस्ति नाम सन्ध्यंग का प्रयोग किया गया है। अंग निरूपण का प्रयोजन–

शास्त्र में कुल 67 अंगो के छः प्रयोजन बतलाये गये हैं–

1. जिस अर्थ की रचना करनी हो उसका ठीक निर्वाह हो जाय, उसमें कोई अंश छूट न पाये।

2. जिस बात को गुप्त रखना है वह गुप्त रह सके।

3. जिसका प्रकाशित करना अभीष्ट है उसका प्रकाशन कर दिया जाये।

4. प्रयोग या अभिनय के विषय में लोगों का अनुराग जागृत हो सके।

5. प्रयोग चमत्कार पूर्ण हो जाये।

6. वृतान्त का उपक्षय भी न हो।[363]

अन्य नाटकीय तत्व–

तत्व शब्द का अर्थ है वास्तविक स्थिति। किसी पदार्थ की वास्तविक स्थिति का परिज्ञान उसकी रचना में कारण भूत पदार्थों को बतला देने से भी हो जाता है, अतः तत्व के अभिधेयार्थ में उन वस्तुओं का भी समावेश हो जाता है। जिनसे किसी वस्तु का निर्माण हुआ करता है। जब हम नाट्यतत्व की बात करते हैं तब उसमें वे सब पदार्थ आ जाते हैं जिनका उपयोग नाट्य रचना के लिये किया जाता है और साथ ही वे भी पदार्थ आ जाते हैं, जिनका उपयोग उसके अभिनय के लिये किया जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि तत्व केवल वे ही पदार्थ होते हैं, जिनकी किसी वस्तु की रचना के लिये अनिवार्य आवश्यकता हो और जिनमें किसी एक को हटा देने से वह वस्तु समाप्त हो जाये।[364] तत्व जो सभी आवश्यक उपयोजक द्रव्य होते हैं, जिनकी सत्ता वस्तु में विद्यमान रहती है। चाहे किसी एक कार्य में उसके एक आद्य की कमी या अन्यथा भाव भी हो।

आचार्य भरतमुनि की भाँति वेंकटनाथ वेदान्त देशिक ने संकल्प सूर्योदय में नाट्योपयोगी विभिन्न तत्वों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। नाट्यशाला, रंगपूजा, रंग, वास्तु, अभिनय, रस, छन्द, अलंकार, नृत्य, गीतवाद्य, वेशभूषा, उपस्थापनपद्धति, पात्र, दर्शक, इत्यादि अनेक तत्वों पर नाटककार का दृष्टिकोण कई अर्थों में नितान्त मौलिक भी है।

सन्दर्भ संकेत

1. नाटक और रंगमंच की भूमिका, पृ0 109
2. नाट्य शास्त्र, घोष 20–48,50,90
3. सत्य का स्वप्न, डॉ0 रामकुमार वर्मा, भूमिका, पृ0 1
4. रेशमी टाई, भूमिका, डॉ0 रामकुमार वर्मा पृ0 9,
5. रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृ0 109
6. दशरूपक, धनंजय, टीका श्रीनिवास पृ0 12
7. तदुपरिवत्, पृ0 12
8. नाट्यशास्त्र 19–3–5, सा0 द0 6–43
9. धनंजय कृत दशरूपक, प्रथम प्रकाश टीका श्रीनिवास, पृ0 13
10. तदुपरिवत्, पृ0 201–202
11. 'संकल्प सूर्योदय', वेदान्त देशिक, 'टीका कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 859
12. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, श्लोक 14, पृ0 168
13. तदुपरिवत्, श्लोक 16, पृ0 170
14. संस्कृत नाट्य साहित्य,– डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 32
15. नाट्यदर्पण, पृ0 27
16. 'प्रबोध चन्द्रोदय', रामचन्द्र मिश्र, अंक 2, पृ0 65
17. नाट्य दर्पण, पृ0 27
18. संस्कृत आलोचना, आचार्य बलदेव उपाध्याय, हिन्दी ग्रन्थमाला–8, पृ0 95
19. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र रचित, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अध्याय 2, पृ0 38
20. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 57
21. दशरूपक ,धनंजय, टीका श्रीनिवास, पृ0 96
22. तदुपरिवत्, पृ0 97
23. तदुपरिवत् पृ0 97
24. नाट्य दर्पण, पृ0 34
25. तदुपरिवत्, पृ0 33–34
26. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 26–27

27–28, 'संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, पृ0 529–534

29. तदुपरिवत्, पृ0 667–674

30. तदुपरिवत्, पृ0 608–612

31. केहल नाट्यवेद अभिनवभारती भाग–2 (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज) पृ0 434

32. दशरूपक, धनंजय, प्रथम प्रकाश, पृ0 98

33. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 56

34. 'संस्कृत नाट्य सिद्धान्त' डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 34

35. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, द्वितीय अंक, पृ0 61

36. दशरूपक, धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 99

37. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 116

38. 'नाट्य दर्पण', पृ0 35

39. नाट्य शास्त्र, अध्याय 21–116

40. साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, पृ0 399

41. दशरूपक, धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 99

42. आर. 3.185 एफ में कहा गया है कि यदि किसी अंक के आरम्भ में एक पात्र रंगमंच पर हो और दूसरा नेपथ्य में हो तो उन दोनों के कथोपकथन को खंडचूलिका कहते हैं। जैसे बालरामायण।

43. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 12–13

44. तदुपरिवत्, द्वितीय अंक, पृ0 55

45. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, चतुर्थ अंक, पृ0 142

46. 'संकल्प सूर्योदय', सं0 कृष्णामाचारी, नवम अंक, पृ0 748

47. तदुपरिवत्, नवम अंक, पृ0 776

48. दशरूपक, धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 101

49. 'साहित्य दर्पण' तथा प्रतापरूद्रयोभूषण, 3–25

50. नाट्य दर्पण, पृ0 1–24

51. नाट्य दर्पण (दूराध्वयानं पूरोधः, राज्यदेशादिः)

52. 'साहित्य दर्पण', विश्वनाथ, 6.137

53. दशरूपक, धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 103

54. तदुपरिवत्, पृ0 103

55. तदुपरिवत्, पृ0 103

56. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 50

57. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, षष्ठ अध्याय, पृ0 541

58. 'दशरूपक' धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 104

59. साहित्य दर्पण, 6.139

60. नाट्य दर्पण 1–13 के अनुसार जनान्तिक वह संवाद है, जहाँ कोई पात्र त्रिपताकाकर के किसी पात्र को वचाकर अन्य बहुसंख्यक जनों से बात करता है।

61. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 105

62. साहित्य दर्पण, 6–138

63. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 105

64. साहित्य दर्पण, 6.138

65. नाट्य दर्पण, 1–11

66. साहित्य दर्पण, 6/16

67. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 783 श्लोक 44

68. तदुपरिवत्, अंक 6, पृ0 549, श्लोक 18

69. तदुपरिवत्, पृ0 553, श्लोक 23

70. तदुपरिवत्, पृ0 557, श्लोक 29

71. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 87,

72. 'संस्कृत आलोचना', बल्देव उपाध्याय, पृ0 87

73. नाट्य शास्त्र, आचार्य भरत उपाध्याय, 19,22

74. नाट्य दर्पण, पृ0 37

75. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 43

76. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 18

77. नाट्य दर्पण, पृ0 37

78. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 23

79. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 1

80. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 19
81. नाट्य दर्पण, 1–32
82. 'भावप्रकाशन', पृ0 204
83. साहित्य दर्पण, 6–66
84. 'प्रतापरूद्रयोभूषण', विद्यानाथ, 3.7
85. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 2, पृ0 52
86. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 92
87. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 17
88. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, 19–20
89. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 220
90. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 779
91. तदुपरिवत्, पृ0 880
92. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ 1.3
93. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 94
94. 'नाट्य दर्पण', पृ0 44
95. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा ,पृ0 102
96. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 21
97. तदुपरिवत्, पृ0 21
98. नाट्य दर्पण, पृ0 44
99. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 33
100. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, भाग 1, पृ0 33
101. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 22
102. नाट्य दर्पण, पृ0 45
103. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, श्लोक 4, पृ0 87
104. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 4
105. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 22
106. नाट्य दर्पण, पृ0 45
107,108. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, तृतीय अंक, पृ0 115,

पंचम अंक, 153,154

109. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 3, पृ0 52

110. नाट्य दर्पण, पृ0 46

111. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 22

112. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 182

113. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, पृ0 32

114. नाट्य दर्पण, पृ0 46

115. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 23

116. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 102

117. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 216,217

118–119. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9 एवं अंक 10 श्लोक 44/53

120. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 97

121. नाट्य दर्पण, पृ0 48

122. 'नाट्य शास्त्र', पृ0 32

123. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 24

124. नाट्य शास्त्र, 19–17–44

125. अभिनव भारती, 19–17

126. 'संस्कृत आलोचना', डॉ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 88

127. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 24

128. तदुपरिवत्, पृ0 24

129. नाट्य दर्पण, पृ0 48

130. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 24

131. तदुपरिवत् पृ0 25,26

132. तदुपरिवत् पृ0 27

133. नाट्य दर्पण, पृ0 53

134. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1

135. नाट्य दर्पण, पृ0 53

136. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 27

137. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 रामचन्द्र मिश्र, अंक 1, पृ0 26

138. नाट्य दर्पण, पृ0 54

139. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 28

140. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 रामचन्द्र मिश्र, अंक 1, पृ0 27, श्लोक 21

141. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 28

142. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 98

143. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 27 से 28

144. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 29

145. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 28

146. नाट्य दर्पण, पृ0 78

147. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 30

148. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 29

149. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, पृ0 31

150. नाट्य शास्त्र, आचार्य भरत, 19.72

151. साहित्य दर्पण , विश्वनाथ, 6.85

152. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.53

153. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ, 310

154. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 30

155. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 33

156. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 31, श्लोक 26

157. नाट्य शास्त्र, भरत, पृ0 19–73

158. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 1–45

159. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 34

160. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ, 310

161. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ0 6.86

162. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 33

163. नाट्य शास्त्र, भरत, पृ0 19–74

164. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ0 6.86

165. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 1–54

166. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 35

167. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ

168. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 35, श्लोक 29

169. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 36

170. नाट्य दर्पण, पृ0 56

171. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 56

172 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 38

173. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3–10

174. नाट्य शास्त्र, भरत

175. नाट्य दर्पण ,रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1–44

176. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 1, पृ0 66

177. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 38

178. तदुपरिवत् , पृ0 40

179. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी

180. 'दशरूपक', धनंजय कृत, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 40

181. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 2, पृ0 55, श्लोक 15

182. 'दशरूपक', धनंजय, प्रथम प्रकाश, पृ0 42

183. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 42

184. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 श्री रामचन्द्र, अंक 2, पृ0 55, श्लोक 74

185. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 66

186. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 श्री रामचन्द्र अंक 2 पृ0 84

187. 'दशरूपक' धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथमप्रकाश, पृ0 42

188. तदुपरिवत् पृ0 44

189. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 45

190. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 68

191. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 45

192. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 58
193. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 45
194. नाट्य दर्पण, पृ0 62
195. तदुपरिवत् पृ0 68
196. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 46
197. नाट्य दर्पण, पृ0 71
198. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 47
199. तदुपरिवत् पृ0 62
200. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 70
201. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 48
202. तदुपरिवत् पृ0 50
203. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 62
204. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 72
205. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 51
206. तदुपरिवत् पृ0 15
207. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 1.88
208. नाट्य शास्त्र, भरत 19.82
209. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ0 6.96
210. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.87
211. नाट्य शास्त्र, भरत 19.83
212. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ0 6.96
213. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 51
214. नाट्य शास्त्र, भरत 19.83
215. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.78
216. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 52
217. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 4, पृ0 118,
218. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 53
219. नाट्य शास्त्र, भरत 19.84

220. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.97
221. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.81
222. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 4, पृ0 135
223. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 53
224. नाट्य शास्त्र, भरत 19.84
225. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.82
226. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 55
227. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 72
228. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 7, पृ0 617
229. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 55
230. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 73
231. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 7, पृ0 651
232. नाट्य शास्त्र, भरत 19.87
233. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त, पृ0 42
234. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.89
235. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 1.15
236. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.98
237. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 58
238. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 7, पृ0 640
239. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 68
240. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 58
241. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 4, पृ0 146
242. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 8, पृ0 676
243. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 60
244. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 64
245. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 172
246. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 8, पृ0 715
247. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 60

248. नाट्य शास्त्र, भरत 19.88
249. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त, पृ0 52
250. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.100
251. नाट्य शास्त्र, भरत 19.86
252. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 62
253. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.54
254. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.99
255. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 4, पृ0 168
256. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 8, पृ0 742
257. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 63
258. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 65
259. तदुपरिवत् पृ0 65
260. नाट्य शास्त्र, भरत 19.89
261. तदुपरिवत् 19.89
262. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.102
263. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 65
264. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 184
265. नाट्य शास्त्र, भरत 19.89
266. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 66
267. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, 1.93
268. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.18
269. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.102
270. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 761
271. नाट्य शास्त्र, भरत 19.89
272. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.92
273. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.103
274. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 67
275. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.17.18

276. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 768
277. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 68
278. नाट्य शास्त्र, भरत 19.89
279. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.56
280. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.18
281. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 178
282. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 757
283. तदुपरिवत् पृ0 757
284. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 179
285. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 762
286. नाट्य शास्त्र, भरत 19.89
287. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 179
288. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 781
289. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 71
290. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 199
291. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 776
292. नाट्य शास्त्र, भरत 19.94
293. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 765
294. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 73
295. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 184
296. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 766
297. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 74
298. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 769
299. तदुपरिवत् पृ0 769
300. नाट्य शास्त्र, भरत 19.95
301. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.106
302. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 768
303. तदुपरिवत् पृ0 768

304. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 78
305. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 198
306. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 789
307. नाट्य शास्त्र, भरत 19.93
308. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.56
309. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 200
310. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 9, पृ0 786
311. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 102
312. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 82
313. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.104
314. नाट्य शास्त्र, भरत 19.97
315. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.110
316. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.21
317. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 221
318. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 797
319. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 83
320. नाट्य शास्त्र, भरत 19.98
321. नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, 1.105
322. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.110
323. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.21
324. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 84
325. नाट्य शास्त्र, भरत 19.98
326. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.21
327. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 802
328. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 86
329. नाट्य शास्त्र, भरत 19.98
330. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.11
331. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 219

332. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 87

333. नाट्य शास्त्र, भरत 19.101

334. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.21

335. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 613

336. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 86

337. नाट्य शास्त्र, भरत 19.99

338. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 6.111

339. प्रतापरूद्रयोभूषण, विद्यानाथ 3.21

340. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 210

341. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 807

342. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 88

343. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 239

344. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 819

345. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 88

346. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 239

347. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 826

348. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 89

349. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 834

350. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 90

351. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 852

352. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 91

353. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 239

354. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 661

355. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 871

356. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 237

357. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 93

358. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 240

359. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 896

360. 'दशरूपक', धनंजय, सं0 श्रीनिवास, प्रथम प्रकाश, पृ0 93

361. 'प्रबोध चन्द्रोदय', कृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 6, पृ0 241

362. संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्य, अंक 10, पृ0 886

363. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच, डा0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 103

364. अभिनव नाट्य शास्त्र, आचार्य पं0 सीताराम चतुर्वेदी, पृ0 114

चतुर्थ परिवर्त्त

पात्रों का तुलनात्मक चरित्र-चित्रण

❖ नायक

❖ नायक के भेद

❖ अमूर्त नायकों का मूर्तिकरण

❖ नायिका

❖ नायिका के भेद

❖ अमूर्त भावों पर आधारित नायिका

❖ प्रबोध-चन्द्रोदय के पात्र

❖ पुरुष पात्र

❖ स्त्री पात्र

❖ संकल्प सूर्योदय के पात्र

❖ नायक पक्ष

❖ प्रतिनायक पक्ष

❖ प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय के पात्रों का तुलनात्मक निरुपण

चरित्र चित्रण

नायक

दशरूपककार के अनुसार नायक भेद इस प्रकार है – भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्वतैरयम्[1] नायक ललित, शान्त, उदात्त, और उद्वत भेद से चार प्रकार का होता है। नाट्यशास्त्र[2], 'नाटय दर्पण'[3], साहित्य दर्पण'[4] 'प्रतापरूद्रयोभूषण'[5] आदि इन्हीं भेदों को मानते हैं और इन ललित आदि चारों भेदों से पूर्व धीर शब्द जोडकर धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त और धीरोंद्वत ये चार प्रकार के नायक माने जाते हैं। 'धीर' शब्द का अर्थ है धैर्ययुक्त अर्थात् महान संकट में भी कातर न होने वाला। नाम निर्देश के क्रम से इन चारों के लक्षण निम्नवत् है :–

1. **धीरललित –**

'निश्चिन्तों धीरलल़ितः कलासक्तः सुखी मृदुः'।[6] चिन्तारहित, (गीत आदि) कलाओं का प्रेमी, सुखी और कोमल (स्वभाव तथा आचार वाला) नायक धीरललित कहलाता है। ''धीरललित' नायक श्रृंगारी होता है। मंत्रियों के ऊपर राज्य भार छोड देने के कारण वह राज्य की चिन्ता से मुक्त रहता है। इसका स्वभाव अत्यन्त मृदु होता है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता पायी जाती है।[7]

2. **धीरशान्त –**

'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः[8]

सामान्य गुणों से युक्त द्विज आदि नायक तो धीरप्रशान्त कहलाता हैं। ''धीरशान्त' नायक अहंकार से सर्वथा रहित, कृपालु एवं गुरूजनों की आज्ञा का उल्लंघन न करने वाला होता है।[9]

3. **धीरोदान्त –**

''महासत्वोअतिगम्भीरः क्षमावान विकत्थनः

स्थिरो निगूढाहंकारों धीरोदात्तो दृढव्रतः'' ।।[10]

'उत्कृष्ट अन्तःकरण (सत्व) वाला अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील आत्मश्लाधा न करने वाला, स्थिर, अहंकार को दबाकर रखने वाला, दृढ़व्रती नायक धीरोदात्त कहलाया है।'

4. **धीरोद्वत –**

''दर्पमात्सयभूयिष्ठो मायाच्छद्म परायणः

धीरोद्वतसत्वहकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।[11]

जिसमें घमण्ड (दर्प) और डाह (मात्सर्य) अधिक होता है, जो माया और कपट में तत्पर होता है, अहंकारी, चंचल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला है, वह 'धीरोद्वत' नायक है। "धीरोद्वत नायक चंचल तथा क्रोधी होता है, अभिमानी होता है और बढ़-बढ़ कर बातें करता है तथा निरन्तर छल-कपट में लगा रहता है।[12]

धनिक के अनुसार "धीरोदात्तत्व आदि नायक की अवस्थाएँ हैं, जातियाँ नहीं, इसलिये एक ही नायक धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्वत तथा धीरप्रशान्त हो सकता है।[13] एक ही प्रधान नायक में दाक्षिण्य आदि अनेक अवस्थाओं का वर्णन किया जा सकता है, जो निम्नवत है :-

नायक की श्रृंगार रस सम्बन्धी अवस्थाएँ

श्रृंगार रस की दृष्टि से भी नायक के चार भेद होते हैं। 'साहित्य दर्पण', 'प्रतापरूद्रयोभूषण'[14] में भी श्रृंगार की दृष्टि से नायक के चार भेद किये गये हैं- अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ।

1. दक्षिण नायक –

'दक्षिणोऽस्यां सहृदयः – यह नाटक (पूर्व नायिका) के प्रति सहृदय (प्रीति युक्त) रखने वाला दक्षिण नायक कहलाता है।[15] दक्षिणनायक एक साथ ही कई नायिकाओं में अनुराग रखता है। परन्तु उसका समस्त नायिकाओं से व्यवहार एक समान होता है।[16]

2. शठ नायक –

'गूढविप्रिय कृच्छठः'। (पूर्व नायिका का) गुप्त रूप से अप्रिय करने वाला शठ नायक होता है।[17] प्रतापरूद्रयोभूषण[18] में भी यही लक्षण है।

3. धृष्ट नायक –

'व्यक्तांग वैकृतो धृष्टो'। जिस (नायक) के अंगों में विकार (अन्य नायिका के प्रति किये गये प्रेम चिन्ह) स्पष्ट प्रकट होते हैं, वह धृष्ट नायक है।[19]

4. अनुकूल नायक :-

'ऽनुकूलस्त्वेकनायिकः। जिसकी एक ही नायिका होती है, वह अनुकूल नायक कहलाता है।[20] 'साहित्यदर्पण'[21] में इस प्रकार लक्षण दिया गया है- अनुकूल एकनिरतः 'प्रतापरूद्रयोभूषण'[22] में 'एकायपत्तोऽनुकूलः स्यात' दिया गया है।

यदि सूक्ष्म रूप से विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपर्युक्त चारों भेद एक ही नायक की उत्तरोत्तर अवस्थाओं के भी हो सकते हैं।

प्रकृति भेद के अनुसार नायक

प्रकृति भेद के अनुसार नायक के तीन भेद होते हैं – उत्तम, मध्यम और अधम।[23] उत्तम नायक विनम्र, त्यागी प्रिय बोलने वाला, बातचीत करने में कुशल एवं युवक होता है। वह बुद्धि , उत्साह एवं मान से युक्त तथा शरण में आये हुए की रक्षा करता है। इसी प्रकार इसमें और भी बहुत से उत्तम गुण पाए जाते हैं। मध्यम प्रकृति के नायक में न तो बहुत उत्कृष्ट और न बहुत अपकृष्ट ही गुण पाए जाते हैं। अधम प्रकृति का नायक, पापी, आलसी, कृतघ्नी, हीनसत्व, स्त्री लोलुप, रूक्ष और जड़ होता है।[24]

नायक के पुनः तीन भेद किये जा सकते हैं– दिव्य, अदिव्य एवं दिव्यादिव्य। देवता दिव्य, मनुष्य अदिव्य, मनुष्य का रूप धारण किये हुए देवता दिव्यादिव्य होते हैं।[25] 'नंजराजयशोभूषणं' के रचयिता अभिनव कालिदास ने विभिन्न रसों के लिए विभिन्न नायकों की कल्पना की है, जो संगत ही है। भिन्न–भिन्न रसों के लिये अलग–अलग नायकों का निर्धारण इन्होंने किया है। इनके अनुसार "जो व्यक्ति स्थिरानुरागी, अच्छी–अच्छी कलाओं को जानने वाला, विलासी एवं कामकलाओं में परांगत हो, उसे श्रृंगार रस के नाटकों का नायक होना चाहिए। जो वीर, तेजस्वी, गम्भीर, स्वाभिमानी एवं सदैव युद्ध के लिऐ तत्पर हो, उसे वीर रस के नाटक में नायक बनाना चाहिए। जो चंचल हर्ष बढ़ाने वाला, असुया करने वाला, परिहास क्रिया में दक्ष एवं बात करने में चतुर हो उसे हास्य रस नाटक का नायक बनाना चाहिए। जो चिन्ता, श्रम एवं दैन्य से युक्त रहता हो, दुःखी रहता हो, उसे करूण रस में नायक के रूप में निबद्ध करना चाहिए। हर्ष और अमर्ष से युक्त, अत्यन्त अभिमानी, चंचलचित्त एवं अत्यन्त उत्साही नायक का निबन्धन रौद्र रस में करना चाहिए। जिसके मुख से भली भांति शब्द न निकलें, बहुत ही हीन मुद्रा वाला हो, किंकर्तव्यविमूढ़ दुखी, सदा कॉपते रहने वाला नायक भयानक रस से सम्बन्धित होता है। वीभत्सरस के नायक का शरीर मदिरा और मॉस से सना रहता है, मुख पर भय और घबराहट के भाव रहते हैं, मुँह से लार टपकती रहती है एवं मद में चूर रहता है। शान्त रस का नायक जितेन्द्रिय, क्रोधहीन, सात्विकगुणों से युक्त, सदा प्रसन्न

रहने वाला, परम सत्वशील एवं धैर्यवान होता है।[26] इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी लक्षण ग्रन्थों मे आचार्यों ने नायक के अनेक भेद गिनाए हैं।

नायक के सहायक

नायक के सहायकों में सर्वप्रथम 'पीठमर्द' का नाम आता है। यह प्रांसगिक इतिवृत्त का नायक होते हुए मुख्य नायक के स्वार्थ साधन में सहायक होता है। इसमें नायक की अपेक्षा कुछ कम गुण होते हैं। दशरूपककार के अनुसार :– वह चतुर होता है, उस (प्रधान नायक) का अनुचर तथा भक्त होता है और उसके गुणों से कुछ न्यून गुण वाला होता है।[27]

अन्य सहायक

'एकविधो विटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः'[28](नायक की उपयोगी) किसी एक विधा को जानने वाला विट होता है और हास्य उत्पन्न करने वाला विदूषक होता है।

धीरोद्धत आदि नायकों के सहायक युवराज, सेनापति, पुरोहित, सचिव, आटविक, सामन्त, एवं तापस होते हैं। इनमें कुछ अर्थ सहायक, कुछ काम सहायक एवं अन्य धर्मसहायक होते हैं। मंत्री एवं कोषाध्यक्ष अर्थ सहायक होते हैं। ऋत्विग पुरोहित तपस्वी और ब्रह्मवादी लोग धर्मसहायक होते हैं। काम सहायक विदूषक आदि होते हैं। और नपुंसक, किरात, मूक, बौने, म्लेच्छ, आभीर, शकार और कन्चुकी आदि नायक के अन्तःपुर सहायक होते हैं। दूत किसी कार्य की सिद्धि के लिए सन्देश लेकर जाते है। साहित्य दर्पणकार ने दूत के निम्नलिखित भेद बतलाए हैं।

'निःसृष्यर्थो मितार्थस्य तथ संदेशहारकः।
कार्य प्रेष्यस्त्रिधादूतो दूत्यश्चादितथाविधः।
उभयोमवियुन्नीय स्वंय वदति चोत्तरम्।
सुश्लिष्टं कुरूते कार्य निःसृष्टार्थस्तुसस्मृतः
मितार्थभाषी कार्यस्य सिद्धिकारी मितार्थकः
यावदभाषित सन्देशहारः सन्देशहारकः।'[29]

प्रतिनायक – 'लुब्धों धीरोद्वतः स्तब्धः पापकृद्वयसनी रिपुः' लोभी, धीरोद्वत, स्तब्ध (कठोर, आगृही) पाप करने वाला तथा व्यसनी व्यक्ति (प्रधान नायक का) शत्रु प्रतिनायक होता है।[30] 'नांट्यदर्पण',[31] साहित्य-दर्पण[32] में इसी प्रकार का लक्षण हैं।

2. नायिका पर आधारित पात्र – 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की नायिका मति है और

उसके सहयोगी पात्र इस प्रकार है – श्रद्धा, शान्ति, करूणा, मैत्री, उपनिषद्, विष्णुभक्ति, सरस्वती, क्षमा आदि

'संकल्प सूर्योदय' की नायिका सुमति है और उसके सहयोगी पात्र इस प्रकार है – बुद्धि, विष्णु भक्ति, श्रद्धा, विचारणा। 'प्रबोध चन्द्रोदय' और 'संकल्प सूर्योदय' नाटकों में जिन पात्रों की रचना की गई है उनमें वैचिन्र्य और वैविध्य दोनों हैं। वैविध्य की दृष्टि से तो उन्होंने आदर्शवादी और यथार्थवादी, सात्विक प्रवृत्ति के और विलासी प्रवृत्ति के पात्रों का समावेश किया है। उनके पात्र भक्ति, वैराग्य एवं आध्यात्मिक क्षेत्र से भी सम्बद्ध हैं किन्तु कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो मानव इन्द्रियों को अधःपतन की ओर ले चलने वाले हैं। देव, ऋषि, वर्ग के भी पात्र हैं। पात्रों में वैविध्य के साथ वैचिन्र्य भी हैं। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' के पात्रों को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित कर सकते हैं –

1. नायक पर आधारित पात्र

'प्रबोध–चन्द्रोदय' का नायक विवेक है और उसके सहयोगी पात्र है– वस्तु विचार, सन्तोष, पुरूष, प्रवोधोदय, वैराग्य, निदिध्यासन आदि।

'संकल्प–सूर्योदय' का नायक भी विवेक है किन्तु उसके सहयोगी पात्र हैं – व्यवसाय, तर्क, संस्कार, दृष्ट प्रत्यय, संकल्प, पुरूष, गुरू, शिष्य, नारद, तुम्बुरू आदि।

2. प्रतिनायक के आधार पर पात्र

'प्रबोध–चन्द्रोदय' का प्रतिनायक महामोह है और उसके सहयोगी पात्र हैं – चावार्क, काम, क्रोध, लोभ, दंभ, अहंकार, दिगम्बर भिक्षु (कापालिक़), सोमसिद्धान्त आदि।

'संकल्प–सूर्योदय' का प्रतिनायक भी महामोह है और उसके सयोगी पात्र हैं– काम, क्रोध, वसन्त, राग, द्वेष, लोभ, दंभ, दर्प, संवृति, सत्य, अभिनिवेश आदि।

3. प्रतिनायिका पर आधारित पात्र

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की प्रतिनायिका मिथ्यादृष्टि है, जिसके सहयोगी पात्र इस प्रकार हैं – रति, तृष्णा, हिंसा, विभ्रमावती आदि हैं।

'संकल्प सूर्योदय' की प्रतिनायिका 'दुर्मति' है, जिसके सहयोगी पात्र इस प्रकार हैं – रति, तृष्णा, कुहना, असूया, स्तम्भ, दुर्वासना आदि।'

लिंग भेद के आधार पर पात्रों का वर्गीकरण –

लिंग भेद के आधार पर 'प्रबोध चन्द्रोदय' के पात्रों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – स्त्री पात्र, और पुरूष पात्र।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' के पुरूष पात्र –

1.	सूत्रधार	
2.	विवेक	प्रधान नायक
3.	वस्तु विचार	विवेक भृत्य
4.	सन्तोष	सज्जनों का सहचर
5.	पुरूष	उपनिषद् का पति
6.	प्रबोधोदय	उपनिषद् से उत्पन्न पुरूष का पुत्र
7.	वैराग्य	निदिध्यासन संकल्प मन के पुत्र
8.	पारिपार्श्वक	पुरूष, सारथी प्रतिहारी
9.	महामोह	प्रतिनायक
10.	काम, क्रोध, लोभ, दंभ, अहंकार (मोह के मंत्री)	
11.	मन	संकल्प रूप
12.	दिगम्बर भिक्षु, कापालिक, सोमसिद्धांत (विभिन्न मत)	
13.	वटु, शिष्य, पुरूष, दौवारिक।	

प्रबोध चन्द्रोदय के स्त्री पात्र

1.	नटी	
2.	मति	विवेक की स्त्री
3.	श्रद्धा	शान्ति की माता
4.	शान्ति	विवेक भागिनी
5.	करूणा	शान्ति की सखी
6.	मैत्री	श्रद्धा की सखी
7.	उपनिषद्	वेदान्त विद्या
8.	विष्णु भक्ति	उपनिषत्सखी
9.	सरस्वती	विष्णुभक्ति सखी
10.	क्षमा	विवेक दासी

11.	मिथ्यादृष्टि	मोह की पत्नी
12.	विभ्रमावती	मिथ्यादृष्टि की सखी
13.	रति	काम की स्त्री
14.	हिंसा	क्रोध की पत्नी
15.	तृष्णा	लोभ की पत्नी

'संकल्प–सूर्योदय' के पुरूष पात्र

1.	सूत्रधार	
2.	नायक विवेक	राजा
3.	व्यवसाय	सेनापति
4.	तर्क	सारथि
5.	संस्कार	शिल्पी
6.	दृष्टप्रत्यय	दूत
7.	संकल्प	भगवद्वास
8.	पुरूष	निःश्रेयस अधिकारी
9.	गुरू	सिद्धान्त
10.	शिष्य	वाद
11.	नारद तुम्बुरूः	देवर्षि
12.	महामोह	प्रतिनायक
13.	काम, क्रोध	मोह के सेनानायक
14.	वसन्त	काम का सखा
15.	राग, द्वेष, लोभ	मंत्री
16.	दंभ, दर्प	मोह के कुटुम्बी
17.	संवृतिसत्य	दूत
18.	अभिनिवेश	कोषाध्यक्ष

संकल्प सूर्योदय के स्त्री पात्र

1.	नटी	
2.	सुमति	रानी
3.	बुद्धि	पुरूष पत्नी

4.	विष्णुभक्ति	भगवतदासी
5.	श्रद्धा, विचारणा	सुमति की सखियाँ
6.	दुर्मति	मोह की पत्नी
7.	रति	काम की पत्नी
8.	तृष्णा	लोभ की स्त्री
9.	कुहना	दंभ की पत्नी
10.	असूया	दर्प की पत्नी
11.	स्तम्भ	कंचुकी
12.	दुवासना	कोषाध्यक्ष की पत्नी

जब हम आलोच्य नाटकों की पात्र सृष्टि पर विचार करते हैं, तब हमें ज्ञात होता है कि इन दोनों नाटककारों की चरित्र परिकल्पना केवल गुणदोषों की कृत्रिम समष्टि पर आधारित न होकर, मानव जीवन की समग्र आन्तरिक चेतना पर आधारित है। उक्त नाटकारों ने मानवजीवन के आन्तरिक इतिहास को उद्घाटित करने के लिये जीवन कीं आन्तरिक वृत्तियों को पात्र बनाकर प्राणवान चरित्रों की सृष्टि कर दी है। उन्होंने अपने नाट्यलेखन में मात्र प्रवृत्तियों का निरूपण ही नहीं किया और न उपनिषद् अथवा पौराणिक शैली में परिगणन। आध्यात्मिक . शैली में प्रतिवेदन मात्र भी नहीं किया बल्कि पात्रों में रसात्मकता, भक्ति भाव, चरित्र, संस्कार आदि पर महत्व देकर उन पात्रों को सजीव, सरस, संवाद–योग्य, नाटकीयता, प्रदान करके लोक–मंगल का उद्देश्य पूरा किया है।

चरित्र–चित्रण में जहां एक ओर नायक और उसके सहयोगी चरित्रों की रचना की गई है, जो समरसता, आनन्द, आन्तरिक सुख–शान्ति के लिए संघर्षरत हैं, साथ ही वे हिंसा, आतंक और उच्श्रृंखलता के वातावरण को समाप्त करके तथा जीवन की बहिर्प्रवृत्ति को भोग, विलास, दम्भ तथा छलना पूर्ण जीवन से हटाकर जीने का उपक्रम करते हैं। उन पात्रों का संघर्षशील निरुपण किया गया है।

आलोच्य नाटककारों की चरित्र परिकल्पना की एक तीसरी विशेषता यह है कि देखने में दो पक्ष अथवा दो दल हैं किन्तु वास्तव में यहाँ प्रश्न यह है कि एक व्यक्ति के ही अन्दर उसकी आन्तरिक और बहिर्मुखी प्रवृत्तियाँ दो विरोधी ध्रुवों की ओर यात्रा करती हैं। एक का मार्ग शिवत्व का है तो दूसरे का अशिवत्व का। एक

विवेक के पंथ पर अग्रसर है तो उसी व्यक्ति के भीतर एक दूसरी प्रवृत्ति मोह की भी हैं। अतः मनुष्य को किसी और से नहीं, अपने भीतर की विरोधी प्रवृत्यिों का ही शमन करना है। एक त्याग–निष्ठ व्यक्ति को उसका मन ही उसे छलता है। ऐसी स्थिति में जो आत्मोन्मुख संघर्ष होता है, वहीं मनुष्य का सच्चा पुरूषार्थ है। महाकवि कालिदास के शब्दों में – ''विकारहेतौ शतविक्रयन्ते एषां न चेतांषि त एव धीरा''। अर्थात् विकारों के हेतु होने पर भी जो व्यक्ति उनसे अप्रभावित रहते हैं, वहीं धीर पुरूष हैं। धीर और वीर पुरूष स्थित प्रज्ञ होते हैं। उनके मन और चित्त एकाग्र होकर समाधिजन्य आनन्द को ही सर्वोच्च्व सुख की संज्ञा देते हैं। अतः आलोच्य नाटककारों ने जीवन के इसी सत्य को पात्रों के माध्यम से प्रतिविम्बित किया है, आन्तरिक संघर्ष को चित्रित किया है। अन्तर्संघर्ष को इन दो विरोधी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व नायक और प्रतिनायक के रूप में विवेक और महामोह को आलोच्य नाटकों में मानवीकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है –

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' के नायक एवं उसका चरित्र चित्रण

वस्तुतः नाटक का नेता वही हुआ करता है, जो उसके फल का भोक्ता होता है अथवा जो फल की प्राप्ति करता है। नेता शब्द का निर्माण 'नी' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है ले चलना। जो कथा को फल की ओर ले जाता है, वही नेता अथवा नायक कहलाता है। अतः 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' नाटकों में विवेक ही फल का भोक्ता अथवा कथावस्तु को फल की ओर ले जाने वाला हैं। अतः वह दोनों ही नाटकों में नायक हैं। 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' नाटक के नायक विवेक धीरोदात्त नायक की दृष्टि से उसमें सभी चारित्रिक गुण विद्यमान हैं। दशरूपककार[33] तथा साहित्यदर्पण[34] के अनुसार धीरोदात्त कोटि के नायक का प्रथम विशिष्ट गुण महासत्वसम्पन्न अर्थात् नायक का अन्तःकरण क्रोध तथा शोक आदि विकारों से अभिभूत नहीं होना चाहिए। अतः राजा विवेक प्रारम्भ में ही मोह द्वारा ब्रह्म की दीनदशा ग्रस्त हो जाने से थोड़ी देर के लिए क्षुब्ध होते हैं परन्तु उनमें शोक स्थायीरूप में नहीं रहा और वे कहते हैं ''अवाधैर्ययुत शान्त, उन्नत, महान् उदय को प्राप्त नीतिज्ञ, स्वच्छ हृदय एवं परमबुद्धिमान भी स्थितियों के द्वारा छले जाने पर सहज धीरता से विचलित हो जाते हैं, जिनके कारण माया के संसर्ग से

परमेश्वर भी पुमान् कहे जाते हैं।[35] अतः 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का नायक विवेक क्रोध तथा शोक आदि विकारों से रहित है। 'संकल्प–सूर्योदय' का नायक विवेक भी क्रोध आदि विकारों से रहित है और साथ ही वह महाबलशाली भी है।

''धीरोदत्त'' नायक में अति गम्भीरता तथा क्षमाशीलता स्वाभाविक रूप से ही हुआ करती है। धीरोदात्त नायक को अविकत्थन अर्थात् (अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला) होना चाहिए। उक्त दोनों नाटकों में प्रारम्भ से अन्त तक नायक विवेक की एक भी उक्ति उपलब्ध नहीं होती, जिससे उसका आत्मप्रशंसक होना प्रकट होता हो। अतः वह अविकत्थन भी है। विवेक क्षमाशील एवं गम्भीर होने के कारण स्थिर चित्त वाला भी है। विवेक द्वारा यह कथन कि जिन अहंकारादि ने विश्व के आदि पुरूष को बांधकर शरीरों में अनेक प्रकार से विभक्त करके तथा मृत्यु के धाम पहुंचा दिया है और मेरे द्वारा उन ब्रह्मनिष्ठ लोगों को विद्या से विधिवत प्रायश्चित कराकर उसे पुनः ब्यापकता की प्रतीत करायी जा रही है। यह कथन उसको स्थिर चित्त होने वाला सिद्ध करते हैं, वहीं 'संकल्प–सूर्योदय' का नायक विवेक समाधि के दुरूह साधनों को अपना कर विष्णुभक्ति प्राप्त करता है। ये उसके स्थिर चित्त के ही कारण सम्भव हो सका है और राजा विवेक के ह्दय में एक मात्र सुमति के लिये ही सर्वाधिक प्रेम का स्थान है। उस स्थान को कोई दूसरी रमणी प्राप्त नहीं कर सकती है। वहीं 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का नायक विवेक मति के साथ–साथ उपनिषद् से भी प्रेम करता है अतः दक्षिण नायक कहा जा सकता है। प्रधान महिषी मति की स्वीकृति से वह उपनिषद् के साथ संगम की आकांक्षा करता है। वह दोनों पत्नियों से समान अनुराग रखता है। वहीं 'संकल्प–सूर्योदय' का नायंक अनुकूल नायक है। नायक विवेक द्रढ़व्रत भी है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' का नायक विवेक ने (जो कार्य) ब्रह्म को दीन दशा से मुक्त कराने का जो कार्य प्रारम्भ किया था उसे पूर्णता तक पहुँचाकर नायक होने का श्रेय प्राप्त करता है। 'संकल्प–सूर्योदय' का नायक विवेक भी निःश्रेयस प्राप्ति के लिये मोह का नाश कर अन्ततः मोक्ष प्राप्त करता है, यह उसके दृढ़वत होने के कारण सम्भव हो सका है।

पात्रों के चरित्र चित्रण के विधान में श्रीकृष्ण मिश्र विरोध के मूल्य को खूब अच्छी तरह समझते और अनुभव करते हैं। उनके चरित्र–चित्रण की यह महती विशेषता है कि प्रायः उनके पात्रों का चरित्र विरोध की पृष्ठभूमि में प्रभाव पूर्ण ढंग से चित्रित हुआ है। उक्त दोनों नाट्ककारों की पात्रों क़ी विरोधात्मक प्रवृत्तियों में कहीं पर भी ऐसा नहीं अनुभव होता कि उनकी विरोधी प्रवृत्ति नाटककार की अपनी बनाई हुई मूर्ति मात्र है। उनका विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। वे अपने चरित्र का निर्माण करने वाले स्वयं हैं।

'प्रबोध चंद्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' के नायक विवेक में साधर्म्य इस प्रकार है– उक्त दोनो नाटकों का नायक 'विवेक' साहसी योजनाओं का निर्माता है, जो कभी साधनों की चिंता नहीं करता। दोनो ही निःस्वार्थी हैं, कुशल राजनीतिज्ञ हैं, साहसी हैं और बहुविधि साधनों से संपन्न हैं। दोनो ही अपने–अपने उद्देश्यों के प्रति अविचल भाव से संलग्न हैं। दोनो ही विचारशील एवं निर्विकार बुद्धिजीवी हैं। 'प्रबोध चंद्रोदय' का विवेक दूरदर्शी और जिस किसी भी कार्य को करता है, पूरी लगन के साथ करता है। महामोह से युद्ध की तैयारी के समय उसका कथन है – महा मोह के साथ हमारा युद्ध छिड़ गया है। उसमे 'काम' उसका मुख्य योद्धा है। उसका प्रतियोद्धा हमने 'वस्तु विचार' आपको चुना है। आप किस शास्त्र विद्या से काम को विजय करेंगे और क्रोध को जीतने के लिए क्षमा को उसका प्रतिद्वंदी के रूप में चुनता है और लोभ को जीतने के लिए संतोष को नियुक्त करता है। अंततः मंगल अनुष्ठान करके यात्रा करने का निश्चय करता है – 'सारथि से कहो कि युद्धोपयोगी रथ सजाकर लावें।[36] प्रबोध चंद्रदोय का नायक विवेक क्षमा, संतोष आदि सहायकों पर आश्रित है परंतु 'संकल्प सूर्योदय' का नायक विवेक अपनी बुद्धि पर आश्रित है।'

'प्रबोध–चंद्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' का प्रतिनायक एवं उसका चरित्र चित्रणः–

संपूर्ण नाटक विरोधी चरित्रों के मध्य विकसित हुआ है। विवेक और मोह परस्पर विरोधी रूप में चित्रित है। विवेक के चरित्र की पृष्ठभूमि अत्यंत आवश्यक है। किसी भी व्यक्ति के चरित्र का यदि पता करना हो कि इस व्यक्ति का चरित्र कैसा है तो इसको पता करने के तीन प्रकार है – उस व्यक्ति ने पात्र रूप में आत्माभिव्यक्ति कैसी की है, उस पात्र के विषय में दूसरे पात्रों की क्या सम्मति है और नाटक के अंदर नाटककार के स्थान–स्थान पर आए हुए अपने विचार। इन्हीं तीन प्रकारों से हम किसी व्यक्ति के चरित्र का अवगाहन कर सकते हैं।

'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक के अन्दर हम प्रत्यक्ष रूप से रंगमंच पर महामोह को द्वितीय अंक में देखते हैं। द्वितीय अंक में महामोह के चरित्र का विकास राजनीतिक पृष्ठभूमि में हुआ है। महामोह ने पात्र रूप में आत्माभिव्यक्ति इस प्रकार की है – (सभयमात्मगतम्) आःप्रसिद्ध महाप्रभाता सा योगिनी स्वभावद्विद्वेषिणी चास्माकं दुरुच्छेद्या सा।[37] अन्यत्र स्थल पर (स्वगत विचार कर) शान्ति का क्या प्रतीकार। अथवा अन्य उपाय व्यर्थ है। क्रोध, और लोभ ये दोनो इसके लिए पर्याप्त हैं। कथनों द्वारा महामोह के द्वारा ही सफल आत्माभिव्यक्ति हुई है। 'संकल्प सूर्योदय' नाटक के अंदर प्रत्यक्ष रूप से रंगमय पर महा पंचामोऽक, अष्ठमोऽक एवं

नवमोंऽक में हम देखते हैं और महामोह ने 'संकल्प सूर्योदय' में पात्र रूप में आत्माभिव्यक्ति इस प्रकार की है –

महामोह :– (सक्रोधकंपम्) भगवान पापीयान खल्वसावशेषभोगनिर्मूलनोद्यतोविवेकहतकः। (आकाशे लक्ष्यं बद्धा) आः पाप दुराचार विश्र्वविद्वेषदूषित मूढ विवेकापशद,

मोघारम्भ क्षपितमनसा मोहवीर स्त्रिलोकी

वेलाभेदस्वर सरसिको वभ्रिप्राणमित्रम्

ब्रह्मोस्तम्बप्रसृत निगमस्तोमशाखाविभंगम्

क्रीड़ाचण्डः कृपण भवना किं न दृष्टः श्रुतोवा।[38]

'महामोह' के चरित्र में धीरोद्धत नाटक के सभी गुण मिलते हैं। नाटक में नायक विवेक के बाद चरित्र–चित्रण एवं कार्य व्यापार में संघर्ष और रोचकता की अभिवृद्धि एवं विकास की दृष्टि से 'महामोह' प्रतिनायक का उक्त दोनो नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बिना नायक का चारित्रिक विकास समुचित रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता। क्योंकि मानव के व्यक्तित्व का सही अनुमान विरोधजनक एवं विपरीत परिस्थितियों में ही संम्भव है और नाटक में ऐसी परिस्थितियों के निर्माण में प्रतिनायक महामोह का विशेष रूप से योग रहता है।

'महामोह' 'विवेक' का विरोधी एवं कुटिल चरित्र वाला है –

'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक में महामोह की कुटिलता निम्न पक्तियों में दृष्टव्य है –

महामोह (सक्रोधम्) आः किमेवमतिमुग्धो शान्तेरपि विभितः कमादिषु प्रतिपक्षेषु कुतोऽस्याः संभवः। तथाहि – घाता विश्र्वविसृष्टिमात्रनिरतो देवाऽपि गौरी भुजा

श्लेषानन्द विघूर्णमाननयनो दक्षाध्वर ध्वंसनः ।

दैत्यारिः कमलाकपोल मकरीलेखाड्तिकतोरःस्थलः

शेतेऽब्धावितरेषु जन्तुषु पुनः का नाम शान्ते कथा।।[39]

अर्थात् यह इतने सीधे हैं कि शान्ति से भी भय करते हैं। काम आदि के विरोधी होने पर भी शान्ति कहां सम्भव है और वह पुरुष को आदेश देता है, मूर्ख जाओ शीघ्र जाकर हमारा आदेश कहो। हमने ज्ञात कर लिया है कि धर्म दुर्जन है, उस पर एक क्षण के लिये भी विश्वास न करना चाहिये। उसे द्वंद्वता पूर्वक बांधकर रखें और स्वगत विचार कर शान्ति का क्या प्रतिकार है? अथवा अन्य उपाय व्यर्थ है। क्रोध और लोभ ये दोनो इसके लिये पर्याप्त हैं। 'संकल्प सूर्योदय' के प्रतिनायक महामोह की कुटिलता निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है

धिग्ब्रह्माण्डकरण्डगह्वरकुटीकर्पूरपूरं यशो
धिक्प्रह्वत्रिदशेन्द्रफालफलकस्पष्टोपमृष्टं पदम्
धिग्दोर्विक्रममदभुतं मम पुनर्धिग्वादमेवास्तु धिक
सोढा वैरिकथमपि स्वयमहं नीचाय महां नमः।।[40]

उक्त नाटक में प्रतिनायक 'महामोह' उसकी पत्नी दुर्मति है और 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक में महामोह की पत्नी मिथ्या दृष्टि है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' का प्रतिनायक महामोह, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ अहंकार आदि मोह के मंत्री हैं व चार्वाक मोह का मित्र। रति, हिंसा, तृष्णा विश्रमावती आदि के साथ मिलकर विवेक से युद्ध आरम्भ करता है और अपनी विजय की योजना बनाता है। 'संकल्प–सूर्योदय' के प्रतिनायक 'महामोह' के साथ राग, द्वेष, लोभ आदि उसके मंत्री हैं चार्वाक मोह का मित्र है। रति, हिंसा, तृष्णा, विभ्रमावती आदि के साथ मिलकर विवेक से युद्ध आरम्भ करता है और अपनी विजय की योजना बनाता है। 'संकल्प–सूर्योदय' के प्रतिनायक 'महामोह के राग, द्वेष, लोभ आदि मंत्री हैं। दम्भ और दर्प महामोह के कुटुम्बी हैं। काम, क्रोध आदि महामोह के सेनानायक हैं। रति, वसंत, तृष्णा, कुहना, असूया, संवृति, सत्य, अभिनिवेश, दुर्वासना आदि के साथ मिलकर विवेक से युद्ध करता है। 'प्रबोध चंद्रोदय' का प्रतिनायक महामोह शान्ति और श्रद्धा के विरोध में क्रोध और लोभ को नियुक्त करता है और श्रद्धा को प्रवंचित करने में मिथ्यादृष्टि ही समर्थ हो सकेगी, अतः इस कार्य के लिए उसे ही नियुक्त करना चाहिए। महामोह मिथ्यादृष्टि से इस प्रकार उसको उसके कार्य में नियोजित करता है "जिस प्रकार प्रकाशित अंगो से सर्वत्र विचरण करती हो, वैसे ही भ्रमण करना। दुष्टश्रद्धा विवेक के साथ उपनिषद को मिलाने के लिये कुट्टिनी बनी है अतः प्रतिकूल नीचकुल में उत्पन्न यामिनी, पापियों का अनुसरण करने वाली उस श्रद्धा के केश पकड़कर, पाखण्ड में लगा दो। और काम, क्रोध, लोभ, मद मात्सर्य आदि को सावधान करता है व विष्णुभक्ति का वध करने को कहता है। इस प्रकार यह विवेक ये युद्ध प्रारम्भ करने की तैयारी करता है। संकल्प–सूर्योदय का प्रतिनायक महामोह दंभ और आदिकों लेकर और सेनापति काम, क्रोध के साथ मिलकर विवेक से युद्ध आरंम्भ करता है। 'संकल्प–सूर्योदय' के प्रतिनायक महामोह अपनी पत्नी दुर्मति से अत्यंत स्नेह करता है। 'प्रबोध चंद्रोदय' का प्रतिनायक महमोह अपने अत्यंत प्रिय मित्र श्रावक से अत्यंत स्नेह रखता है। जबकि 'संकल्प सूर्योदय' के प्रतिनायक 'महामोह' का एक भी मित्र नहीं है। महामोह

'धीरोद्धत' नायक है। वह मायावी, छली, प्रंचंड, चपल असहनशील, अहंकारी, शूर और स्वयं अपनी प्रशंसा करने वाला है।

'प्रबोध चन्द्रोदय' का प्रतिनायक छल, कपट करने वाला भी है। वह द्वितीय अंक में श्रद्धा की पुत्री शान्ति के विषय में इस प्रकार उपाय करता है – शांति की माता श्रद्धा है तथा वह पराधीन है। इसलिए किसी छल से उपनिषद् के पास से श्रद्धा को हस्तगत कर लें। इस प्रकार माँ के वियोग में शांति सुलभ हो जाएगी और श्रद्धा को प्रवंचित करने में मिथ्यादृष्टि ही समर्थ हो सकेगी! इस प्रकार कूटनीति में संलग्न रहता है। 'संकल्प सूर्योदय' का प्रतिनायक महर्षि नारद के आने पर हर्ष प्रकट करता है। वह कहता है मै धन्य हो गया, जो सम्पूर्ण लोकपालों के मौलिश्री नारद जी मेरी राजधानी पर पधारे हैं। वह नारद जी का इस प्रकार स्वागत करता है –

महामोह :– देवि, दीयतमस्मै देवर्षये पाद्यमर्घ्यंमधुयर्कश्र्च

वहीं 'प्रबोध चन्द्रोदय' का प्रतिनायक महामोह ऐसा कुछ भी नहीं करता। वह प्रतिक्षण आत्मप्रशंसा में संलग्न रहता है। वह अहंकारी है। महामोह काशी में स्थित भक्तों को देखकर हंसकर कहता है – अहा ये मूर्ख कितने निरंकुश हैं। शरीर से भिन्न स्वरूप आत्मा है, वह लोकांतर में फल का भोग करता है, यह आशा विशाल आकाश वृक्ष के पुष्प से मधुर फल की उत्पत्ति की आशा के समान है और इस संसार को ये मूर्ख अपनी कल्पना द्वारा विनिर्मित पदार्थों से छल रहे हैं। 'जो वस्तु है ही नहीं, वह है, इस प्रकार की असत्य बात कहने वाले आस्तिकों ने मुखादि अंगों के समान होने पर भी, जाति व्यवस्था कैसी? यह स्त्री तथा धन दूसरे का है – इस प्रकार का भेद हम नहीं जानते हैं क्योंकि हिंसा अथवा स्त्रियों के साथ यथेष्ट गमन में और इसके जन ग्रहण में असमर्थ ये लोग उचित, अनुचित का विचार करते हैं।[42] 'संकल्प–सूर्योदय' के प्रतिनायक महामोह में भी अहंकार का आधिक्य है। निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है –

महामोह :– (सोच्चैर्हासम्) मुग्धे, स्वप्नेऽप्येवंविधंकातरवचनं मा वोचः। न्वहं महामोहः। किमिदानीम न्यमेव मामभिन्य से। अथवा न हि कदाचिदपि परिस्फुरन्ति प्रमदाजनानां राजकार्यगतयः। प्रिये श्रणु चैतन्यन्हामोहस्य वीरव्रतम्।

क्रकचैः कृत्तदेहोऽपि दीपितोडपिदवांग्निना
न सूच्यग्रं प्रदास्यामि न संघास्यामि केनचित।।

अथवा

नाहमस्मि महामोहो न च विश्वं जितं मया

विभूतिर्ऽमिता यस्य विभक्तव्यपदास्पदम्।।[43]

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक का प्रतिनायक अपनी प्रशंसा करता है व अपने आपकी निन्दा करता है कि यदि मै संपूर्ण संसार को नहीं जीत लेता तो समस्त ऐश्वर्य व्यर्थ हैं। अतः उक्त दोनो नाटकों में महामोह प्रतिनायक का चारित्रिक दोष और गुण किसी भी रूप में देखा जा सकता है। असफलता को वह सहन नहीं कर सकता। और ~~इस~~ इसलिये वह साधनों के प्रति उदासीन हो जाता है। अन्ततः वह यह अनुभव करने लगता है कि अब उसके लिए विवेक के जाल से बाहर निकलना कठिन ही नहीं, अपितु असंम्भव है। महामोह के स्वगत कथनों द्वारा उसके मानसिक ऊहापोह का संघर्ष का चित्र सामने आता है। इस प्रकार हम देखते हैं उक्त दोनो नाटकों में प्रतिनायक महामोह भावना प्रधान अनुभूति के साथ एक राजनीतिज्ञ विपक्षी के रूप में चित्रित किया गया है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' के अन्य पुरुष पात्रों का चरित्र–चित्रण–

पात्रों की सृष्टि प्रवृत्तियों को आधार बनाकर की गई है, अतः नायक विवेक और प्रतिनायक महामोह के सहयोगी पात्र भी हैं और ये पात्र निरन्तर दो विरोधी भावों के कारण संघर्षरत हैं। अतः दोनो प्रकार के पात्रों की द्वन्द्वात्मक स्थिति का गहन एवं सूक्ष्म निरूपण नाटककारों ने किया है। प्रकृति और प्रवृति की दृष्टि से एक वर्ग जहां प्रवृत्ति मार्ग में लीन है, वहीं दूसरा निवृत्ति में। एक जहां भक्ति के लिए समर्पित है, वहीं दूसरा विलासप्रिय। एक वर्ग के समक्ष जहां विष्णुभक्ति और मोक्ष का आदर्श है, वहीं दूसरे चार्वाकवादी योगपरक मूल्यों में आस्था रखते हैं।

दोनो वर्गों के अपने–अपने अंतरंग मित्र हैं। जो अपनी–अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। एक ओर जहां भक्ति और आध्यात्म का प्रेरक वातावरण है, वहीं दूसरी ओर गतिरोधक श्रेष्य के लिए, एक दोनो पक्षों की सक्रियता भी कम नहीं है किन्तु अन्ततः तात्विक जीवन का रसोद्रेक भक्ति, प्रेम, करुणा एवं जीवनादर्शों के पक्ष में ही जाता है, दूसरी ओर प्रेम और राष्ट्रीय चेतना तथा धर्म, संस्कृति के प्रतिकूल स्वच्छन्दतावादी, मूल्यविहीन प्रवृत्तियों का जमघट लगता है। और यह युद्ध हृदय के कुरुक्षेत्र में लड़ा जाता है। एक ओर इंन्द्रियों की सेना है, महामोह इसी ऐन्द्रिक सेना का प्रतिनायक है। उसके सहयोगियों में काम और रति, बसन्त जैसे अत्यंत प्रभावशाली और विश्वविजयी शक्तियों वाले पात्र हैं। ये श्रृगार के माध्यम से रति आदि भावों का प्रसार करते हैं। उधर दंभ, अहंकार भी कर्तृत्व मद से

मनुष्यों को मदान्ध करते हैं। मनुष्यों के आत्म संयम को तोड़ते हैं। सतकर्म को बाधित करते हैं। ये क्रीड़ा मानव जीवन की वेदिका पर संगठित होती है। समस्त जीव, जगत और प्रकृति महामोह से आंच्छादित होते हैं क्योंकि रति, काम और बसंत की सेना साधारण सेना नहीं है। इन्होंने संपूर्ण संसार को अपना क्रीड़ा क्षेत्र बना रखा है। अतः ऐसी स्थिति में पुरुष का पुरुषार्थ भी तब तक सफल नहीं हो पाता, जब तक कि उपनिषद् भक्ति आदि को सहयोगी नहीं बना लेता। ऐसी स्थिति में इन द्विविध पक्षों के चरित्रों को उद्घाटित करना तथा पात्रों के बहिर्मुखी और अंतर्मुखी चरित्र को समायोजित कर उनका अध्ययन करना गंभीर तथा मनोवैज्ञानिक विवेचन का भी विषय है।

आलोच्य नाट्यकृतियों के नायक और प्रतिनायक के चरित्रों का निरूपण करने के बाद अब हम नायक और प्रतिनायक के सहयोगी पुरुष पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

1. नायक पक्ष के पुरुष पात्र :– नायक पक्ष के पुरुष पात्रों में वस्तु विचार का चरित्र चित्रण करेंगे।

वस्तुविचार – वस्तुविचार नामक पात्र 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक में नायक विवेक का भृत्य है। देवी विष्णु भक्ति के द्वारा यह कथन कि काम को तो वस्तु विचार ही जीत लेगा। उसकी महानता का द्योतक है। राजा विवेक द्वारा वस्तुविचार को काम का प्रतियोद्धा नियुक्त किया जाता है। राजा के यह पूछने पर कि किस शस्त्र विद्या से काम को विजय करेंगे। इस पर वस्तुविचार का कथन इस प्रकार है। देखिए –

वस्तुविचार : आः पंचशर कुसुमधन्वा कामो जेतव्य इत्यत्रापि शस्त्रगृहणापेक्षा। पश्य –

दृढतरमपिधारा द्वारमारात्कथंचि
त्स्मरणमपरिवृत्तौ दर्शने योषितां च
परिणतिविरसत्वं देहवीभत्सतां वा
प्रतिमुहुरनुचिन्त्योन्मूलनयिष्यामि कामम्।[44]

और यदि चौड़े तटों वाली नदियां, अत्यधिक मात्रा में निरन्तर गिरते हुए झरनों से चिकनी शिलाओं वाले पर्वत, घने वृक्षों वाले जंगली भू–भाग और श्री व्यास जी द्वारा कही गई शान्तिमयी वाणी एवं विद्वानो के साथ मिलन हो जाए तो फिर मांस, चर्बी की ही अधिकता से युक्त स्त्रियों तथा कामदेव का क्या प्रभाव हो सकता है? अर्थात कोई नहीं। वस्तुविचार के कथनानुसार – नारी नामक वस्तु वस्तुतः कामदेव का प्रधान अस्त्र है। इसलिए उस नारी को जीत लेने पर उस नारी के सहायक सभी साधन विफल प्रयास वाले होकर हार मान

लेंगे। वस्तु विचार द्वारा स्वयं आत्माभिव्यक्ति में अपने स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है–

सोऽहं प्रकीर्णैः परितो विचारैः

शरैरिवोन्मथ्य बलं परेषाम्

सैन्यं कुरुणामिव सिन्धुराजं

गाण्डीववन्धवेव निहन्मि कामम्।।[45]

मै वस्तुविचार वेद शास्त्र, पुराण और इतिहासादि में इधर–उधर बिखरे विचारों द्वारा अपने शत्रुओं (काम आदि) की शक्ति को अत्यंत क्षीण करके उसी प्रकार कामदेव को मारता हूं, जैसे गाण्डीवधारी अर्जुन ने बाणों के द्वारा कौरवों की सेना को मथकर सिन्धुराज जयद्रथ का वध किया था। निम्न कथनों द्वारा वस्तु विचार को चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

2. संन्तोष :– 'सन्तोष' स्वभाव से ही सात्विक एवं संयमी है। 'प्रबोध–चंद्रोदय' का नायक विवेक उसे लोभ को जीतने के लिये नियुक्त करता है। संतोष नामक पात्र के चरित्र का विकास नाटक के चतुर्थ अंक में हुआ है। संतोष (खेद के साथ) रंगमंच पर प्रकट होता है, उसका कथन है– ओरे मूर्ख लोभी, तुम्हारा भ्रम दूर नहीं किया जा सकता क्योंकि अरे अज्ञान के पराधीन पशु इस धन रूपी मृग मरीचिका के सागर – जल में प्यास से व्याकुल तुम्हारे प्रयास कितने बार विफल नहीं हो चुके हैं। फिर भी रे मूर्ख! तेरा लोभ शान्त नहीं हुआ। इस समय जो तुम्हारा हृदय फट नहीं गया तो निश्चय ही वह वज्र से बना है और लोभ से अन्धे हुए तुम्हारी यह चेष्टा मन में चमत्कार पैदा करती है –

लक्ष्यं लब्धमिदं चलभ्यमधिकं तन्मूललभ्यं ततो

लब्धंचापरमित्यनारतमहो लब्धं धनं ध्यायसि

नैतद्वे त्सिपुनर्भवन्तमचिरादाशापिशाचीवेला

त्सर्वग्रासमियं ग्रसिष्यति महालोभान्धाकारावृतम्[47]

किंतु खेद है कि तुम यह नहीं समझते हो कि यह आशा पिशाचनी बहुत बड़े लोभ के अन्धकार के वशीभूत तुमको बलपूर्वक बहुत शीघ्र ही सम्पूर्णतया निगल जाएगी और यदि धन किसी प्रकार पा भी लिया तो भी इस धन का निश्चित रूप से खर्च या नाश हो जाने पर दोनों ही प्रकार से तुम्हे धन का वियोग होगा। अब तुम्हीं बताओ कि धन की अप्राप्ति अच्छी है या उसका नाश अनुकूल है। प्राप्त धन का विनाश बहुत पीड़ित करता है, उसका न पाना नहीं। 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक का पात्र 'संतोष' लोभ नामक पात्र को जीतने में सर्वात्मना सफल हुआ है। पात्र के रूप में उसने मानव के लिए नैतिक आदर्श प्रस्तुत किया

है। निम्न पंक्तियों में उसका संदेश दृष्टव्य है –

मृत्युर्नृत्यति मूर्ध्नि शश्वदुरगी घोरा जरारूपिणी

त्वामेषा ग्रस्ते परिग्रहमयैर्गंध्रैर्जगदग्रस्यते

धूत्वा बोधजलैरबोधबहुलं तल्लोभजन्यं रजः

सांतोषमृत सागराम्भसि मनाङमग्नः सुखं जीवति।[48]

3. पुरुष :– 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में पुरुष पात्र उपनिषद् का पति है और विष्णु की सगुण भक्ति की सहायता से पुरुष की संसार से निवृत्ति सहज हो जाती है, वह देवी विष्णुभक्ति के महात्म्य को धन्य मानता है, जिनके प्रसाद से हमने 'क्लेशतरंगों' को पार किया, भयानक ममत्व भ्रम को दूर छोड़ा, मित्र, कलत्र, बन्धुरूप मकरों के फेर से पिंड छुड़ाया, क्रोधरूप, बड़वानल को अपाकृत किया, तृष्णालताविभ्रम को विघटित किया। इस तरह अब संसार सागर का तट आसन्न हो रहा है''[49] देवी उपनिषद् पुरुष को उसके स्वरूप का ज्ञान इस प्रकार कराती हैं –

अविच्छन्नस्य भिन्नस्य जरामणधर्मिणः

ममब्रवीति देवीयं सत्यनन्दचिदात्मताम्। [50]

सह देवी (देहादि से) अवच्छिन्न, भिन्न धर्मा, जरामरणधर्मी मुझे जीव का सत्य आनन्द चित स्वरूप बता रही है और देवी उपनिषद् के उपदेश से पुरुष को मोहरूपी अन्धकार दूर हो गया। क्योंकि अन्धकार राशि को विघटित कर प्रभात हो गया, भ्रम रूपी निशा का मन्थनकर श्रद्धा, विवेक, मति, शान्ति और शम आदि के साथ विलक्षण बोध रूपी चन्द्र का उदय हुआ। विश्वात्मक विष्णु प्रकट हो रहा है, वह यह मै हूँ –

सगंग न केनचिदुपेतः किमप्यपृच्छदन्

गच्छन्नतर्कितलमं विदिशं दशिं वा।

शान्तो व्यपेत भयशोक कषायमोह

स्वायंभुवो मुनिरहं भविताास्मि सद्यः।।[51]

इस प्रकार पुरुष देवी विष्णुभक्ति के प्रसाद से अपने को कृतार्थ मानता है।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक का पुरुष पात्र निःश्रेयस का अधिकारी है, उसका मानना है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वोच्च साधन ईश्वर स्वयं है। तत्वज्ञान द्वारा पुरुष (जीवात्मा) को अपने शुद्ध स्वरूप का बोध हो जाता है। वह अपने को ईश्वर का अंश तथा ईश्वर को अपना अन्तर्यामी नियामक आत्मा मानकर अपने सभी कर्मों को ईश्वर की आराधना

के रूप में सम्पादित करता है और भगवद् साक्षात्कार के लिए भगवान का सतत स्मरण करता है। आत्मावलोकन के लिए शम–दमादि से मन को शुद्ध करना आवश्यक है, और इसके लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अष्टांग–योग साधन भक्ति का ही रूप है। पुरुष का कथन निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है –

निरुढनिगमत्रये निखिललोकचिन्तामणो

प्रसित्तवमधिजग्मुषि प्रणिदधानभावास्पदें।

रतिं भजति भावना लयमिवोपयाति द्रुतं

रमावसुमतीसहाचारितधर्मणिं ब्राह्मणि।।[52]

शरणगति जीवात्मा की एक विशेष मनोदशा का ही वाचक है। जब पुरुष ईश्वर को परमलक्ष्य के रूप में जान लेता है और उसे ही मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय समझने लगता है, तब वह शरणागति की मनः स्थिति में होता है। भगवान के स्वरूप का ध्यान जब तेल की धारा की तरह निरंतर बंध जाता है तब, 'पुरुष' भक्ति की अवस्था को प्राप्त करता है। इस प्रकार पुरुष निःश्रेयस को प्राप्त करता है। विवेक राजा के पक्ष में पुरुष ही प्रमुख रूप से नायक के रूप में क्रीड़ा करता है। पुरुष ही केंद्रीय पात्र है, जिसके चतुर्दिक नाटक घूमता है। पुरुष पार्थिव जीव के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करता है। पुरुष हाड़, मांस और रक्त वाला एक शरीरी व्यक्ति होता है। ये धरती का जीवन है और धरती के जीवन के माध्यम से ही मुक्ति तक पहुंचता हैं। पुरुष आत्मा का एक अपरिहार्य हिस्सा है। आत्मा दैवीय है, किंतु विवेक की शक्तियों द्वारा (मनुष्य) या पुरुष को उच्चस्तर अध्यात्मिक आदर्शों की प्राप्ति होती है और दूसरी ओर पुरुष को ही जो अपने क्षुद्र स्वार्थों से बंधा रहता है और केवल भौतिक भोगों तक सीमित रहता है, वह आनन्द से वंचित रहता है और केवल भौतिकी अस्तित्व वाला रह जाता है।

4. व्यवसाय :– 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में व्यवसाय को राजा विवेक का सेनापति बनाया गया है। 'व्यवसाय' में युद्ध कौशल कूट–कूट कर भरा हुआ है। राजा विवेक मार्ग–दृष्टा एवं निर्देशक है। व्यवसाय पौराणिक कथाओं का ज्ञान रखता है व राजा विवेक उन अवतारों का सविस्तार वर्णन करता है। यह उसकी बुद्धि का ही कौशल है। निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा देखा जा सकता है –

भयस्त्वष्टान्यो वा विपुल महमि‍ा विश्वसृडपि

स्वशक्त्येंद्रं चित्रं किमपि न विधातुं कृतमुख

अखण्ड ब्रह्माण्डप्रथमतमशिल्पी स भगवान्

स्वयं पद्माजानिर्व्यलिखदिह शिल्पं स्वविषयम्।[53]

व्यवसाय प्रयत्न का पर्याय है। ईश्वर को पाने के लिए संकल्प आवश्यक है और किसी भी संकल्प की पूर्णता बिना व्यवसाय के सम्भव नहीं है। इसलिए व्यवसाय का आध्यात्मिक महत्व भी है। प्रश्न ये है कि इस दार्शनिक नाटक में व्यवसाय को महत्वपूर्ण क्यों रखा गया है जबकि व्यवसायिक वृत्ति को आध्यात्मिक वृत्ति के विपरीत माना गया है। वेदांत देशिक विशिष्टाद्वैत के अनुसार जगत को मिथ्या नहीं मानते, अतः जगत में रहकर मनुष्य को अपनी सफलता के लिये व्यवसाय की भी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार दैवीय उपलब्धियों के लिये भी मनुष्य को प्रयत्नशील होना पड़ता है। अतः व्यवसाय दर्शन के क्षेत्र के लिये भी आवश्यक है। व्यवसाय को मानवीकृत करके नाटककार भैतिकता और आध्यात्मिकता का भी समन्वय करता है। विवेक महानायक आध्यात्मिक है किंतु उसका सेनापति व्यवसाय भौतिक है। इस प्रकार आध्यात्म और भौतिकता प्रायः विरोधी माने जाते हैं वे नाटककार की समन्वय प्रधान दृष्टि के कारण सहयोगी भूमिका में उपस्थित किए गए हैं।

5. <u>सारथि :-</u> 'प्रबोध-चंद्रोदय' का 'सारथि' राजा विवेक के युद्ध में सहायक सिद्ध होता है वह भवनपावनी वाराणसी नाम की नगरी का वर्णन बड़े ही आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत करता है - अभी धारायंत्रस्खलितजलझणलंकारमुखराः विभाव्यंते भूयः शशिकररुचः सौध ।शिखराः। विचित्रा यत्रौच्चैः शरदमल मेघान्त विलस तडिल्लिखालक्ष्मीं वितरितपताकाबलिरियम्।[54] और नगर पार्श्ववर्ती वन जिनकी प्रत्येक कली पर भौंरे गुंजार करते हैं विकास के साथ मकरन्द की वृष्टि हो रही है, कुसुम की सुगन्ध फैल रही है, काले मेघ की तरह छाया युक्त वृक्ष है, जहां पर वायु भी पाशुपत वृत लेकर धूलिघूसर हो रही है, मानो तापस हो।

'संकल्प-सूर्योदय' का सारथी 'तर्क' है। वह षष्ठ अंक के (स्थान विशेष संग्रह) नामक अंक में रंगमंच पर आता है। वह विवेक को समस्त तीर्थों के महत्व के बारे में बताता है। निम्न पंक्तियों में उसके वर्णन का कौशल स्पष्ट देखा जा सकता है

अतिक्रान्तो विन्ध्यः शबरगणभूयिष्ठागहनः पुरस्तात्किष्किंधावनमथ च पश्र्चाद्दपसृतम्
असहाप्रारम्भा परिपतति सह्याद्रिशिखरा दसौ कवेर्याख्या सरिदमरसिन्घोरधिगुणा।।[55]

6. <u>पारिपार्श्वक, संस्कार, दृष्ट प्रत्यय आदि का चरित्र-चित्रण :-</u>

'प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक में पारिपार्श्वक राजा का भृत्य है। 'संकल्प-सूर्योदय' नाटक में 'संस्कार' शिल्पी के रूप में चित्रित किया गया है। वह नाटक के सप्तमोऽक के प्रारंभ में विष्कम्भ में आया है। वह अपना परिचय स्वयं इस प्रकार देता है - अहं रवल्वनुभावामुष्यायणः

संस्कारनामा देवस्य विवेकस्य शिक्षितिः सर्वविकलापः शिल्पी देवशिल्पिनं, विश्वकर्माणम सुरशिल्पिनं मयं च विजित्य विश्रामाभिलाषी चरिमस्वासम।

विश्र्वप्रीणनविश्र्वकर्मरचनाचातुर्यकातर्यदैः

मध्य यत्रयत्र गवाक्षयन्ति विहितप्रयग्रचित्रक्रमाः।[56]

'संकल्प–सूर्योदय' में दृष्ट प्रत्यय 'दूत' का कार्य करता है। नाटक के अष्टमोऽक में रंगमंच पर आता है। वह महामोह के पास राजा विवेक का संदेश लेकर आता है। एक अन्य पात्र संज्ञक भी है जो परिशुद्ध संस्कृति का प्रतीक है। ज्ञान को संस्कृति के रूप में ढालने और उसमें ललित कलाओं के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का कार्य संस्कार के द्वारा किया जाता है। संस्कार एक शिल्पी है, जो कला पूर्ण ज्ञान को संस्कृति के आकार में ढाल देता है।

दृष्टप्रत्यय एक ऐसा चरित्र है जिसे दूत के रूप में चित्रित किया गया है। वास्तव में जो सत्य दिखाई पड़ता है वह व्यवहारिक जीवन में भी उतर सके। इसका ज्ञान हमारी इन्द्रियों को कराया जाता है और यह बतात है कि जो कुछ हो रहा है, वह सत्य है।

7. प्रबोधोदय एवं संकल्प का चरित्र चित्रण :– 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में प्रबोध उपनिषद् से उत्पन्न पुत्र है। प्रबोध के स्वरूप का वर्णन निम्न पंक्तियों से किया जा सकता है– किं वाप्तंकिमपोहितं किमुदितं किं वा समुत्सारितं स्यूतं किं नु विलायितं नु किमदिं किंचन्नवा किच्चन यस्मिन्भ्युदिते वितर्कपदवीं नैवं समारोहति त्रैलोक्यं सहजप्रकाश दलितं सोऽम प्रबोधोदयोः।।

क्या पाया, क्या खोया, क्या गया, यह स्यूत सा है, या ढाला हुआ सा है, कुछ है या कुछ नहीं ? इस तरह के वितर्क मार्ग में त्रैलोक्य नहीं ठहर सकता, क्योंकि स्वाभाविक प्रकाश से त्रैलोक्य का तम दलित हो जाता है, ऐसा मै प्रबोधोदय हूँ।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में 'संकल्प' भगवद्दास है। भक्ति ज्ञान की पराकाष्ट है। ज्ञान की चरम परिणति भगवान के प्रति परम प्रेम में होती है। इसे ही भक्ति कहते हैं। जब मनुष्य को ईश्वर के श्रेष्ठ स्वरूप और कल्याणमय गुणों का बोध हो जाता है तो वह स्वाभाविक रूप से उस परमात्मा के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा के द्वारा दशवेंअंक में मोक्ष का वरण करता है। जो निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है –

प्रगुणवृत्तिरपथ्यपराङ्मुख कृष्णचित्र हरैर्व्यसनगग्रहैः

अयम पत्रपते निरूपपल्लवः परगतैरीयदृष्टपरावरः [38]

भक्ति के लिए उपनिषदों द्वारा प्राप्य ब्रह्मज्ञान अपेक्षित है। तत्वबोध प्राप्त किए बिना कोई भी

भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता है। इस प्रकार 'संकल्प' विवेक को भक्ति की ओर प्रेरित करता है। भक्ति भावपूर्ण ज्ञान है, जिससे ईश्वर का ध्यान होता है। संकल्प दैवी इच्छा अथवा दिव्यता के रूप में नाटक में चित्रित है जो आवश्यक सिद्धांत और आदर्श हैं। उनके प्रति गहरी निष्ठा ही संकल्प है। दैवीय भव्यता को अथवा मुक्ति को पाने के लिये जो क्रमशः अध्यात्मिक सोपान पूरे होते हैं, इस अभियान में 'संकल्प' कदम–कदम में आवश्यक होता है। संकल्प के सहारे ही कोई व्यक्ति अपने गंतव्य आदर्श की ओर अग्रसर होता है। संकल्प के अभाव में कोई भी महत्वपूर्ण उपलब्धि की नहीं जा सकती।

8. नारद एवं तुम्बुरुः का चरित्र चित्रण :– नारद एवं तुम्बुरु 'संकल्प सूर्योदय' नाटक के अष्टमअंक में सर्व प्रथम रंगमंच पर उपस्थिति होते हैं। दोनो ही महर्षि हैं, विष्णु भगवान के प्रति उनकी भक्ति एवं श्रद्धा है। तप, अध्ययन, विष्णुभक्ति उनका परम कर्तव्य है। रंगमंच पर नारद के उपस्थिति होने पर महामोह अर्चन वन्दन करता है। तब नारद उसको सत्कार करने से रोकते हैं। नारद का कथन है कि जब तक तुलसी वनवासिनी द्वादसी का व्रत नहीं हो जाता, तब तक किसी के गृह में नहीं जाऊगा। महामोह उनके इस अद्‌भुत स्वभाव पर आश्चर्य करता है। इस पर नारद का कथन निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है –

नारद :– महाराज, त्वमेव रवल्वत्यदभुतः। यदुत पुष्कर पलाशवीन्निर्लेपस्वभावं पुरुषमनन्तान भोगाननुभावयसि, अपिच – प्रत्यूढोत्सकेनम्रप्रतिभटमकुटीपाद पीढी सनाथं।

लोक लोकोपरोधप्रतिहत गतयो लोकपालवरोध। नारद एवं तुम्बुरुः दोनो विवेक और महामोह के परस्पर युद्ध का वर्णन करते हैं। तुम्बरु भी देवर्षि है। ये दोनो ऋषि राजा विवेक की सहायता करते हैं।

9. गुरु एक ऐसा पात्र है जो विचारधारा अथवा सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करता है। विशिष्टाद्वैतवादी सिद्धांतों को लेकर गुरू अपने रामानुज के सिद्धांतों का निर्देश करता है। श्री रामानुज के सीधे शिष्य होने का सौभाग्य श्री वेदान्त देशिक को नहीं मिला और वेदान्त देशिक इस बात के लिए जीवन भर प्रायश्चित करते रहे और इसीलिए इस दुःख को लेखक ने अपने नाटक में एक ऐसे शिष्य के रूप में व्यक्त किया है, जो 'वाद' कहलाता है। व्यक्ति बिना गुरू के विभिन्न वादों में भटकता है और उसे कोई सही सिद्धांत नहीं मिल पाता है। वाद और तर्कों के द्वारा ही शिष्य की प्रतिभा विकसित हो सकती है और गुरु के अभाव में नाटककार का यह भी विश्वास है कि विभिन्न वादों और सिद्धांतों की सहायता से वास्तविक ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

10. मन (संकल्प रूप) एवं वैराग्य, निदिध्यासन :– 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक में मन (संकल्प रूप है। पंचामअंक में मन रंगमंच पर आता है। मन के पुंत्र राग, द्वेष, मात्सर्य आदि के नष्ट हो जाने पर मन विलाप करता है। असूया आदि कन्याओं को पुकारता है। आशा, तृष्णा आदि उसकी बहुएं हैं! मन रोकर विलाप इस प्रकार करता है –

मनः– हा प्रिये क्वासि देहि में प्रतिवचनम। ननु देवि

स्वप्नेपि देवि रदमसे नविना मया त्वं स्वाये त्वया विरहितो मृतवदभवामि

दूरीकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि

जीवत्यवेहि मन इत्यसवो दुरन्ताः।[60]

जिन्हें उत्पन्न किया, हृदय में स्थान दिया, चाटुकियों से प्रमोदित करते रहे उनका वियोग प्राणो के वियोग के समान कष्टप्रद होता है।

वैराग्यं, निदिध्यास, 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक में मन के पुत्र हैं। वैराग्य मन को समझाता है। रास्ते में पथिकों की तरह, नदी में गिरने वाले तटस्थ वृक्षों की तरह, पुष्कर क्षेत्र में मेघों की तरह और समुद्र में नौ यात्रियों की तरह जब माता, पिता, बंधु, पुत्र तथा प्रिया का साथ हुआ करता है तब उनसे वियोग तो निश्चित ही है, फिर विद्वानो को इसमें क्या शोक करना है ?

'प्रबोध–चंद्रोदय' एवं संकल्प–सूर्योदय में प्रतिनायक पक्ष के पुरुष पात्रों का चरित्र चित्रण :–

विरोधी शक्तियों के रूप में नाटककार ने जिनका चित्रण किया है, व काम और रति हैं। ये ऐसी शक्तियां हैं जो जीवन को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। काम कामनाओं अथवा इच्छाओं का प्रतीक है और रति आकर्षण का, बसंत ऐंन्द्रिक आनंद के लिये प्रेरित करता है। राग ममत्व पैदा करता है। द्वेष, घृणा, क्रोध, क्रुधता, लोभ, लालच, दंभ छद्मता और दर्प घमंड भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार कुछ और भी चरित्र हैं तृष्णा मनुष्य को इच्छाओं की पूर्ति के लिए व्याकुल करती हैं। कुहना, दंभ और असूया द्वेष और शत्रुता का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये सभी पात्र मिलकर क्रमशः मानव को लक्ष्य से पथ भ्रष्ट कर वृत्तियों को अधोगामी बनाते हैं।

1. प्रतिनायक पक्ष के मन्त्री एव सेनानायक :– 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में प्रतिनायक महामोह के मंत्रियों में काम, क्रोध, मोह, दम्भ, अहंकार आदि हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह के मंत्री राग, द्वेष एवं लोभ हैं एवं सेनानायक काम, क्रोध हैं। 'प्रबोध–चंद्रोदय'

में काम प्रथम अंक में दिखाई पड़ता है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में भी विष्कम्भक में काम का प्रवेश होता है। 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में काम अपने अमोघ अस्त्र इस प्रकार बतलाता है–

रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयनाः गुंजादद्विरेफालतः
प्रोन्मीलन्नवमल्लिकासुरभयो वाताः, सचन्द्राः क्षपाः
यधेतानि, जयन्ति हन्त परितः शास्त्राण्यमोघानिमे
तदभोः कीदृगसौं विवेक विभवः कीदृक्प्रबोधदयाः''[61]

सुंदर भवन, नई नवेली, सुदरियां, भ्रमर मुखरित लताएं, नवविकसति मल्लिकाएं सुगंधित लताएं। चंद्रकिरण उद्भाषित रात्रियां। यदि वह हमारे अमोघ अस्त्र वर्तमान ही हैं, तब विवेक का वैभव कैसा और प्रबोध का उदय कैसा ? और यद्यपि मेरे वाण और धनुष फूल के ही है, फिर भी आज्ञा को एक क्षण के लिए भी उल्लंघन करके नहीं ठहर सकता है–

आहल्यायै जाररु सुरपतिरभूदात्मतनयां
प्रजानाथोऽयासीदभज गुरोरिंदुखलाम्
इति प्रायः को वा न पदमपथेऽकार्यत मया
श्रमो मद्राणनां क इव भुवनोन्माथविधिषु।[62]

विवेक के आठ यमादि मंत्री भी हमारे आक्रमण से तुरन्त विघटित हो जाएंगे –

अहिंसा कैव कोपस्य ब्रह्मचर्यादयो मम
लोभस्य पुरतः केभी सत्याऽस्तेयापरिग्रहः। [63]

कोप के सामने अहिंसा क्या चीज है और हमारे सामने ब्रह्मचर्य का क्या अस्तित्व है? 'संकल्प–सूर्योदय' में काम का यह कथन दृष्टव्य है।

शैली विलोपयति शांतिमधः करोति
व्रीडां व्युदस्यति विरक्तिमपह्नुते च ।
कर्णामृतं किमपि तत्कलभाषिणीनां
नामापि किं न विकरोति निशम्यमानम्।[64]

काम का यह कथन कि चित्त में उत्पन्न होने वाले यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि आसानी से नष्ट किए जा सकते हैं। जब स्त्रियां ही इनका संहार कर सकती हैं तब तो ये हमारे हाथ में ही है। क्योंकि दर्शन, बातें करना, खेलकूद, आलिंगन तो दूर रहे, स्त्रियों का स्मरण भी मन को विकृत करने में पर्याप्त होता है।

'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में काम अपने सहयोगी मद, मात्सर्य, दम्भ और लोभ आदि से सामना होने पर विवेक के मंत्रिगण अधर्म की ही शरण लेंगे। काम के वंशज परब्रह्म माया के साथ संसर्ग होने से मन नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ और मन ने ही हमारे कुल तथा विवेक के कुल को जन्म दिया। काम महामोह का सहायक मंत्री है।

क्रोध :– 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में क्रोध महामोह प्रतिनायक का मंत्री है। नाटक के द्वितीय अंक में क्रोध स्वयं अपने स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करता है – अहो मेरे जीवित रहते हुए इन्होंने स्वकीय चिंता न कर आचरण किया है – क्योंकि मै सबको अंधा करता हूं, बधिर करता हूं, चेतन, धैर्यवान को अधीर बना देता हूं जिससे वह कर्तव्य को नहीं देखता, मंगल को नहीं सुनता, विद्वान भी पठित तत्वों को नहीं स्मरण करता –

अंधीकरोमि भुवनं वधिरीकरोमि धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि । कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रणोति। धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति।।[65]

'संकल्प–सूर्योदय' में प्रतिनायक महामोह का सेनानायक क्रोध है और वह चतुर्थांऽक में अपने स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करता है। निम्नलिखित पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

अयमहमुदभटप्रथनचारभटारऽभटी नरपतिरुथितः कथमुदेतु विवेककथा।यदनुबिधायिदैव्यभयसंव्व रितासु मुधा सुर सुभटीपयों घरत्टीषु पटीररसः।।[66]

'प्रबोध–चंद्रोदय' का मंत्री क्रोध अपने प्रभाव का वर्णन करता हुआ कहता है इंद्र ने वृत्तासुर का वध किया, शिव ने ब्रह्म का शिरोच्छेद किया, विश्वामित्र ने वशिष्ठ पुत्रों का वध किया। विद्या से युक्त, कीर्ति से धवल, पौरुष से मंडित कुलों को मैं भी क्षण भर में ध्वस्त कर सकता हूं – विद्यावन्त्यपि कीर्तिमन्त्यपि सदाचारावदाता न्यपि प्रौच्चैःपोरुषणभूषणान्यपि कुलानयुद्धर्तुमीक्षाः क्षणात।।[67] 'संकल्प–सूर्योदय का सेनापति क्रोध अपने प्रभाव का वर्णन इस प्रकार करता है – 'जमदग्नि मुखान परत्यिजन परिग्रहञ्च दशकंध राद्यकिान बन पतित वानु पायता पुरुषानदभुतपौरुषानहम।।' [68]

आलोच्य दोनो नाटकों में क्रोध के चित्रण में पूर्ण रस का परिपाक हुआ है।

लोभ :– 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह का मंत्री है। श्रद्धा की पुत्री शांति को जीतने के लिए महामोह लोभ को नियुक्त करता है। लोभ का यह कथन कि 'अरे मै जिसे गृहीत करूंगा वह कामनाओं के प्रवाह परंपरा से पार न होगा'। शांति की क्या चिन्ता करेगा? यथा – लोभाः अये मदुपगृहीता मनोरथसरित्यपरंपरामेव तावन्न तरिष्यंति किम पुनः शांत्यादींचति यिष्यन्ति। पश्य पश्य सखे।[69]

'संकल्प–सूर्योदय' का प्रतिनायक महामोह का मंत्री लोभ को आदेश देता है कि वह संपूर्ण विश्व को अपने वशीभूत कर ले। लोभ की पत्नी तृष्णा है, लोभ तृष्णा के साथ मिलकर व्यूह की रचना करता है। लोभ का तृष्णा से यह कथन कि मनुष्य, देवता, सुर, किन्नर, विद्याधर, मुनि आदि सभी लोभ से प्रभावित होते हैं –

महामोहस्याज्ञां शिरसि निःदधानः स्रजमिमा

महं तृष्णाजानिस्त्वरितमिह लोभः समुदितः।।[70]

लोभ का अत्यंत मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन नाटककार के द्वारा किया गया है।[71]

दम्भ :– 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह के मंत्री दम्भ है एवं 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में दम्भ को मोह का कुटुम्बी कहा गया है। 'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह दंम्भ को आदेश देता है कि वह पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट मुक्ति क्षेत्र वाराणसी में जाकर चारो आश्रमों में निःश्रेयस को विघ्नित करने की चेष्टा करे –

वेश्यावेश्मसु सीधुगन्धि ललनावक्रः सवामोदितै

बह्माज्ञा इति तापसा इति दिधा धूर्तैजगदंच्यते।।[72]

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह का कुटुंबी दंभ है और उसकी सहधर्मचारिणी पत्नी कुहना है। वह अपनी पत्नी कुहना से वैभव का वर्णन इस प्रकार करता है –

अयि मुग्ध ब्राह्मणि, अविचारितास्मद्वैभव किं भाषते वि्द्यास्व तुष्क सहिता विदिता द्विसप्त क्षिप्रं चतुर्गुणित चंद्रकलाः कलाश्च काले च साधु विहितः क्रतवाः सहस्त्रं धर्मध्वजास्वं भुवनेषु मया निबद्धा।[73]

'प्रबोध–चंद्रोदय' में दम्भ के आश्रम का अलंकारिक शैली में वर्णन किया गया है – गंगातीरतरंग शीतल शिलाविन्यस्तभास्वद्वृसी संविष्ठाःकुशमुष्टिमण्डितमहादंण्डाः कारण्डोज्जवलाः पर्यायग्रथिताक्ष सूत्रवलय प्रत्येक बीज ग्रह,व्यग्राग्रांग्लयो हरतिं धनिनां वित्तान्यहो, दम्भिकारु।[74]

दम्भ के आश्रम को देखकर अहंकार को भी उसके आश्रम में रहने की इच्छा होती है।[75] तथा अहंकार से दम्भ अपनी गर्वोक्ति प्रकट करता है –

सदनमुपगतोहं पूर्वमम्भोजयोनेः सपदि मुनिभिरुच्चैरासने षूज्झितेषु

सरापथमनुनीय ब्रह्मणा गोमयाम्भाः परिमृजित निजोरावाशु संवेशितोअस्मि।।[76]

आलोच्य नाटकों में दम्भ तथा उसकी गर्वोक्तियों का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया है।

अहंकार एवं दर्प का चरित्र चित्रण :–

सांख्यसूत्र के अनुसार 'अभिमानोऽहंकारा:'[77] अर्थात अहं को ही अहंकार कहते हैं। यह अन्तःकरण का द्रव्य है। अहंकार और अभिमान एक ही वस्तु के नाम हैं। 'एकादशपंचनमात्रां यत्कार्यम्'[78] का भी उल्लेख अहंकार एवं दर्प के संबंध में प्राप्त होता है। सांख्यकारिका के अनुसार मै की अनुभूति को ही अहंकार कहते हैं।[79]

'प्रबोध–चंद्रोदय' नाटक में प्रतिनायक महामोह का मंत्री अहंकार है। उसमें घमंड (दर्प) और डाह (मात्सर्य) आदि अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं तथा उसका चरित्र क्रोधी, चंचल और आत्मश्लाघा करने वाला है –

ज्वलन्निवाभिमानेन ग्रसन्निव जगत्रयीम्

भर्त्सयन्निव वाग्जालैः प्रज्ञयोपहसन्निव: ।[80]

उसका परिचय नाटककार ने इस प्रकार दिया है – अहो संसार में मूर्खों की अधिकता है, क्योंकि जिन्होंने गुरुमत न कुमारिल का दर्शन देखा, न सालिग मिश्र की वाणी का तत्व जाना, वाचस्पति मिश्र की तो बात ही क्या ? महोदधि रूप भाष्य का अवलोकन ही नहीं किया। पाशुपत दर्शन की सूक्ष्म चिंतनधारा का ज्ञान ही नहीं पाया, फिर भी ये नरपशु शांति के साथ कैसा स्थिर है –

प्रत्यक्षादिप्रमासिद्धविरुद्धार्थाविवोधिन:

वेदान्ता यदि शास्त्राणि बौद्धैः किम पराध्यते। [81]

इसकी वाणी का श्रवण भी पाप का कारण है और यह शैव पशुपत आदि अशोभनीय रीति से अक्षपाद मत को जानने वाले पाखंड पशु है। इनसे वार्ता लाप करने वाले मनुष्य नरकगामी होते हैं। अतएव अहंकार और दर्प दूर से ही परिहर्णीय हैं। अहंकार नामक पात्र में अहंकार कूट–कूटकर भरा हुआ है। दंभ के आश्रम में उसका स्वागत न होने पर उसका कथन दृष्टव्य है।[82]

अहंकार :– भूरि श्रेष्ठकनाम धाम परमं तत्रोतमोनः पिता

तत्पुत्राश्र्च महाकुला न विदितः कस्यात्र तेषामपि

प्रज्ञाशीलविवेकधैर्यविनियाचारैरहमं चोत्तमः ।।83

'प्रबोध–चंद्रोदय' में अहंकार प्रतिनायक महामोह का सहायक भी है और संकल्प सूर्योदय में दर्प महामोह का कुटुंबी है और दर्प की पत्नी असूया है।[84] आलोच्य दोनो नाटकों में अहंकार एवं दर्प का सटीक चरित्रांकन मिलता है।

राग द्वेष का चरित्र–चित्रण

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह के मन्त्री राग, द्वेष हैं। राग को 'संसार राग', द्वेष को 'मोक्षद्वेष' माना गया है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में राग महामोह के कार्य निवर्तन में स्वयं तो मन्त्रणा देता ही है, द्वेष से भी महामोह के कार्य में सहयोग देने का सरव्य पूर्ण आवाहन करता है। उदाहरण के लिये देखें –

राग :

सखे त्वत्सहायस्य में स्वामिकार्यनिर्वर्तनं सिद्ध प्रायमिति निश्चिनोमि।[84]

राग पुरूषार्थ के कथन को इस प्रकार देखा जा सकता है–

मधुभरित हेमकुम्भीमधुरिमधुर्यौ पयोधरौ सुदृशाम्

पिशितमिति भावयन्तः पिशाचकल्पाः प्रलोभयन्ति जडान्।''[85]

चार्वाक एवं वसन्त का चरित्र–चित्रण

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के प्रतिनायक महामोह का मित्र चार्वाक है उसका मानना है कि दण्डनीति ही विद्या है। इसी में वार्ता का भी अन्तर्भाव है। वेदत्रयी धूर्तो का प्रलाप है। वेदों के स्वर्ग की बातों की विशेषता कुछ नहीं है, इसका कथन निम्न पंक्तियों द्वारा देखा जा सकता है –

''स्वर्गः कर्तृक्रियाद्रव्यविनाशे यदि यज्वनाम्

ततो दावाग्निदग्धानां फलं स्यादभूरि भूरूहाम।''[86]

और यदि यज्ञ में बलि चढ़ाये गए पशुओं को स्वर्ग प्राप्ति होती है तो यज्ञकर्ता अपने पिता को यज्ञ में क्यों नहीं बलिदान करते? और भी श्राद्ध द्वारा यदि मृतात्माओं को तृप्ति प्राप्त नहीं होती है तो निर्वाण को प्राप्त दीप में तेल डालने पर उसकी ज्वाला भी बढ़ेगी।

विषय सङ्गम से होने वाला सुख दुख मिश्रित होने के कारण त्याज्य है– यह अज्ञानियों का विचार है। हित का अभिलाषी व्यक्ति, क्या तुष मिश्रित होने से उत्तम तथा उज्वल चावलों वाले धानों का परित्याग कर देता है? उसका मानना है कि विजिगीषु जन को क्षुद्र शत्रु पर भी सावधानी के साथ दृष्टि रखनी चाहिए क्योंकि–

विपाकदारूणों राज्ञां रिपुरल्पोऽव्यरूंतुदः

उद्वेजयति सूक्ष्मोऽपि चरणं कण्टकाङ्कुरः।''[87]

अर्थात् परिमाण में भयानक क्षुद्र भी विपक्षी राजाओं के मर्म को पीड़ित करता है। छोटा भी कण्टक चरण को उद्विग्न कर देता है।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में काम का सखा वसन्त है जो प्रतिनायक महामोह का सहयोगी है। उसका कथन निम्नलिखित पक्तियों में देखा जा सकता है –

तिष्ठतु गुणावमर्शः स्त्रीणामालोकनादिभिः साधर्म्।

दोषानुचिन्तनार्था स्मृतिरपि दूरीकरोति वैराग्यम्।''[88]

दिगम्बर, भिक्षु कापालिक

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के तृतीयोऽङ्क में दिगम्बर मत का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है – मलमय परमाणु निर्मित शरीर में निखिल जलों से भी शुद्धि कैसी? यह आत्मा निर्मल प्रकृति वाला है, यह मुनियों की सेवा से ज्ञात होता है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में भिक्षु बुद्धागम है। उसका कथन है कि – जिस घी सन्तति में प्रतिफलित होने से सभी क्षणक्षयी तथा शून्यात्मकभावं, बाह्यस्थित की भाँति प्रतीत होते हैं ऐसी वह घी सन्तति इस प्रकार है –

सर्वे क्षणक्षयिणा एवं निरात्मकाश्च

द्वीसन्ततिः स्फुरति निर्विषयो परागा।''[89]

क्षपणक भिक्षु से कहता है कि तुम बौद्ध मत छोड़कर जैन सिद्धान्त को अपना लो, इस पर भिक्षु का कथन निम्न पक्तियों में दृष्टव्य है –

ज्ञातुं वपुः परमितः क्षमते त्रिलोकी

भावान्प्रकाशयितुमप्युदरे गृहस्य।''[90]

अरे अनादि प्रवृत्त ज्योतिष से होने वाले अतीन्द्रिय विषयक ज्ञान से वञ्चित हो। अर्हन ने इस महाकष्ट को स्वीकार किया है। इसलिए इहलोक तथा परलोक दोनों लोगों से विरूद्ध अर्हित मत की अपेक्षा साक्षात् सुखप्रद बौद्ध मत ही अच्छा दिखाई पड़ता है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' में कापालिक रूप सोमसिद्धान्त का तृतीयोडङ्क के रंगमञ्च पर प्रवेश होता है। उसका स्वरूप इस प्रकार है –

नरास्थिमालाकृतचारूभूषणः

जगन्मिथो भिन्नमभिन्नमीश्वरात्।''[91]

नरास्थिमाला का आभूषण पहने नृकपालभक्षी तथा शमशानवासी मैं योगाञ्जन

सिद्ध दृष्टि से जगत को ईश्वर से भिन्न तथा अभिन्न देखता हूँ। अपने धर्म का वर्णन सोमसिद्धान्त इस प्रकार कहता है – मस्तिष्क, आँत, मज्जा आदि से पूरित नरमाँस की अग्नि में आहुति कर व्रतकपाल स्थित सुरापान से व्रत समाप्ति होती है। सद्यः खण्डित कठोर कण्ठ से निकलते हुए शोणित की धारवाली उज्जवल नर बलियों से हम काल भैरव की पूजा करते हैं। वह वेदान्त प्रसिद्ध भगवान शिव को धूर्त कहता है और अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है– हरिहर प्रभृति देवश्रेष्ठों को मैं बुला सकता हूँ, आकाशचारी नक्षत्रों की गति रोक सकता हूँ। पर्वत तथा नगरों से पूर्ण इस पृथ्वी को जलपूर्ण बनाकर समझो उस अशेष सलिल को पुनः क्षणभर में पी जाता हूँ आदि। उसका मानना है कि कहीं भी विषयों के विना सुख नहीं देखा है। उसका मानना है कि विद्या के वल से विद्याधारी अथवा देवाङ्गना अथवा नागललना अथवा यक्षकन्या, संसार में जिसे चाहूँ उसे अपनी विद्या के वल से आहूत कर सकता हूँ।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' की नायिका एवं उसका चरित्र–चित्रण

नाटक में नायक का विशेष महत्व होता है। नायक की सहचरी होने के कारण नायिका भी कम महत्व की अधिकारिणी नहीं होती। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में चार भेदों का उल्लेख किया है। दिव्या, नृपापत्नी, कुलस्त्री, और गणिका।''[92] 'नाट्यदर्पणकार'[93] ने नाट्यशास्त्र के आधार पर ही नायिकाओं के चार भेद माने हैं। कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया, एवं पर्ण्यकामिनी। इन्होंने नृपपत्नी के स्थान पर क्षत्रिया का उल्लेख किया है ''अवस्था तथा काम भावना के आधार पर –मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद भी किये गये हैं।''[94] मुग्धा के तीन भेद धीरा, अधीरा और धीराधीरा किये गये हैं।''[95] नायक के सम्बन्ध के आधार पर तीन भेद किये गये हैं– स्वीया, अन्या, और सामान्या।'' ''अवस्था के भेद से नायिकाएं आठ प्रकार की मानी गयी हैं''[96] प्रोषितप्रिया, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, विरहोत्कण्ठिता, वासकसज्जा, स्वाधीन–भृर्तका एवं अभिसारिका।''[97] मानव सृष्टि में चेतना का इतिहास परिपूर्ण करने के लिये महानायक विवेक को जिस सहचरी की आवश्यकता पड़ती है, वह मति अथवा सुमति के नाम से जानी जाती हैं। आलोच्य नाटकों में 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में जिन नायिकाओं का उल्लेख किया गया है, उनमें मति और उपनिषद् नामक दो पत्नियाँ हैं। जहाँ तक नायिका का प्रश्न है उसमें मति ही मुख्य रूप से अधिकारिणी

है, यद्यपि नायक विवेक मति और उपनिषद् दोनों पत्नियों के प्रति समान अनुराग रखता है किन्तु 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के प्रथम अंक से ही मति विवेक के साथ रंगमञ्च पर दृश्यगत होने लगती है, साथ ही वह विवेक नायक के कार्यों को पूर्णता प्रदान करने के लिये सक्रिय हो उठती है। मति ने ही विवेक को उपनिषद् से मिलने के लिये प्रेरित किया। इस प्रकार नायक को निरन्तर फलसिद्धि की ओर प्रेरित करने का कार्य मति के ही द्वारा किया जाता है। मति ही नायक की महिषी के रूप में चित्रित है। अतः भारतीय नाट्यशास्त्र के निर्धारित मानकों में मति ही प्रधान नायिका के रूप में स्वीकार की जा सकती है।

'संकल्प–सूर्योदय' में विवेक नायक की पत्नी के रूप में एकमात्र जिस नायिका को स्थान दिया गया है वह सुमति है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की मति यहाँ सुमति हो गई है। 'सु' उपसर्ग लगा कर ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार ने कुमति के विपरीत चरित्र को गढ़ने के लिये सुमति को स्थापित किया है। सन्त मीता साहब ने भी सुमिता और कुमिता नामक वर्गीकरण किया है जो विद्या और अविद्या माया के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है और उन्होंने सुमिता को ही ईश्वर तक पहुँचाने में सहायक माना है। 'संकल्प–सूर्योदय' में भी सुमति नायिका के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है। वह आर्यपुत्र विवेक से कहती है कि सृष्टि के अनन्त काल के इतिहास में मोक्ष को प्राप्त करना एक अलभ्य कार्य है"–

सुमति

अय्यउत्त अणाइम्मि गए काले अलद्ध पुव्वो मोक्खो अणंते वि उवरिअणकालम्मि केण कहं लहिज्जहति संकाकलंककब्बुरिअं मे हिअअं।"[98]

सुमति का ये कथन विवेक को मोक्ष के लिये प्रेरित करने वाला है और उसे लक्ष्य की ओर ले चलने वाला है। लक्ष्यबद्धता से वैचारिक रूप से सम्बद्ध होने के कारण तथा सहचरी भूमिका निर्वाह करने के कारण निश्चित रूप से वह नायिका की प्रतिष्ठा के योग्य है। इतना ही नहीं वह पुरूष की बद्धदशाओं को तोड़कर करूणा और बुद्धि के सहित मोक्षागम की ओर जाने में विवेक को शंकाविमुक्त भी करती है–

सुमति

अय्यउत्त, अइकलुणा इमा बुद्धिसहि अस्स पुरिसस्स बंधदसा। एअस्स विडलदुक्खजाल विहालस्य वित्थरेण मोक्खाअमं पआसंतो विसंक मे कुणसु।"[99]

सुमति महानायक विवेक को शंकानिर्मूल करती है, साथ ही सेनापति को महाराज विवेक के शेष कार्यों के निर्वहण हेतु प्रेरित करती है–

सुमतिः – सेणावइ, कज्जसेसणिव्वहणंमि वि विष्णुडसमर कज्जो महाराओं एव्व पमाणं।[100]

युद्ध में विजय के लिये ही नहीं बल्कि अखण्ड ध्यान में चन्द्रोदय का प्रकाश भी गोचर कराती है और पुरूष को निःश्रेयस सिद्धि के प्राप्ति तक ले चलकर लक्ष्य को परिपूर्ण करती है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक की नायिका 'विवेक' से प्रश्न करती है कि–

मति

अज्जउत्त जदीं सो सहजआणन्दसुन्दलंसहा ओणिच्चप्पआसो पप्फुरन्तसअलतिहुअणप्पआरो परमेस्सरो सुणीअदि ता कहं एदेहिं दुव्विणीदेहि वधिअमहामोह आसरेणिविखतो।''[101]

परमात्मा आनन्द और सौन्दर्य की प्राकृतिक स्थिति वाला नित्य प्रकाश स्वरूप त्रिभुवन व्यापी है तो कैसे इन दुष्टों ने उन्हें बाँधकर महामोहसागर में डाल दिया? और परमात्मा के स्वरूप में माया का प्रभाव कैसा ही होता है। जैसे–

मति

अज्जउत्त, णं खु अन्यकारलेहाए, सहस्सरस्सिणो तिरक्कारो जधा तधा माआए स्फुरन्त महाप्पआसराअरस्स देवस्य वि अहिहवो।[102]

अर्थात् निश्चय ही जिस प्रकार सूर्य का तिरस्कार अन्धकार द्वारा सम्पन्न होता है, उसी प्रकार माया के द्वारा दीप्तिमान महा प्रकाश के सागर परमेश्वर का भी आविर्भाव होता है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की नायिका मति में जिज्ञासा भाव भी हैं। वह विवेक से प्रश्न करती है– क्या कारण है कि धूर्त अविद्या उस प्रकार के उदार चरित पुरूष को प्रताड़ित करती है? और फिर प्रश्न करती है कि इस प्रकार की दीर्घ निद्रा से जब प्रबोध भगा दिया गया है, तब परमेश्वर में प्रबोधोत्पत्ति कैसे होगी? नायक विवेक के यह कहने पर कि यदि चिर विरहोत्पन्न ईर्ष्या से आकुल उपनिषद् देवी को शान्ति आदि अनुकूल बना लें और यदि मेरे साथ संगम हों जाये तथा आप विषयों को छोड़कर क्षणभर के लिए मौन का आश्रय ले लें, तो जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि के अभाव से प्रबोध का उदय उपस्थित हो सकता है। इस पर मति सहर्ष स्वामी विवेक का अनुमोदन निम्न पंक्तियों में करती है, देखिए –

मति

अज्जउत्त, जदि एव कुलप्पहुणो दिढग्गंथिणि बद्धस्स वि बन्धमोक्खो भोदि तदो ताए विञ्चानुबन्धों जेव्व अज्जउत्तो भोदुत्ति सुट्ठु में पिअम्।[103]

आर्यपुत्र, यदि इस प्रकार द्वढ बन्धन में पतित कुल प्रभु का बन्धमोक्ष हो जाये तो आप अपने कर्तव्य का पालन करें, यही मेरे लिए अभीष्ट है और वे स्त्रियाँ अन्य होगीं जो स्वेच्छावश अथवा धर्मार्थ व्यापार में प्रवृत्त अपने स्वामी के प्रयत्न में प्रत्यवाय उपस्थित करती है। इन कथनों से मति के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। उक्त दोनों नाटकों में पात्रों का चारित्रिक विशिष्टता पूर्ण प्रयोग किया गया है। नाटककारों के हांथों में निर्जीव मति व सुमति सजीव हो उठती है और जीवनी शक्ति से सम्पन्न जीते–जागते प्राणी प्रतीत होते हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक की नायिका'[104] राजा विवेक से कहती है– उन्मत्तदशा को प्राप्त पुरूष की बुद्धि को उसकी प्रियतमा क्यों नहीं उद्‌बोधित करती? क्योंकि संसार में इस प्रकार 'पुरूष' मोह के वशीभूत हो रहे हैं। उसमें भी जिज्ञासा प्रवृत्ति है। वह विवेक नायक से निम्न पंक्तियों में पुरूष की अपवर्ग दशा के बारे में पूछती है–

सुमति

अय्यउत्त, अज्ज खु देवाणं मुणीणं वि परावर पुरिसविवेअणे डोलाअइ चिंता। तुए उण कहं एक्कंमि पुरिसोत्तमे णिट्ठा णिअमिज्जई?''[105]

वेदान्त देशिक रमणी के चित्रण में ही समर्थ नहीं है; प्रत्युत नारी के स्वाभाविक, स्वाभिमान तथा उदात्त रूप के प्रदर्शन में भी कृतकार्य हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' नाट्य साहित्य की दृष्टि से श्रेष्ठतम् है ही, साथ ही वह आध्यात्मिक रहस्यों की ओर मानव प्रवृत्ति को ले चलता है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' में प्रतिनायिका

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' दोनों दर्शन प्रधान नाट्यकृतियाँ हैं अतः उनके पात्रों में जिन वृत्तियों का मानवीयकरण किया गया है, उनके चरित्र विन्यास में भी दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का नायक विवेक है और नायिका मति है। अतः विवेक और मति के विपरीत कार्य करने वाली वृत्तियाँ महामोह और मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि ही 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में प्रतिनायिका है। मिथ्यादृष्टि का अर्थ होता है भ्रम या भ्रान्त ज्ञान। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का

नाटककार अद्वैत वेदान्त से प्रभावित है, अतः अद्वैत वेदान्त के अनुसार भ्रम या भ्रान्त ज्ञान के कारण भ्रम में जो वस्तु दिखती है, उसे हम न सत कह सकते हैं, न असत। भ्रम में जो वस्तु दिखती है वस्तुतः वो अविद्या की सृष्टि है और जब भ्रम दूर होता है तब हमें सत्य का ज्ञान होता है। मोक्ष भी ज्ञान–साध्य है। वेदान्त दर्शन मोक्ष को ज्ञान–साध्य मानता है। अतः ज्ञान अथवा मोक्ष की प्राप्ति में ये बाधंक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार प्रतिनायिका की भूमिका आत्मज्ञान प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करना है। वह अविद्या स्वरूप है अतः वह मति या विद्या के विपरीत आचरण करती हैं और मोक्ष या ब्रह्म प्राप्ति से मनुष्य को विरत करती रहती है। धर्म का अच्छेदन करती हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' की प्रतिनायिका दुर्मति है। 'संकल्प–सूर्योदय' विशिष्टाद्वैत दर्शन से प्रभावित नाटक है। विशिष्टाद्वैतवाद के आधार पर ये सारा जगत परमार्थिक सत्य और प्रकृति का वास्तविक परिणाम है, अतः इस जगत् कार्य को मिथ्या कहना उचित नहीं है। जगत के धार्मिक कार्यों पूजा–पाठ, जप–तप, भक्ति–उपासना, उपास्य–उपासक आदि मान्यताओं का निषेध करना श्रुति सिद्धान्तों के प्रति अन्याय होगा।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' 'नाटक के प्रतिनायक महामोह की पत्नी मिथ्या दृष्टि प्रतिनायिका है। जो चारित्रिक उदात्तता, नायक के लिये किसी नाटककार को उपस्थित करने की आवश्यकता होती है वही उदात्तता प्रतिनायक व प्रतिनायिका के लिए भी आवश्यक है। प्रतिनायक व प्रतिनायिका नाटक के केन्द्रत्व में सहकारी होते हैं। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्रतिनायिका मिथ्यादृष्टि द्वितीय अंक में रंगमञ्च पर आती है। प्रतिनायक महामोह श्रद्धा को प्रवचिंत करने के लिये मिथ्या दृष्टि को ही समर्थ मानता है। विभ्रमावती मिथ्यादृष्टि के सौभाग्य की सराहना करती है और उसकी आँखों में रात्रि के जागरण की खुमारी दिखलाई पड़ने पर वह उसका कारण पूछती है? प्रतिनायिका मिथ्यादृष्टि सकललोकवल्लभा, वह स्वयं इस बात को निम्नलिखित पक्तियों में स्वीकार करती है–

मिथ्यादृष्टि – सहि, एक वल्लहाणि जा इत्थिजा

भवई ताएवि णिद्दा दुल्लहा। किं उठा अम्हाणं सअललोअवल्लहाणम्।'[105]

विभ्रमावती के पूछने पर मिथ्यादृष्टि अपने स्वामियों के बारे में उनके नाम इस प्रकार बताती है।

सखि प्रथम तो महाराज ही, तत्पश्चात् काम, क्रोध, लोभ तथा अहङ्कार आदि और काम की स्त्री रति, क्रोध की हिंसा और लोभ की तृष्णा ये सभी ईष्या न कर मेरे बिना एक क्षण भी निश्चिन्तता से नहीं रहतीं। मिथ्या–दृष्टि अत्यन्त सुन्दर भी है, विभ्रमावती उसके समान सुभगा इस विश्व में कोई नहीं है ऐसा मानती है। उसका कहना है– तुम्हारे सौभाग्य की महत्ता से पराजित सपत्नियाँ भी प्रसाद की कामना करती है और निद्रा से अलसाए नेत्रों से स्खलित चरणों के नूपुरों की झङ्कार से मुखरित चाल महा–राज महामोह को भी सन्दिग्ध हृदय वाला बना देगी। मिथ्यादृष्टि प्रतिनायक महामोह के यह कहने पर कि प्रतिकूल नीचकुल में उत्पन्न पापिनी पापियों का अनुशरण करने वाली उस श्रद्धा को केश पकड़कर पाखण्ड में लगा दो–इस पर मिथ्यादृष्टि का यह कथन उसके चरित्र पर प्रकाश डालता है, जो निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है –

मिथ्यादृष्टि :– एद्दहमेत्तके वि विसए अलंभटिटणो अहिणिवेसेण। वअणमत्तकेण जेव्व भट्टिणो दासी सद्धा सर्व्व अण्णां करित्सीद। साखु मए मित्था धम्मो, मित्था मोक्खो, मित्था वेअमग्गो मिथ्या सुहविग्घअराइ सात्थपलविदाइ मिथ्या सग्गफलं ति भणिअन्तो वेअभग्गं जेव्व पलिहलिस्सदि, किं उण उवणिसहम्। अवि अ। विसआणन्दविमुकके मोक्खे दोसाण दंसअन्तीए उवणिसदोवि विरत्ता कलिस्सदि अचिलं मए सद्धा।[106]

अर्थात् इतने से विषय में आपकी चिन्ता व्यर्थ है। केवल कथनमात्र से ही स्वामी की दासी श्रद्धा अवशेष आज्ञा का पालन करेगी। 'धर्मव्यर्थ है, मोक्ष असत्य है, वेदमार्ग असत है, शास्त्रों का कथन सुख में विध्न करने के कारण व्यर्थ है, स्वर्गफल निष्फल है– यह बात जब मैं उसे समझा दूँगी, तब वह वेदमार्ग का ही परित्याग कर देगी। फिर उपनिषद् का क्या? और भी। विषयानन्द से रहित मोक्ष के दोषों को दिखाने वाली मेरे द्वारा श्रद्धा भी शीघ्र ही उपनिषद् से विरक्त कर दी जाएगी।

'संकल्प–सूर्योदय' के प्रतिनायक महामोह की पत्नी दुर्मति प्रतिनायिका है। वह साहसी वा प्रतिनायक महामोह को विवेक विजय के लिए प्रेरित करती रहती है। जो निम्न पक्तियों में दृष्टव्य है–

दुर्मति

अय्यउत्त मह किर णिहिलाओं कामिणीओ दासिओ। ताहिं एव्व तुह विवेअविअओत्ति संपण्णबहुमाणम्हि। (विचिन्त्य) पञ्चक्खसिद्ध परमाणंदजुवइसंभोअप्पहाणं तुह सिद्धंतं मुअंता किंति ठिरप्पहाणेसु तेसु तेसु मएसु पउराअरा जणा होंति।[107]

प्रतिनायिका दुर्मति नायक के राजनीतिक सभी कार्यो में हाथ बटाती है। निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है–

दुर्मति

अय्यउत्त एव्वं में राअकज्जं पडिभाई संधिव्वव देसेण अम्हासआसं आसाइज्जउ विवेओ। ता जीवग्गाहं गहिऊण दिढपीडणिज्जो होज्ज।[108]

दुर्मति अपनी बुद्धि से प्रतिनायक महामोह की सेना का संचालन करती है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' में नायिका के सहयोगी स्त्री पात्र–

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की नायिका मति की सहयोगी पात्रों में श्रद्धा, शान्ति, करूणा, मैत्री, उपनिषद्, विष्णुभक्ति, सरस्वती, क्षमा आदि स्त्री पात्र हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक की नायिका सुमति की सहयोगी स्त्री पात्रों में – बुद्धि, विष्णुभक्ति, श्रद्धा, विचारणा आदि सहयोगी पात्र हैं।

श्रद्धा

'प्रबोध–चन्द्रोदय' में 'श्रद्धा' शान्ति की माता है। उसकी सखी मैत्री है, वह नायिका मति की सहयोगी व विवेक नायक से उपनिषद् देवी को मिलाने की चेष्टा करती रहती है। श्रद्धा प्रासंगिक पात्र भी है। विष्णुभक्ति महा भैरवी से श्रद्धा को रक्षित करती है। श्रद्धा चार बहने हैं और महात्माओं के हृदय में रहा करती हैं निम्नलिखित पंक्तियों से उसका कथन द्रष्टव्य है–

ध्यायन्निमां सुखिनि चानुकम्पां
द्वेषादिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरात्मा।"[109]

सुखियो के ऊपर मैत्री, दुःखियों के ऊपर करूणा, धर्मात्माओं में मुद्रिता और दुर्बुद्धियों पर उपेक्षा इस प्रकार वृत्ति रखने से रागद्वेषकलुष होकर भी यह अन्तरात्मा प्रसाद प्राप्त करता है और देवी विष्णु भक्ति के आदेशानुसार मैराढानाम का एक देश है।

वहाँ गंगातट पर आभूषण के समान विद्यमान चक्रतीर्थ (नामक स्थान) में मीमांसानुसारिणी बुद्धि (मति) से किसी तरह प्राणों को धारण किए हुए विवेक व्याकुल अन्तःकरण से उपनिषद् देवी से संगमार्थ (मिलने के लिये) तपस्या कर रहे हैं। अतः मैं प्रयत्नपूर्वक उनको मिलाने का कार्य करती हूँ। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में श्रद्धा देवी सुमति की सहायक है। वह राजा विवेक को मोक्ष दिलाने वा विष्णु भक्ति प्राप्त करने में सहयोग देती है। निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है–

दृश्यमानो दिवसेश्व इव बहलमन्धकारप्राग्भारकं दीप्यमानश्च दवानल इव विपुलं विन्ध्याटवीमण्डलम् त्वरमाणश्च प्रभञ्जन इव तुलितं शैलेन तूलोत्करं।[110]

शान्ति

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक की नायिका मति की सहयोगी व श्रद्धा की पुत्री शान्ति है। नाटक में सर्वप्रथम तृतीय अंक में उपस्थित होती है। वह दयार्द्रहृदय है। वह माँ श्रद्धा के खो जाने पर विलाप करती है, क्योंकि श्रद्धा शान्ति के बिना एक क्षण नहीं रह पाती। निम्नलिखित पक्तियों में उसका कथन दृष्टव्य है–

मामनालोक्य न स्नाति न भुङ्क्ते न पिवत्यपः।
न मया रहिता श्रद्धा मुहूर्तमपि जीवति।[111]

शान्ति भाग्य को मानने वाली है क्योंकि भाग्य विपरीत होने पर क्या नहीं हो सकता है? देखो–देवी, श्रीजनकात्मजा को राक्षसों के घर रहना पड़ा था, वेदत्रयी को दानवों ने पाताल पहुँचा दिया, गन्धर्वकन्या मदालसा को दैत्येन्द्र पातालकेतु ने छल से हर लिया। विधाता की वृत्तियाँ बड़ी टेढ़ी हुआ करती हैं। नाटक में शान्ति श्रद्धा का अन्वेषण करती है।

करूणा

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में 'करूणा' शान्ति की सखी है। वह भी नायिका मति की सहयोगी पात्र है। शान्ति व करूणा मिलकर श्रद्धा का अन्वेषण तृतीय अंक में करती हैं। उसका मानना है कि जो सात्विकी श्रद्धा है, उसकी दुर्गति की सम्भावना वह नहीं करती। वह शान्ति को तरह–तरह से धैर्य दिलाती है। करूणा का कथन निम्न पक्तियों में दृष्टव्य है–

करूणा– समाश्वसितु प्रियसखी। न खलु नाममात्रेण प्रियसख्या भेतव्यम्। यतः श्रुतं मया हिंसासकाशाद्यदस्ति पाषण्डानामपि तमसः सुता श्रद्धेति तेनैषा तामसी श्रृद्धा भविष्यति।[112] "नाममात्र से तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। मैने सुना है कि हिंसा के माध्यम से पाखण्डियों के पास भी श्रद्धा रहती है।" करूणा जिज्ञासु प्रवृत्ति की है, वह शान्ति से पूछती है–

हे सखि यह कौन है जो ताड़ वृक्ष के समान लम्बा लटकता हुआ केसरिया रङ्ग का वृहदाकार वस्त्र धारण किए हुए शिखा सहित शिरोपन कर इधर ही आ रहा है। 'करूणा' मानव की प्रवृत्ति के अनुसार नाटक में चित्रित की गई है।

मैत्री

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में 'मैत्री' श्रद्धा की सखी है। चतुर्थ अंक में उसका रंगमञ्च में प्रवेश होता है। महाभैरवी द्वारा श्रद्धा के ग्रस्त होने पर वह विष्णुभक्ति द्वारा श्रद्धा की रक्षा

सुनकर श्रद्धा से मिलने को आतुर हो जाती है। श्रद्धा से मिलने पर वह उसे तरह–तरह से समझाती है देखिए–

मैत्री– सखि, तदा विष्णुभक्ति निर्भर्त्सितप्रभावाया

महाभैरव्याः कस्मातेऽद्यापि वेपन्तेऽङ्गानि।[113]

और भाग्यवश में शार्दूलमुखपतित मृगी के समान सकुशल जीती हुई सखी को देख सकी।

5. विष्णुभक्ति

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में विष्णुभक्ति उपनिषद् सखी है। वह भी नायिका मति की सहयोगी है। विष्णुभक्ति हिंसा प्रधान युद्ध नहीं देख सकती इसलिए वाराणसी छोड़कर शालिग्राम नामक क्षेत्र में कुछ दिन रूकती है। उसका हृदय युद्ध का समाचार जानने के लिए विकल है। जो निम्न लिखित पक्तियों में दृष्टव्य है–

विष्णुभक्तिः –यदप्यभ्युदयः प्रायः प्रमाणादवधार्यते

कामं तथापि सुहृदामनिष्टाशङ्कि मानसम्[114]

यद्यपि प्रमाण से अभ्युदय का निश्चय किया जाता है फिर भी हितैषियों का हृदय अनिष्ट की आशङ्का ही किया करता है। श्रद्धा द्वारा युद्ध का वर्णन बताने पर महामोह के शेष रह जाने पर विष्णु भक्ति इस प्रकार कहती है–

विष्णुभक्ति – अस्ति तर्हि महाननर्थशेषः। प्रहरणीय श्चासौ यतः–

अनादरपरो विद्वानीहमानः स्थिरां श्रियम्

अग्नेः शेषमृणाच्छेषं शत्रोः शेषं न शेषयेत्।[115]

"अनाद्रत होकर स्थिर सम्पत्ति कामुक विद्वान अग्नि ऋण तथा शत्रु को शेष न छोड़े।"

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में 'विष्णु भक्ति' नायक विवेक व नायिका सुमति की सहयोगी है। नाटक के दशमोऽङ्क में अपने स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करती है, देखिए–

"अहं वैकुण्ठदास्यैकलास्यलीलाविनोदिनी

विश्वकिल्विषसंहार विभ्रमार भटी नटी।[116]

और आगे अभिजन आदि द्वारा प्रयुक्त महात्म्य को कहती है। जो निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है–

अम्बा मे पुरूषस्य बुद्धिरनधा तातः स धर्मोत्तरः

साहं प्राणिमि विष्णुभक्तिरचला संतिष्ठते संसृतिः।[117]

विष्णुभक्ति भक्ति की तीन अवस्थाओं का उल्लेख करती है जिन्हें साधन और साध्य भक्ति के दो रूपों में जाना जा सकता है। और साधन भक्ति प्राथमिक अवस्था है। संसार और कर्मफल चक्र से उद्वेलित मन जब परमात्मा की सत्ता में विश्वास कर आध्यात्मिक अनुभूति के लिए विकलता का अनुभव करने लगता है, तब वह आत्मावलोक प्रारम्भ करता है और अवलोकन के लिये शम–दमादि से मन को शुद्ध करना आवश्यक है, निम्नलिखित पक्तियां दृष्टव्य हैं –

मुमुक्षुत्वे सिद्धे मुञ्झितमतिमोहस्य मुरभि

त्समाधिः सरोहन्नु पहरति सर्वाधविरतिम्

परस्तादास्थेयं यदिह विदूषानिष्टजनुषा

फलार्थं तत्किं वा फलमिति वितर्कः श्रमफलः।[118]

विष्णुभक्ति के प्रभाव से विवेक व सुमति निःश्रेयस को प्राप्त करने में सफल हो सके और विष्णुभक्ति का सद्भाव निम्नलिखित पक्तियों में दृष्टव्य है–

नियतपुलकिताङ्गी निर्भरानन्दवाष्पा

विगतनरकभीतिर्विष्णुभक्तिर्विभाति।[119]

उपनिषद् एवं विचारणा–

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में उपनिषद् 'पुरूष की पत्नी' व 'वेदान्त विद्या' हैं। पुरूष के पूछने पर कि इतने दिन कहाँ विताए इस पर उपनिषद् उत्तर देती है – ये दिन माह चत्वर, तथा शून्य देवालयों में मुखर मुर्खो के साथ विताए। अपने स्वरूप को प्रकाशित करती हुयी उपनिषद् इस प्रकार कहती है, देखिए–

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते

द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरूषम्।[120]

अर्थात् जिससे संसार उत्पन्न होता है तथा जिसमें स्थिर रहता है और फिर जिसमें लीन हो जाता है, जिसके प्रकाश से संसार प्रकाशित होता है और जिसका प्रकाश स्वाभाविक तथा उज्जवल आनन्दरूप है, शान्त अविकारी नित्य भूतेश्वर. तथा जिसकी शरण में विद्वान लोग द्वैत भाव को नष्ट करने जाते हैं, मैं उस पुरूष का प्रस्ताव करती हूँ। इस प्रकार उपनिषद् समस्त दार्शनिक मठों मे गई, उसे कहीं शरण न मिली, अन्ततः वह पुरूष को उसके स्वरूप

का ज्ञान इस प्रकार कराती है देखिए–

उपनिषद्– असौ त्वन्दन्यो न सनातनः पुभाव्

भवान्न देवात्पुरूषोत्तमात्परः

स एष भिन्नस्त्वदनादिमायया

द्विधेव विम्बं सलिले विवस्वतः ।[121]

उपनिषद् 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में नायक विवेक व नायिका सुमति की सहायक व सुमति की सखी है। वह द्वितीय अंक में रंगमञ्च में आती है।

ऐँत निर्भरनित्य सौरभसुधा प्राग्भारविभ्राजितं

शाखाग्रैर्मुञ्चन्ति पुष्पनिकरं वृक्षा मरूत्क्षोभिता ।[122]

7. सरस्वती, बुद्धि, क्षमा

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में सरस्वती विष्णुभक्ति की सखी है। वह दुखित मन को सान्त्वना देती है और पदार्थों की अनित्यता के बारे में तरह–तरह से समझाती है। निम्नलिखित पक्तियों दृष्टव्य हैं–

सरस्वती– नित्यमनित्यवस्तु दर्शनो न पश्यति शोकावेगम्। यतः–

एकमेव सदा ब्रह्म सत्यमन्यद्विकल्पितम्

को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।[123]

'सरस्वती' 'मन' को स्नेह के दोष इस प्रकार बतलाती है, निम्नलिखित पक्तियों में देखिए –

उप्यन्ते विषवल्लिबीजविषभाः क्लेशाः प्रियाख्यानरै

र्देहं दीप्तशिखासहस्त्रशिखरा रोहन्ति शोकद्रुमाः ।[124]

मनुष्य, विष लता के समान भयङ्कर दुःखदायी प्रिय संज्ञक बीज बोते हैं। उनसे शीघ्र ही प्रेमरूपी विद्युत अग्नि के समान सन्तापदायक अङ्कुर निकल आते हैं। जिन स्नेह अङ्कुरो से देह भूसी की अग्नि के समान जलाने वाले ज्वालायुक्त सहस्त्र शिखर वाले शोक रूपी वृक्ष पैदा होते हैं और आत्म हत्या करना अत्यन्त धृणित कार्य है और इन अपकारियों के सम्बन्ध में (मन) तुमको इतना आवेश क्यों हो रहा है? इन कलत्रादि द्वारा क्या–क्या दुष्कार्य नहीं कराया गया? भरी हुई कितनी नदियाँ नहीं पार करनी पड़ती? कौन से पर्वत नहीं लाँधना पड़े? क्रूर प्राणियों के सञ्चार से भयङ्कर कितने जङ्गलीप्रदेश को नहीं पार करना पड़ा? तथा धनमद से म्लानमुख दुष्ट धनिकों के पास नहीं जाना पड़ा? और फिर सरस्वती ममतावश मनुष्य के दुःख के कारण

को इस प्रकार समझाती है, देखिए—

मार्जारभक्षिते दुःख यादृशं गृहकुक्कटे

न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषके।[125]

अतः सभी अनर्थो की जड़ ममता का ही उच्छेद करना चाहिए, और तब पिता पुत्र या मित्र की मृत्यु हो जाती है, तब मूर्खबुद्धि लोग छाती पीटकर शोक के पीड़ित हुआ करते हैं। परन्तु जो संसार को असारत्व या इसके विरस (दुखदायी) परिणाम को जानने वाले हैं उनके लिए वियोग शान्ति सुख प्रदान करने वाला तथा वैराग्य दृढ़ करने वाला हुआ करता है।

बुद्धि

'संकल्प—सूर्योदय' नाटक में बुद्धि पुरूष पत्नी है। क्योंकि चेतन और अचेतन के बीच में बुद्धि ही भेदक दृष्टि पैदा करती है। बुद्धि के माध्यम से ही जीव ईश्वर को जान लेता है और वह शरणागति की मनः स्थिति में हो जाता है। बिना तत्व ज्ञान के जीवात्मा को अपने शुद्ध स्वरूप का बोध नहीं हो पाता। सच्चे ज्ञान के लिये ज्ञान का कर्म और भक्ति से जुड़ना आवश्यक है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के साधनों में बुद्धि भी एक प्रमुख तत्व है। वस्तुओ के रूप का प्रकाशन ज्ञान बुद्धि द्वारा ही इन्द्रियों की सहायता से अपने प्रकाश्य के सम्बन्ध में आता है। वस्तुओं के प्रकाशक के रूप में ज्ञान को ही बुद्धि की संज्ञा दी गई है। ज्ञान या बुद्धि को विशिष्टद्वैत में द्रव्य माना गया है। आचार्य रामानुज ने बुद्धि को अनुभूति संबेदना और चेतना का पर्याय कहा है।"

क्षमा

"प्रबोध—चन्द्रोदय" नाटक में 'क्षमा' विवेक की दासी है। क्रोध का स्वरूप इस प्रकार दिया गया है, देखिए —

क्रोधान्धकार विकट भृकुटीतरङ्ग

*　　*　　*

वीराः परस्य परिवादगिरः सहन्ते [126]

क्षमा अपनी प्रशंसा इस प्रकार करती है, देखिए —

क्लमो न वाचा शिरस्रो न शूलं

*　　*　　*

श्लाध्या परं क्रोधजयेडहमेका।[127]

जो कि मैं वाणी को कष्ट दिए बिना, माथा दुःखाए विना, मानसिक सन्ताप सहे बिना, शारीरिक आघात सहे बिना, हत्या आदि पाप कर्म भी बिना, किए अकेले ही केवल क्रोध पर विजय प्राप्त करने के कारण परम प्रशंसा की पात्र हूँ। राजा विवेक क्रोध को जीतने के लिए

क्षमा को नियुक्त करते हैं– क्षमा के अस्त्र–शस्त्र इस प्रकार हैं। जो निम्नलिखित पक्तियो में दृष्टव्य है–

क्रुद्धे स्मेरमुखावधीरणमथा विष्टे प्रसादक्रमो
दुर्वरिति दयारसार्द्रमनसः क्रोधस्य कुत्रोदयः ।[127]

कुपित व्यक्ति के प्रति हंस कर, उपेक्षा का भाव दिखाना, अत्यन्त क्रोध से क्रोधित के प्रति उसे प्रसन्न करने का प्रयास करना, गाली देने वाले के प्रति कुशल कामना प्रकट करना, क्रोधी एवं इन्द्रियो के वशीभूत व्यक्ति पर दुर्भाय से बडी भारी एवं अति दुःखदायक विपत्ति टूट पड़ी है, यह बड़े दुःख का विषय है। इस प्रकार क्रोध के प्रति सर्वथा अपनी दया भावनाएँ ही प्रकट करने वाले व्यक्ति के ह्रदय में भला क्रोध की उत्पत्ति कहाँ हो सकती है?

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' में प्रतिनायिका के सहयोगी पात्र

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की प्रतिनायिका मिथ्यादृष्टि की सहयोगी स्त्री पात्रों में रति, विभ्रमावती, हिंसा, तृष्णा की सहयोगी स्त्री पात्रों में रति, तृष्णा, कुहना, असूया, दुर्वासना आदि हैं।

1. **विभ्रमावती**

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्रतिनायिका की सखी विभ्रमावती है। वह नाटक के द्वितीय अंक में अपनी सखी मिथ्या दृष्टि की प्रशंसा करती है। वह उसकी सहयोगी पात्र है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक पात्र में विभ्रमावती का प्रयोग नहीं किया गया है।

2. **रति**

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के प्रथम अंक में काम और रति का संवाद है। रति पौराणिक पात्र है, जो कामदेव की पत्नी है। वह सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है। काम की सहचरी होने के कारण प्रेम और माधुर्य के द्वारा मन की रूझान को अपनी ओर आकर्षित करती है।

रति का रूप वासनामय है। विलासप्रिय व्यक्तियों के जीवन में रति अनंग के साथ क्रीड़ा करती रहती है। आलोच्य नाटकों में रति और काम के बीच में संवाद वर्णित है। वह महामोह के कार्य को सुगम बनाने वाली है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' दोनों में प्रारम्भ में ही रति काम से वार्ताकरती हुई दिखायी पड़ती है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' मे रति काम से विवेक के शक्ति सम्पन्न होने का संकेत करती है। ब्रह्मचर्य को नष्ट करने के लिये हम तुम पर्याप्त हैं। रति का कथन अलोच्य नाटकों में दृष्टव्य है–

रति

अज्जउत्त गुरूओ क्खु महाराज महामोहस्य पडिवक्खो विवेओ त्ति तक्केमि।[128]

रति

अय्यउत्त, आवाअमहुरो एसो महूसवो। एहिं किल अम्हकुलसामिणों महामोहस्य अणिवारिणिज्जेण केणवि विहिणा अमोहारंभो विवेओ दुज्जओ पडिपक्खेति जूविअं में हिअअं।[129]

रति काम से प्रतिपक्षी महान सहायसम्पन्न विवेक के मन्त्री यम–नियम आदि से शंका करती हुई इस प्रकार कहती है। उक्त दोनो नाटको में रति काम की पत्नी है।

तृष्णा

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में लोभ की पत्नी तृष्णा है। संकल्प–सूर्योदय नाटक में भी लोभ की पत्नी तृष्णा है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के द्वितीय अंक में तृष्णा रंगमन्च पर आती है। क्षेत्र ग्राम, वन, पर्वत नगर, द्वीप, पृथ्वीमण्डल की आशा में जिनके हृदय संलग्न है, जो प्राप्य से अधिक का ध्यान कर रहे हैं यदि तुम कृपा करके उनके अङ्गों को स्थूल कर दो तो लाख ब्रह्माण्ड का पालन करने पर भी प्राणियों को शान्ति कहाँ प्राप्त होगी? 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के चतुर्थोऽङ्क में तृष्णा रंगमंच पर उपस्थित होती है।

हिंसा

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में क्रोध की पत्नी हिंसा है। क्रोध उसके लिये कहता है– प्रिये तुमको पाकर मेरे लिये माता–पिता का वध भी सरल है क्योकि–

केयं माता पिशाची क इव हि जनको भ्रातरः केऽत्र कीटा

वध्योऽयं बन्धुवर्गः कुटिलविटसुहृच्चेष्टिता ज्ञातयोऽमी।।[130]

कुहना, असूया, दुर्वासना

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में कुहना दंभ की पत्नी है। वह दंभ की अत्यन्त प्रिय है। नाटक के पंचम अंक में कुहना, असूया, दुर्वासना रंगमंच में उपस्थित होती है। विवेक के वैभव को देखकर कुहना चिन्तित होती है, जो निम्नलिखित पक्तियों मे दृष्टव्य है –

कुहना

हा धिक हा धिक सकलागमसारग्रहणविशारदो विवेकः शमदमप्रमुखैरमात्यजनैः संरक्षितः कथमभिचर्यते ताद्वशेषु प्रयुक्तो ऽभिचारः कर्तुरेव बाधामावहतीति श्रुयते।[131]

असूया दर्प की पत्नी है। 'दुर्वासना' कोषाध्यक्ष की पत्नी है। दुर्वासना, असूया, कुहना ये तीनों भी दुर्मति की सहयोगिनी पात्र हैं।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' के पात्रों का वर्गीकरण तो कई प्रकार से

किया जा सकता है किन्तु दोनों नाटको के पात्र प्रकृतियों पर आधारित हैं। अतः प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि एक नये प्रकार का वर्गीकरण करके ही मनोवृत्तियों का जिन्हें पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उनका चरित्र निरूपण सुगम, सुबोध शैली में प्रतिपादित कियाजा सकता है। और इस वर्गीकरण का नया नामकरण होगा नायक—नायिका वर्गगत वर्गीकरण।

1— विवेक नायक के वर्गों का वर्गीकरण

2— महामोह प्रतिनायक के वर्गों का वर्गीकरण

पंच वर्ग वर्गीकरण

काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, इन पंच वर्गो के अन्तर्गत आने वाले पात्रों को लेकर महामोह अपने कार्य व्यापार को विस्तार देता है।

त्रिवर्ग वर्गीकरण

त्रिवर्ग वर्गीकरण के अन्तर्गत त्रिगुणादिक वृत्तियॉ सत्, रज्, तम्, त्रिसेना के रूप में तपश्चर्या की वृत्तियों को खण्डित करके, महामोह के शासन में रहने के लिये विवश्य करते है और मनुष्य की सत्ता को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नहीं रहने देते। **त्रिरूपात्मक वर्गीकरण**

इसके अन्तर्गत रूप प्रधान सृष्टि कार्य व्यापार चलता है अर्थात् सृष्टि मे रूपात्मक लीला विस्तार के लिये काम और रति की रचना की गई है और वंसन्त काम का मित्र है। ये तीनों मिलकर साधकों की समाधि को भंग करते है इन्द्रियों के कार्य व्यापार में चेतना को रागवद्ध करते हैं और इस प्रकार आत्मा के सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रूप को बाधित करते है। उक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत आने वाले पात्र महामोह के पक्षधर हैं और विश्व—व्यापार में लीला नायक की इच्छा के प्रतिकूल भोगों की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार महामोह के पक्ष में कार्यरत रागात्मक प्रवृत्तियों की सेना जो सतत् रूप से क्रियाशील रहती है और शुद्ध—प्रबुद्ध चेतना के अखण्ड आन्नद को बाधित करते रहते है। ये सभी पात्र मूल रूप से रागात्मक प्रकृति के अन्तर्गत आते हैं। अतः इन सबका कार्य व्यापार भी कुल मिलाकार पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियों के रागात्मक जाल का विस्तार करना होता है। महामोह से जीव को आवद्ध करना ही इनका लक्ष्य होता हैं और इन पर विजय प्राप्त करना ही विवेक महानायक का उद्देश्य है और यही मानव का सबसे बड़ा पुरूषार्थ है।

—संदर्भ—

1. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, सं0 श्री निवास शास्त्री, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 113।
2. 'नाट्यशास्त्र' भरतकृत पृष्ठ 24/17।
3. 'नाट्यदर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत, 1/6।
4. 'साहित्यदर्पण' विश्वनाथ कृत, 3/31।
5. 'प्रतापरूद्रयोभूषण', विद्यानाथ कृत, 1/27।
6. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 114।
7. 'नाट्यदर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत, पृष्ठ 27।
8. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 114।
9. 'नाट्यदर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत, पृष्ठ 27।
10. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 116।
11. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, सं0 श्रीनिवास शास्त्री, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 120।
12. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच', डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ 128।
13. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, सं0 श्रीनिवास शास्त्री, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 122।
14. 'साहित्य–दर्पण', विश्वनाथ कृत, 3/35।
15. प्रतापरूद्रोदयोभूषण, विद्यानाथ कृत, 1/35।
16. संस्कृत नाट्यसिद्धान्त' डा0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 78।
17. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, टीका श्रीनिवास शास्त्री, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 124।
18. प्रतापरूद्रोदयोभूषण, विद्यानाथ कृत, 1/39।
19. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, टीका श्रीनिवास शास्त्री, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 124।
20. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, टीका श्रीनिवास शास्त्री, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 124।
21. 'साहित्य दर्पण', 'विश्वनाथ कृत', पृष्ठ 3/37।
22. 'प्रतापरूद्रयोभूषण' विद्यानाथकृत, 1/35।
23. 'नाट्यदर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत, 174।
24. संस्कृत नाट्यसिद्धान्त' डा0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 78।
25. संस्कृत नाट्यसिद्धान्त' डा0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 79।
26. नञ्जराजयशेभूषण, षष्ठ विलास, पृष्ठ 75–76।
27. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 127।
28. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 128।
29. 'साहित्य दर्पण', 'विश्वनाथ कृत', पृष्ठ 110–112।
30. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 128।

31. 'नाट्यदर्पण' रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत, 4/250।
32. 'साहित्य दर्पण', 'विश्वनाथ कृत', पृष्ठ 3/131।
33. 'दशरूपक', धनञ्जयकृत, द्वितीय प्रकाशन पृष्ठ 116।
34. 'साहित्य दर्पण', 'विश्वनाथ कृत', पृष्ठ 3/32।
35. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृष्ठ 28,29।
36. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृष्ठ 146।
37. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृष्ठ 65।
38. 'संकल्प–सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक कृत, सं0 कष्णामाचार्य, अंक 8, पृष्ठ 687।
39. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृष्ठ 28।
40. 'संकल्प–सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक कृत, सं0 कष्णामाचार्य, अंक 8, पृष्ठ 685।
41. 'संकल्प–सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक कृत, सं0 कष्णामाचार्य, अंक 8, पृष्ठ 675।
42. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृष्ठ 58।
43. 'संकल्प–सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक कृत, सं0 कष्णामाचार्य, अंक 8, पृष्ठ 682,683।
44. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृष्ठ 128।
45. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 4 अंक, पृष्ठ 130।
46. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 3 अंक, पृष्ठ 137।
47. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 3 अंक, पृष्ठ 138।
48. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 3 अंक, पृष्ठ 139।
49. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 6 अंक, पृष्ठ 195।
50. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 6 अंक, पृष्ठ 217।
51. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 6 अंक, पृष्ठ 222।
52. 'संकल्प–सूर्योदय' वेंकटनाथ देशिक, सं0 कृष्णामाचार्येण, 10 अंक, पृष्ठ 844।
53. 'संकल्प–सूर्योदय' वेंकटनाथ देशिक, सं0 कृष्णामाचार्येण, 10 अंक, पृष्ठ 626।
54. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 6 अंक, पृष्ठ 145।
55. 'संकल्प–सूर्योदय' वेंकटनाथ देशिक, सं0 कृष्णामाचार्येण, 10 अंक, पृष्ठ 571।
56. 'संकल्प–सूर्योदय' वेंकटनाथ देशिक, सं0 कृष्णामाचार्येण, 10 अंक, पृष्ठ 612।
57. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 6 अंक, पृष्ठ 221।
58. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 10 अंक, पृष्ठ 837।
59. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 8 अंक, पृष्ठ ।
60. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र कृत, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 5 अंक, पृष्ठ 137।
61. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 16।

62. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 14।
63. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 15।
64. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 10 अंक, पृष्ठ 85–86।
65. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 79।
66. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 4 अंक, पृष्ठ 414।
67. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 81।
68. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 4 अंक, पृष्ठ 428।
69. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 72।
70. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 4 अंक, पृष्ठ 433।
71. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 4 अंक, पृष्ठ 435।
72. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, 1अंक, पृष्ठ 43।
73. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 4 अंक, पृष्ठ 454।
74. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2अंक, पृष्ठ 43।
75. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2अंक, पृष्ठ 44।
76. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2अंक, पृष्ठ 49।
77. 'सांख्यसूत्र' 2/16।
78. तदुपरिवत्, 2/17
79. 'सांख्यकारिका', 'ईश्वरकृष्ण' ब्याख्या कृष्णकान्त त्रिपाठी, पृ0 119, कारिका 24।
80. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2अंक, पृष्ठ 40।
81. तदुपरिवत्, 2अंक पृष्ठ 42।
82. तदुपरिवत् 2 अंक पृष्ठ 46 ।
83. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 4 अंक, पृष्ठ 460।
84. तदुपरिवत्, 3 अंक पृष्ठ 335।
85. तदुपरिवत् , पृष्ठ 344।
86. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2अंक, पृष्ठ 59।
87. तदुपरिवत् , पृष्ठ 66।
88. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 1 अंक, पृष्ठ 87।
89. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 3 अंक, पृष्ठ 94।
90. तदुपरिवत् , 3 अंक पृष्ठ 99।
91. तदुपरिवत् , 3 अंक पृष्ठ 101।
92. नाट्यशास्त्र, 'भरत'
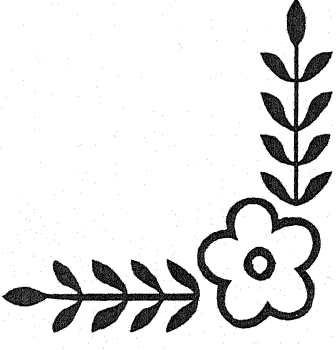
93. नाट्यदर्पण, – रामचन्द्र, गुणचन्द्र पृष्ठ 169।

94. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डा0 रमाकान्त त्रिपाठी पृष्ठ 87।

95. तदुपरिवत पृष्ठ 88।

96. तदुपरिवत पृष्ठ 89।

97. नाट्यदर्पण, – रामचन्द्र, गुणचन्द्र पृष्ठ 180/181।

98. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 1 अंक, पृष्ठ 141।

99. तदुपरिवत पृष्ठ 151।

100. तदुपरिवत 9 अंक पृष्ठ 774।

101. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 1 अंक, पृष्ठ 28।

102. तदुपरिवत 1 अंक पृष्ठ 31।

103. तदुपरिवत 1 अंक पृष्ठ 35।

104. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 1 अंक, पृष्ठ160।

105. तदुपरिवत 1 अंक पृष्ठ 176।

106. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2 अंक, पृष्ठ 78।

107. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 5 अंक, पृष्ठ511।

108. तदुपरिवत 8 अंक पृष्ठ 682।

109. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 4 अंक, पृष्ठ 122।

110. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण, 2 अंक, पृष्ठ205।

111. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 3 अंक, पृष्ठ 86।

112.–115 तदुपरिवत् 3/93, 4/119, 5/153, 5/163।

116.–119 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण,10 अंक, पृष्ठ795,796,798,816।

120.–121 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 6 अंक, पृष्ठ 203,217।

122. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण,2 अंक, पृष्ठ200।

123.–128. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 1 अंक, पृष्ठ 12,14,12,14,12,15।।

129. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण,1 अंक, पृष्ठ14।

130. 'प्रबोध–चन्द्रोदय', कृष्ण मिश्र देवनन्दन शुक्ल, 2 अंक, पृष्ठ 75।

131. 'संकल्प–सूर्योदय', वेकंटनाथ वेदान्त देशिक, सं कृष्णामाचार्येण,5 अंक, पृष्ठ 453।

पंचम परिवर्त्त

भाव एवं रस - निरूपण

- करुण, शान्त, श्रृंगार से सम्बन्धित भावों का निरुपण
- विभावादि सामग्री
- अनुभाव, व्यभिचारी भाव, स्थायी भाव
- 'प्रबोध-चन्द्रोदय में रस निष्पत्ति
- संकल्प सूर्योदय में रस निष्पत्ति
- 'प्रबोध-चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' नाटकों में प्रधान (अंगी) रस सम्बन्धी तुलनात्मक विवेचन।

भाव एवं रस निरूपण

रस का स्वरूप–

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य का आस्वाद्य कहा गया है। साहित्यशास्त्र में अभिनव गुप्त ने रस स्वरूप का सर्वांग सम्पूर्ण परिनिष्ठित निरूपण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार रस की स्वरूपबोधक विशेषताएँ इस प्रकार हैं।[1] समस्त विघ्नों से विनिर्मुक्त संविति, चमत्कार निवेश, आस्वादन, भोग, समापन्ति, लय, विश्रान्ति आदि। आचार्य विश्वनाथ ने रस को अखण्ड प्रकाशात्मक, आनन्दमय, चैतन्य स्वरूप, वेद्यान्तर स्पर्शशून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर कहा है। परवर्ती आचार्यों ने भी प्रायः रस की इन्हीं विशेषताओं का प्रकार भेद से व्याख्यान किया है[2]–

1– रस आस्वादन का विषय है।

2– रस की अभिव्यक्ति होने पर सत्वोद्रेक होता है।

3– रस अखण्ड अनुभव है।

4– रस चिन्मयजन्य, ज्ञान रहित और स्वप्रकाश है

5– रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है।

6– रस ब्रह्मास्वाद सहोदर है।

नाटक में रस का अपना एक प्रमुख स्थान है, क्योंकि मानव की शुभकार्यों की ओर प्रवृत्ति की जनक उसकी रागात्मिका वृत्ति हुआ करती है। इस वृत्ति को चेतना प्रदान करने वाला मुख्यता रस ही होता है। रस की व्यंजना करना, सामाजिकों के ह्रदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का मुख्य उद्देश्य होता है। दृश्य काव्य के अभिनय को देखने से दर्शकों को जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वही आनन्द रस कहलाता है। सह्रदय दर्शकों अथवा सामाजिकों द्वारा रस की इस अनुभूति के प्रकार को अभिव्यक्ति अथवा 'साधरणीकरण' कहा जाता है। सामाजिक के ह्रदय में जो रति आदि भाव स्थिर रूप से सुषुप्तावस्था में रहा करते हैं, वे नाटक के अभिनय को देखने से विभाव, अनुभाव इत्यादि का संयोग प्राप्त कर पात्रों द्वारा की गई भावनाओं की क्रिया के साथ ही जाग्रत होने लगा करते हैं। उस समय उनकी तन्मयता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वे नाटक के पात्रों की भावनाओं को अपनी भावना समझने लगते हैं और उस समय एक विचित्र आनन्द का अनुभव करते हैं। इस

प्रकार तन्मयता की अवस्था ही रस है अथवा हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान यह भाव ही विभावादि क्रियाओं का सहयोग पाकर रस के रूप में परिणत हो जाता है। इसी कारण भरत मुनि ने रसों को 'नाट्य रस' की संज्ञा दी है। नाट्य शास्त्र में लिखा है कि– ''जिस भांति अनेक दृश्यों और व्यंजनों से मिश्रित अन्न को खाये हुये व्यक्ति उसका आस्वाद लेते हैं, उसी भांति विद्वान पुरूष भावों के अभिनय से मिले हुये स्थायी भावों का मन से आस्वाद लेते हैं, इसलिये ये 'नाट्यरस' कहलाते हैं।[3] रसों की आनन्दानुभूति के दो प्रकार हैं– भावात्मक रस, बाह्य रस।

भावात्मक रसानुभूति का संस्कार हृदय पर अंकित होता है तथा इस प्रकार का संस्कार सम्पन्न व्यक्ति जब बाह्य जगत में किसी नाट्य में देखी गई हुई परिस्थिति के सदृश ही परिस्थति से युक्त किसी व्यक्ति को देखता है तो उसके हृदय में उसके प्रति उसी प्रकार की सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है और वह उसी प्रकार के दुःख या आनन्द का अनुभव करने लगता है। अतः ये अभिनय जन्य संस्कार सदैव उसके अन्तःकरण में विद्यमान रहा करते हैं और अनुकूल परिस्थति के उपस्थित होने पर पुनः जाग्रत हो जाया करते हैं।[4]

बाह्य रस की अनुभूति क्षणिक एवं बाह्य हुआ करती है। वह इन्द्रियों तक ही सीमित रह जाती है तथा अनुकूल परिस्थतियाँ उत्पन्न होने पर उसका जागरण नहीं होता क्योंकि हृदय पर उस आनन्दानुभूति का कोई संस्कार उदभूत नहीं होता। हृदय का सम्बन्ध भावों से है। बाह्य रसों का भावों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भावात्मक रसानुभूति के तीन विशिष्ट प्रकार हैं– द्रष्टारूप में, तदात्म्य रूप से, सम्वादोरूप से।

1– जब दर्शक नट की चेष्टा, वार्तालाप आदि में द्रष्टारूप से पृथक होकर आनन्द लेता है तब द्रष्टारूप से रसानुभूति होती है।

2– जब नाटक में नायक अथवा नायिका के साथ दर्शक का तादात्म्य स्थापित हो जाता है और जब नायक अथवा नायिका के सुख–दुःख को दर्शक अपना ही सुख–दुःख समझने लगता है तब तादाम्य से रसानुभूति होती है।

3– जब किसी भाव अथवा घटना के परिणाम के कारण दर्शक में समवेदना का भाव व्याप्त हो जाता है।

रसानुभूति के तीन प्रकारों में सर्वश्रेष्ठ प्रकार तादाम्य रूप से रसानुभूति

होना है। रस का वास्तविक एवं सच्चा आनन्द तभी प्राप्त होगा, जब दर्शकों की पात्रों के साथ अभिन्नता स्थापित हो जाती है। यह अवस्था रसानुभूति की अवस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ अवस्था है। नाट्यशास्त्र में रसों की संख्या आठ ही गिनाई गई है–

''श्रृंगारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानकाः
वीभात्सादभुतसंज्ञाश्चेत्यष्टौ नाटयेरसाःस्मृताः।''[5]

और आठ स्थायी भाव रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय बताये गये हैं–

''रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा
जुगुप्सा विमस्यश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।''[6]

करूणरस :–

करूण रस अन्य रसों की अपेक्षा अत्यन्त कमनीय रस है। इस रस में हमारी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है, जो हमारे हृदय की मलिनता को धो देते हैं। दुःख में हम निखर उठते हैं, हमें अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सम्यक ज्ञान हो जाता है। यही रस सहृदयता का परिचय दिलाता है। यही परोपकार जैसे कठिन मार्ग का पथ प्रदर्शक है।[7] संस्कृत नाट्ककार भव भवभूति ने करूण को ही एकमात्र रस माना–

''एको रसः करूण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक पृथगिव श्रयते विवतनि
आवर्तबुदबुदतरंगमयान विकरान
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत समग्रम्।''[8]

आचार्य गोवर्धनाचार्य ने अपनी 'आर्यासप्तशती' में लिखा है कि ''जिस प्रकार शिव के सम्बन्ध को प्राप्त कर शैलाधिराजतनया पार्वती सुशोभित होती है, उसी प्रकार महाकवि भवभूति के सम्बन्घ में सरस्वती भी शोभासम्पन्नता को प्राप्त होती है क्योंकि भवभूति की वाणी जब करूण भाव की व्यंजना अथवा विलाप करने लगती है, तब औरों का तो कहना ही क्या, पत्थर भी रो पड़ते हैं।''[9] मनुष्य को कई बार अनिष्ट का सामना करना पड़ता है। उस अनिष्ट से व्यक्ति शोकाकुल हो जाता है। इसी शोकप्रधान मनोविकार का नाम करूण रस है। इस करूण रस की प्राप्ति इष्ट–नाश अथवा अनिष्ट–प्राप्ति से होती है। करूण रस की उत्पत्ति शोक नामक स्थायीभाव से

होती है। यह शोक (प्रियजन की) मृत्यु, बन्धन, धननाश, शाप, पलायन, उपघात, व्यसन में फँस जाने आदि विभावों से होता है। 'नाट्यदर्पण' के अनुसार–

''मृत्यु–बन्ध धनभ्रंश शाप व्यसनसम्भवः

करूणोऽभिनयस्तस्य, वाष्प–वैवर्ण्य–निन्दनैः।''[10]

'नाट्यशास्त्र' के अनुसार इसका अभिनय अश्रुपात, विलाप, मुख के सूखने तथा फीका पड़ने, शिथिलता, उच्छवास तथा स्मृतिहीनता आदि अनुभावों के प्रदर्शन से किया जाना चाहिए। विवेक के जाग्रत रहने से ही शोक का सहन हो सकता है। उत्तम कोटि के व्यक्ति धैर्य से शोक को सहन करते हैं। मध्यम कोटि के व्यक्ति रूदन करते हैं और अधम प्रकृति वाले हाहाकार मचाते हैं। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, आलस्य, मरण, स्तम्भ, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु एवं स्वरभेद आदि उसके व्यभिचारी भाव हैं।

आचार्य भानुदत्त ने करूण रस के 'स्वनिष्ट' एवं 'परनिष्ठ' दो भेद माने हैं। स्वयं के इष्ट के नाश होने पर 'स्वनिष्ठ', अन्य के इष्ट आदि के नाश होने पर 'परनिष्ठ' करूण होता है।''[11]

आचार्य भरतमुनि ने करूण के निम्न भेद बताए हैं– धर्मोपघातज, अपचयोभव और शोककृत।[12] शारदातनय ने करूण के मानस, वाचिक तथा कर्म नामक तीन भेद माने है।[13] परन्तु ये विशेष महत्व के नहीं हैं। विभावादि के आधार पर करूण के भेद इष्टनाश एवं अनिष्टनाश के रूप में किये जा सकते हैं।

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में करूण रस–

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में करूण रस के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

रतिः – (सभयम्) हा धिक। हा धिक्। कथमस्माकं कुले राक्षसीति वेपते मे हृदयम्।[14]

रतिः – (सत्रासोत्कम्पम्) आर्यपुत्र परित्राहि परित्राहि।[15]

राजा– पश्य–

''आसावहङारपरैर्दुरात्मभि

निर्बध्य तैः पापशठैर्मदादिभिः

चिरं चिदानन्दमयो निरंजनो

जगत्प्रभुर्दीनदशामनीयत।''[16]

उक्त में 'बन्धन' आदि विभाव दृष्टव्य हैं।

वटुः – (ससंभ्रमम्) ब्रह्यन् दूरत एव स्थीयताम्। यतः पादौ प्रक्षाल्य एतदाश्रमपदं प्रवेष्टव्यम्।[18]

अहंकार – (सभयम्) यघप्येवमशक्यप्रतीकार एवायमर्थः। यतः परममविदुषां पदं नराणां पुरविजयीकरूणा विधेयचेताः।

महामोह– (सभयमात्मगतम्) आः प्रसिद्धमहाप्रभावासा योगिनी स्वभावाद्विद्वेषिणी चास्माकं दुरूच्छेद्या सा। भवतु।[19]

महामोह – (स्वगतं विचिन्त्य) शान्तेः कोऽभ्युपायः।

अथवा अलमुपायान्तरेण। क्रोधलोभावेव तावदत्र पर्याप्तौ।[20]

श्रृद्धा के खो जाने पर शान्ति के रूदन में करूण रस में 'अश्रु' व्यभिचारी भाव है।

शान्ति– (सास्त्रम्) मातः मातः क्वासि देहि में प्रियदर्शनम् तत्

"मुक्तातंककुरंगकाननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः
पुण्यान्यायतनानि संतततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः
यस्याः प्रीतिरमीषु सात्रभवती चण्डालवेश्मोदरं
प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तंगता।"[21]

करूणा – (सास्त्रम्) सखि, एवं भिषमज्वलनज्वालोल्कादुःसहान्यक्ष राणि जलपन्ती सर्वथा विलुप्तजीवितांमा करोषि। तस्मात्प्रसीदतु मुहूर्तं जीवितं धारयुत प्रियसखी। यावदितस्ततः पुण्येष्वाश्रमेषु मुनिजन समाकुलेषु भागीरथीतीरेषुं निपुणं निरूपयामि कदाचिन्महामोहभीत्या कथमपि प्रच्छन्ना निवसति।[22]

करूणा– (सत्रासम्) सखि राक्षसो राक्षसः।[23]

श्रृद्धा– (सभयोत्कम्पम्)

धोरां नारकपालकुण्डलवती विद्युच्छटांदृष्टिभि
र्भुंचन्तीं विकरालमूर्तिमनल ज्वालापिशंगैकचैः
दंष्ट्राचन्द्रकलांकुरान्तरललज्जिहां महाभैरवीं
पश्यन्त्या इव मे मनः कदलिकेवाधाप्यहो वेपते।[24]

\+ + + +

निकृन्ततीव मर्माणि देहं शोषयतीव मे
दहतीवान्तरात्मानं क्रूरः शोकाग्निरूच्छिरवः।।[25]

मनः— (सास्त्रम) हा पुत्रकाः, क्व गताः स्थ। दत्त में प्रियदर्शनम्। भो भोः कुमारकाः रागद्वेषमदमात्सर्यादयः, परिष्वजध्वंमाम्। सीदन्ति ममांगानि हा। न कश्चिन्मां वृद्धमनाथं संभावयति। क्वा गता असूयादयः कन्यकाः। आशातृष्णाहिंसादयो वा स्नुषाः।

कथं ता अपि मन्दभाग्यस्य मे समकालमेव दैवहतकेनापहताः।

विसर्पति विषाग्निवद्धहति शर्ममर्माविध

स्तनोति भृशवेदनाः कषति सर्वकार्श्यवपुः

विलुम्पति विवेकितां हृदि च मोहमुन्मीलय

त्यहो ग्रसति जीवितं प्रसभमेव शोकज्वरः।[26]

अर्थात् यह शोकजन्य संताप विषाग्नि की तरह फैल रहा है, सुख को नष्ट करता है, मर्मभेदी वेदना उत्पन्न करता है, शरीर को सर्वथा कृशं कर रहा है, विवेक को दूर भगा रहा है, और हृदय में शोक को उत्पन्न करके हठात् जीवन को ग्रस्त कर रहा है।

संकल्पः — (सास्त्रम्) देव कुतोऽद्यापि प्रवृत्तिः यतः श्रुतकुटुम्ब व्यसनसंजात शोकानलदग्ध हृदया हृदयास्फोटं विनष्टा।

मनः — हा प्रिये, क्वासि देहि मे प्रतिवचनम्। नुनुदेवि,

स्वप्नेऽपि देवि रमसे न विनामयात्वं

स्वापे त्वया विरहितो मृतवदभवामि।

दूरीकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि

जीवत्यवेहि मन इत्यसवौ दुरन्ताः।[27]

(अर्थात— हे देवि तुम मेरे बिना स्वप्न में भी प्रसन्न नहीं रहती, मैं भी तुम्हारे बिना स्वप्न में निर्जीव के समान हो जाता हूँ। फिर भी भाग्य के फेर से तुम मुझसे दूर कर दी गई हो तथापि जो यह मन जीवित है, इससे यह प्रतीत होता है कि प्राण बड़े कठिनाई से निकलने वाले होते हैं।)

मनः— देवि भवत्वेवम्। तथापि दुरुच्छेद्यस्तु भवत्या।[28]

संकल्प— सूर्योदय— (सनिश्वासं विचिन्त्य) निरधिकारतैव नूनं सुखस्याधिकारः। अथवा किमनेन महामोहपरवशस्य मे मुद्या निर्वेदन? स्वतन्त्रस्य तीक्ष्णदण्डस्य स्वामिनः प्रेषणे स्थातव्यम्।[29]

विवेकः — (सकौतुकं दृष्टा)

एवं गिखिरं सूतमन्ये विश्वमनोहरम्

आगामिस्वर्गसृष्टीनामादिकन्दमिव स्थितम् ।[30]

(संसभ्रमादभुतम्)

अये कथमिहाचिन्तितोपस्थितं घ्राणस्पर्शनोन्मादनम् इह हि–

उद्यानायातविद्याधरमिथुनरतिश्रान्त्यपक्रान्तिहेतु

स्तिम्यद्रात्रस्तुषारैस्त्रिदशयुवतिनिश्वासभूमिः

नीहारत्विटकलंकप्रतिवदनपदन्यस्तकस्तूरिकोध

न्नेपालीगण्डपालीपरिमलललितः स्पन्दते गन्धवाहः ।[31]

विवेकः – (परितोऽवलोक्य सविषादम्)

इमांमधुरपानीयां दक्षिवापथजाह्नवीम्

चोरैः परिवृतां मन्ये विद्यांकुमतिविप्लुताम् ।[32]

दुर्वासना– (सविषादम) यद्येवं महामोहपर्यन्तानामस्मत्प्रभूणां विनाशो भवेत ।[33]

शोक के स्थायी हो जाने पर विप्रलम्भश्रृंगार की सीमा समाप्त हो जाती है। संक्षेप में कह सकते है जहाँ निराशा अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है, वहाँ करूण रस होता है। एक अन्य संवाद देखें–

नारदः – हतजीवजीवितेशां विषादमूर्च्छादिलुप्तनिश्वासाम्

तृस्णादयः सकुल्या दुर्मतिमभितो निपत्य विलपन्ति ।

लम्बालकैरविरलक्षरदश्रुपूरै

र्म्लानैरपत्रतिलकैर्वदनारविन्दैः

शंसन्ति शौर्यविभवं भुजशालिनस्ते

मोहावरोधसुदृशो मुषितांगरागाः ।[34]

शान्त रस –

नाटक में शान्त रस का प्रदर्शन किया जा सकता है या नहीं, इस प्रश्न की मीमांसा संस्कृतके आचार्यों ने बड़ी छानवीन तथा गम्भीरता के साथ की है। 'मनुष्य जो कुछ देखता है, सुनता या अन्य किसी प्रकार अनुभव करता है उन सबका संस्कार उसके मन में रहता है। वह अनुभव तो क्षणिक होने से नष्ट्ट हो जाता है परन्तु वह अपने पीछे एक स्थायी वस्तु संस्कार छोड़ जाता है। ये संस्कार उपयुक्त उद्‌बोधक उपकरण पाकर जग जाते हैं। इन्हें वासना भी कहते हैं। ये संस्कार

जन्मान्तरों के भी हो सकते हैं।'' साहित्यशास्त्र की रस प्रक्रिया में संस्कारों को स्थायीभाव नाम दिया गया है।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में शान्त रस का उल्लेख ही नहीं किया। उन्हें यदि यह रस अभिप्रेत होता तो उसका उल्लेख अवश्य किया जाता–

(अ) श्रृंगार हास्य करूणा रौद्र वीर भयानका:
वीभत्सादभुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाटये् रसाः स्मृताः
रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ।[35]

(ब) श्रंगार हास्य करूण रौद्रवीरभयानकाः
वीभत्सादभुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृता
रतिहसिश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा
जुगुप्सा विस्मयशमाः स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ।[36]

आचार्य भरत के इन दो पाठ भेदों को लेकर विद्वानों व आचार्य भरत के परवर्ती नाट्य एवं अलंकार शास्त्र के आचार्यों में दो दल हो गए हैं।[37]

शान्त रस को मानने वालों में कोहल, उदभट[38] अभिनवगुप्त ने शान्त रस को नवां रस सिद्ध करने का प्रयास किया है।[39]

(क) क्वचित धर्मः क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचित् शमः ।[40]

(ख) दुःखार्तीनां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्
विश्रान्तजननं काले नाट्यमेतत भविष्यति ।[41]

आचार्य विश्वनाथ भी शान्त को नवम रस मानते हैं।

अग्निपुराण,[43] हेमचन्द्र,[44] मम्मट[45] (11वीं शताब्दी) रामचन्द्र गुणचन्द्र[46] (12वीं शताब्दी), विद्यानाथ[47] (13वीं शताब्दी) 'पण्डितराज जगन्नाथ[48] (17वीं शताब्दी) आदि ने इस रस को मान्यता प्रदान की।

पुनश्च जिन विद्वानों को शान्त रस मान्य नहीं है, वे इसका कई ढंग से निषेध करते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार शान्त रस है ही नहीं। कुछ विद्वान शान्त रस को तो स्वीकार करते हैं किन्तु नाटक में इसके अस्तित्व को अंगीकार नहीं करते हैं क्योंकि शान्त रस अनभिनेय है।

कुछ विद्वानों के अनुसार शान्त रस का इस जगतीतल पर सर्वथा

अभाव ही विद्यमान है। इस संसार में राग द्वेष का अखण्ड साम्राज्य उज्जृम्भित हो रहा है। व्यक्तियों का हृदय रागद्वेष की वृत्तियों का क्रीडा स्थल है, जिसके वश में होकर जीव किसी से प्रेम करता है तथा दूसरे से वैर करता है। यह प्रवाह इतना प्रवल तथा पुष्ट होता है कि उसका उन्मूलन करना नितान्त असाध्य है। आनन्दवर्धन के मत में शान्त रस के अभाव का मुख्य कारण है 'सर्वजनानुभव गोचरता का अभाव।'' रस को सव जनों के अनुभव का गोचर होना नितान्त आवश्यक है, परन्तु संसार के प्राणियों को अविद्या, रागद्वेष वृत्तियों के पंक में निमग्न देखकर कभी कल्पना कर सकते हैं कि ये भ्रान्त मानव शान्त रस का आस्वादन करने में समर्थ होंगे—

इस तर्क का खण्डन भली भांति किया जा सकता है। इस पृथ्वीतल पर इतने सन्त महात्माओं ने अलौकिक जीवन से अपने शान्त उपदेशों से तथा अदम्य कारूणिकता तथा मैत्री से अलंकृत किया। अतः सर्वजनानुभव गोचरता किसी भी रस की उपलब्धि के लिये अकाट्य हेतु नहीं है। संसार से वैराग्य रखने वाले वीतराग पुरूषों का हृदय संवाद शान्तरस के प्रदर्शक काव्यों के पढ़ने में तथा नाटकों के देखने में सर्वथा होता ही है।

अन्तर्भाववादी शान्त रस की सत्ता तो स्वीकार करते हैं परन्तु उसे स्वतन्त्र रस की स्थिति में रखना पसन्द नहीं करते। यथा स्त्री–पुरूष रूप आदि आलम्बन विभावों से जो रति स्थायीभाव जहाँ श्रृंगार रस को उत्पन्न करता है, वही रति स्थायी भाव आध्यात्मचर्चा आदि विभावों से परिपोष को प्राप्त कर शान्त रस को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार हास आदि अन्य स्थायी भाव भी अपने विभावों को छोड़कर श्रुत आदि अन्य विभावों के द्वारा शान्त रस को उत्पन्न करते हैं। समस्त वस्तुओं के विकृत होने से हास्य रस का स्थायी भाव हास शान्त रस को उत्पन्न करता है। करूण, रौद्र, वीर वीभत्स, अदभुत आदि के स्थायीभवों के द्वारा आत्मस्वरूप की प्राप्ति के कारण विस्मयप्राप्त साधक को अदभुत रस का स्थायीभाव 'विस्मय' शान्त रस की अनुभूति कराता है।

परन्तु उपर्युक्त मत मान्य नहीं। प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न–2 स्थायीभाव मानने पर शान्त रस के भी अनन्त भेद मानने पड़ेगें।

आचार्य मम्मट ने निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भाव माना है।— 'निर्वेदस्थायिभावोऽपि शान्तोऽपि नवमो रसः'[49] इनके अनुसार तत्वज्ञान से होने वाला

निर्वेद इस रस का स्थायी भाव है। जिस निर्वेद की उत्पत्ति दारिद्रय आदि से होती है, वह तत्वज्ञान रूपकारण के भिन्न होने से उस निर्वेद से भिन्न है, जो शान्त रस का स्थायी भाव है। तत्वज्ञान से उत्पन्न हुआ ही मोक्ष का कारण है। अतः इसलिये भरत नाट्यशास्त्र में व्यभिचारी भावों की गणना में निर्वेद को पहले गिनाया है। क्योंकि तत्वज्ञान निर्वेद ही शान्त रस का स्थायीभाव है तथा मोक्ष का साधन है।

जिन विद्वानों ने शान्त रस के स्थायी भाव को शम माना है उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

1. भरत के अनुसार 'शम' नामक स्थायी भाव है[50]
2. अभिनव भारती में 'शान्तोनाम स्थायिभावात्मकः' कहा गया है।[51]
3. हेमचन्द्र भी 'तृष्णाक्षयरूपः शमः स्थायिभावः' लिखते हैं।[52]
4. विद्यानाथ भी 'वैराग्यादिना निर्विकारचित्तत्वम् शमः' शम को स्थायीभाव स्वीकार करते हैं।[53]
5. आचार्य विश्वनाथ ने युक्त वियुक्त दशा में अवस्थित 'शम' को स्थायी भाव स्वीकार किया है।[54]
6. रामचन्द्र गुणचन्द्र भी 'शम स्थायी शान्तो रसो भवति' कहते हैं।[55]

निर्वेद को शान्त रस का स्थायीभाव मानने वाले विद्वानों के अभिमत इस प्रकार हैं—

1. श्रंगार—हार कर्त्ता हम्मीर ने निर्वेद को नवम स्थायीभाव शान्तरस का स्वीकार किया है।[56]
2. पण्डितराज जगन्नाथ ने 'नित्यानित्यवस्तुविचार जन्माविषयविरामा रव्योनिर्वेदः' को शान्त रस का स्थायीभाव कहा है।[57]
3. कुछ प्राचीन विद्वानों के अनुसार भरत ने संचारियों में 'निर्वेद' को प्रथम मानकर उसे स्थायीभाव का गौरव प्रदान किया है।[58]
4. भूदेव शुक्ल ने तत्वज्ञान से वैराग्य कहाने वाली चित्तवृत्ति को निर्वेद कहा है। वह शान्त रस का स्थायी भाव है।[59]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विद्वानों में स्थायी के विषय में कुछ अपनी परम्परा का पालन हुआ है। वस्तुतः तत्वज्ञान से उत्पन्न 'शम' और 'निर्वेद' एक प्रकार की ही चित्तवृत्तियाँ हैं। क्योंकि तत्वज्ञान उचित— अनुचित, युक्त—अयुक्त,

स्थिर–अस्थिर, नश्वर–अनश्वर, माया–अमाया के विवेक को ही कहते हैं। गीता के द्वितीय अध्याय से भी इसकी पुष्टि हो जाती है–

''यदा ते मोह कलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च
विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः
निर्ममो निरहंकारः सशान्तिमधिगच्छति।''[60]

अतः 'शम' स्थायीभाव यह नाम अधिक उपयुक्त होगा। निर्वेद में स्ववृति विराम की झलक होने से और अभाव के स्थायित्व के उपयुक्त न होने से उसे व्यभिचारी कहेंगें।[61] आचार्य भरत मुनि का भी यही मत है।[62] शम स्थायीभाव के उपयुक्त हैं क्योंकि उसमें आत्मविश्रान्ति रूप आनन्दोत्पत्ति की अनुभूति होती है। अभिनव गुप्त के कथनानुसार– ''तथा च चिरन्तन पुस्तककेषु स्थायिभावान् रसत्वमुपनेष्याम इत्यननन्तरम् 'शान्तो' नाम शम स्थायिभावात्मकः' इत्यादि शान्त लक्षणं पठ्यते।''[63] ''अयं शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्ष प्रवर्तकः।''

प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय में शान्त रस–

आलोच्य दोनों नाटकों में शान्त रस के उदाहरण इस प्रकार हैं– संसार चक्रवाहकस्य महामोहस्याबोधो मूलम्। तस्य च त्वाववोध नवृत्तिःयतः–

अमुष्य संसारतरोरबोधमूलस्य नोन्मूलविनाश्नाय
विश्वेश्वराराधनबीजजातान्नत्वावबोधादपरोऽभ्युपायः
प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुंचति।[64]

क्षमा–

क्रोधान्धकार विकटभ्रकुटीतरंग
भीमस्य सान्ध्यकिरणारूणरौद्रदृष्टेः
निष्कम्पनिर्मलगभीरपयोधिधीरा
वीराः परस्य परिवादगिरः सहन्ते।[65]
मृत्युर्नृत्यति मूर्ध्नि शश्वदुरगी घोरा जरारूपिणी
त्वामेषा ग्रसते परिग्रहमयैर्गृ ध्रैर्जगदग्रस्यते
धूत्वा बोधजलैखोधबहुलं तल्लोभजन्यं रजः

संतोषमृतसागराम्भसि मनांगमग्नः सुखं जीवति।[66]

अर्थात् मृत्यु सिर पर नाच रही है। यह जरारूपिणी घोर सीर्पणी तुम्हें ग्रस रही है। कलत्र आदि रूपी गृघों के द्वारा संसार ग्रस्त हो रहा है। ज्ञानरूपी जल से अज्ञानवहुल लोभजन्य मलिनता को धोकर संतोषरूप अमृत के समुद्र में डुबकी लगाकर सुख से जियो।

राजा–

सैषान्तर्दधती तमोविघटनादानन्दयात्मप्रभं
चेतः कर्षति चन्द्रचूडवसतिर्विधेव मुक्तेः पदम्
भूमेः कण्ठविलम्बिनीव कुटिला मुक्तावलि जाह्नवी
यत्रैवं हसतीव फेनपटलैर्वक्रां कलामैन्दवीम्।[67]
ज्योतिः शान्तमनन्तमद्धयमजं तत्तदगुणोन्मीलना
दब्रह्मत्यच्युत इत्युमापतिरिति प्रस्तूयतेऽनेकधा
तैसतैरेव सदागमैः श्रुतिमुखैर्नानापथप्ररिथतै
गम्योऽसौ जगदीश्वरो जलनिधिर्वारां प्रवाहैरिव।[68]

अर्थात् शान्त अनन्त, अद्वितीय, अजन्मा, ज्योति–तत्तदगुण प्रकाश से ब्रह्मा, अच्युत, उमापति इस प्रकार अनेकधा कहा जाता है। भिन्न–भिन्न तथा नाना मार्गो का अनुसरण करने वाले शास्त्रों से वही एक ईश्वर प्राप्य है, जैसे भिन्न–भिन्न जल प्रवाह एक समुद्र में ही गिरते हैं।

मनः –

हा प्रिये, क्वासि देहि मे प्रतिवचनम्। ननुदेवि,
स्वप्नेऽपि देवि रमसे न विना मयात्वं
स्वापे त्वया विरहितो मृतवदभवामि।
दूरीकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि
जीवव्यवेहि मन इत्यसवो दुरन्ताः।[69]
एकमेव सदा ब्रह्म सत्यमन्यद्धिकल्पितम्
को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।[70]

सदा एक ब्रह्म ही सत्य है और सभी कल्पित, अतः अनित्य हैं तो फिर जिसे ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान हो गया है उसके लिए मोह एवं शोक का विषय ही नहीं रह

जाता है।

उत्पद्यन्ते विषवल्लिवीजविषमाः क्लेशाः प्रियाख्यानरे
स्तेभ्यः स्नेहमया भवन्ति नीचराद्वज्राग्निगर्भाकुराः
येभ्योऽमी शतशः कुकूलहुतभुग्दाहं दहन्तः शनै
र्देहं दीप्तशिखासहस्त्रशिखरा रोहन्ति शोकद्रुमाः। [71]

अन्यत्र सरस्वती और मन के संवादों में शान्त रस का वर्णन किया गया है। सरस्वती के कथन में 'शरीर से कितने कीड़े उत्पन्न होते हैं। जिनको यत्नपूर्वक शरीर से दूर हटा दिया जाता है परन्तु यह सांसारिक मोह है जिसके कारण पुत्र आदि को अपत्य संज्ञा प्रदान कर उनके लिये अपने देह को सुखाया जाता है।[72] 'प्रबोध चन्द्रोदय' के पंचम अंक के श्लोक 24,25,27,31,32 आदि श्लोकों में शान्त रस का प्रयोग किया गया है। षष्ठ अंक में शान्ति और श्रद्धा के संवाद में श्लोक 1,2,3,4,5 में शान्त रस का वर्णन और श्लोक 7,10,14,15,18,20,22,23,26,27,28,29 श्लोकमें शान्त रस का प्रयोग किया गया है।[73]

संकल्प सूर्योदय–

तर्कः– देव, आलक्ष्यतामयमदूरादेव नलसेतुसंदर्शनोत्सुकमुनिजनगतागतविभवताण्ड–वितवैभवः पाण्डयदेशः।

अत्र च,

सारः सारस्वतानां शठरिपुभणितिः शान्तिशुद्धान्तसीमा
मायामायाभिनीभिः स्वगुणविततिभिर्वन्धयन्तीं धयन्ती
पारं पारंपरीतो भवजलधिभवन्मज्जनानां जनानां
प्रत्यक्प्रत्यक्षयेन्नः प्रतिनियतमासंनिधानं निधानम्।[74]

वेदान्त देशिक कृत 'संकल्प सूर्योदय' में शान्त रस ही सर्व श्रेष्ठ रस है। काव्य और नाटक दोनों में इसकी महत्ता अद्वितीय है। अन्य रस तो इसके विकार मात्र है।[75] 'संकल्प सूर्योदय' की प्रस्तावना में नटी के यह कहने पर कि गन्धर्वागम देशिक जनों के द्वारा शान्तरस को नाट्य में मान्यता मिल गई है। सूत्रधार उत्तर देता है कि यद्यपि इस रस के आस्वाद रसिकं जनसंख्या में बहुत नहीं होते, फिर भी उनका अभाव भी नहीं है। हमें तो अवधूतों का नहीं, कर्मफल संगकर्तृत्व त्याग वाले कर्म योंगियों का अभिनय करना है।[76]

13वीं शती के वेंकटनाथ (वेदान्त देशिक) संकल्प सूर्योदय नाटक की प्रस्तावना में लिखते हैं–

ललित मनसां प्रीत्यै विभ्रदसान्तरभूमिका

मनवगुणो यस्मिन्नाटये रसो नवमः स्थितः

जननपदवीजडं,धालार्तिच्छदानुगुणीभव

न्नटपरिषदा तेनास्वादं सतामुपचिन्विति।[77]

वेदान्त देशिक के अनुसार शान्त रस सर्वश्रेष्ठ रस है। कृष्णमिश्र विरचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक की प्रस्तावना में भी सूत्राधार कहता है कि–
"तदवयं शान्त रस प्रयोगाभिनयेनात्मानंविनोदयितुमिच्छामः।"[78]

वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक शान्त रस को नाटक का मुख्य रस मानते है। क्योंकि यही वस्तुतः आनन्ददायक तथा सहृदय संवेद्य, निर्दोष रस होता है। श्रंगार रस असभ्य कोटि में आता है। वीररस एक दूसरे के तिरष्कार और अवहेलना को अग्रसर करता है। अदभुत रस की गति तो स्वभावतः विरूद्ध होती है। अतः शान्त रस ही निःसंशय वास्तव रस है–

असभ्यपरिपाटिकामधिकरोति श्रंगारिता

परस्परतिरस्कृति परिचिनोति वीरायितम्

विरूद्धगतिरदभुतः तदलमल्पसारैः रसैः

शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्रखेदो रसः।।[79]

राजा– देवि, मैवं मय्येव भारमारोपयेथाः। अस्ति खलु सर्वधुरीणः कश्चिवसर्वजगदन्तर्यामी पुरूषः।

तथाहि आधेयत्वप्रभृतिनियमैरादिकर्तुः शरीरं

सन्नास्थेमप्रयतन फलेष्वेतदायन्नमेतत

विश्वं पश्यन्निति भगवति व्यापकादर्शदृष्टे

गम्भीराणामकृतकगिरां गाहते चित्तवृत्तिम्।[80]

नारदः – अहो नु खलु महाराजोऽयमनादिसंसार सागर निमग्रं पुरूषमाध्यात्मिक विज्ञानपोतमारोप्य बहुधैव बाह्य कुदृष्टि जलजन्तुभिरनुपप्लुतेन सुपथा समाधिपारसंनिक–र्षमानीय साध्यशेषे संत्वरमाणस्तिष्ठति। अद्य खलु–

सुमतिबहुमतेन स्वात्मना सत्वधाम्ना

वहिरवहिरूदीर्णे वारिते वैरिवर्गे
जनयति पुरूषस्य व्यायसीं चित्तवृत्तिं
समविषमविभेदी सार्वभौमो विवेकः।[81]

ततश्च

तितिक्षुर्द्वन्द्वानि द्रुतमतिरयत्नोपनतभुक
परित्याव्यज्यागी भ्रमर इव सागरग्रहरूचिः
कृतज्ञः प्राप्तव्ये नियत धृतिरेकान्तरसिको
मुमुक्षुः संधत्ते मुनिरनिभृतं ब्रह्माणि मनः।[82]
अधिकमिह मुमुक्षोरागमग्राह्यवर्गात्
स्वयमिह गुरूभक्त्या दर्शितं स्वानुभूतौ
प्रथयति मयि सौम्य त्वन्निदेशेन मन्ये
सपदि भवति लग्ने गाढलग्नः समाधिः।[83]
कामादिकेष्वगतेषु कथावशेषं
संप्रत्यसौ शमदमादिगुणोपपन्नः
मैत्रीदयादिपरिकर्मविभूषितेन
श्रद्धाधनेन मनसा लभते समाधिम्।[84]

यह नाटक त्रिवर्ग के वर्णन तक ही अपने को सीमित नहीं रखता। परम पुरूषार्थ रूप मोक्ष का वर्णन तथा चित्रण उसके लिये सर्व प्रकार उपादेय है। पुरूषार्थ का सरस और सुभग चित्रण ही नाटक का सामान्य तात्पर्य है। ऐसी दशा में उपकारवती आध्यात्मनिष्ठ महामानवों की जीवन लीला का चित्रण जिस प्रकार कवि अपने काव्यों में करता है, उसी प्रकार मोक्ष जैसे चरम पुरूषार्थ का निदर्शन भी नाटक में भली–भाँति दिखलाया गया है।

शान्त रस की सैद्धान्तिक समीक्षा–

आचार्य भरत नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रस प्रकरण में रसों की संख्या आठ स्वीकार की गई है।[85] बड़ौदा से प्रकाशित अभिनव भारती सहित नाट्यशास्त्र के द्वितीय संस्करण के सम्पादक रामस्वामी शास्त्री शिरोमणि का कहना है कि शान्तरस सम्बन्धी नाट्यशास्त्र के अंश प्रक्षिप्त हैं। महाकवि कालिदास कोशकार अमरसिंह, आलंकारिक भामह और दण्डी आदि ने भी नाटक में आठ रस का ही

उल्लेख किया है। शान्त रस के सर्वप्रथम अस्तित्व पर शारदातनय का कथन दृष्टव्य है–

"उतपत्तिस्तु रसानां या पुरा वासुकिनोदिता
नारदस्योच्चयते सेषा प्रकारान्तर कल्पिता।।"
रजस्तमौ विहीनस्तु सत्वावस्थात सचित्ततः
मनागस्पृष्ट वाहयार्थात शान्तोरस इतीरितः।[86]

वासुकि नामक आचार्य का उल्लेख जो अत्यन्त प्राचीन है उनका उल्लेख शारदातनय ने ऊपर किया है। इस विषय में कोई भी विज्ञप्ति उपलब्ध नहीं होती। जिस प्रकार शारदातनय ने वासुकि का उल्लेख किया है, उसी प्रकार साहित्यरत्नाकरं ग्रन्थ के रचयिता धर्मसूरि ने कोहल के द्वारा शान्तरस को नवम रस मानने का उल्लेख किया गया है– "कोहलस्तु उत्साहोवा निर्वेदोवा शमो वा अस्य (शान्तस्थ) स्थायीत्युवाच'। [87] कोहल बहुत प्राचीन आचार्य है, जिनका उल्लेख नाटयशास्त्र में है–

आत्मोपदेशसिद्धं हि नाट्यं प्रोक्तं स्वयम्भुवा
शेषं प्रस्तार तन्त्रेण कोहलः कथयिष्यते।[88]

कोहल भरत के शिष्य है।[89] कोहल की शान्त रस सम्बन्धी धारणा का और कुछ कहीं भी उल्लेख नहीं है। उद्भट कश्मीरी ने काव्योलंकार सार संग्रह में लिखा है–
"श्रृंगार हास्यकरूणारौद्रवीरभयानकाः वीभत्सादभुत शान्ताश्च नव नाट्ये रसास्मृताः।"[90] कहकर स्पष्ट रूप से नाट्य में शान्त रस स्वीकार किया है। 9वीं शती में आनन्द–वर्धनाचार्य, ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत में शान्तरस को बड़े उत्साह के साथ स्वीकार किया। आनन्दवर्धन के पश्चात अभिनवगुप्त ने गुरू भट्टतौत 906,990 ई0 ने काव्यकौतुक ग्रन्थ लिखा है इनका मत है कि शान्त रस प्रमुख रस हैजो कि मोक्ष की ओर प्रेरणा देता है।[91] वस्तुतः शान्त रस को पूर्ण रूप से स्थापित करने वाले अभिनवगुप्त हैं। उन्होंनें शान्त रस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं–
"अथ शान्तो नाम स्थायिभावात्मको मोक्ष प्रवर्तकः। सतु तत्वज्ञान वैराग्यशय शुद्धयादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्ययमनियमाध्यात्मध्यानधारणोपासनसवंभूतदयालिंग–ग्रहणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। व्यभिचारिण्श्चास्य निर्वेद स्मृति घृति सर्वाश्रम शौच स्तम्भ रोमांचादयः।[92]

'संकल्प सूर्योदय' में शान्त रस–

'संकल्प सूर्योदय' में शान्त रस का विवरण इस प्रकार है–

कचिद्वाहाधीशः कचिदमरदन्तावलपतिः
कचित्प्रालेयांशुः कचिदमृतविच्छर्दितमिति
अतिक्षोभे सिन्धोरयमनधनिद्रोद्धतगिरि
र्विषादं लेखानां विघटयति वैकुण्ठकमठः।[93]

जुगुप्सां देहादौ विषयरसभोगेषु हसनं
प्रकोपं निद्रादौ परपरूषवादादिषु भयम्
शुचं योगालाभे फलपरिणतौ विस्मयमपि
प्रयच्छत्युत्साहं दुरितविरतौ ब्रहणिरीतम्।[94]

आचार्य धनिक एवं धनंजय के अनुसार 'शम' नामक स्थायी भाव का प्रकर्ष स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अनिर्वाच्य है। उसका अभिनय भी नहीं हो सकता। अतः इसका सर्वथा विरोध कर शान्त रस का वर्णन नाटक में किया गया है।

श्रृंगार रस–

श्रृंगार शब्द की उत्पत्ति 'शृंग' तथा 'आर' इन दो शब्दों के योग से हुई है। 'श्रृंग' शब्द का अभिप्राय है काम का उद्रेक एवं 'ॠ' धातु से व्यवस्थित 'आर'शब्द गत्यर्थक है। विश्वनाथ के अनुसार कामदेव का उदभेद 'शृंग' है।

समस्त रसों में श्रृंगार रस अत्यन्त कमनीय और सरस है। इसलिये सभी आचार्यों ने इस रस की गणना सभी रसों के पहले की है। यह रस अन्य रसों की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावशाली है, अतएव इसे रसराजत्व एवं 'आदिरस' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। कवि के श्रृंगारी होने से सारा संसार रस युक्त हो जाता है, परन्तु यदि कवि अश्रृंगारी हुआ तो सब कुछ नीरस हो जाता है–

श्रृंगारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत
स एवं चेदश्रृंगारी नीरसं सर्वमेव तत्।[95]

श्रृंगार रस सुन्दर विभावादि वाला माना जाता है। श्रृंगार रस की उत्पत्ति रतिरूप स्थायी भाव से होती है। परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका इसके आलम्बन विभाव हैं। काव्य, गीत, वाद्य, नृत्य, वसन्त आदि ऋतु, माल्य विलेपन

ताम्बूल, विशिष्ट भवन, वेष, विदूषक, चन्द्रोदय, चक्रवाक, केलि पुष्पचयन, उपवन–गमन एवं जल क्रीड़ा आदि इस रस के उद्दीपन विभाव हैं। सम्भोग श्रृंगार में आलस्य, औग्रय और जुगुप्सा को छोड़कर निर्वेद आदि सभी इसके व्यभिचारी भाव हैं। उत्साह, ताप, अश्रु एवं क्रोध आदि इस रस के अनुभाव हैं।''[96]

नाट्यशास्त्र श्रृंगार की संयोग तथा विप्रलम्भ दो स्थितियाँ मानते हैं। इसमें सम्भोग श्रृंगार परस्पर अवलोकन, चुम्बन एवं विचित्र वक्रोकि आदि के भेद से अनन्त प्रकार का होता है। सम्भोग श्रृंगार की उत्पत्ति ऋतु, माल्य, अनुलेप, अलंकार तथा शब्दस्पर्शादि विभावों से होती है। अर्थात ये सभी उसके उद्दीपन विभाव हैं, नायक तथा नायिका दोनों ही एक दूसरे के प्रति आलम्बन विभाव होते हैं। संभोग श्रृंगार का अभिनय नयन चातुरी, भ्रूक्षेप, कटाक्ष, ललित मधुर वाक्य तथा अंग हारादि रूप अनुभावों के प्रदर्शन से किया जाना चाहिये। इसके अन्तर्गत आलस्य, उग्रता तथा जुगुप्सा को छोड़कर शेष समस्त संचारी भावों का प्रदर्शन किया जा सकता है।

विप्रलम्भ श्रृंगार में एक दूसरे के प्रति अनुरक्त होते हुए भी परतत्रंता आदि के कारण नायक नायिका का परस्पर संयोग नहीं हो पाता है। 'ध्वन्यालोककार' विप्रलम्भ श्रृंगार के अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास, देशकाल, आश्रय एवं अवस्था आदि भेद बताते हुये भी इसके अनन्त भेद मानते हैं।[97] भानुदत्त देशान्तरगमन, गुरूजनाज्ञा, अभिलाष, ईर्ष्या, शाप, समय, देव एवं उपद्रव के विचार से आठ प्रकार का मानते हैं।[98] नाटयदर्पणकार ने इसके पाँच भेद माने हैं– मान, प्रवास, शाप, इच्छा और विरह। ईर्ष्या होने के कारण अथवा प्रणय भंग होने के कारण नायिका के क्रोध करने को मान कहते हैं।''[99] दशरूपककार के अनुसार किसी कार्यवश या सम्भ्रवश या शापवश नायक, नायिका का वियुक्त हो जाना प्रवास विप्रलम्भ है। यह प्रवास विप्रयोग तीन प्रकार का होता है। भविष्यत, वर्तमान, भूत–

कार्यतः संम्भ्रमाच्छापात्प्रवासो भिन्न देशता
स च भावी भवन भूतस्त्रिघाधो बुद्धिपूर्वकः।[100]

सम्भोग और विप्रलम्भ के अतिरिक्त श्रृंगार के दो प्रकार के भेद और माने जाते हैं। पहला अभिनय से सम्बन्ध रखता है दूसरा फल प्राप्ति से। प्रथम के अन्तर्गत वाक, नेपथ्य, तथा क्रियात्मक ये तीन भेद आते हैं। दूसरे के अन्तर्गत चतुर्वग के आधार पर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चार भेद आते हैं।[101]

शारदातनय के अनुसार भावगर्भ रहस संयुक्त, मधुर, नर्म, पेशल एवं सुवृत्त श्रृंगार वाचिक होता है। वस्त्र, अंगराग एवं माला आदि से सुशोभित शरीर तथा यौवन युक्त अंगों से प्रकट होने वाला श्रृंगार आंगिक होता है।

दन्तच्छेद, सीत्कर, चुम्बन, चूषण, भाव, हेला, केलिं, शयनादि तथा संगीतादि से युक्त श्रृंगार को क्रियात्मक कहते हैं।[102] नाट्यदर्पणकार एवं दामोदर गुप्त के अनुसार जिस श्रृंगार का प्रदर्शन अपनी विवाहिता पत्नी के प्रति किया जाता है उसे धर्मश्रृंगार कहते हैं।[103] कामश्रृंगार की सिद्धि परस्त्री तथा कन्या के सम्वन्ध में होती है। दामोदर गुप्त तथा अन्य विचारक भी इस विषय में एक मत हैं।[104] अर्थश्रृंगार दो रूपों में होता है। इसमें या तो राज्य, सुवर्ण, धन, धान्य एवं वस्त्रादि की प्राप्ति दिखलाई जाती है अथवा अर्थ प्राप्ति के विचार से सुखोपभोग दिखाया जाता है।[105]

प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय नाटकों में श्रृंगार रस।

कामः – (स्पर्शसुखमभिनीय स्वगतम्)

स्फुरद्रोमोदभेदस्तरलतरताराकुलदृशो
भयोत्कम्पोत्तुंगस्तनयुगभरासंग सुभगः
अधीराक्ष्या गुंजन्मणि वलयदोर्वल्लिरचितः
परीरम्भो मोदं जनयति च संमोहयति च।[106]

अर्थात्– भय से तरलाक्षी प्रियतमा का यह रोमांचित, भयकम्पित, स्तन का सर्वांग आलिंगन आनन्द भी देता है और ह्रदय को सम्मोहित भी कर रहा है।

महामोहः –

धाता विश्वविसृष्टिमात्रनिरतो देवोऽपि गौरीभुजा
श्लेषानन्दविघूर्णमाननयनो दक्षाध्वरध्वंसनः
दैत्यारिः कमलाकपोलमकरीलेखांगितोरःस्थलः
शेतेऽब्धावितरेषु जन्तुषु पुनः का नाम शान्तेकथा।[107]

विभ्रमावती– सखि, अत एव भवामि त्यत्सदृशी सुभगास्थां पृथिव्यां नास्ति, सौभाग्यमाहात्म्यविधुरितह्रदयाः सपत्न्यः प्रसादं प्रतीच्छन्ति। सखि, अन्यदभणामि एवं निद्राकुलनयनविसंस्थुलस्खलचरण नूपुर झंकारमुखरया गत्या महाराजं संभावयन्ती शंगितह्रदयं करिष्यति प्रियसखीति तर्कयामि।[108]

महामोहः – (विलोक्य) अये संप्राप्तेव प्रिया मिथ्यादृष्टिः। या एषा–

श्रोणीभारभरालसा दरगलन्माल्योपवृत्तिच्छला

लील्लोत्क्षिप्तभुजोपदर्शितकुचोन्मीलन्नखांकावलिः

नीलेन्दीवरदामदीर्घरतया दृष्टया घयन्ती मनो

दोषान्दोलनलोलकंकणरणत्करोत्तरं सर्पति ।[109]

अर्थात्– श्रोणीभार से अलस तथा गिरती हुई माला की उपवृत्ति के छल से बाहु उठाकर स्तनास्थित नखांक दिखाकर श्याम कमल समान दीर्घ नयनों से हृदय हरती हुई बाहु हिलाने से कंकण खनखनाती हुई आ रही है।

महामोहः – प्रिये

दलितकुचनखांकमंकपालीं रचय ममांकमुपेत्य पीवरोरू

अनुहर हरिणाक्षि शंकरांकस्थितहिमशैलसुताविलास–लक्षमीम् ।[110]

अर्थात्– ओ पीवरोरू, मेरी गोद में बैठकर कुचगतनखांक को दलित कर आलिंगन प्रदान करते और ओ री मृगनयनी, महादेव की गोद में बैठी पार्वती की शोभा को प्राप्त कर लो।

महामोहः – (आलिंगनसुखमभिनीय) अहो, प्रियायाः परिष्वंगात्परावृत्त नवयौवनम। तथाहि–

यः प्रागासीदं भिनववयोविभ्रमावाप्त जन्मा

चित्तोन्माथी विविधविषयोपल्लवानन्दसान्द्रः

कृतीरन्तस्तिरयति तवाश्लेषजन्मा स कोऽपि

प्रौढः प्रेमा नव इव पुनर्मान्मथो मे विकारः ।[111]

अर्थात–नई जवानी की मस्ती से उत्पन्न होने वाला तथा हृदय को मथकर नाना प्रकार वैषयिक सुख उपस्थित करने वाला जो काम विकार पहले था, वह फिर से तुम्हारे आंलिगन से उद्भूत होकर सभी वृत्तियों को तिरोहित कर रहा है। अतः इस नाटक में महामोह के सम्वाद में सम्भोग श्रृंगार का वर्णन किया गया है।

महाराजः – यद्येवं सुष्ठु मे प्रियं संपादितं प्रियया।

(पुनरालिंगय चुम्बति)[112]

भिक्षुः – (सानन्दं परिष्वज्य रोमांचमथिनीयं जनान्तिकं)

अहो, सुखस्पर्शा कापालिकी। तथाहि–

रण्डाः पीनपयोधराः कति मया चण्डानुरागादभुज

द्वन्द्वापीडित पीवरस्तनभरं नो गाढमालिंगताः।

बुद्वेभ्यः शतशः शपे यदि पुनः कुत्रापि कापालिकी

पीनोलुंगकुचावगूहनभवः प्राप्तः प्रमोदोदयः।[113]

क्षपणकः – (सरोमांचम्) अहो अर्हन्, अहो अर्हन्।

कापालिक्याः स्पर्शसुखम्। सुन्दरि देहि देहि पुनरप्यंकपालीम्। (स्वगतम्) अरे महान् खल्विन्द्रिय विकार उपस्थितः। तर्ह्यस्ति कोऽप्युपायः। किमत्र युक्तम्, भवतु पिच्छिकया छादयिष्यामि।

अयि पीनधनस्तनशोभने परित्रस्तकुरंगविलोचने

यदि रमसे कापालिकीभावैः श्रावकाः किं करिष्यन्तीति।[114]

भिक्षुः –

निपीता वेश्यामिः सहन कतिवारान्सुवदना

मुखोच्छिष्टाऽस्माभिर्विकचबकुलामोदमघुरा

कपालिन्या वक्त्रासवसुरभिमेतां तु मदिरा

मलब्ध्वा जानीमः स्पृहयति सुधायै सुरगणः।[115]

बालामामियमिच्छतीन्दुवदना सानन्दमुद्वीक्षते

नीलेन्दीवरलोचना पृथुकुचोत्पीडं समाश्लिष्यति।[116]

चन्द्रमा, चन्दन, चाँदनी रात भ्रमरमुखरितं विलास वन का प्रान्त, वसन्तोदय, धनमर्जन युक्त दिवस, कदम्बाकार वायु, श्रृंगार प्रमुख काम के मित्र नारी को जीतने से जीत लिये जाते हैं।[117] आदि वर्णनों में सम्भोग श्रृंगार का वर्णन हुआ है। विप्रलम्भ श्रृंगार के कतिपय दृष्टान्त–

शान्तिः – (सास्त्रम) मातः मातः क्वासि देहि मे प्रिय दर्शनम्। तत–

मुक्तातंककुरंगकाननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः

पुण्यान्यायतनानि संतततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः

यस्याःप्रीतिरमीषु सात्रभवती चण्डालवेश्मोदरं

प्राप्ता गौः कपिलदेव जीवति कथं पाषण्डहस्तं गता।[118]

करूणा– (सास्त्रम्) सखि, एवं मिषमज्वलन ज्वालोल्का दुःसहान्यक्ष राणि जलपन्ती सर्वथा विलुप्तजीवितां मा करोषि। तस्मात्प्रसीदतु मुहूर्तं जीवितं घारयुत प्रियसखी। यावदितस्ततः पुण्येष्वाश्रमेषु मुनिजन समाकुलेषु भागीरथीतीरेषु निपुणं निरूपयामि

कदाचिन्महामोहभीत्या कथमपि प्रच्छन्ना निवसति।[119]

मनः – हा प्रिये, क्वासि देहि मे प्रतिवचनम्। नुनुदेवि,

स्वप्नेऽपि देवि रमसे न विना मया त्वं
स्वापे त्वया विरहितो मृतवदभवामि
दूरीकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि
जीवत्यवेहि मन इत्यसवो दुरन्ताः।[120]

'संकल्प सूर्योदय' में श्रृंगार रस–

तुम्बुरूः – भगवन्, अव्यासन्नवृत्तिरयमसौ विवेकरथस्य।

अपिच–

ऋतुस्नाता नृत्तग्लपिततनुरध्वश्रमवती
मदक्षीवा कुद्धप्रसदनवती भिन्नघटिता
इदंपूर्वेत्येवं विधयुवतियूथेन सहितो
युयुत्सत्युन्मत्तः स्मर इह विवेकेन महता।[121]
जगत्क्षिपति चापले ललित चापलेखाधरो
युनक्त्यपथि वाहयन्युगलदेहयन्त्रद्वयम्
द्विगर्भवडिशामिपग्रसनवेधतो बाधते
स एष दृढ़साहसः सकलजन्तुचिन्ताभट।[122]

नारदः – हतजीवजीवितेशां विषादमूर्च्छादिलुप्तनिश्वासाम् तृष्णादयः सकुल्या दुर्मतिमभितो निपत्य विलपन्ति[123] आदि में विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन–

आकर्ण्य चामरभृताममरांगनानां
मंजूनि तानि मणिकंकणशिंजितानि
श्रृण्वन्नसौ विलपितानि निजप्रियाणां
मोहः प्रयात्यपुनरून्मिषिताय निद्राम।[124]

सम्भोग श्रृंगार का वर्णन–

गरूडमखिलवेदनीडाधिरूढं द्विषत्पीडनोत्कण्ठिताकुण्ठवैकुण्ठपीठीकृतस्कन्धमीडे स्वनी–डागति प्रीतरूद्रासुकीर्तिस्तनाभोगगाढोपगूढस्फुरत्कण्ठकव्रातवेधव्यथावेपमान द्विजिह्याधिपा कल्पविष्फार्यमाणस्फटावाटिकारत्नरोचिश्छटाराजिनीराजितं कान्तिकल्लोलिनीराजितम्।[125]

महामोहः –

लास्यान्विता च ललिता च गतिस्त्वदीया
मंजुस्वना बहुगुणा च विभाति वीणा
देहश्च दर्शयति चान्द्रमसीमभिख्यां
प्राप्तोऽसि नरत्त्वमिह भोगसमृद्धिहेतुः ।[126]

संयोग श्रृंगार की पुष्टि के लिये वियोग श्रृंगार का भी सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक वर्णन अपेक्षित है।[127] क्योंकि बिना इस प्रकार के वियोग के संयोग भली भाँति पुष्टि को प्राप्त नहीं हो पाता। वियोग से प्रेम में परिपक्वता एवं दृढ़ता आती है। वियोग काल में आलम्बन के प्रति प्रेम की भावनाएँ दिन प्रतिदिन अधिकाधिक पुष्ट होती जाती हैं और वे अपने पूर्ण चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती हैं। संयोग की पुष्टि के लिये वियोग नितान्त आवश्यक है। 'संकल्प सूर्योदय' नाटक में वियोग सम्बन्धी वर्णन अत्यल्प मिलते हैं। मोक्ष श्रृंगार में मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन होता है। इस श्रृंगार के विषय में भोज का मत अत्यन्त विलक्षण है। इनके अनुसार मोक्ष में व्यक्ति प्रियाहीन हो जाता है। अतएव मोक्ष के लिये प्रयत्न करना ही मोक्ष श्रृंगार माना जा सकता है। नाट्यदर्पणकार ने 'मोक्षश्रृंगार' को श्रृंगार का भेद नहीं माना है क्योंकि धर्म, अर्थ एवं काम ही मानव जीवन के साक्षात फल हैं। मोक्ष की प्राप्ति तो अप्रत्यक्ष रूप से होती है। अतएव 'मोक्ष' को श्रृंगार का भेद नहीं माना जा सकता है।[128]

'मोक्ष' श्रृंगार को शान्त और भक्तिरस में समेटा जा सकता है। और अन्य भेदों को श्रृंगार के उपभेद के रूप में अनेक परिस्थितियों के बीच स्वीकार किया जा सकता है।[129]

(विभावादि सामग्री)

1. अनुभाव
2. व्यभिचारी भाव
3. स्थायीभाव

विभाव

विभाव शब्द का सामान्य अर्थ है विभावित करने या प्रतिगोचर बनाने वाला तत्व। कवि जिस माध्यम से विभिन्न भावों को प्रतिगोचर बनाता है, वे तत्व विभाव की संज्ञा से अभिहित किये जाते हैं। ये ज्ञानतत्व होते हैं। इसलिये विभाव को विज्ञानार्थक कहा जाता है।

जगत में प्रसिद्ध हेतु अथवा कारण शब्दों के लिये काव्य में 'विभाव' शब्द प्रयुक्त होता है। इसे विभाव इसलिये कहा जाता है क्यों कि यह वासना रूप से स्थित, रसरूपता को प्राप्त होने वाले रत्यादिरूप स्थायीभाव को विशेष रूप से आविर्भूत करता है।[130] भरत–मतानुसार वाचिक, आंगिक अथवा सात्विक अभिनय के माध्यम से चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभावन अथवा ज्ञापन कराने वाला हेतु 'विभाव' है।[131] दशरूपककार के अनुसार– ज्ञायमानतया तत्र विभावों भावपोषकृत आलम्बनाद्दीपनत्वप्रभ्भ्रेदेन सच द्विघा।[132] काव्यानुशासनकार के अनुसार स्थायी एवं व्यभिचारी चित्तवृत्तियों अथवा रस को विशेष रूप से ज्ञापित कराने के कारण ही इन्हें 'विभाव' कहा जाता है।[133] इस प्रकार विद्वानों के अनुसार विभाव का निम्नस्वरूप स्थापित कर सकते हैं–

1. स्थायीभाव आदि के हेतु को 'विभाव' कहते हैं।
2. चित्तवृत्तियों का विशेषरूप से ज्ञापन कराने के कारण ही इसे विभाव की संज्ञा प्रदान की गई है।
3. इनके द्वारा स्थायीभाव आस्वाद योग्य होता है। विभाव के दो भेद होते हैं–आलम्बन, उद्दीपन। जिसके कारण भावोत्पत्ति होती है वह आलम्बन विभाव कहलाता है और जिसके कारण उत्पन्न भाव अभिप्रेरित होकर और भी उद्दीप्त होता है, वह उद्दीपन विभाव है। आलम्बन– के भी दो भेद हैं– विषय और आश्रय। जिसके उद्देश्य से अथवा जिसको लेकर रति आदि स्थायी भाव जाग्रत होते हैं, वह रति आदि स्थायीभावों का विषय है। यथा 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में महामोह और मिथ्यादृष्टि स्थायीभावों का विषय है।

भावोद्बोधन प्रक्रिया का प्रधान कारक आलम्बन विभाव होता है। रस प्रक्रिया में आलम्बन विभाव मुख्यतः वह पात्र या पदार्थ है जिसके कारण श्रोता या सामजिक के चित्त में भावोदय होता है। रति आदि स्थायीभावों के आधार को आश्रय कहते हैं। आलम्बन के इन दोनों भेदों को हम विषयालम्बन एवं आश्रयालम्बन कह सकते हैं।

उद्दीपन– आलम्बन विभावों द्वारा उदबुद्ध स्थायी चित्तवृत्तियों को उद्दीप्त करने वाली काव्य– सामग्री को उद्दीपन विभाव कहा जाता है।[134] उद्दीपन विभाव के भी दो भेद होते हैं– विषयगत एवं बहिर्गत। इन्हें पात्रस्थ एवं बाह्य भी कह सकते हैं। पात्रगत

उद्दीपन के अन्तर्गत पात्र के गुण, उनकी चेष्टाएँ एवं उनके अलंकार का समावेश होता है। ऋतु पवन एवं चन्द्र आदि उपकरण बाह्य उद्दीपन विभाव हैं। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत देशकाल आदि का वर्णन रहता है। देशकाल आदि का ध्यान रखते हुए ही उद्दीपन विभावों की योजना करनी चाहिए। कविराज विश्वनाथ ने आलम्बन उद्दीपन विभावों के अन्तर्गत आलम्बन के रूप–गुण, यौवन, हाव–भाव, अलंकरण सज्जा आदि को गिनाया है।[135]

काव्य एवं नाटक में स्थायी भाव का विशिष्ट बोधन कराने के कारण ही इनका नाम विभाव है। कविराज विश्वनाथ के अनुसार रत्यादि को आस्वादन योग्य बनाना ही विभावन है। विभावन के अन्तर्गत विभाव पोषित कार्यक्रमों की स्थिति आ जाती है। काव्य–सन्दर्भों में विभावन काव्य–वस्तु का प्रत्यक्षीकरण है।

अनुभाव

आचार्य भरतमुनि ने अनुभाव का स्वरूप निर्धारित करते हुए लिखा है– यदयमनु भावयति नानार्थाभिनिष्पन्नौ वागांगसत्वैः कृतोभिनय इति।।[136] वाणी, अंग और सत्व द्वारा नाना अर्थों से निष्पन्न अभिनय को अनुभावित करने के कारण इसे अनुभाव कहा गया है।

नाट्यदर्पण के अनुसार– 'तत्रानुलिंग निश्चयात् पश्चाद भावयन्ति गमयन्ति लिंगिनँ रसमित्यनुभावाः स्तम्भादयः'[137] लिंग के निश्चय के बाद रस को बोधित करने वाले होने से कार्यरूप स्तम्भ आदि अनुभाव कहे जाते हैं।

साहित्यदर्पणकार ने भी अनुभाव शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी है– ''स्थायीभावों को प्रकाशित करने वाले विकार जो लोक में कार्य कहे जाते हैं– काव्य एवं नाटक में अनुभाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं।''[138]

दशरूपककार के अनुसार– ''अनुभावों विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः।''[139] भावों को सूचित करने वाला विकार अनुभाव है। विश्वनाथ के पूर्ववर्ती नाट्यदर्पणकार ने भी अनुभावों को स्थायीभाव का कार्य ही माना है।[140] अनुभावों को स्थायीभाव का कार्य कहने का कारण यही है कि ये आश्रय में स्थायीभाव के उदबुद्ध होने के बाद उत्पन्न होते हैं।

''वांगगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते
वांगगोपांगसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः।''[141]

आचार्य भरत ने अनुभावों के वाचिक, सात्विक, और आंगिक इन तीन भेदों का संकेत कर दिया है। शरदातनय ने अनुभावों को तीन वर्गों में विभाजित किया है–

1. मन आरम्भानुभाव
2. वागारम्भानुभाव
3. बुद्ध्यारम्भानुभाव[142]

शिंगभूपाल ने अपने 'रसार्णवसुधाकर' में इन्हीं भेदों का उल्लेख किया है[143] इन्होंने मनारम्भानुभाव के स्थान पर 'चित्तारम्भानुभाव' का उल्लेख किया है, शेष समस्त नामों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है।

मानस अनुभावों को 'मन आरम्भानुभाव' एवं कायिक अनुभावों को 'गात्रारम्भानुभाव' की संज्ञा प्रदान की गई है। शारदातनय ने इन दोनों का सम्बन्ध स्त्रियों से स्वीकार किया है। इनकी अलग–अलग दस संख्या निर्धारित की है। हाव, भाव, हेला शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य प्रागल्भ्य, धैर्य तथा औदार्य मानस अनुभाव के अन्तर्गत आते हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति विभ्रम किलकिंचत, मोट्टायित, कुट्टुमित, विव्वोक, ललित तथा विहृत गात्रारम्भानुभाव के अर्न्तगत आते हैं। शारदातनय तथा शिंगभूपाल ने इन दोनों को नायिकाओं का सात्विक अलंकार कहा है।
नाट्यदर्पणकार ने इन्हें नायिकाओं का सात्विक अलंकार कहा है और इनके अंगज, अयत्नज, स्वभावज तीन भेद किये हैं– हाव, भाव, हेला आदि अंगज, शोभा आदि अयत्नज, लीला आदि स्वाभाविक अलंकार है।[144] अंगज के अन्तर्गत हाव, भाव, हेला आते हैं। भाव के अन्तर्गत चित्त–विकार को प्रत्यक्ष करने वाली कायिक चेष्ठा आती है। भाव से सक्रिय हो उठे प्रयास हाव के अन्तर्गत आते हैं और भाव की पूर्ण विकसित अवस्था हेला अनुभाव है।[145] और जो अनुभाव वाक द्वारा भाव प्रकट करते हैं, उन्हें वागारम्भानुभाव' कहा जाता है। इनके ग्यारह भेद हैं– आलाप चाटूक्ति को आलाप, कहते हैं..। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में सूत्रधार का कथन–

अद्याप्युन्मदयाप्तुधानतरूणीचंचत्करास्फालन
व्यावल्गन्नृकपालतालरणितैर्नृत्यत्पिशाचांगना
उदगायन्ति यशांसि यस्य विततैर्नादैः प्रचण्डानिल
प्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूटकुहरव्यक्तै रणक्षोणयः।[146]

महामोहः – देवि, दीयतामस्मै देवर्षये पाधमर्ध्य मधुपर्कश्च ।[147]

विलाप– दुख भरे वचन को विलाप कहते हैं। विलाप का उदाहरण देखें–

मनः – हा प्रिये, क्वासि देहि मे प्रतिवचनम्। ननु देवि स्वप्नेऽपि देवि रमसे न विना मया त्वं जीवत्यवेहि मन इत्यसवो दुरन्ताः ।[148]

विलाप के अर्न्तगत संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश उपदेश और अपदेश आदि आते हैं। व्यर्थ कथन को प्रलाप एवं बार–बार कहने को अनुलाप कहते हैं। यथा–

दम्भः – (नेपथ्ये) भो भोः पौराः, एष खलु संप्राप्तौ देवो महामोहः ।[149]

दौवारिकः – जयतु–जयतु। आज्ञापयतु देवः ।[150]

करूणा– सखि, राक्षसो राक्षसः ।[151]

पूर्वोक्त का अन्यथा योजन अपलाप कहलाता हैं। प्रोषित को अपने समाचार से अवगत कराना संदेश कहलाता है। यथा–

महामोहः – श्रृद्धयास्तनया इत्युपक्षेपेणोपायान्तरमपि हृदयमारूढम्। तथाहि। शान्तेर्माता श्रृद्धा। सा च परतन्त्रा। तत्केनाप्युपायेनोपनिषत्सकाशात्तावच्छ्द्धापकर्षणं कर्त्तव्यम्। ततो मातृवियोग दुःखादतिमृदुलतया शान्तिरूपरता भविष्यति। श्रृद्धां व्याक्रष्टुं मिथ्यादृष्टिरवं विलासिनी परं प्रगल्भेति तदस्मिन्विषये सैव नियुज्यताम्। (पार्श्वतो विलोक्य) विभ्रमावति, सत्वरमाहूयतां मिथ्यादृष्टिविलासिनी ।[152]

विभ्रमावती– यददेव आज्ञापयति ।[153]

दूतः – (उपसृव्य) इदं महाराजविवेकस्य शासनम्।

(इति भूर्जपत्रं दर्शयति)

महामोहः – भद्र, असंस्तुतयुष्मदद्धीपलिपयो वयम् तत्स्वयमेव वाचय ।[154]

प्रस्तुत वस्तु का अन्य अभिधेय से सूचन अतिदेश है। निर्देश में वह यह मैं हूँ, ऐसी बात कही जाती है।

महामोहः – (स्वगतम्) कार्यमत्याहितं भविष्यति (प्रकाशम्) चावकि, गच्छ। कर्तव्येष्ववहितेन भवता भवितव्यम् ।[155]

चार्वाकाः – यदाज्ञापयति देवः ।[156]

शिक्षा के लिये कुछ कहना उपदेश कहलाता है। यथा–

श्रृद्धाः–

ध्रुवं ध्वंसो भावी जलनिधिमहीशैलसरिता
मतो मृत्योः शीर्यतृणलधुषु का जन्तषु कथा
तथाप्युच्चैर्बन्धुव्यसनजनितः कोऽपि विषमो
विवेकप्रोन्माथी दहति हृदयं शोकदहनः।[157]

नारदः –

चलघुरूघुरूमालाश्लेषवाचालजङ्घः
शर इव निरपायश्चारूचण्डातवश्रीः
अयमिह रूचिराभिः स्त्रग्भिरून्नद्धमौलि
स्त्वरितमुपसमेति स्वेदभिन्नः सुगन्धिः।[158]

मैने कहा, उसने कहा, इस प्रकार का कथन अतिदेश एवं व्याजपूर्वक आत्माभिलाष कथन व्यापदेश होता है।

बुद्धयारम्भानुभाव' के अन्तर्गत रीति, वृत्ति तथा प्रवृत्तियों का वर्णन किया जाता है। इनके प्रयोग में बुद्धि की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है।

वेपथु, स्तम्भ, रोमांच, स्वरभेद, अश्रु, मूर्च्छा, स्वेद, वैवर्ण्य इन आठ सात्विक अनुभावों को 'गोवलीवर्दन्याय' से अलग भी गिन दिया जाता है। वस्तुतः इन्हीं अनुभावों की प्रधानता है।[159] भय, रोग, हर्ष, शांति, रोष एवं प्रिय स्पर्श आदि के कारण गात्र स्पन्द को वेपथु कहा जाता है। 'प्रबोध चन्दोदय' नाटक के प्रथम अंक में काम और रति के सम्वाद में 'वेपुथु' का उदाहरण देखें–

रतिः (सत्रासोत्कम्पम्) आर्य पुत्र, परित्राहि परित्राहि।

काम (स्पर्शसुखमभिनीय। स्वगतम्)

स्फुरद्रोमोद्भेदस्तरलतस्ताराकुलदृशो
भयोत्कम्पोत्तुंगस्तनयुगभरासंगसुभगः
अधीराक्ष्या गुंजन्मणिवलयदोर्वल्लिरचितः।[160]

अंहकारः – (सभयम्) यद्यत्येवमशक्यप्रतीकार एवायमर्थः।[161]

राजा – (सहर्षमवलोकयति)[162]

नारदः – (सहर्षम्) सखे,

कथ्यते न मया मिथ्या किं वा संद्रक्ष्यसे स्वयम्
दर्पणं किमपेक्षन्ते कंकणस्य निरीक्षणे।[163]

हर्ष, विस्मय, भय, मद, रोग आदि के कारण यत्न करने पर चलनाभाव को 'स्तम्भ' कहते हैं। प्रियदर्शन, व्याधि, शीत, क्रोध, स्पर्श आदि के कारण रोम हर्ष को 'रोमांच' कहते हैं। उदाहरण दृष्टव्य है–

भिक्षुः – (सानन्दं परिष्वज्य रोमांचमभिनीय जनान्तिकं) अहो सुखस्पर्शाकापालिकी।[164]
राक्षसी श्रृद्धा के द्वारा कापालिक के स्पर्श से यहाँ रोमांचन नामक अनुभाव है।
क्षपणकः – (सरोमांचम्) अहो अर्हन, अहोअर्हन्!
कापालिक्याः स्पर्शमुखम्। सुन्दरि, देहि देहि पुनरप्यंकपालीम्।[165]

मद, भय, जरा, हर्ष, क्रोध, राग, रौक्ष्य आदि के कारण स्वर बदल जाने को 'स्वरभेद' कहते हैं।

पुरूषः – (सहर्षोल्लासम्) अतस्तर्हि कृतकृत्यान् भवतः कृतार्थोऽहमामनत्रये।[166]
राजा विष्णुभक्तिश्च – (सांजलिबन्धाम्) अनन्यलभ्यः प्रसादोऽयमस्यास्वत्रभवतः।[167]
हर्ष आदि अनुभाव रोमांच के अन्तर्गत आते हैं। स्वरभेद के अन्तर्गत 'संकल्पसूर्योदय' नाटक में अनुभाव का निरूपण–

पुरूषः – (सहर्षगदगदम्) अहो नु खलु धन्योऽयमनन्यशरणो जनः, यमेनमनिदंप्रथमसंपदा भगवदनुकम्पया प्रचोदितस्तत्रभवान् प्रसीदन प्रेक्षते।[168]

शोक, अनिमेषप्रेक्षण, धूमांजन, भय, पीड़ा, हास्य आदि के कारण नेत्र से जल निकलने को 'अश्रु' कहते हैं।' प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में अश्रु दशा–

शान्तिः – (सास्त्रम्) मातः मातः क्वासि देहि मे प्रियदर्शनम्।[169]
करूणा – (सास्त्रम्) सखि, एवं मिषमज्वलनज्वालोल्कादुःसहान्यक्षराणि जलपन्ती सर्वथा विलुप्त जीवितां मा करोषि।[170] धात, कोप, मद आदि के कारण इन्द्रियों के अभिभव को मूर्च्छा, श्रम, भय, हर्ष, लज्जा, रोग, ताप, गृह, दुःख, धूप, व्यायाम आदि के कारण रोम से जलस्राव को 'स्वेत' एवं तिरस्कार, सन्ताप, भय, क्रोध, व्याधि, शीत, श्रम आदि के कारण शोभाविरूध्व को 'वैवर्ण्य' कहते हैं।[171]

नाट्यदर्पणकार ने अनुभावों के अतिरिक्त प्रसाद, उच्छवास, निःश्वास, कन्दन, परिदेवन, उल्लुकसन, भूमि–विलेखन, विवर्तन, उद्धर्तन, नखनिस्तोदन, भ्रुकुटिकटाक्ष, तिर्यगधोमुखनिरीक्षण, प्रशंसा, हसन, दान, चाटुकार, एवं अस्यराम आदि अनुभावों को भी गिनाया है, जो संगत ही हैं।[172] इस प्रकार अनुभाव का लक्षण केवल यही हो सकता है कि काव्य–निबद्ध मूल अनुभूतियाँ भाव जिन बाह्य चेष्टाओं के

माध्यम से संप्रेषित हो, वे अनुभाव हैं।[173] अनुभव निरूपण की दृष्टि से दोनों आलोच्य नाटककारों को पर्याप्त सफलता मिली है।

व्यभिचारी भाव

'रसोन्मुखं स्थायिनं प्रति विशिष्टेनाभिमुख्येन चरन्ति वर्तन्त इति व्यभिचारिणः'[174] जो भाव रसोन्मुख स्थायीभाव के प्रति विशेष प्रकार के आभिमुख्य से विद्यमान रहते हैं, उन्हें 'व्यभिचारी' भाव कहते हैं।

'व्यभिचारी' शब्द की व्युत्पत्ति में 'वि'+'अभि'+'चर' उपसर्ग तथा धातु का संयोग स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। 'वि' और 'अभि' उपसर्ग क्रमशः विविधता और आभिमुख्य के द्योतक हैं और 'चर' संचरण का द्योतक है। इसलिये वाक, अंग तथा सत्वादि द्वारा विविध प्रकार के रसानुकूल संचरण करने वाले भावों को व्यभिचारी अथावा संचारी भाव कहते हैं।[175]

दशरूपककार के अनुसार–

''व्यभिचारी भाव विशेषादाभिमुख्येन चरन्ती व्यभिचारिणः

स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।[176]

जो भाव विशेष रूप से स्थायीभाव के अन्तर्गत कभी उठते हैं और कभी उन्हीं के अन्दर डूब जाते हैं, वे 'व्यभिचारीभाव' की संज्ञा प्राप्त करते हैं। दशरूपककार ने यह भी उल्लेख किया है कि जैसे समुद्र में तरंगों का आविर्भाव होता है व पुनः उन्हीं में तरंगों का विलय हो जाता है, उसी प्रकार व्यभिचारी भाव भी स्थायी भावों में उन्मग्न तथा निर्मग्न होते हैं। विश्वनाथ और शिंगभूपाल ने दशरूपककार के ही शब्दों को यत्किंचित परिवर्तनों के साथ दुहराया है। नाटयदर्पणकार ने व्यभिचारीभाव का निर्वचन एक अन्य प्रकार से भी किया है। स्थायी भाव के साथ व्यभिचारी होने से ही इसे व्यभिचारीभाव कहा जाता है। क्योंकि स्थायीभाव के विद्यमान होने पर भी ये अविद्यमान रहा करते हैं एवं उनके अविद्यमान होने पर भी ये विद्यमान रहते हैं।[179] व्यभिचारी भाव को संचारीभाव के पर्याय के रूप में भी काव्याचार्यों ने प्रयुक्त किया है। भरतमुनि के अनुसार ''संचारीभाव स्थायीभावों को उसी प्रकार लेकर आता है, जैसे सूर्य दिन को लाता है।[180]

''व्यभिचारी भावों का स्वरूप निम्नवत है–

1. संचारी भावों का एक विशेष गुण है कि ये स्थायी नहीं रह सकते। इनका

स्थायीभााव के साथ अनियत सम्बन्ध है।

2. ये स्थायीभाव को दीपित करते हैं।

3. स्थायीभाव के साथ इनका सम्बन्घ वारिधि तथा कल्लोल का सा है।''[181]

सामान्यतः व्यभिचारी भावों की संख्या तैंतीस मानी गई है, किन्तु इनकी संख्या अपरिमित है। आचार्य भोज ने 'अपस्मार' एवं 'मरण' के स्थान पर 'ईर्ष्या' तथा 'शम' को व्यभिचारीभाव माना है और 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'अपस्मार' एवं 'मरण' के स्थान पर 'ईर्ष्या' और स्नेह को रखा है।[182] हेमचन्द्र ने तैंतीस व्यभिचारी भावों के अतिरिक्त दम्भ, उद्वेग, क्षुत एवं तृष्णा को भी व्यभिचारी भाव माना है।[183] नाट्यदर्पण में तैंतीस व्यभिचारीभावों का उल्लेख है–

निर्वेद–

ग्लान्यपस्मार–शंकाडसूया–मद–श्रमाः।
चिन्ता चापलमावेगः, मतिर्व्याधिः स्मृतिधृंति।।
अमर्षो मरणं मोहः, निद्रा–सप्तौग्रय–हष्ठयः।
विषादोन्माद–दैन्यानि, व्रीडा–त्रासो वितर्कणम्।
गावौंत्सुक्यावहित्थानि, जाडयालस्य–विवोधनम्।
त्रयस्त्रिंशद्र यथायोगं, रसानां व्यभिचारिणः।[184]

इनके अतिरिक्त इन्होंने क्षुत, तृष्णा, मैत्री, मुदिता, श्रृद्धा, दया, उपेक्षा, अरति , सन्तोष, क्षमा, मार्दव, आर्जव, दाक्षिण्य आदि को भी संचारी भाव माना है।[185] इन संचारियों का हम पूर्वकथित संचारीभावों में ही अन्तर्भाव कर सकते हैं। तत्वज्ञान, दारिद्रय, व्याधि, अपमान, ईर्ष्या, भ्रम, आक्रोश, ताडन, इष्टवियोग एवं परविभूतिदर्शन आदि कारणों से अपने प्रति विरसता 'निर्वेद' हैं। 'संकल्प सूर्योदय' नाटक में निर्वेद का उदाहरण दृष्टव्य है–

सारः सारस्वतानां शठरिपुभणितिः शान्तिशुद्धान्तसीमा
मायामायामिनीभिः स्वगुणविततिभिर्वन्ध्ययनतीं ध्यनती
पारं पारंपरीतो भवजलद्यिभवन्मज्जनानां जनानां
प्रव्यक्प्रत्यक्षयेन्नः प्रतिनियतरमासंनिधानं निधानम्।[186]

मनः – भगवति, तव प्रसादादपास्त एव व्यामोहः।

किन्तु–

भगवति तव मुखशधरगलितैर्विमलोपदेशपीयूषैः

क्षालितमपि मे ह्रदयं मलिनं शोकोर्मिभिः क्रियते।[187]

और वह निःश्वास और संताप तथा उनके उपलक्षण रूप होने से चिन्ता, अश्रु, विवर्णता एवं दैन्यादि अनुभावों का भी जनक होता है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' में इन अनुभावों का सफल प्रयोग किया गया है।

व्याधि, वमन, विरेक, क्षुधा, पिपासा, जरा, व्यायाम, मार्गगमन एवं सुरत आदि से सामर्थ्य का आभाव 'ग्लानि' है। इसके अनुभाव– शरीर का क्षीण होना, कम्पन वचन वा क्रिया का मन्द हो जाना, गति धीमी पड़ जाना, मुख का वर्ण्य फीका पड़ जाना एवं अनुत्साह आदि हैं।

पिशाचादि के कारण तथा धातुवैषम्य, व्यक्त स्थान के सेवन एवं अशुचि–सम्पर्क आदि के कारण कार्य एवं अकार्य की विवेचना शक्ति जाती रहती है। इसी को 'अपस्मार' कहते हैं। इसमें सहसा भूमि पर गिर पड़ना मुख से फेन निकलना, निःश्वास दौड़ना, कम्पन, स्तम्भ एवं स्वेद आदि चेष्टाएँ होती हैं।
'संकल्प सूर्योदय' में इन चेष्टाओं का चित्रण देखें–
व्यवसायः –

क्वचिद्वाहाधीशः क्वचिदमरदन्तावलपतिः

क्वचित्प्रालेयांशुः क्वचिदमृतविच्छर्दितमिति

अतिक्षोभे सिन्धोरयमनघनिद्रोद्धतगिरि

र्विषादं लेखानां विघटयति वैकुण्ठकमढः।[188]

कापालिकः – अरे क्षपणक, धर्मं तावदस्माकमवधारय।

मस्तिष्कान्त्रवसाभिपूरितमहामांसाहुतीर्जुह्वतां

वह्नौ ब्रह्मकपालकल्पितसुरापानेन नः पारणा

सद्यः कृतकठोरकण्ठविगलत्कीलालधारोज्ज्वलै

रर्च्यो नः पुरूषोपहारवलिभिर्देवो महाभैरवः।[189]

में अपस्मार का प्रयोग हुआ है। अपने या दूसरों के दुष्कर्मों से मन का कम्पन 'शंका' है। शरीर का वर्ण्य श्याम होना, बार–बार अवलोकन, अवगुण्ठन, मुख कण्ठ एवं ओष्ठ का सूख जाना, जिह्वा से चाटना, कम्पन एवं चंचल दृष्टि का होना इसके अनुभाव हैं। यथा–

श्रृद्धा— (सभयोत्कम्पम्)

घोरां नारकपालकुण्डलवतीं विद्युच्छटां दृष्टिभि

र्मुंचन्तीं विकरालमूर्तिमनलज्वालापिशंगैः कचैः

दंष्ट्राचन्द्रकलांकुरान्तरललज्जिहां महाभैरवीं

पश्यन्त्या इव मे मनः कदलिकेवाद्याप्यहो वेपते ।[190]

द्वेष, अपराध, गर्व दूसरों का सौभाग्य और ऐश्वर्य, विद्या आदि कारणों से सदगुणों को न सह सकना 'असूया' हैं। यह विद्यमान अथ`वा अविद्यमान वंचकत्वादि दोषों को देखने वाली होती है। भ्रू भंग, अवज्ञा, गुणों को छिपाना, मन्यु एवं क्रोध आदि इसके अनुभाव हैं। यथा—

महामोहः — (विहस्य) अहोनिरंकुशा जडधियः। आत्मारित्त देहव्यतिरिक्तमूर्तिर्भोक्ता सलोकान्तरितः फलानाम्। आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रर्थायसः स्वादुफलप्रसूतौ ।[191]

महामोहः —

(सरोषसंरम्भं दन्तान कटकटापयन्) भगवन् आः। कष्टम्। अश्रुतपूर्वमिदं श्रुतम्। वाचिकशेषस्तु भवतु वा मा वा। कः कोऽत्र भोः हन्यतामयं वार्ताहरः।[192]

मद्यपानादि से उत्पन्न हर्ष आदि को 'मद' कहते हैं। यह मद तीन तरह का होता है— ज्येष्ठ, मध्यम, और अद्यम। ज्येष्ठ मद में निद्रा, मुस्कराहट, मुख पर लाली, रोमहर्ष, ईषद, व्याकुल वचन एवं सुकुमार गमन आदि अनुभाव पाए जाते हैं। यथा—

भिक्षुः — महाप्रसादः (इति चषकं गृहीत्वा पिवति) अहो सुरायाः सौन्दर्यम्।

निपीता वेश्याभिः सह न कतिवारान्सुवदना

मुखोच्छिष्टाऽस्माभिर्विकचवकुलामोदमधुरा

कपालिन्या वक्त्रासवसुरभिभेतां तु मदिरा

मलब्धा जानीमः स्पृहयति सुधायै सुरगणः।[193]

भिक्षुः — (विहस्य) अयमनभ्यासातिशयपीतया मदिरया दूरमुन्मनीकृतस्तपस्वी। तत्क्रियतामस्य मदापनयनम्।[194]

सुरत, मार्गगमन एवं व्यायाम आदि से जनित खेद को 'श्रम' कहते हैं और वह स्वेद 'श्वास' का तेज चलना, मुख विकूणन, विजृम्भण, अंगमर्दन एवं मन्दगति आदि का कारण होता है और इष्ट की प्राप्ति अथवा अनिष्ट प्राप्ति से जो मानसिक

पीड़ा होती है, उसे 'चिन्ता' कहते हैं। इसमें इन्द्रियों का विकल होना, एकाग्र दृष्टि होना, स्मृति, दीर्घश्वास एवं कृशता आदि अनुभाव पाए जाते हैं। 'प्रवोधचनद्रोदय' नाटक में चिन्ता का चित्रण देखें–

मन– हा प्रिये, क्वासि देहि मे प्रतिवचनम्।

ननुदेवि– स्वप्नेऽपि देवि रमसे न विनां मया त्वं
स्वापे त्वया विरहितो मृतवदभवामि
दूरीकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि
जीवत्यवेहि मन इत्यसवो दुरन्ताः।[195]

यहाँ अनिष्ट प्राप्ति से मन की 'चिन्ता' दिखलाई गई है।

(विचिन्त्य) कथमिह विवेकभूभृतः सांग्रामिकविहारशेषः संपत्स्यते अथवा,

मदनक्रोधलोभानां निपाते मोहभूपतिः
योधयिष्यति यं कंचित्स्वयं वा योद्धमर्हति।[196]

राग, द्वेष एवं जड़ता आदि के कारण सहसा बिना समझे–बूझे काम करना 'चापल' है। देवता, गुरू, मान्य वल्लभ एवं सफलता आदि इष्ट के श्रवण अथवा दर्शन आदि से तथा अग्नि, भूकम्प आदि उत्पात, झंझावात, जोर की वर्षा, हाथी, चोर सर्प आदि जनित अनिष्ट के श्रवण अथवा दर्शन से लोगों में जो संभ्रम पाया जाता है। उसे 'आवेग' कहते हैं। यहाँ 'संकल्पसूर्योदय' नाटक में महामोह के द्वारा नारद के दर्शन के प्रसंग में आवेग' का निरूपण इस प्रकार हुआ है–

महामोहः – भगवन्, धन्याः खलु वयमिदानीं संवृताः यदभगवतः पितामहस्य प्रियसुतेन चतुर्दशभुवनवैचित्र्यदर्शिना सकललोकपालमौलिमालोपललितपादपंकजेन भगवता संभावितेयं मायाभिधाना मर्दाया राजधानी।[197] यदि आवेग इष्टजनित है तो अभ्युत्थान (बड़ों के सम्मान के लिए आसान छोड़कर खड़ा होना) पुलक, आलिंगन, वस्त्रादि, प्रदान आदि आंगिक अनुभाव, हर्ष, विस्मय आदि मानस अनुभाव, स्तुति एवं चाटुकारिता आदि वाचिक अनुभाव होते हैं। यदि संभ्रम अनिष्ट जनित है, तो सर्वांग शैथिल्य, मुख वैवर्ण्य, अंगो का सिकुड़ जाना, वेग से दौड़ना, नेत्रों का आकुल होना, त्वरित अपसरण, शस्त्रग्रहण, भूमि पर गिरना, कम्प, स्वेद, स्तम्भ आदि आंगिक अनुभाव है। शंका, विशाद, भय आदि मानष अनुभाव, क्रन्दन और परिदेनात्मक वचन आदि वाचिक विचार पाये जाते हैं।शास्त्रविषयक चिन्तन, तर्क तथा उपदेश आदि के कारण जिससे

संशय अथवा विपर्यय का नाश हो जाता है, ऐसी नव नवोन्मेषशालिनी बुद्धि को 'मति' कहते हैं। इसमें संशय, विपर्यय व भ्रान्ति आदि का उच्छेद होता है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' में मति एवं राजा का सम्वाद में इन अनुभावों को देखें—

मति— आर्यपुत्र, यद्येवं कुलप्रभोर्दृढग्रन्थिनबद्ध स्यापि वन्धमोक्षो भवति तदा तया नित्यानुबन्ध एवार्यपुत्रो भवत्विति सुष्ठु में प्रियम्।[198]

कफ, वात, पित्त और उनके सन्निपात आदि दोषों से आंगिक अथवा मानसिक क्लेश होता है, उसे 'ब्याधि' कहते हैं। इसमें आर्तस्वर, कम्पन, मुख शोथ, दाँत कटकटाना, शीताभिलाष, विक्षिप्तांगता एवं सन्ताप आदि अनुभाव पाये जाते है और जब किसी सदृश पदार्थ के दर्शन या श्रवण या उसके चिन्तन आदि से पूर्वदृष्ट पदार्थ का ज्ञान होता है तब उसे 'स्मृति' कहते हैं। इसके अनुभाव हैं, विवेक ज्ञान अथवा बहुश्रुतत्व , पवित्र आचरण, क्रीड़ा देवतादि भक्ति एवं विशष्टि शक्ति आदि से जो सन्तुष्टि होती है उसे 'धृति' कहते हैं।

दम्भः — (विलोक्य) सानन्दम आये, आर्यः पितामहोऽस्माकमहंकारः। आर्य, दम्भो लोभात्मजोऽहं भो अभिवादये।

अंहकारः — वत्स आयुष्मान्भव। बालः खल्वंसि मया द्वापरान्ते दृष्टः। संप्रति चिरकाल विप्रकर्षाद्धार्धक्यग्रस्ततया च न सम्यक्पव्रत्यभिजानामि। अपि त्वत्कुमाररस्यान्ततस्य कुशलम?[200]

धृति में देहपुष्टि एवं गतानुशोचन का अभाव आदि अनुभाव पाए जाते हैं। तिरस्कार और अपमान आदि के कारण तत्कर्त्ता के विषय में उपकार करने की अभिलाषा को 'अमर्ष' कहते हैं। इसमें कम्पन, अधोमुख चिन्तन, प्रस्वेद, उत्साह, उपायान्वेषण, तर्जन, ताडन आदि अनुभाव पाए जाते हैं। यथा—

महामोहः — (अनादरातिशयं नाटयन्) किं नश्छिन्नम् श्रृणुमस्तावत्। दूत ततस्ततः। मरण, इसमें इन्द्रिय वैकल्य, हिक्का निःश्वास, परिजनों का देखना अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण आदि अनुभाव हैं।

मर्म स्थल पर अभिघात, तीव्र वेदना, व्याघ्र आदि के आक्रमण,देशविप्लव अग्नि, जल आदि का उपघात, शत्रु आदि के दर्शन एवं श्रवण आदि से प्रवृत्ति निवृत्ति के ज्ञान का जो आभाव होता है उसे 'मोह' कहते हैं। इसमें सिर का चकराना, भ्रमण, पतन इन्द्रियों का व्यापार रहित होना आदि अनुभाव होते हैं। खेद, आलस्य, दौर्बल्य,

रात्रि–जागरण, अत्याहार, मद, श्रम, क्लम, चिन्ता एवं निद्रा आदि के कारण इन्द्रियाँ स्वविषय ग्रहण से उपरत हो जाती हैं। इसी को 'निद्रा' कहते हैं। निद्रा की गाढ़तम अवस्था को 'सुप्त' कहते हैं। हिंसक , असत्यवादी एवं वंचक आदि दुष्ट व्यक्तियों के कटुभाषण एवं चौर्य आदि अपराध के कारण उनके प्रति राजा आदि की निर्दयता 'औगृय' है। प्रिय संयोग अथवा अप्रिय संयोग की निवृत्ति देव, गुरू राजा एवं स्वामी आदि की प्रसन्नता, धन एवं पुत्र आदि का लाभ, पुत्रादिगत हर्ष, विषयोपभोग एवं उत्सव आदि के कारण चित्त का विकास 'हर्ष' है। इनमें स्वेद, अश्रु, गदगद वाणी, पुलक, प्रियभाषण, नेत्र एवं मुख आदि की प्रसन्नता आदि अनुभाव हैं। यथा–

विष्णुभक्तिः –

(सहर्षमुपसृत्य) चिरेण खल्वस्माकं संपन्नाः सर्वे मनोरथः। येन प्रशान्ताराति भवन्तमवलोकयामि।[203]

पुरूषः – (साहलादम्) एहिपुत्र परिष्क्जस्व माम्।[204]

नारदः – (सहर्षम्) सखे, आगतोऽयमनेकधा कर्णास्वादः।[205]

तुम्बुरूः – (सहर्षम्) भगवान् संप्रति लोभविध्वंसनेन लुपतलोकायतमिव लोकमवलोक–यामि।[206]

प्रारम्भ किये हुए कार्य का पूरा न होना, दैव की अनुकूलता आदि इष्ट की प्राप्ति न होने से जनित अनुत्साह से आक्रान्त चिन्त–सन्ताप को 'विषाद' कहते हैं। ग्रह दोष से मन की अस्थिर दशा को 'उन्माद' कहते हैं। इसमें अनुचित गीत, नृत्त उठना, सोना, रोना, बुरे शब्दों का प्रयोग करना, असम्बद्ध प्रलाप, आदि अनुभाव पाए जाते हैं। अभाग्यवश कष्टमय जीवन अथवा तिरस्कार आदि से मन क्लैव्य को 'दैन्य' कहते हैं। यथा–

मनः – (समाश्वस्य) अलमस्माकमतः परं जीवितेन। संकल्प चितामारचय। यावदनलप्रवेशेन शोकानलं निर्वापयामि।

गुरूजनों की आज्ञा का उल्लंघन, उनके अपमान एवं निन्दा आदि स्वकृत बुरे आचरणों के बाद मन में उस दुष्कृत्य के सम्बन्ध में जो विवेक होता है अर्थात् अनुभव होता है उसे 'ब्रीड़ा' कहते हैं। भीषण निर्घात, उत्पात महाभैरवनाद महारौद्र सत्व एवं शव आदि के दर्शन से जो उद्वेगकारी चमत्कार होता है, उसे 'त्रास' कहते हैं। विप्रतिपत्ति सन्देहनिवारक प्रबल प्रमाण के बल से उत्पन्न दूसरे के पक्ष के

अभाव का ज्ञान एवं विशेष प्रतीति की इच्छा आदि विभावों से एक पक्ष की सम्भावना करना 'तर्क' है।

तर्कः – अस्त्वेवम्। तथापि सर्वधातुरत्रचित्रितं सर्वौषधिसंभवस्थानं सर्वोर्वीधरसमधिकम हिमवन्त हिमवन्तमव लोकयतु देवः।

भौंह, सिर व अंगुलियों का नचाना आदि इसके अनुभाव हैं। 'गर्व' दूसरों की अवज्ञा, पारूष्य, असूया, उत्तर न देना, उपहास करना आदि इसके अनुभाव हैं। इष्ट का स्मरण, अत्यन्त अनुराग एवं लोभ आदि के कारण इष्ट की ओर अभिमुख होना 'औत्सुक्य' है। इसमें मन, वचन, काय एवं दृष्टि का चपल होना, कृत्य विस्मरण, दीर्घनिःश्वास, असम्वद्ध वचन, हृदय का सन्ताप आदि अनुभाव हैं। प्रगल्भता, भय, लज्जा, गौरव कुटिलाशयत्व आदि के कारण भ्रूविकार एवं मुख राग आदि मानसिक विकारों का संवरण 'अविहत्था' है।

नारदः – अनाहतदृष्टिखलोकयन इगितेन इतमभिनन्दति।[209]

इष्ट के दर्शन अथवा श्रवण, अनिष्ट के दर्शन अथवा श्रवण, व्याधि आदि के कारण नेत्र एवं श्रोत आदि से क्रमशः देखते हुए, सनुते हुए भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाना 'जाड्य' है। इसमें मनोवैकल्य और अचैतन्य नहीं पाया जाता है। मौन, अनिमेष, निरीक्षण एवं परवशता आदि इसके अनुभाव हैं। शब्द, स्पर्श, स्वप्नान्त एवं भोजन का परिपाक हो चुकने आदि के कारण नींद की अवस्था के चले चले जाने पर 'विवोध' होता है।

इस प्रकार व्यभिचारी भावों का वर्णन इन दोनों नाटकों में हुआ है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस प्रकार संचारियों की सीमा निश्चित कर देना न तो अन्तर्दृष्टि का परिचायक है न रसों की दृष्टि से उपयोगी ही। वस्तुतः प्रत्येक भाव अथवा स्थिति में कुछ न कुछ प्रभाव का अन्तर तो बना ही रहता है। अतएव इनकी कोई सीमा निर्धारित करना हितकर नहीं। आधुनिक विद्वानों ने इनकी संचरणशीलता को ही लक्षित करते हुए ''अस्थिर मनोविकारों या चित्तवृत्तियों को 'संचारी' भाव की संज्ञा दी हैं।''

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' केवल मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण वाद तक नहीं सीमित हैं। मनोविज्ञान का लक्ष्य काम आदि कुण्ठाओं को स्वस्थ एवं प्रकृतिस्थ कर देना है। आशयः यह है कि मनुष्य पतनशील वृत्तियों को

रोककार एक सहज एवं सामान्य जीवन जी सके, किन्तु इन नाटककारों ने मन को प्राण और वाक की सीमा से ऊपर उठाकर परमात्मा तक ले चलते हैं। परमात्मा की स्थति वह है जहाँ मानव मन सम्पूर्ण इन्द्रियाँ स्वार्थ से निकलकर परमार्थ में विलय कर जाती है। बूँद का समुद्र में एकाकार हो जाता है और सात्विक उद्रेको के कारण मनुष्य अपना सम्पूर्ण समर्पण उस विराट चेतन के प्रति कर देता है जहाँ स्वप्न और अभिलाषाएँ त्याग और सेवा के माध्यम से वृत्तियों को उपराम कर देती हैं। यह उपरामत्व ही आध्यात्मिक भाषा में भक्ति हैं। नाटककारों ने विष्णुभक्ति अथवा मुक्ति के प्रसंगो से इसी आध्यात्मिक सत्य का अवतरण कराया है। यही मनुष्यता का सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। मनोविज्ञान का कार्य मनुष्य में दैवीय सम्भावनाओं को जगाना है। मनोविज्ञान पूर्णताप्रदान करता है अध्यात्म परिपूर्णता प्रदान करता है।

आलोच्य नाटकों का उद्देश्य मनोजगत से चलकर आध्यात्मिक विश्लेषण तक सार्वभौम सत्यों का उद्घाटन करना है। मानव को पुरूषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि कराते हुए उसे आकांक्षाओं से मुक्ति भी प्रदान कराना है और विष्णु भक्ति के सार्वमांगलिक एवं सार्वदेशिक स्थापनाओं को प्रतिष्ठापित करना है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' का चरम लक्ष्य 'विष्णुभक्तिगतः चेता नरः लोकः नरोत्तमे' कहकर विष्णु भक्ति प्राप्त कराना है। किन्तु वेदान्तं देशिक के 'संकल्प–सूर्योदय' का लक्ष्य विशिष्टाद्वैत दर्शन के सिद्धान्त पथ पर आरूढ़ होकर मानव को भक्ति मात्र से सन्तुष्ट नहीं होना अर्थात उन्हें मुक्ति एवं कैवल्य को भी प्राप्त कराना है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' पुनर्जन्म को जारण कर जन्म–जन्मान्तर तक भक्ति वातावरण में लीनकर करील--कुंजों के बीच विष्णु का वेणु वादन सुनना चाहता है, किन्तु वेदान्त देशिक अनाहत नाद के सोपानों से समाधिजन्य आनन्द में निमग्न हो जाना चाहते हैं।

स्थायी भाव– स्थायीभाव का लक्षण इस प्रकार है–

''विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः''[212]

दशरूपककार के अनुसार जो रति आदि भाव अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी प्रकार के भावों द्वारा विच्छिन्न नहीं होता और लवणाकार के समान अन्य सभी भावों को आत्मसात कर लेता है, वह 'स्थायीभाव' कहलाता है। संचारी भावों को हृदय में उठने गिरने वाली लहरों से उपमा दी गई है। स्थायीभाव

उस महासागर के समान होता है, जिसमें वे लहरें उठती– गिरती रहती हैं। ये स्थायीभाव हृदय में वासना रूप से संस्थित रहते हैं। अभिनवगुप्त प्रथम दार्शनिक हैं, जिन्होंने इनकी वासनारूपता के सम्बन्ध में विचार किया है। जगत का कोई भी प्राणी इन चित्तवृत्तियों से शून्य नहीं है। संस्कार रूप होने से यह जन्म से ही प्रत्येक प्राणी के अन्तर्गत विद्यमान हैं। यह स्थायीभाव, प्रतिक्षण उत्पत्ति एवं विनाश–धर्म से युक्त व्यभिचारी भावों में अनुगत रूप से रहता है। स्थायीभाव को अन्य भाव मिटा नहीं सकता अन्य भावों को स्थायीभाव अपने में आत्मसात् कर लेता है। प्रायः किसी विशिष्ट भाव के आ जाने पर दूसरा भाव दब जाता है, प्रेम में लज्जा भाव उत्साह से दब जाता है, हर्ष, ईर्ष्या से दब जाता है, किन्तु इन सब अवस्थाओं में प्रेम की प्रतीति तो होती ही रहती है। इस प्रकार जो भाव न तो विरोधी भावों से दबता है और न अविरोधी भावों से दबता है किन्तु दूसरे भावों को अपने रूप में परिणत कर लेता है उसे स्थायीभाव की संज्ञा प्राप्त होती है। मनुष्य इस जन्म में जो कुछ देखता या सुनता है, उन सबका संस्कार उसके मन पर पड़ता है। क्षणिक होने के कारण उपर्युक्त अनुभव तो नष्ट हो जाता है परन्तु वह अपने पीछे एक स्थायी वस्तु 'संस्कार' छोड़ जाता है, जिसे वासना भी कहते हैं। मन में स्थायी रूप से रहने वाली इसी वासना को ही स्थायीभाव कहते हैं।

1. स्थायीभाव जन्मजात है और समस्त प्राणियों में वासनात्मक रूप से रहते हैं।
2. ये सजातीय तथा विजातीय भावों से नष्ट नहीं होते हैं।
3. ये अपने में अन्य भावों को आत्मसात कर लेते हैं।
4. ये आस्वाद का मूलभूत होकर विराजमान रहते हैं।
5. ये चर्वणा योग्य हैं।
6. ये विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से परिपुष्ट होकर रसरूप में परिणत हो जाते हैं।''

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार ''स्थायीभाव समस्त प्रबन्ध में व्याप्त और स्थिर रहते हैं।'' आचार्य भरत के अनुसार '' विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से स्थायीभाव ही रसत्व को प्राप्त होते हैं। स्थायीभाव की परिभाषा उन्होंने इस प्रकार दी है– सर्वेषां समवेतानां रूपं यस्य भवेदबहुः

स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषसंचारिणोमताः।[219]

अर्थात् अनेक भावों के समवेत होने पर जिसका अनेकधा रूप विस्तार होता है, उसी को स्थायी मानना चाहिए। इन स्थायीभावों की संख्या नव है। ये प्राणी की सबसे अधिक स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। स्थायीभाव तो इतने ही हैं क्योंकि उत्पन्न हुआ प्राणी इतनी ही वासनाओं से युक्त रहता है। 'प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर उत्कर्ष को प्राप्त रमण करने की इच्छा से युक्त रहता है। रमण करने की इच्छा के कारण व्यक्ति दूसरे का उपहास भी किया करता है। प्रत्येक व्यक्ति इष्ट वियोग से दुःखी होता है, इससे शोक की सत्ता का आभास मिलता है। इष्ट वियोग के कारण मानव प्रतिकूल कारणों के प्रति क्रोध करता है। शक्ति के अभाव में वह उन वस्तुओं से डरता भी है। व्यक्ति किसी को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, अनुचित पदार्थ के प्रति घृणा करता है।, अपने या अन्य के कार्यों को देखकर विस्मित होता है एवं त्याग करने की इच्छा करता है।''[221] इस प्रकार व्यक्ति उपर्युक्त स्थायीभावों से युक्त रहता है। ''उपुर्यक्त संस्कारों में राग, द्वेष, उत्साह और जुगुप्सा का अत्यधिक प्राधान्य है। ये संस्कार मानव योनि में ही नहीं अपितु पशु, पक्षी, कीट एवं पतंग आदि में भी पाए जाते हैं। इन चित्तवृत्तियों के संस्कारों से रहित कोई भी प्राणी नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी प्राणी में कोई चित्तवृत्ति अधिक होती है और किसी में कुछ कम।[222]

भरत ने रस के नाट्यधर्मी आचरण के आधार पर स्थायीभावों की आठ कोटियों का उल्लेख किया है–

1. रति– यह रस राज श्रृंगार का स्थायीभाव है। श्रृंगार को उत्कृष्टतम रसरूप मानने वाले रति को ही समस्त भावों के मूल में मानते हैं।[223] आचार्य भरत के अनुसार ' रति स्त्रीपुरूष हेतुक और उत्तम युवा प्रकृति की होती है''[224] अभिनव गुप्त ने इसे और स्पष्ट करते हुए परस्पर निष्ठारूप, परिपूर्ण सुख प्रदान करने वाली तथा प्रारम्भ से फलप्राप्ति तक रहने वाली रति को श्रृंगार रस का कारण माना है। यथा–

श्रोणीभारभरालसा दरगलन्माल्योपवृत्तिच्छला
लील्लोत्क्षिप्तभुजोपदर्शितकुचोन्मीलन्नखांकावलिः
नीलेन्दीवरदामदीर्घरतया दृष्टया धयन्तीमनो
दोषान्दोलनलोलकंकणरणत्करोत्तरं सर्पति।[225]

विवेकः –

एलालिंगितचन्दना वनभुवो मुक्ताप्रसूतिर्नदी

ताम्बूलीपरिणद्धपूगपटली कच्छोपकण्ठस्थली
काले दक्षिणमारूता विदद्यते कामाग्निसंधुक्षणं
कुंजान्यत्र च भुंजते युवतिभिः स्वर्लोकश्रृंगारिणः ।[226]

2. हास– यह हास्य रस का स्थायीभाव है। हास के विभाव जुड़े हुए होने के कारण लोकव्यवहार में भी हास्य का कारण बनते हैं। रति के समान ही संस्कार–रूढ़ यह भाव काव्य और जीवन में हास्य उत्पन्न करने में समर्थ होता है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार '' वागादिवैकृतैश्चेतो विकासोहास उच्यते।''[227] यथा–

त्वया दृष्टस्तुष्टिं भजति परमेष्ठी निजपदे
वहन्मूर्तीरष्टौ विहरति भृडानीपरिवृढः
विभर्ति स्वाराज्यं वृषशिखरिश्रृंगारकरूणे
शुनासीरो देवासुरसमरनासीर सुभटः ।[228]

3. शोक– भवभूति की रागाग्रही दृष्टि ने संवेदनात्मक सघनता के आधार पर शोक स्थायीभाव से उदभूत करूण रस को ही मूल रस माना है। वस्तुतः अपनी उदारता में यह भाव चित्त को एक निरहंकारी संस्कार देता है, निर्वैयक्तिकता की ओर ले जाता है। यह दुखवर्ग का संस्कारावस्थित भाव है। साहित्यदर्पणकार ने इष्टनाश आदि के कारण उत्पन्न चित्त की व्याकुल दशा शोक को स्थायीभाव माना है। यथा–

मनः – (सास्त्रम्) हा पुत्रकाः, क्व गताः स्थ। दत्त मे प्रियदर्शनम्। भो भोः कुमारकाः रागद्वेषमदमात्सर्यादयः, परिष्वजध्वं माम्। सीदन्ति ममांगानि हा। न कश्चिन्मां वृद्धमनाघ संभावयति। क्व गता असूयादयः कन्यकाः। आशातृष्णाहिंसादयो वा स्नुषाः। कथं ता अपि मन्दभाग्यस्य मे समकालमेव दैवहतकेनापहताः।

विसर्पति विषाग्निवद्वहति शर्ममर्माविध
स्तनोति भृशवेदनाःकषति सर्वकार्श्यवपुः
विलुम्पति विवेकितां हृदि च मोहमुन्मीलय
व्यहो ग्रसति जीवितं प्रसभमेव शोकज्वरः ।[229]

1. क्रोधः – 'क्रोध' रौद्र रस का स्थायीभाव है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार ''प्रतिकूलेषु तैक्ष्णयस्यावबोधः क्रोधउच्चते[230] यह लौकिक एवं लोकोत्तर अर्थों से जोड़ सकने वाला भाव है।इसका आधार अंहकार के साथ–साथ सात्विक अभिमान हो सकता है। इसमें एक अतिजाग्रत उत्तेजना होती है, जो व्यक्ति को अधिकाधिक

स्वनिष्ठ करती है। यथा–

अहंकारः – आः कथमस्माकमपि कुलशीलादिकमिदानीं परीक्षितव्यम्। श्रूयताम–

गौडं राष्ट्रमनुत्तमं निरूपमा तत्रापि राढापुरी
भूरिश्रेष्ठकनाम धाम परमं तत्रोत्तमो नः पिता
तत्पुत्राश्च महाकुला न विदिताः कस्यात्र तेषामपि
प्रज्ञाशीलविवेक धैर्यविनयाचारैरहं चोत्तमः।[231]
धिग्ब्रह्माण्डकरण्डगहरकुटीकपूरपूरं यशो
धिक्प्रहत्रिदशेन्द्रफालफलकस्पष्टोपमृष्टं पदम्
धिग्दोर्विक्रंममदभुतं मम पुनर्धिग्वादमेवास्तु धिक्
सोढा वैरिकथामपि स्वयमहं नीचाय मह्मं नमः।[232]

5. उत्साह– इस स्थायीभाव से वीर रस की उत्पत्ति होती है। यह भी मन की एक उत्तेजित अवस्था हैं। क्रोध की उत्तेजना और उत्साह की उत्तेजना में फर्क है। इसमें व्यक्ति की शिरा–शिरा जाग्रत रहती है साथ ही विवेक भी सक्रिय होता है। कविराज विश्वनाथ के अनुसार ''कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते''[233] यथा–

क्षतजमधु रणस्थैर्दत्तमुर्त्तामीतम्भिताभ्र ध्वजपटपुनरूक स्वर्धुनीकैरनीकैः
पलभुज इस जाग्रन्नन्दथूनां वधूनां पृथुकरटिकरोटीकर्परैर्पयन्ति।[234]

6. भय– इस स्थायीभाव से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। इसके मूल में असुरक्ष की आत्यन्तिक भावना होती है। यथा–

श्रृद्धा– (सभयोत्कम्पम्)

धोरां नारकपालकुण्डलवतीं विद्युच्छटां दृष्टिभि
र्मुंचन्तीं विकरालमूर्तिमनल ज्वालापिशंगैकचैः।
दंष्ट्राचन्द्रकलांकुरान्तरललज्जिहां महाभैरवीं
पश्यन्त्या इव मे मनः कदलिकेवाद्यात्यहोवेपते।[235]

'संकल्प सूर्योदय' नाटक में भयानक रस का निरूपण इस प्रकार किया गया है–

व्यवसायः – अभी च भृगुरधुयदुवंशसंभवाः
विश्वमेत्सनाथीकृतम्।[236]

7. जुगुप्सा– इसमें वीभत्स की उत्पत्ति होती है। यथा–

शोभते सुमतिसहाय ईद्वशलोभादिमारणसमर्थः

एषोऽसुलभसौरभरुधिरसुधासारशीतले संख्ये
क्वचिद्वाहाधीशः क्वचिदमरदन्ताक्लपतिः
क्वचित्प्रालेयांशुः क्वचिदमृतविच्छर्दितमिति
अतिक्षोभे सिन्धोरयमनधनिद्रोद्धतगिरि
र्विषादं लेखानां विघटयति वैकुण्ठकमठः[238]
मस्तिष्कान्त्रवसाभिपूरितमहामांसाहुतीर्जुह्वतां
बहौ ब्रह्मकपालकल्पितसुरापानेन नः पारणा
सद्यः कृत्तकठोरकण्ठविगलत्कीलालधारोज्जवले
रच्यों नः पुरूषोपहारबलिभिर्देवो महाभैरवः[232]

विस्मय— 'विस्मय' स्थायीभाव से अदभुत रस की उत्पत्ति होती है। यह सुखात्मक भाव है। विलक्षण पदार्थ, दृश्य या व्यक्ति अथवा बोध के अनुभव से 'विस्मय' नामक चित्त संस्कार का उद्‌भव होता है। यथा—

राजा— (सविस्मयम्) अहो महानयमदभुतनरसिंहः।
दम्भोलिश्रेणिदीव्यत्खर नखर मुख क्षुण्ण दैतेयवक्षो
निष्ठयूतासृक्स्त्रवन्तीभरित दशदिशा दर्शितापूर्वसंध्यः
स्वामिध्वंसप्रकुप्यत्सुररिपुपृतनास्तोमरूपं स एष
ब्रह्मस्तम्बैकचन्द्रो बहुभिरिह करैन्धकारं निरून्धे।[240]

8. शम— 'शम' के स्थान पर मम्मट आदि काव्यशास्त्रियों को शान्त रस का स्थायीभाव 'निर्वेद' स्वीकार है। इस भाव में मन की सात्विक अन्तर्मुखता का प्राधान्य होता है। यह भी एक सुखात्मक भावदशा है। निर्वेद और शम में स्पष्ट अर्थ भेद है। निर्वेद की मनःदशा में व्यक्ति लोकोत्तर ज्ञान के सान्निध्य में आत्म—सीमाओं का साक्षात्कार करता हुआ अपनी निरीहता, भगुंरता से परिचित होता है। 'शम' में स्थूल अहंकार से मुक्त मन की नीरव तटस्थ दशा का बोध पाया जाता है। शम का जन्म वैराग्यमूलक निरीता से नहीं होता अपितु यह मूलभाव आत्मज्ञान के अखण्ड आत्मविश्वास से पोषित होता है। यथा—

कामादिकेष्वपगतेषु कथावशेषं
संप्रत्यसौ शमदमादिगुणोपपन्नः
मैत्रीदयादिपरिकर्मविभूषितेन

श्रद्धाधनेन मनसा लभते समाधिम्[241]
एषोऽस्मीति विविच्य नेतिपदतश्चित्तेन सार्धकृते
तत्वानां विलये चिदात्मनि परिज्ञाते त्वमर्थे पुनः।
श्रुत्वा तत्वमसीत बाधितभवध्वान्तं तदात्मप्रभं
शान्तं ज्योतिरनन्तमन्तरूदितानन्दः समुद्धयोतते।[242]

व्यक्तिविवेक के प्रसिद्ध टीकाकार रुय्यक के मतानुसार भी स्थायीभावों का व्यभिचारित्व होता है यथा देवातादि विषयक रतिभाव में हास, श्रृंगार आदि शोक विप्रलम्भ श्रृंगार आदि में, क्रोध प्रणयकोप में, विस्मय वीर आदि में, उत्साह श्रृंगार आदि में, भय अभिसारिका आदि में, जुगुप्सा संसार की निन्दा आदि में, रम क्रोधित व्यक्ति के प्रसादोद्गम आदि में व्यभिचारी भाव होते हैं।

भानुदत्त मिश्र ने भी 'रसतरंगिणी' में स्थायीभावों का व्याभिचारित्व स्वीकार किया है। यथा हास श्रृंगार में रति, शान्त, करूण तथा हास्य में, भय एवं शोक करूण तथा श्रृंगार में क्रोध वीर में, जुगुप्सा भयानक में, उत्साह एवं विस्मय समस्त रसों में व्यभिचारी होते हैं। अल्लराज का कथन है कि प्रायः भय तथा उत्साह स्थायीभाव व्यभिचारी भाव के रूप में उपस्थित हो जाते हैं और भावों को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। शारंगदेव ने लिखा है कि "पर्यापत एवं समुपयुक्त विभावों से जायमान इत्यादि 'स्थायी' कहलते हैं। वे ही जब अल्प विभावों से जायमान होते हैं, तो व्यभिचारी कहलाते हैं। तब वे अन्य रसों में भी व्यभिचारी होते हैं। यथा हास श्रृंगार में, रति शान्त में, क्रोध वीर में, भय शोक में, जुगुप्सा भयानक में तथा उत्साह एवं विस्मय समस्त रसों में व्यभिचारी होते हैं। अतः दशरूपककार का मत है कि स्थायीभाव वहीं हो सकता है जिसको विरोधी या अविरोधी भाव दवा न सके।

प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प–सूर्योदय में रस निष्पत्ति–

"नहि रसाद्वते कश्चिदर्थः प्रवर्तते" नाट्यशास्त्र के अनुसार बिना रस के ज्ञान के नाट्य के विभावादी अर्थो का समझना कठिन है। रस सिद्धान्त का बीज भरतमुनि के नाटयशास्त्र में उपलब्ध रस निष्पत्ति से सम्बन्धित सूत्रवाक्य में विद्यमान है–

"विभावानुभावव्यभिचारिभाव संयोगादृसनिष्पतिः विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रससाधना का एक व्यापक अनुष्ठान भरत ने किया है जिसमें भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति

सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रंगसंग्रह को रस की अपेक्षा के क्रम से शामिल किया है। नाटय में स्वीकृत रस आठ हैं– श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अदभुत। आठ स्थायीभाव है– रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय ,जुगुप्सा तथा विस्मय। तैतीस संचारी भाव इस प्रकार हैं– निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, प्रबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरणत्रास, एवं वितर्क, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, ब्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग आदि। आठ सात्विक भाव इस प्रकार हैं– स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपुथु, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय।

नाट्याश्रित अभिनय के चार प्रकार– आंगिक, वाचिक आहार्य तथा सात्विक हैं। धर्मी दो होते हैं– लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी। वृत्तियाँ चार हैं– आवन्ती, दाक्षिणात्यां औड़मागधी, पांचाली तथा मध्यमा। सिद्धियाँ द्विविध हैं– दैवी, मानुषी। स्वर सात हैं– निषाद, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा षड्ज। आतोद्य चार प्रकार के होते है।–तत, अवनद्ध, धन तथा सुषिर। 'धुवा' के संयोग से होने वाला गायन पाँच प्रकार का होता है– प्रवेश, आक्षेप, निष्काम, प्रासादिक तथा आन्तर। प्रेक्षागृह के तीन प्रकार होते हैं। चतुरत्र, विकृष्ट, त्र्यस्त्र । उपनिषदों में अधिक सूक्ष्म और अभौतिक अर्थ सन्दर्भ में 'रस' का प्रयोग मिलता है– एषां भूतानां पृथ्वी रसः। पृथिव्या आपो रसः। औपामौषधयो रसः। औषधीनां पुरूषो रसः। पुरूषसस्य वाग रसः। वाग ऋच रसः। ऋचः साम रसः। साम उदगीथो रसः।[250]

सांख्य दर्शन में रस का अर्थ अधिक सूक्ष्म, अधिक उदात्त है। भरत का युग नाटय काव्य और संगीत की चरम समृद्धि का युग था। भरत का नाट्यशास्त्र सार्थक संवादों में रचा गया 'शास्त्र है।

काव्य के पठन श्रवण अथवा नाटक के दर्शन से निष्पन्न लोकोत्तर आनन्द ही रस है जिसकी व्याख्या भरतमुनि के रससूत्र के आधार पर अनेक आचार्यो ने की है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, ''एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते'' अर्थात् सामान्य गुण के योग से भावों से रसों की निष्पत्ति होती है। यह सामान्य गुण योग का तात्पर्य उनके साधरणीकृत रूप से ही प्रतीत होता है। अर्थात वे भाव किसी व्यक्ति चरित्र या पात्र से सम्बिन्धित न रहकर जब सार्वसामान्य से सम्बन्धित हो जाते हैं तब रस की निष्पत्ति होती है। दृश्यकाव्य के सन्दर्भ में चार आचार्य और उनके नाम पर

प्रसिद्ध वाद विशेष प्रसिद्ध हैं–

यथा हि नानाण्यंजनौषधिद्रण्यसंयोगाद्रसनिष्पतिर्भवति,
यथा हि गुड़ादिभिर्द्रव्यैंजनैरौषधिभिश्च षाड्वादयो रसा निर्वर्त्यन्ते,[251] तथा नाना भावोपगता अर्थात जिस प्रकार विविध व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से भोज्यरस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादिद्रव्यों व्यंजनों, औषधियों से षाडवादि रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से युक्त होकर स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त करते हैं।

डॉ0 नगेन्द्र ने इस निष्पत्ति–सूत्र को ठीक–ठीक लक्ष्य करते हुए लिखा है, ''यहाँ पहले उपवाक्य में 'रसनिष्पत्ति होती है, दूसरे में रस बनते हैं और तीसरे में 'रसत्व को प्राप्त होते हैं'– इन तीन परस्पर सम्बद्ध क्रियाओं का प्रयोग किया गया है, इनके आधार पर निष्पत्ति का अर्थ है बनना या होना, स्वरूप को प्राप्त होना।''

भ्टलोल्लट– इनके रस सम्बन्धी सिद्धान्त को उत्पत्तिवाद कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ये निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति मानते हैं। इनके अनुसार विभावानुभावादि के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है। ये संयोग शब्द के तीन अर्थ करते हैं। इनके अनुसार पहिले तो ललना आदि विभावों के द्वारा रति आदि स्थायीभाव उत्पन्न होते हैं। फिर कटाक्ष आदि अनुभावों के द्वारा वे भाव प्रतीत के योग्य बनाये जाते हैं तदनन्तर वे निर्वेदादि व्यभिचारियों द्वारा परिपुष्ट किए जाते है। इस प्रकार इनके मत में स्थायीभाव और विभाव के संयोग का तात्पर्य उनका उत्पाद्य–उत्पादक सम्बन्धक, स्थायीभाव और अनुभावों के संयोग का तात्पर्य– गम्यगमक सम्बन्ध, स्थायीभाव और व्यभिचारियों के संयोग का तात्पर्य उनका पोष्य–पोषक सम्बन्ध है।

आचार्य लोल्लट के अनुसार विभावों द्वारा पुष्ट किय गया, अनुभावों द्वारा प्रतीति योग्य बनाया गया तथा संचारियों द्वारा पुष्ट किया गया स्थायीभाव ही 'रस' है। जो प्रमुख रूप से अनुकार्य राम आदि चारित्रों में रहता है तथा उनका अनुकरण करने के कारण गौण रूप से पात्रों में भी रहता है।

शंकुक– शंकुक ने रस–निष्पत्ति को रसानुमिति के अर्थ में ग्रहण किया है शंकुक स्पष्ट ही मानते हैं कि विभावादि कारण, अनुभावादि कार्य, व्यभिचारी भावादि कृत्रिम होते हुए भी कृत्रिम नहीं लगते और इनके द्वारा अभिनेता के स्थायीभाव की अनुमिति प्रेक्षक की होती है। स्थायी और विभावादि का संयोग अनुमापक–अनुमाप्य रूप में

होता है, सुन्दर और समर्थ विभावादि कारणों से हुई अनुमिति वस्तुसौन्दर्य से युक्त होकर सामान्य लौकिक से भिन्न (उत्कृष्ट) प्रकार की होती है। इस प्रकार अनुमिति होने वाले स्थायी के समर्थक शंकुक अनुकरण से रसनिष्पत्ति मानते हैं। कुल मिलाकर शंकुक की स्थापना यह है–

1. विभावादि कृत्रिम होने पर भी कृत्रिम नहीं लगते।

2. विभावादि के सहयोग से अनुमापक– अनुमाप्य संयोग से स्थायीभाव अनुमित होता है।

3. इस प्रकार अनुकरण ही रस रूप होता है। आदि।

भट्टनायक– इन्होंने रस विषयक चिन्तन को एक नयी दिशा प्रदान की और रस प्रक्रिया से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया।इन्होंने लोल्लट और शंकुक दोनों के ही मतों का खण्डन किया है। इनके अनुसार न तो तटस्थ रहने वाले राम आदि चरित्रों तथा पात्रों में रस की उत्पत्ति माननी उचित है, और न रस को परोक्ष ज्ञान–रूप अनुमित ही माना जा सकता है। साथ ही इनके अनुसार रस की अभिव्यक्ति भी नहीं मानी जा सकती। कारण कि अभिव्यक्ति तो पूर्व से विद्यमान वस्तु की ही होती है। रस तो केवल अनुभव काल में रहता है उससे पूर्व या पश्चातक नहीं। भट्टनायक सामाजिकों द्वारा रस के भोग किये जाने की बात कहते हैं इसी के इनके मत को भुक्तिवाद कहा जाता है। इन्होंने भावकत्व और भोजकत्व नामक दो नवीन व्यापार माने हैं। उनके अनुसार काव्य में अभिधा द्वारा उपस्थित होने वाला अर्थ केवल नायक–नायिका और चरित्रों से ही सम्बन्धित होता है। भावकत्व व्यापार अर्थ का सम्बन्ध नायक नायिका से हटाकर उसका साध्रणीकरण कर देता है। सर्वसाधारण के उपभोग योग्य बना देता है। इसके अनन्तर भोजकत्व नामक व्यापार प्रेक्षकों को रस का साक्षात्कारात्मक भोग कराता है। इस प्रकार इस मत के अनुसार संयोग का अर्थ भोज्य–भोजक सम्बन्ध तथा निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति अर्थात् उपभोग माना जाता है।

अभिनवगुप्त– इन्होंने पूर्ववर्ती रस–स्थापनाओं के असन्तुलित पक्षों का निराकरण करके समन्वयात्मक प्रयास द्वारा रससूत्र की संगत व्याख्या करने की चेष्टा की है, जो अभिव्यक्तिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। उनके अनुसार भरत के रस सूत्र के अन्तर्गत 'निष्पत्ति' का अर्थ अभिव्यक्ति तथा 'संयोग' का अर्थ 'व्यंग्य–व्यंजक–सम्बन्ध है। रस व्यंग्य है तथा विभावादि व्यंजक। इनके अनुसार रस उत्पत्ति अनुमान अथवा भोग

विषय न होकर अभिव्यंजना का विषय है। अभिनवगुप्त ध्वनिवादी आचार्य थे, अतः उन्होंने रस–निष्पत्ति की प्रक्रिया में व्यंजना–व्यापार को सर्वाधिक महत्व दिया है। व्यंजना के विभाजन व्यापार द्वारा ही रस–निष्पत्ति संभव होती है। अभिनवगुप्त की दृष्टि से भोजकत्व तो रस का सहज स्वभाव है और भावकत्व भावों का सहज वैशिष्ट्य ही है। इनकी धारणा है कि व्यंग्य रस व्यंजना–व्यापार द्वारा ही सहृदय सामाजिक को आनन्द विभोर करता है। व्यंजना के विभावन–व्यापार द्वारा विभावादि का साधारणीकरण सहज ही हो जाता है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' का रचनाकार रस निष्पत्ति की दृष्टि से अत्यन्त सतर्क प्रतीत होता है। शब्द और अर्थ के सन्निवेश से शुष्क प्रसंगों को भी सरसता में परिणित कर दिया है। कतिपय आलोचकों ने रसत्व का अभाव बतलाया है। किन्तु रस की जब मैं विवेचना करती हूँ तो ज्ञात होता है कि नाटक में रस प्रतीति अन्तःकरणवतर्नी है। अन्तः करण के धर्मइन्द्रियग्राह्य नहीं हैं अतएव रस की प्रतिपत्ति प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है, वह परोक्षरूप ही है। नाट्यदर्पणकार के अनुसार ने रस में एक प्रकार की अन्य वस्तु का सम्भव न होने से अनुभावादि ही रस के अविनाभूत हैं।

'प्रबोधचन्द्रोदय' का रसचिन्तन अद्वैतवादी चिन्तन पद्धति से प्रभावित है, जो रस के प्रति अनुभवन की गहराई में विश्वास रखते हैं तथा रस को आन्तरिक विस्तार से समर्थ मानते हैं। नट और मूल पात्र के द्वैत को धुंधलाते हुए दोनों के बीच लगभग अद्वैत सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा नाट्य और काव्य के बीच एक उभयात्मक रस दृष्टि अंकुरित करते हैं। सुख–दुःख का साधरणीकृत हो उठना अर्थात् विभाव, अनुभाव आदि का निज के आग्रहों से मुक्त होना है। स्थायीभाव विभावादि के कारण लौकिक अनुभवों से भिन्न मानषदशा में रसत्व को प्राप्त करता हुआ, सहृदय सामाजिक द्वारा भुक्त होता है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में नाटककार नाट्यसमृद्धि, काव्यसमृद्धि और संगीत समृद्धि के लिये प्रयास रत है।

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में रस का अपना एक प्रमुख स्थान हैं। क्योंकि मानव की शुभकार्यों की ओर प्रकृति की जनक उसकी रागात्मिका वृत्ति हुआ करती है। इस वृत्ति को चेतना प्रदान करने वाला मुख्यता रस ही हो सकता है। रस की व्यंजना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का मुख्य उद्देश्य है।

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' नाटक के अभिनय काल में दर्शकों के हृदय में स्थायीरूप से जो रति आदि भाव विद्यमान रहते हैं, वे ही स्थायीभाव हैं। उस समय रंगमंच पर उपस्थित होने वाले नायक–नायिका आदि उस रति आदि भावों के आलम्वन होते हैं तथा ये नायक–नायिका आदि पात्र जिन परिस्थितियों अथवा दृश्यों के कार्यों को करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, वे परिस्थितियाँ अथवा दृश्यों के कार्य ही उद्दीपन विभाव होते हैं। ये ही पात्र अपनी चेष्टाओं तथा वार्तालाप द्वारा जिन चिन्ता, उत्सुकता व्यग्रता, धैर्य आदि अनेक प्रकार के भावों को प्रकट करते हैं, वे ही भाव तथा संचारी भाव होते हैं। जिनके द्वारा दर्शक के हृदय में विद्यमान रति आदि भाव पुष्टि को प्राप्त होते हैं। यथा 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में काम और रति का सम्वाद–

कामः – (स्पर्शसुखमभिनीय । स्वगतम्)

स्फुरद्रोमोदभेदस्तरलतरताराकुलदृशो
भयोत्कम्पोत्तुंगस्तनयुगभरासंग सुभगः
अधीराक्ष्या गुंजन्मणिवलयदोर्वल्लिरचितः
परीरम्भोमोदं जनयति च संमोहयति च।[256]

यहाँ काम और रति नामक पात्र आलम्ब है और परिस्थितियाँ यहाँ उद्दीपन विभाव है, एवं संचारी भाव है भय, कम्पन आदि। अर्थात् जब उपयुक्त आलम्बन एवं उद्दीपन विभाव तथा अनुभाव और संचारीभाव उचित मेल के साथ एकत्रित हुए दृष्टिगोचर होते हैं, तब दर्शकों के हृदय में विद्यमान रति आदि स्थायीभाव उमड़ने लगता है और उसके उमड़ने के कारण दर्शक उस कथन में तन्मय हो जाता है। वह अपने को भूल जाता है। उसकी सहानुभूति पात्रों के साथ इतनी अधिक हो जाती है कि उनका तथा पात्रों का तादात्म्य स्थापित हो जाता है। विचारधारा के दार्शनिक संयोग से रस आन्तरिक विस्तार से समृद्ध होता है। पाश्चात्य विचारकों ने धार्मिक शब्दावली के माध्यम से काव्यानुभूति के स्वरूप की व्याख्या की है, उसी प्रकार कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक ने भी कम से कम योगाभ्यास से उपलब्ध अनुभूति की तुलना में हृदयातिशायी होने के कारण अधिक सुकुमार, सौन्दर्य–निर्झर, अतः सुखावह माना है। इस प्रकार कम से कम व्यवहारिक स्तर पर यह अनुभूति अपेक्षाकृत प्रेय और बाह्य सिद्ध होती है–

लास्यान्विता च ललिता च गतिस्त्वदीया
मंजुस्वना बहुगुणा च विभाति वीणा
देहश्च दर्शयति चान्द्रमसीमभिख्यां
प्राप्तोऽसि नरस्त्वमिह भोगसमृद्धिहेतुः ।[257]

सभी दर्शक अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार भिन्न–भिन्न रूप में इस रस का अनुभव किया करते हैं। नाटक उपर्युक्त भावनात्मक रस तक ही सीमित नहीं है, अपितु तादात्मक सज्जात्मक, संगीतात्मक अर्थात्– रूपात्मक अथवा बाह्यरस भी हुए हैं। वेंकटनाथ वेदान्त देशिक नामक वैष्णव आचार्य ने नाटक 'संकल्प–सूर्योदय' में रस को दर्शन की गूढ अगम्य भूमि से उठाकर भावनात्मक औदात्य के निकट लाते हैं और रस माधुर्यादि भावों के सन्दर्भ में मधुर अर्थ पाता है। इन स्थापनाओं के पीछे तत्कालीन भक्तिपरक भावनात्मक क्रान्ति का विशेष सहयोग था।

साधरणीकरण असाधारण को साधारण करने की क्रिया है। यह रसनिष्पत्ति की एक अनिवार्य आवश्यकता है, जो अखण्ड काव्यानुभवों को सहृदय तक पहुँचाने का दायित्व वहन करती है। भरत के नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख है–

'एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेनरसा निष्पद्यन्ते'[258] व्यक्तिगत सम्बद्धताओं से मुक्त रसिक को 'अद्वैतता' समाधिभूत अनुभव देने का प्रकल्पन वेदान्त देशिक एवं कृष्णमिश्र ने दिया है। उनकी रसप्रतीति लोकोत्तर चमत्कार जनक है। सांसारिक प्रतीतियों से परे की वस्तु है। कलानुभूति की प्रक्रिया में रसिक का सीधे शिव से प्रकाश–विमर्श होता है। अनुभवों की एक अत्यन्त समृद्ध दुनिया रचते हुए साधरणीकरण को एक रहस्यमय स्थिति में छोड़ते हैं। इनके नाटकों में 'साधरणीकरण' सहृदय की सात्विक उपलब्धि है। इनके नाटकों का साधरणीकरण अपरिमित एवं सर्वव्याप्त होता है।

'रस' के आध्यात्मिक उन्मेष की इस प्रक्रिया में 'साधरणीकरण' की एक उदात्त स्थिति है। जिसके अर्न्तगत मात्र विभावादि का नहीं, स्थायीभाव का भी साधरणीकरण होता है। इसके अन्तर्गत सहृदय अपनी लौकिक सीमाओं से मुक्त होकर सात्विक, अलौकिक, उदात्त भूमि पर पहुँचता है। विभावादि भी सहृदय समूह के आन्तरिक भाव को समानता में व्यक्त कराने वाले सर्वसाधारण कारण है। वे सहृदय समूह में भावनात्मक ऐक्य की अभिव्यक्ति कराने में सक्षम होते हैं, जैसे

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक के तृतीय अंक में शान्ति के विलाप से करूणा आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है–

शान्तिः – (सास्त्रम्) मातः मातः क्वासि देहि में प्रियदर्शनम् ततः–

मुक्तातंककुरंगकाननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः
पुण्यान्यायतनानि संतततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः
यस्याः प्रीतिरमीषु सात्रभवती चण्डलवेश्मोदरं
प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तं गताः।[259]

शान्ति के विलाप एवं 'मन' नामक पात्र के विलाप के समय सबकी आँखों में आँसू होते हैं। जैसे हर्षादि के प्रकरण में प्रत्येक होंठ पर स्मित रेखा आदि। समाधिभूत अनुभव के रूप में प्राप्त रस की धारणा के अनुरूप है। 'साधरणीकरण' भी एक मुक्ति का व्यापार है।

नाट्यदर्पणकार के अनुसार रसानुभूति के पांच आधार हैं।

1. लौकिक रूप में स्थित पुरूष
2. नट
3. काव्य नाटक के स्त्रोता
4. अनुसन्धाता अर्थात् कवि एवं नाट्यकार
5. सामाजिक

रस का आस्वाद्य सुख रूप है अथवा दुःख रूप, इस सम्बन्ध में संस्कृत आचार्यों में मत–भिन्नता है। श्रृंगार रस में विषय भोग की प्रधानता रहती है अतएव यह रस सुख प्रधान है। कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक के रस सम्बन्धी प्रयोग–क्रोध दुःखप्रधान है, क्रोध दो कारणों से होता है।

1. अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने से 2. इष्ट वस्तु के न प्राप्त होने से।

अनिष्ट वस्तु का सम्पर्क हमें दुःख प्रदान करता है। इस दुःख में उस अनिष्ट वस्तु को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, अतएव क्रोध दुखात्मक है। पुनः जहाँ अभीष्ट वस्तु के न प्राप्त होने से प्राणियों में क्रोध की उत्पत्ति होती है, वहाँ उस इष्ट वस्तु की प्राप्ति की आंकाक्षा एवं आशा क्रोध में छिपी रहती है। अतएव रौद्र रस में किंचित सुख का अनुभव भी होता है। यथा–

अ– अरेक इव वासवः कथय कोऽत्र पद्योदभवो

वद प्रभवभूमयो जगति का मुनीनामपि
अवेहि तपसो बलं मम पुरन्दराणां शतं
शतं च परमेष्ठिनां पततु वा मुनीनां शतम् ।[261]

ब– धिग्ब्रह्माण्डकरण्डगह्वरकुटीकर्पूरपूरं यशो
धिक्प्रहत्रिदशेन्द्रफालफलकस्पष्टोपमृष्टं पदम्
धिग्दोर्विक्रममद्भुतं मम पुनर्धिग्वादमेवास्तु धिक्
सोढा वैरिकथामपि स्वयमहं नीचाय मह्यं नमः ।[262]

इसी प्रकार भय में दुःख की सम्भावना मात्र होती है। इसमें हम भय के कारणों से बचने का प्रयत्न करते हैं। भय के कारण से बचने में हमें सुख की आशा रहती है। इसलिये इनके नाटकों में भयानक रस में भी सुख की प्रतीत होती है। यथा–

भ्रू भंगभीमपरिपाटलदृष्टिपात
मुग्दाढकोपकुटिलं च तथा व्यलोकि
सा वज्रपातहतशैलशिलेव भूमौ
व्याभुग्नजर्जरशिरोरस्थि यथा पपात ।[263]

अतः इन नाटककारों के अनुसार सभी रस सुखात्मक है। 'संकल्प सूर्योदय' एवं 'प्रबोध चन्द्रोदय' में रस प्रयोग में शान्त, भयानक, श्रृंगार, वीर, भक्ति आदि रसों का प्रयोग किया है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' में श्रृंगार, करुण, शान्त, भक्ति, आदि रसों का प्रयोग किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने रस को "चित वृत्ति विशेषश्च रस" कहा है।[264] आचार्य मम्मट ने भी रस की निष्पत्ति में भरत की मान्यता को स्वीकार करते हुए अधिक स्पष्ट हो कर कहा है– "व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावों रसः स्मृताः ।"[265] आचार्य विश्वनाथ की भी यही मान्यता हैं। "विभावेनानुभावेन संचारिणा तथा रसतामेतिख्यादिः स्थायीभावः सचेतसामः ।"[266]

नाट्य और काव्य पर कवि और सहृदय दोनों की दृष्टियों से दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट है कि 'रसभावना ही एकमात्र 'नाट्य' का साध्य है।

(4) 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' नाटकों में प्रधान रस सम्बन्ध तुलनात्मक विवेचन

प्रायः नाटक में सभी रसों का प्रयोग किया जाता है। इनमें अंगी रस

या तो 'श्रृंगार' होता है या वीर। परन्तु कुछ लोग शान्त रस को भी अंगी रस के रूप में स्वीकार करने के पक्षपाती हैं। आचार्य कृष्णमिश्र के प्रवोध चन्द्रोदय एवं संकल्प–सूर्योदय नाटक में 'शान्त' रस ही प्रधान रस है। अतः परस्पर एक दूसरे के साथ तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी यहाँ विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है कि कलात्मक दृष्टि से प्रधान रस में किस नाटक में रस का वर्णन अत्युत्तम है। 'संकल्प–सूर्योदय' की प्रस्तावना में शान्त अंगी रस स्वीकार किया गया है, अन्य रस उसके विकार मात्र हैं–

ललितमनसां प्रीत्यै विभ्र दसान्तरभूमिका
मनवमगुणोंयस्मिन्नाट्ये रसो नवमः स्थितः
जननपदवीजड़ घालातिंच्छदामुगुणीभव
न्नटपरिषदा तेनास्वादं सतामुपचिन्विति[267]

'संकल्प सूर्योदय' में भक्ति रस का अन्तर्भाव है । क्योंकि भक्ति रस का– स्थायीभाव देवविषयक रति है। इसमेंआलम्बन– श्रीकृष्ण या राम, उद्दीपन– भक्तों का समागम, तीर्थ का सेवन, नदी का एकान्त, पवित्र स्थल आदि।
अनुभाव भगवान के नाम तथा लीला का कीर्तन, गदगद हो जाना, आदि। आँखों से आँसू का गिर जाना, कभी हँसना, कभी रोना, आदि कभी नाचना आदि।
'प्रबोध चन्द्रोदय' की प्रस्तावना में शान्त प्रधान रस के संकेत मिलते हैं–

तद वयं शान्त प्रयोगाभिनयेनात्मोविनोदीयतु मिच्छामः
तेन च शान्त पथ प्रस्थितेनात्मनो विनोदार्थ प्रबोध्
चन्द्रोदयाभिधानं नाट्कमभिनेतुमादिष्टोऽस्मि।
तदादिश्यन्तां भरता वर्णिकापरिग्रहाय।[269]

अतः दोनों नाटकों में शान्त प्रधान अंगी है पर 'संकल्प सूर्योदय' में 'शान्त भक्ति' रस कहा जा सकता है।

भक्ति का स्वरूप–

"भज सेवायाम्" धातु से क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसका मूल अर्थ सेवा है। गरूड़ पुराण में कहा गया है–

भजै इत्येष वै धातु सेवायां परिक्रीर्तितः
तस्मात सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिः साधन भूयसी।[270]

विभिन्न विद्वानों एवं आचार्यों ने भक्ति की विभिन्न प्रकार से परिभाषायें दी हैं। यहाँ कुछ परिभाषाओं पर विचार करना आवश्यक है। यथा–

या प्रीतिरविवेकाना विष्येष्वनपायिनी

त्वामनुस्मरतः सा मे ह्रदयान्मासर्पतु ।[271]

जिस प्रकार अविवेकी जनों की प्रीति विषय पदार्थों में होती है, उसी प्रकार अनपायिनी प्रीति जब भक्त के ह्रदय में भगवान के प्रति होती है, तब वह भक्ति कहलाती है। 'मध्यर्पित मनोबुद्धियों मद भक्तः समे प्रियः' जिसने अपना मन एवं बुद्धि मुझे अर्पित कर दी, वह भक्त मुझे प्रिय है।

सत्व एवैक मनसोवृतिः स्वाभाविकी तु या

अनिमिता भगवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।[272]

वेद विहित कर्म में लगे हुए व्यक्तियों की भगवान के प्रति अनन्य एवं स्वाभाविक सात्विक प्रवृत्ति का नाम भक्ति है– "पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः" ।[273] पाराशर के मत में पूजादि में अनुराग ही भक्ति है–"सा परानुरक्तिरीश्वरे", ईश्वर में पारानुरकि ही भक्ति है। सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च", भगवान में परम प्रेम ही भक्ति है।

मोक्षकरण सामग्रया भक्तिरेव गरीयसी

स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यमिधीयतै ।[276]

मोक्ष की कारण सामग्री में भक्ति का स्थान सर्व प्रथम है। अपने स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है। "महात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः" ।[277]

भगवान में महात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है–

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माथनावृतम्

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरूत्तमा ।[278]

अन्य अभिलाषा से शून्य, ब्रह्मज्ञान तथा फलयुक्त नित्य, नैमित्तिक कर्म आदि से शून्य, ब्रह्मज्ञान तथा फलयुक्त नित्य, नैमित्तिक कर्म आदि से अनावृत कृष्ण में रूचियुक्त प्रवृत्ति के साथ कृष्णानुशीलन ही उत्तमा भक्ति है–

"द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतांगता" ।

सर्वेशे मनसो वृत्तिभक्तिरित्याभिधीयते। ।[279]

भगवान के गुण, महिमा आदि श्रवण करके सत्त्वगुण के उद्रेकवश जब मनद्रवीभूत होकर भगवान के प्रति धारावाहिक वृत्ति में लीन हो जाता है, तब उसे भक्ति कहते हैं। ''श्रृद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है'' ।[280]

प्राचीन काल से ही ईश्वर प्राप्ति के तीन साधन कर्म, ज्ञान एवं भक्ति या उपासना माने जाते रहे हैं। वैदिक युग याज्ञिक कर्मकाण्ड से भरपूर था, फिर भी ज्ञान और भक्ति का नितान्त अभाव उस युग में नहीं था। अनेक मंत्र इस प्रकार के मिलते हैं, जिसमें परमात्मा के प्रति अनुरागपूर्ण भाव व्यक्त किये गये हैं। यह अधिकांशतः देवोपासना का रूप लिये हुए है, जो सांसारिक कामनाओं के लिये सम्पन्न की जाती थी। तद्धनमित्युपासितव्यम् ।[281] मुमुक्षर्वे शरणमहं प्रपद्ये ।[282] तैतिरीयोपनिषद में परमात्मा को एक रस एवं आनन्द स्वरूप कहा गया है–
'रसो वै सः हयेसेवायं लब्ध्वाउनन्दीऽऽभवति'[283] वैष्णव साहित्य में परब्रह्म को रस रूप में ग्रहण कर भक्ति की जो रसरूप में प्रतिष्ठा की गई उसका मूल आधार यही मन्त्र है। ब्रह्मसूत्र के अध्याय।पाद। सूत्र 12–17 में भी वैष्णवों के रस सिद्धान्त का सूक्ष्म विवेचन मिलता है।[284] भक्तिरस को वैष्णव रस के नाम से अभिहित करते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकांशतः वैष्णव भक्तों ने ही अपनी काव्य रचनाओं द्वारा भगवद्विषयक रति से निष्पन्न होने वाले लोकोत्तर श्रृंगार को रस कोटि तक पहुँचाया था। भक्ति काव्य और वैष्णव काव्य दो पृथक–पृथक सृष्टियाँ न होकर एक ही वस्तु के दो व्यवहारिक रूप हैं।

उपनिषदों की सारभूता भगवद्गीता वैष्णव भक्ति का सर्वप्रथम शास्त्रीय ग्रन्थ माना जाता है। इसमें भक्ति के अतिरिक्त सांख्य, कर्म, ज्ञान, योग सभी का निरूपण मिलता है। गीता द्वारा उपदिष्ट भक्ति में कर्म और ज्ञान दोनों का समावेश है। भक्तों में भी ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ बतलाया गया है। अर्जुन के द्वारा भगवान के प्रति व्यक्त भावों में एक स्थल पर वात्सल्य, संख्य एवं मधुर भावों का स्पष्ट संकेत मिलता है।[287] अद्वैतवादी शंकराचार्य भक्ति को मोक्ष की कारणभूत सामग्री के रूप में ग्रहण कर स्वरूपानुसंधान को ही भक्ति कहते हैं।[288]

भक्ति को शुद्ध रागात्मिक वृत्ति पर प्रतिष्ठित कर उसे रसरूपता प्रदान करने में भक्ति सूत्रों का प्रमुख हाथ है। इसमें ईश्वर के प्रति परानुरक्ति को भी भक्ति बताया गया है।[289] परवर्ती भक्ति सम्प्रदायों ने भक्ति रस की पूर्ण निष्पत्ति के

लिये प्रेमा भक्ति की उत्पत्ति आवश्यक मानी है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में ईश्वर के प्रति परम राग के लिये रस शब्द उपर्युक्त माना है।[290] भक्ति साहित्य के परवर्ती आचार्यो ने भक्ति को साधन तथा साध्य दोनों रूपों में माना है। इसी को परा–अपरा, गौड़ी–मुख्या आदि नामों से पुकारा जाता है।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भक्ति का न तो रस रूप में उल्लेख है और न स्थायी और संचारी भाव के रूप में। आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में प्रेयस को भक्ति रूप में चित्रित किया है। उन्होंने रस को 'रसवत' अलंकार में समाहित किया। इसी युग में भारतीय भूमि पर भक्ति रस की जड़े साहित्य शास्त्रीय क्षेत्र में जमनी प्रारम्भ हो गई, और अभिनवगुप्त को भक्ति–रस का अन्तर्भाव शान्त रस के भीतर करना पड़ा।

'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के प्रकाण्ड पण्डित और काश्मीरिक शैवाद्वैतवादी है अभिनवगुप्त ने शान्त रस की आध्यात्मिक कल्पना करके भी भक्ति–भावना को उसके अन्तर्भूत कर लिया। उनके मतानुसार भक्ति या श्रृद्धा कोई स्वतन्त्र रस न होकर शान्त रस के ही संचारी भाव हैं क्योंकि उनका समावेश स्मृति, धृति, मति या उत्साह जैसे भावों के अन्तर्गत हो जाता है। किन्तु भक्ति रस को मानने वाले गौड़ीय वैष्णव विद्वान भक्ति के दो पक्ष ज्ञान और कर्म मानकर भक्ति को प्रमुख रस मानते हैं। सोलहवीं शदी के तुलसी भी कहते हैं कि–

"अरथ न धरम न काम रूचि गति न चहउं निरवान।
जनम–जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।[291]

भक्ति रस का सर्वप्रथम विवेचन करने वाले ग्रन्थ रूपगोस्वामी रचित 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' और (उज्जवल नीलमणि (वि0सं. 1598) हैं। 'रसोप योगि स्थायी भावोपादान' नामक पूर्व विभाग के पश्चात हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में दक्षिण विभाग है, जिनके पांचवे पाठ 'स्थायिभावलहरी' में द्वितीय श्लोक में 'भक्ति रस का स्थायीभाव कृष्ण विषयक रति है। इसी लहरी में भक्ति रस को शान्त, प्रीति, प्रेय, वत्सल और मधुर–मुख्य और हास्य, अद्भुत, करूण वीर, भयानक, रौद्र और वीभत्स गौण भेद माने गए हैं। रूप गोस्वामी ने भरतमुनि की प्रणाली का आधार बनाकर भक्ति रस का विशद विवेचन किया है एवं भक्ति रस को व्यक्त करने योग्य बनाने के लिए उस पद्धति में कुछ परिवर्तन भी किया है। भक्ति रस के साधरणीकरण के लिए कवि

प्रतिभा जनित विभावन व्यापार को उक्त ग्रनथ में स्वीकार नहीं किया गया है। भक्ति रस के विभावादि का स्वरूप ही ऐसा बताया गया है कि समान वासना वाले भक्त के हृदय में वे स्वयं विभावित हो जाते हैं। डॉ0 अभयकुमार गुह ने भक्ति रस के सभी अंगो पर प्रकाश डाला है और डॉ0 एस0 के0 डे0 ने विशद प्रकाश डाला है।

रूपगोस्वामी के समकालीन कवि कर्णपूर ने 'अंलकार कौस्तुभ' में लिखा है कि— "भक्ति रस समुद्र के समान है। रूप गोस्वामी के पश्चात "मधुसूदन सरस्वती ने 'भक्तिरस' का सांगोपांग विवेचन विद्वता के साथ 'भगवद्भक्तिरसायन' में प्रस्तुत किया है। भगवद् के आधार पर उन्होंने भक्ति को पुरूषार्थ और ज्ञान को उसका संचारी स्वीकार किया है। मधुसूदन लिखते हैं कि— "तत्र आलम्बन विभावो भगवान्, उद्दीपन विभावः तुलसी चन्दनादिः, अनुभावों नेत्र विक्रियादिः व्यभिचारिणों भावाः निर्वेदादयः व्यक्तीभवद्भगवदाकारता रूपरसाख्यः स्थायीभावः परमानन्द साक्षात्कारात्मकः प्रादुर्भवति, स एव भक्ति योग इति, ते परमं पुरूषार्थ वदन्ति रसज्ञाः।"[297] पंडितराज जगन्नाथ ने भक्ति—रस परक विपुल वांगमय का अध्ययन और अनुशीलन करने के उपरान्त भी अपने पूर्ववर्ती काव्य शास्त्रियों की परम्परा का उल्लंघन नहीं किया और भक्ति को 'भाव मात्र' माना है।

आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का विशेष महत्व है। रामानुज ने अपनी दार्शनिक प्रतिपत्तियों को भक्ति रस में नियोजित करते हुए जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे शुष्क ज्ञान की कठोर तर्क भित्ति पर अधिष्ठित न होकर उनकी रागात्मिका वृत्ति के परिचायक हैं। उनका पुरूषोत्तम अपार करूणा सागर, पतित पावन, प्रणतातिहर, आपत्सखा, वात्सल्यमूर्ति तथा भक्तजनसंश्लेषैकभोग भी है जो अपने प्रिय भक्तों के साथ घुलमिलकर स्वत्मानन्दमूलक आनन्दलीलाएँ करता है। वह दर्शन का अंतर्यामी और वैकुण्ठ का नारायण होने पर भी भक्तों के प्रेम और वात्सल्य से अभिभूत होकर मृत्युलोक में अवतीर्ण होता है। वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, रामानुजाचार्य के अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म और अन्तर्यामी संज्ञक पाँच रूपों में ब्रह्म की कल्पना के अनुसार देशिक 'व्यूह' रूप के वासुदेव को सबसे अधिक महत्व दिया है क्योंकि भगवान का यही रूप भक्तों का परमप्राप्य होने के कारण मूर्द्धन्य कोटि का है। कहा जा सकता है कि आचार्य वेंकटनाथ वेदान्त देशिक ने विशिष्ट समुण लीलामय, ज्ञानानन्द स्वरूप, अन्तर्यामी, पुरूषोत्तम और वासुदेव आदि रूपों में भगवान की जो

परिकल्पना की है, वह उनके भक्ति–रस का परम प्रतिपाद्य है।

वेंकटनाथ वेदान्त देशिक के मतानुसार ब्रह्म और जीव दोनों ही ज्ञानानन्दस्वरूप हैं, किन्तु जीव के 'ज्ञानानन्द' अविद्या के आवरण द्वारा संकुचित और उस अवतरण के हट जाने पर अपरिच्छिन्न हो जाते हैं। अविद्या जीव के ज्ञानाननद को संकुचित करने वाली कर्ममयी शक्ति है, जिससे जीव का गुण रूप ज्ञानानन्द संकुचित होता है। विशिष्टाद्वैत के अनुसार मुक्ति जीवों की एक कोटि वह है, जिसमें वे कर्मरूप अविद्या से मुक्त होकर निरतिशय और परिपूर्ण आनन्द की अनुभूति करते हैं। वेदान्त देशिक द्वारा प्रतिपादित रस भी निरतिशय एवं अंनत है, जिसकी अनुभूति वे ही मुक्तजीव कर सकते हैं जो वैकुण्ठवासी शेषशायी भगवान नारायण के परिकर में सम्मिलित होकर परम प्रीतिपूर्वक अपनी शेषता की अनुभूति करने वाले हों।

रामानुज ने ब्रह्म की आनन्दरूपता इस बात में मानी है कि ब्रह्म स्वयं परम आनन्द रूप है और उस आनन्द को परम भक्त जीवों में वितरित कर आनन्दी होता है। वेदान्त देशिक के अनुसार लौकिक सुख तो विषय–संसर्ग– जन्य होने के कारण अस्थिर और अल्पावधिक होते हैं, जबकि 'ब्रह्मानन्द' स्थित, अनंत और निरतिशय है। वेदान्त देशिक के विशिष्टाद्वैतवाद में ब्रह्म को सगुण एवं संविशेष भी कहा गया है क्योंकि वह अपने रूप आकार और वैभव में दिव्य और परिपूर्ण होता है वेदान्त देशिक के 'संकल्प सूर्योदय' में ब्रह्म के अवतार का वर्णन इस प्रकार है। यथा– महावराहैः

नम इदमजहत्सपर्याय पर्यायनियोसित
भ्रमदमितपयोधिवेलाविलोलाय कोलाकृते
पृथुविकटविंकनिष्कम्पविष्कम्भविश्वंभरा
भरभरणधुरीणधोणापरीणाहकोणाय ते।[299]

वासुदेवः

कंसध्वंसैकवीरो दनुजभरहतखोणिदुर्जातबन्धु
गोपीनां प्राणमित्रं गुरूसुतपुनरूज्जीवनोदारकीर्तिः
नाथो वृष्णयन्धकादेर्नरकपुरवधूपत्रभंगपहारी
पांचालीवल्लभानां प्रथनुमुखसुहत्पंचमान्यायसारः।[300]

कल्किः

भाविन्या दशया भवन्निह भवध्वंसाय नः कल्पतां
कल्की विष्णुयशःसुतः कलिकथाकालुष्यकूलंकषः
निः शेषक्षतकण्टके क्षितितले धाराजलौधेर्ध्रुवं
धर्मं कार्तयुगं प्ररोहयति यन्निस्त्रिंशधाराघरः।[301]

विशिष्टाद्वैत मूलक ब्रह्म का प्रतिपादन करते समय वेदान्त देशिक ने 'नाना पुराणनिगमागम सम्मतं' सिद्धान्तों का समुचित समन्वय करने की चेष्टा की है, अतः उनका आराध्य ब्रह्म अनन्त गुणों से विशिष्ट नारायण पुरूषोत्तम है। अपनी विवेचना के निकष पर उन्होंने ब्रह्म अथवा रस को आध्यात्मिक मात्र न कहकर लीला ब्रह्म और 'लीला–रस' भी माना है। जिसका प्रभूत प्रभाव भक्ति–काव्य की उत्प्रेरणा पर अंकित है। लीला के अतिरिक्त 'उपकार–भावना' उसकी सृष्टि–रचना का दूसरा हेतु है, जिससे प्रेरित करूणाद्र होकर परब्रह्म परमात्मा अवतार धारण करते हैं। उनके अवतार धारण करने में 'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाव्यानं सृजाम्यहम्'[302] की नैसर्गिक प्रवृत्ति काम करती हुई दृष्टिगोचर होती है। आचार्य वेंकटनाथ वेदान्त देशिक ने अपने नाटक 'संकल्प सूर्योदय' में भक्ति–दर्शन में प्रभु की लीला और उपकार भावना की दृष्टि से ही इस ब्रह्म की विशिष्टता सगुणता और साकारता की कल्पना की है एवं उसे पुरूषोत्तम, दिव्यं पुरूष नारायण, शुद्ध सत्व स्वरूप तथा वैकुण्ठवासी शेषशायी माना है। अवतारवाद की अवधारणा के कारण ही भगवान का दिव्य रूप अपने सौन्दर्य, लावण्य, सौकुमार्य औज्वल्य आदि गुणों में अदभुत और अचिन्त्य कहा जा सकता है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में विष्णु का स्वरूप इस प्रकार है। यथा–

आरादाकर एष कौस्तुभमणेर्वारी मरूद्वन्तिनः
क्रीडाशेखरशिल्पकृत्पुरभिदो गंजागृहं पाशिनः
प्राचीनाडंकुरपालिका सुरतरोरालक्ष्यतामदभुता
स्वैराहारमहानसः सुमनसां शुद्धान्तशय्या हरेः।[303]

उनका परिधान और अलंकरण भी दिव्याकर्षण से परिपूर्ण और अलौकिक होता है। वैष्णव धर्म और भक्तिभावना में शंख–चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले भगवान विष्णु की जो सौन्दर्यमयी दिव्य कल्पना की गई है, वह वेंकटनाथ वेदान्त देशिक को सर्वतोभावेन स्वीकार है।

वेदान्तदेशिक का भक्ति दर्शन श्रुतिसम्मत, वर्णाश्रम धर्म का परिपोषक और विधिसंगत कर्मकांड का समर्थक है। उनके कर्मविधान का परम प्रयोजन यही है कि वह अविद्यमान भोग लालसा और रजोगुण–तमोगुण–प्रसूत विकल्पों का विनाश कर हमें सत्वोद्रेक की दिशा में उन्मुख करता है। जिसमें श्रोत और स्मार्त कर्मो का अनुशासन भक्त की सम्पूर्ण जीवनचर्या का मूल प्रेरक बनकर उपस्थित हुआ है। भक्ति की रस रूप में प्रतिष्ठा करते हुए इन्होंने अपनी जो दार्शनिक प्रतिपत्तियाँ प्रस्तुत की है, वे अत्यन्त ह्रदयहारिणी और चिन्ताकर्षक हैं। रस निष्पत्ति की प्रक्रिया में समाहित भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संचरण का सम्यक विधान उनमें सहजवृत्ति से सन्निहित हैं।

उनके भक्तिरस की अनुभूति का आश्रय भक्त जीव है, जो फलानुसंधान की कामना से दूर रहकर वैद्यी कर्मों के अनुष्ठान द्वारा सत्वोद्रेकता की अनुभूति करता है। उसका आलम्बन द्वारा सत्वोद्रेकता की अनुभूति करता है। उसका आलम्बन तो स्वयं शेषशायी नारायण ही है, जिसे अनन्त सौन्दर्य और अनन्त शक्ति और अनन्त शक्ति का आगार माना गया है। अपनी करूणा और भक्त वत्सलता के कारण वह भक्त की सेवा भावना को उद्दीप्त कर उसे अनेक दिव्य अनुभवों से ओतप्रोत कर देता है। भगवद्वैविषयक रति को हम भक्ति रस का स्थायीभाव कह सकते हैं। भक्ति के भाव सिन्धु में भक्त का सत्वोद्रेकपूर्ण मानस अनेक प्रकार के संचारी भावों की लहरियों से आन्दोलित और अभिस्नात होता है जो अंततोगत्वा स्थायी भाव में ही समाहित होकर रस रूप की परिणति में सहायक बनती है।

वेदान्तदेशिक भक्ति को स्वतन्त्र रस न मानकर शान्त में ही समाविष्ट करते हैं। क्योंकि शान्त का चरम लक्ष्य मोक्ष ही है। भक्ति को भी मोक्ष के साधन के रूप में ग्रहण किया जाता था। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार "संसार से वैराग्य उत्पन्न होना आदि शान्त रस में है, जिनका विभाव मोक्ष–शास्त्र का चिन्तन आदि, अनुभाव मति, स्मृति धृति आदि है।

वेदान्त देशिक वैष्णव आचार्य है इसलिये रस की प्रतिष्ठा करते समय अभिनव गुप्त के मत को अवश्य ध्यान रखा है। उन्होंने भक्ति में पुरूषार्थोपयोगिता तथा पर्याप्त रंजकता दोनों का प्रतिपादन किया है।

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में शान्त रस प्रधान है। नाट्यशास्त्र के

नियमानुसार संस्कृत नाटकों का प्रधान रस श्रृंगार अथवा वीर होना आवश्यक है। इस परम्परा के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि नाटककार कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक ने शास्त्रीय नियमों का ध्यान अवश्य रखा होगा। दोनों ही नाटकों में शान्त रस प्रधान है।

''10वीं शताब्दी में आचार्य अभिनवगुप्त ने शान्त रस की नाटक के क्षेत्र में पूर्ण स्थापना कर दी थी। श्रव्य काव्य में तो सभी विद्वान स्वीकार ही कर चुके थे कि शान्त रस साहित्य में सम्भव है अभिनवगुप्त का कथन है कि ''–शम स्थायी भावात्मक शान्त रस तपस्या और योगियों के सम्पर्क आदि अभिनय से होता है। धृति, मति आदि उसके व्यभिचारी भाव है। विश्वनाथ ने शम रूप स्थायीभाव, अनित्यता किंवा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्मारूप के ज्ञान को माना है। आलम्वन विभाव, पवित्र आश्रम भगवान की लीलाभूमियाँ, तीर्थस्थान, साधुसंतो का संग आदि उद्दीपन, रोमांच आदि। अनुभाव– निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीवदया आदि व्यभिचारी भाव वाले शान्त को उत्तम प्रकृति के व्यक्ति के आश्रित कहा है। परन्तु अभिनवगुप्त की शान्त रस की स्वीकृति को कुछ लोग नहीं मानते हैं। विरोधियों के कथनानुसार ''शम और शान्त के पर्यायवाची होने के कारण एक संख्या घट जाने से 50 भाव नहीं हो सकते। तप और अध्ययन आदि शान्त के अनन्तर हेतु नहीं हैं। अतएव तप, अध्ययन आदि को विभाव कहना अनुचित है। काम आदि का अभाव भी अनुमान नहीं हो सकता। क्योंकि शान्त से इतर रसों में भी इसकी सत्ता पाई जाती है। और इसी से वह अनुमापक नहीं है। ज्ञापक और अभिनय में समवाय रूप से स्थिति नहीं है, क्योंकि व्यापार का अभाव अभिनय नहीं है। सुप्तावस्था और मूर्च्छा आदि तो उच्छवास, पतन एवं पृथ्वीशयन आदि कार्य रूप अनुभावों से व्यक्त किये जाते हैं। विषयों से विलग धृति आदि भी कैसे हो सकते हैं। अतः शान्त रस पृथक नहीं है। उपर्युक्त तर्कों का उत्तर अत्यन्त प्रभावशाली है–

1. जिस प्रकार इस संसार में धर्म, अर्थ, काम है, उसी प्रकार मोक्ष भी पुरूषार्थ है।
2. जिस प्रकार कामादिकों में समुचित चित्तवृत्तियाँ इत्यादि शब्द से अभिहित होकर कवि व्यापार के और नट के द्वारा अस्वाद की योग्यता प्राप्त कर उस प्रकार के हृदय ज्ञान से सामाजिकों के प्रति श्रृंगार आदि रस अवस्था को पहुँचाती है, उसी प्रकार मोक्ष नामक परम पुरूषार्थ के योग्य चित्तवृत्ति इस की अवस्था को क्यों नहीं प्राप्त कराती?

3. यह चित्तवृत्ति ही शान्त रस का स्थायीभाव है। इसे कुछ महानुभावों ने निर्वेद कहा है, जो तत्वज्ञान से उत्पन्न होता है और दारिद्रय आदि के द्वारा उत्पन्न निर्वेद अन्य स्थायियों को दवा देने की सामर्थ्यवाला है। क्योंकि भाव वैचित्र्य को सहन करने वाला रत्यादिकों की अपेक्षा यह अधिक स्थायित्व युक्त होता है। अतः शान्त रस है।[306]

अभिनव गुप्त का कथन है कि प्राचीन पुस्तकों में 'स्थायीभावों को रसत्व कहेंगे। 'तत्पश्चात' शम स्थायीभावात्मक शन्त रस होता है। संग्रहकारिका के अनुसार– ''मोक्षाध्यात्म निमित्त स्तत्व ज्ञानार्थ हेतु संयुक्तः निश्रेय सधर्मयुतः शान्तरसो नामः विज्ञेय।[307] शान्त रस का स्थायीभाव– किन्हीं मत से शम (चित्त का शान्त होना) और किन्हीं मत में 'निर्वेद' संसार के विषयों के प्रति वैराग्य) आलम्वन–परमात्मा का चिन्तन, संसार की अनित्यता का ज्ञान। उद्दीपन विभाव–सत्संग पुण्य आश्रम, तीर्थस्थल की यात्रा या दर्शन करने से यह उद्दीप्त होता है। अनुभाव शरीर भर में रोमांच तथा गदगद हो जाना तथा संचारी भाव मति, हर्ष, स्मृति आदि।

स्थायीभावों के विषय में विभिन्न मतों का उल्लेख 'अभिनव भारती' में बड़े विस्तार के साथ आचार्य ने किया है। अतः इनके अनुसार काव्य एवं नाटक दोनों में यह समभावेन रहता है। वैराग्य युक्त शान्त रस का आस्वाद्य लौकिक रसिक लोक कथमपि नहीं कह सकते। शान्त रस अनिवर्चनीय होता है। अतः 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' में शान्त रस इस प्रकार है। यथा–

अस्तं गतेषु तनयेषु विलीनमोहे
वैराग्यभाजि मनसि प्रशमं प्रपन्ने
क्लेशेषु पंचषु गतेषु समं समीतां
तत्वावबोधमभितः पुरूषस्तनोति।[308]

यहाँ शान्त रस का शम नामक स्थायीभाव है। चित्रका शान्त होगा। और आलम्वन परमात्मा है। विभाव और अनुभाव का सफल प्रयोग किया गया है। यथा–

नित्यानित्यविचारणाप्रणयिनी वैराग्यमेकं सु
त्सन्मित्राणि यमादयः शमदमप्रायाः सहाया मताः
मैत्र्याद्याः परिचारिकाः सहचारी नित्यं मुमुक्षा बला
दुच्छेद्या रिपवश्च मोहममतासंकल्पसंगादयः।[309]

अर्थात् नित्यानित्य वस्तु विचारण ही प्रिया है। वैराग्य ही एक मात्र मित्र है। यम नियम आदि साथी तथा शम दम प्रभृति सहाय है। मैत्री आदि प्रवृत्तियाँ परिचारिकायें हैं, मोक्षेच्छा सहगामिनी है, मोहममता, संकल्प, संग आदि शत्रु हैं, जिनका उच्छेद करना है। अतः कृष्ण मिश्र का प्रधानभूत शान्त रस' परिपक्वता एवं उत्तमता को प्राप्त कर सका है तथा उसमें माधुर्य, लालित्य एवं आकर्षण विद्यमान है, उसी परिपक्वता और उत्तमता के साथ वेदान्त देशिक ने शान्त रस का आकर्षण पूर्ण प्रयोग किया है। यथा–

निवृतमतिकश्मलों निभृतबुद्धयबुद्धीन्द्रियः
परप्रणिधिवैभवत्रुटितकर्मबन्धः कृती
विमुक्तिपथमद्भुतं द्रुतमुपैति विद्वानिति
त्रिवर्गरसधस्मरस्त्रिदर्शाडिण्डिमस्ताऽयते।[310]

और भी–

स नरकादिव पापफलादभयं भजति पुण्यफलादपि नाशिनः
इति समुझ्झितकामसमन्वयं सुकृतकर्म कथंचन मन्यते।[311]

अर्थात् उनको जितना भय नश्वर पुण्यफल से होता है, उतना ही पापफल नरक से अतः निरभिलाष होकर वह पुण्यकर्म किसी तरह किया करते हैं–

भवसागरतारणाय यासौ नचिराद्योगतरिस्त्वयाश्रिता
अधुना परिमुच्य तां मदात्कथमंगारनदीं विगाहसे।[312]

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में पुरूष ने विष्णुभक्ति की महिमा को इस प्रकार प्रकट किया है– ''क्लेशतरंगो को पार किया, भयानक ममत्व भ्रम को दूर छोड़ा, मित्र, कलत्र, वन्धुरूप मकरों के फेर से पिण्ड छुड़ाया, क्रोधरूप बड़वानल को अपकृत किया, तृष्णालताविभ्रम को विघटित किया, इस तरह अव संसार सागर का तट आसन्न हो रहा है।[313] यथा–

गतद्रविणदोहदं गलितमाननागौरवं
यशस्यनभिसंधिके यमिनमप्यनुदगृहति
तिरस्करणकौतुकगृहगृहीतचित्ते जने
गुणग्रहणलालसो न खलु कश्चिदालक्ष्यते।[314]

दृश्यकाव्य में नाटककारों ने वर्णन, कथन तथा चित्रण के द्वारा

अलौकिक स्थिति उत्पन्न कर देता है, जिससे दर्शक के हृदय में शीघ्र ही रस का उन्मीलन हो जाता है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में शान्त रस—

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासायस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलं यन्महः
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरूषम।[315]

अर्थात् जिससे संसार उत्पन्न होता है तथा जिसमें स्थित रहता है और फिर जिसमें लीन हो जाता है, जिसके प्रकाश से संसार प्रकाशित होता है और जिसका प्रकाश स्वाभाविक तथा उज्जवल आनन्दरूप है, शान्त अविकारी, नित्य, भूतेश्वर तथा जिसकी शरण में विद्वान लोग द्वैत भाव को नष्ट करके जाते हैं, उस पुरूष का प्रस्ताव दृष्टव्य है—

पुमानकर्ता कथमीश्वरो भवेत
क्रिया भवोच्छेदकारी न वस्तुधीः
कुर्वन्क्रिया स्व नरो भवच्छिदः
शतं समाः शान्तमना जिजीविषेत्।[316]

अर्थात् अकर्ता पुरूष ईश्वर कैसा होगा और वस्तुज्ञान से संसार की निवृत्ति किस प्रकार होगी? अतः संसार निवर्तक कर्म करते हुए ही शान्त मन से सौ वर्षों तक जीते रहने की कामना करनी चाहिए।

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' नाटक शान्त रस प्रधान होते हुए भी दर्शकों का मनोरंजन करने में पूर्ण सफल नाटक रहा। 'संकल्प सूर्योदय' में शान्त रस का उदाहरण—

मलिनिमदशामांतन्वानैर्मलीमसवस्तुभि
र्मणिरिव महानन्तंर्योतिर्निरूद्धनिजप्रभः
शुभतरूचिप्रत्यासेधस्वकर्मफलच्छला
ज्जडपरिषदि न्यस्तो दैन्या दीन्यति मायया।[317]

अतः यद्यपि प्राचीन विचारकों ने परम्परगत धारणाओं का पालन करने के लिये औपचारिक रूप से येन केन प्रकारेण रूपक कथात्मक नाटकों में कहीं वीर और कहीं श्रृंगार रस का अनुसंधान किया है। वस्तुतः 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय'

नाटक विशेष दार्शनिक दृष्टिकोण और सम्प्रदाय विशेष के सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा प्रसारण के लिये लिखे गये हैं। यथा –

द्वौ तौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ
समानवृक्षं परिषस्वजाते
एकस्तयोः पिप्पलमत्ति पक्व
मन्यस्त्वनश्नन्नभिचाकशीति ।[318]

जब तक स्वात्मावबोधरूप ब्रह्मज्ञान नहीं होता है, तब तक जलचन्द्र, गन्धर्व, नगर, स्वप्न, इन्द्रजाल की तरह यह, जगद्रूप प्रमेय कार्य उत्पत्ति तथा विनाश होने के कारण शुक्ति में रजत तथा माला में सर्प की तरह उत्पन्न होते हैं और तत्वज्ञान होने पर अस्त हो जाते हैं। अतः दोनों नाटकों में उच्च आध्यात्मिक और धार्मिक उपदेश देने के रूप में जनता के सामने आया। यथा–

अंगान्यस्य मुहुर्मुहुः पुलकितान्यन्तमुखं मानसं
चिन्ता च द्रुतशर्कराप्रतिनिधिः शीताश्रुणी लोचने
माया सारथिगीतयोपनिषदा दृष्टक्रमं द्रागसौ
मन्ये याति मनोरथेन पुरूषो वैकुण्ठघण्टापथम् ।[319]

सर्वप्रथम अभिनवगुप्त के गुरू भट्टतौत ने काव्य कौतुक 960 ई0 में शान्त रस को प्रधान रस स्वीकार किया।

कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक के अनुसार जब सभी सांसारिक कामनाएँ और चिन्ताएँ शान्त हो जाती हैं। जब सभी प्रकार की मानसिक आसक्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं और तत्व ज्ञान की दशा हो जाती है, उस समय की दशा शान्त के स्थायीभाव की सी रहती है और उसे उपस्थित किया जा सकता है। दोनों आचार्यो ने शान्त रस को नाटकों में प्रधानता दी है।

संदर्भ संकेत

1. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त भाग 1 पृ0 280

2. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 3/73

3. नाट्यशास्त्र, भरत, 6/32

4. तदुपरिवत् 4/34

5. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, षष्ठ अध्याय, पृ0 15

6. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, षष्ठ अध्याय, पृ0 15

7. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 182

8. उत्तरामचरित, भवभूति, पृ0 42

9. आर्यासप्तसती ।।36

10. नाट्यदर्पण, पृ.148

11. रसतरंगिणी, पृ. 149

12. भरतनाट्यशास्त्र, भरतमुनि, सप्तम अध्याय 78

13. भावप्रकाश, शारदातनय, पृ. 64

14, 15. प्रबोध चन्द्रोदय, अंक 1, पृ. 21,22

16–28 तदुपरिवत् पृ. 27, 45, 53, 64, 70, 85, 86, 89, 117, 118, 151, 166, 174,

29. संकल्प–सूर्योदय, वेंकट नाथ वेदान्त देशिक, अंक 6, पृ0 533, 543, 553, 572, 670, 745, 751

36. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, गुरू प्रसाद शास्त्री, 5/9, काशी सं0 2005।

37. नाट्यशास्त्र, का0मा0सं0 सीरिज निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, पृ0 242

38. नाट्यशास्त्र, गा0 ओ0 सी0 बड़ौदा, 1930, पृ0 268–269

39. डॉ0 पी0 एल0 वैद्य, प्रस्तावना 'रसविलास', पृ0 5, ओरियन्टल बुक हाउस पूना।

40. 'काव्यालंकारसारं संग्रह', 4/4 (45), पृ0 52, मा0 ओ0 ई0 पूना 1925।

41. नाट्यशास्त्र, अध्याय 6, पृ0 268,269 मा0ओ0

42. 'नाट्यशास्त्र', प्रथम अध्याय, 104 112

42. साहित्यदर्पण, 3 परिच्छेद 182 श्लोक पृ0229

43. अग्निपुराण, 339 अध्याय श्लोक 9, पृ0423

44. काव्यानुशासन, अध्याय2, 2 सूत्र, पृ0 106

45. काव्य प्रकाश, 4 उल्लास 35, श्लोक, पृ0 93

46. नाट्यदर्पण 3, विवेक, श्लोक 111, पृ0 163, गा0ओ0सी0

47. प्रतापरूद्रयशोभूषण, रस प्रकरण, पृ0 221,

48. 'रस गंगाधर' रस प्रकरण, पृ0 221

49. काव्य प्रकाश, मम्मट, पृ0 93

50. नाट्यशास्त्र, गा0 ओ0 सी0 6/17 बड़ौदा 1930

51. 'नाट्यशास्त्र', अभिनवभारती, पृ0 340, 1 भाग गा0 ओ0 सी0

52. 'काव्यानुशासन', अ0 2/17 सू0 पृ0 120

53. 'प्रतापरूद्रयशोभूषण', रस प्रकरण, पृ0 236 बम्बई 1909

54. 'साहित्यदर्पण', 3/50 पृ0 265 डॉ0 सत्यव्रत सिंह, बनारस

55. 'नाट्यदर्पण', 3 विवेक श्लोक 126 गा0 ओ0 सी0, 1929, भाग 1, पृ0 176,177

56. 'भरत कोश', पृ0 974 रामकृष्ण कवि तिरूपति, 1951

57. 'रसगंगाधर', स्थायीभावप्रकरण पृ0 132, पं0 बदरीनाथ

58. 'अभिनवभारती' नाट्यशास्त्र गा0ओ0सी0 1 भाग पृ0 269–270।

59. 'रसविलास', द्वितीय स्तबक 46 श्लोक, पृ0 26, प्रेमलता शर्मा

60. गीता, द्वितीय अध्याय

61. 'रसविलास', पृ026

62. ना0 श0 गा0 ओ0 सी0 भाग। पृ0 269

63. नाट्यशास्त्र, गा0 ओ0 सी0 भाम। शान्त रस प्रकरण पृ0 40

64. प्रबोध–चन्द्रोदय, अंक 4, पृ0 124.125

65. प्रबोध–चन्द्रोदय, श्लोक 12, अंक 4, पृ0 131, 132, 139, 146, 148, 166, 169, 170, 174, 180,

74. संकल्प सूर्योदय, वेंकट नाथ वेदान्त देशिक अंक 6 पृ0 583, 582,46, 512, 548, 511

78. प्रबोध चन्द्रोदय, प्रस्तावना पृ0 6 चौ0 सं0 सी0 बनारस 1955

79. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, पृ0 111, 774, 778, 775, 800

85. नाट्यशास्त्र 'काव्यमाला' नि0 सा0 प्रे0 बम्बई संस्करण 3.45

86. भाव प्रकाशन, द्वितीय अधिकार, पृ0 33, गो0 ओ0 सी0 1930, पृ0 47–48

87. तदुपरिवत् पृ0 48

88. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि , 28/18

89. हिं0 आफ0 क्ला0 सं0 लिटरेचर, डॉ0 कृष्णमाचारी, मद्रास 1937, पृ0 822,

90. गा0 ओ0 सीरीज, पृ0 33,

91. हि0 आफ0 क्ला0 सं0 लिटरेचर', डॉ0 कृष्णमाचारी ,पृ0 549

92. नाट्यशास्त्र, अभिनवभारती, पृ0 333,334,6

93. संकल्प सूर्योदय, अंक 7, पृ0 628

94. संकल्प सूर्योदय, अंक 9 पृ0 765

95. सरस्वतीकण्ठांभरण भोज, 5/3

96. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 175

97. ध्वन्यालोक, पृ0 217

98. रसतंगिणी, पृ0 139

99. नाट्यदर्पण, पृ0 146

100. दशरूपक, धनंजय, चतुर्थ प्रकाश, 64, 65

101. संस्कृत नाट्यसिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 177

102. भावप्रकाश, शरदातनय, पृ0 64

103. नाट्यदर्पण, पृ0 110

104. राघवन, शोध प्रबन्ध, पृ0 486–487

105. नाट्यदर्पण, पृ0 110–111

106– 120. प्रबोध चन्द्रोदय, सं0 रामचन्द्र मिश्र पृ0 58, 77, 88, 89, 90, 91, 93, 119, 121, 123, 124, 142, 147, 94, 96, 167

121–126. संकल्प–सूर्योदय, सं0 कृष्णमाचार्येण, पृ0 712 अंक 8, 9 पृ0 712,717, 745, 809, 676,

127. न विना विप्रयोगेन संयोगः पुष्टिमश्नुते। कालिदास ग्रन्थावली, द्वितीय संस्करण पृ0 155

128. नाट्यदर्पण, पृ0 110–111

129. रस सिद्धान्त– स्वरूप विश्लेषण, पृ0 322

130. नाट्यदर्पण पृ0 144

131. नाट्य शास्त्र, अ0 7,4

132. दशरूपक, धनंजय, चतुर्थप्रकाश 258 कारिका 2 टीकाकार श्रीनिवास शास्त्री

133. काव्यानुशासन, पृ0 56

134. 'साहित्यदर्पण' 3/131

135. 'साहित्यदर्पण' 3/90

136. 'नाट्यशास्त्र' 7/5

137. नाट्यदर्पण, पृ0 144

138. नाट्यदर्पण पृ0 142

139. दशरूपक, धनंजय, चतुर्थप्रकाश पृ0 261

140. नाट्यदर्पण पृ0 144

141. नाट्यशास्त्र, सप्तम अध्याय, 5

142. भाव प्रकाश, पृ0 6

143. रसार्णव सुधाकर, पृ0 48

144. नाट्यदर्पण, पृ0 181

145. रस और रस परम्परा, डॉ0 विशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, पृ0 45

146. प्रबोध चन्द्रोदय, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 7

147. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, अंक 8, पृ0 675

148—153. प्रबोध चन्द्रोदय, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 5, पृ0 166,167, 2/55, 56, 3/89, 2/76,

154. संकल्प सूर्योदय, अंक 8, पृ0 679,

155,156. प्रबोध चन्द्रोदय, अंक 2, पृ0 67

157. प्रबोध चन्द्रोदय, अंक 5, पृ0 151

158. संकल्प सूर्योदय, श्लोक 10, अंक 8, पृ0 678

159. नाट्यदर्पण, पृ0 165

160. प्रबोध चन्द्रोदय, प्रथमअंक, पृ0 25

161. तदुपरिवत् पृ0 58

162. संकल्प सूर्योदय, पृ0 654

163. संकल्प सूर्योदय, पृ0 698

164–165. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र रामचन्द्र मिश्र, अंक 3 पृ0 119, 120

166–68 संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, अंक 10, पृ0 873, 872, 882,

169–70. प्रबोधचन्द्रोदय श्री कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 3 पृ0 85,86

171–72. नाट्य दर्पण 165,166,167, 165

173. 'रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र', डॉ0 निर्मला जैन, पृ0 328

174 नाट्य दर्पण, पृ0 144

175. नाट्यशास्त्र पृ0 84

176. दशरूपक, धनंजय, टीका श्रीनिवास शास्त्री पृ0267

177. विशेषदाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः। (साहित्य दर्पण तृतीय परिच्छेद)

178. उन्मज्जन्तो निमज्जन्तः स्थायिन्यम्बुनिधावित। उर्मिवद्वर्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते।। (रसार्णसुधाकर, द्वितीयविवेक, 3)

179. नाट्यदर्पण, पृ0 144

180. ''यथा सूर्य इदं नक्षत्रममु वासरं नयतीति'' । भरतकृत नाट्यशास्त्र, पृ0 84

181. संस्कृत नाट्य साहित्य, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 144

182. सरस्वती कण्ठाभरण, 5,16–17

183. संख्यावचनं नियमार्थं तेनान्येषामत्रैवान्तभविः। तद्यथा दम्भस्यावहित्थे, उद्वेगस्य निर्वेदे क्षुततृष्णादेग्लीनौ (काव्यानुशासनः पृ0 86)

184. नाट्यदर्पण, पृ0 157

185. नाट्यदर्पण, पृ0 157

186. संकल्प सूर्योदय, पृ0 583 ,श्लोक 61, अंक 6

187. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवानन्दन शुक्ल, पृ0 180, अंक 5

188. संकल्प सूर्योदय, अंक 6 पृ0 628, श्लोक 20

189. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल, पृ0 102, अंक 3

190. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल ,117,118, अंक 4

191. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 61

192. संकल्प सूर्योदय पृ0 684, अंक 8

193. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, पृ0 123,124, अंक 3

194. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका श्रीरामचन्द्र मिश्र, पृ0 126, तृतीयोऽंक
195. प्रबोध चन्द्रोदय,टीका देवनन्दन शुक्ल पंचमोऽंक, पृ0 166
196. संकल्प सूर्योदय, पृ0 732
197. संकल्प सूर्योदय, पृ0 675 अष्टमोऽंक
198. प्रबोध चन्द्रोदय टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 35
199. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 146,147
200. प्रबोध चन्द्रोदय, द्वितीयअंक, पृ0 51
201. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽंक, पृ0 683
202. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 148,149
203. प्रबोध चन्द्रोदय, षष्ठोऽंक, पृ0 223
204. प्रबोध चन्द्रोदय, षष्ठोऽंक, पृ0 221
205. संकल्प सूर्योदय, पृ0 698, अष्टमोऽंक
206. संकल्प सूर्योदय, पृ0 705, अष्टमोऽंक
207. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल, पृ0 167, पंचमोऽंक
208. संकल्प सूर्योदय, षष्ठोऽंक, पृ0 551
209. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽंक, पृ0 685
210. डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित, इस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण , पृ0 44,45
211. पं0 रामदहिन मिश्र, रसमीमांसा , पृ0 202
212. दशरूपक, धनंजय, चतुर्थ प्रकाश, पृ0 301
213. वासनात्मतयास्थितं स्थायिनं, नाट्य दर्पण, पृ0 144
214. अभिनव भारती पृ0 42
215. प्रतिक्षणमुदयव्ययधर्मकेषु बहुष्वीय व्यभिचारिष्वनु यायितयाडवश्यं विष्ठतीति स्थायी। नाट्यदर्पण, पृ0 181
216. अविरूद्धा विरूद्धा वा यं विरोधातुमक्षमाः
आस्वादांकुरकन्दोऽसौ भावैः स्थायीति सम्मतः, साहित्यदर्पण, पृ0 212
217. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ रमाकान्त त्रिपाठी पृ0 150,
218. 'रसगंगाधर', पं0 जगन्नाथ, पृ0 5
219. 'नाट्यशास्त्र', भरत, सप्तम अध्याय, 119–120

220. नाट्यदर्पण, पृ0 156
221. अभिनवभारती, षष्ठ अध्याय, पृ0 267
222. संस्कृत नाट्यसिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 151
223. मध्ययुगीन रसदर्शन और समकालीन सौन्दर्यबोध', डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ, पृ0 341
224. 'श्रंगार प्रकाश', भोजराज, भाग 1 पृ0 2–3
225. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका श्री रामचन्द्र मिश्र, पृ0 89 द्वितीयऽक
226. संकल्प सूर्योदय, षष्ठोऽक, पृ0 582, श्लोक 60
227. 'साहित्यदर्पण', कविराज विश्वनाथ, 3/76
228. संकल्प सूर्योदय, षष्ठोऽक, पृ0 586, श्लोक 64
229. प्रबोध चन्द्रोदय, श्लोक 12, पंचमोऽक, पृ0 165
230. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 3/177
231. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल, द्वितीयऽक, पृ0 46
232. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽक, पृ0 685
233. 'साहित्यदर्पण', विश्वनाथ 3/178
234. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽक, पृ0 700, श्लोक 33
235. प्रबोध चन्द्रोदय, श्लोक 1, चतुर्थोऽक, पृ0 117,118
236. संकल्प सूर्योदय, सप्तमोऽक, पृ0 647,651
237. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽक, पृ0 702
238. संकल्प सूर्योदय, सप्तमोऽक, पृ0 628
239. प्रबोध चन्द्रोदय, तृतीयोऽक, पृ0 102
240. सं0 सप्तमोऽक पृ0 642
241. संकल्प सूर्योदय, दशमोऽक, पृ0 800, श्लोक 7
242. प्रबोध चन्द्रोदय, षष्ठोऽक, पृ0 218, श्लोक 27
243. व्यक्ति विवेक, पृ0 11,12
244. रसतरंगिणी, तं0 5, पृ0 114
245. रसरत्नप्रदीपिका, पृ0 23, 4/77–78
246. संगीतरत्नाकर पृ0 38
247. भरत– नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, पृ0 228, व्याख्या बाबूलाल शुक्ल

248. भरत, नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, पृ0 228

249. भरत, नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय , पृ0 215,227 श्लोक 10,31 व्याख्याकार बाबूलाल शुक्ल

250. छन्दोग्योपनिषद 1/1/2–3

251. भरत, नाट्यशास्त्र पृ0 281–282

252. रस सिद्धान्त, डॉ0 नगेन्द्र पृ0 137

253. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा ,पृ0 128

254. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा , पृ0 130

255. नाट्यदर्पण, पृ0 142

256. प्रबोध चन्द्रोदय, टीक रामचन्द्र मिश्र, पृ0 25, प्रथमअंक

257. संकल्प सूर्योदय, पृ0 676, अष्टमोऽक

258. भरत, नाट्यशास्त्र , पृ0 106

259. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ0 85, तृतीयअंक

260. 'नाट्यदर्पण', पृ0 143

261. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ0 50, द्वितीयऽक

262. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽक, पृ0 685

263. प्रबोध चन्द्रोदय, चतुर्थोऽक पृ0 120

264. नाट्यदर्पण गा0 ओ0 सी0, पृ0 161, डॉ0 वी भट्टाचार्य

265. काव्यप्रकाश, डॉ0 सत्यव्रतसिंह, बनारस 1955, पृ0 65

266. साहित्य दर्पण, डॉ0 सत्यव्रत सिंह, 'बनारस' 1957, पृ0 99

267. संकल्प–सूर्योदय, प्रस्तावना 1/3 पृ0 17, अडयार लाइब्रेरी मद्रास 1948

268. प्रबोध चन्द्रोदय, प्रथमअंक, पृ0 5

269. प्रबोध चन्द्रोदय, प्रथमअंक, पृ0 8

270. गरूड़पुराण 23/1

271. गीता 12/14

272. विष्णु पुराण 1/20/19

273. भागवत 3/25/32

274. नारद भक्ति सूत्र 16

275. शाडिल्य भक्ति सूत्र 2

276. नारद भक्ति सूत्र 2–3

277. शंकराचार्यः विवेकः चूड़ामणि 32

278. वल्लभाचार्यः तत्वदीप निबन्धेः श्लोक 46

279. रूपगोस्वामी भक्तिरसामृतसिन्ध, पूर्व विभाग, प्रथम लहरी, श्लोक 11

280. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि, प्रथमभाग पृ० 32

281. केनोपनिषद 4/6

282. श्वेताश्वतरोपनिषद 6/18

283. तैतिरीयोपनिषद 2/7

284. ब्रह्म सूत्र 1/1/12 आनन्दमयोऽभ्यासात्

285. गीता 18/46

286. गीता 7/17 तेषांजनी नित्य युक्त एक भक्तिर्विशिष्यते

287. गीता 11/44 पितेव पुत्रस्य सरवेव सरव्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सादुम्।।

288. न० भ० सूत्र 28–29

289. शा० भ० सूत्र 2 ना० भ० सूत्र 2–3

290. शा० भ० सूत्र 1/1/6 द्वेषप्रतिपज्ञभावाद्रसशब्दाच्यरागः।

291. 'रामचरितमानस' अयोध्याकाण्ड 204 दो० गोरखपुर

292. प्रकाशित अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय काशी वि०सं० 1988

293. हरिभक्ति रसामृतसिन्धु दक्षिणविभाग लहरी पृ० 283

294. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी पृ० 172

295. 'दि रस कल्ट इन दि चतैन्य चरितामृत' आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुविली वोल्यूम 3

296. 'दि भक्तिरसशास्त्र आफ बंगाल वैष्णविज्म' इण्डि० हिस्टो का भाग 8, 1932

297. भगवदभक्ति रसायन 1927 बनारस संस्करण पृ० 4

298. भक्तिकाव्य का अन्तदर्शन पृ० 43 डॉ० वेंकट शर्मा

299. संकल्प–सूर्योदय , पृ० 635, सप्तमोऽंक

300. संकल्प–सूर्योदय, पृ० 653, सप्तमोऽंक

301. संकल्प—सूर्योदय पृ0 658 सप्तमोऽंक

302. गीता

303. संकल्प—सूर्योदय टीका कृष्णमाचार्य पृ0 629 सप्तमोऽंक

304. नाट्यशास्त्र पृ0 333—340 अभिनवगुप्त 6 अ0

305. 'साहित्यदर्पण' 3/245,249 डॉ0 सत्यव्रत सिंह पृ0 263

306. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक पृ0 165 नाटक एक अध्ययन डॉ0 कृष्णकान्त

307. नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त में पृ0 340 गा0 ओ0 सी0 भाग 1

308. प्रबोध चन्द्रोदय कृष्णमिश्रकृत टीका देवनन्दन शुक्ल षष्ठ अध्याय पृ0 186

309. प्रबोध चन्द्रोदय कृष्णमिश्रकृत टीका देवनन्दन शुक्ल षष्ठ अध्याय पृ0 188

310. संकल्प—सूर्योदय, टीका, कृष्णमाचार्य , पृ0 868, दशमोऽंक

311. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 189, षष्ठ

312. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 193, षष्ठ

313. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 195, श्लोक 8

314. संकल्प—सूर्योदय, कृष्णमाचार्य पृ0 869, श्लोक 79

315. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 203, षष्ठअंक

316. प्रबोध चन्द्रोदय, टीका देवनन्दन शुक्ल पृ0 204, षष्ठअंक

317. संकल्प—सूर्योदय, पृ0 863, दशमोऽंक

318. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ0 210, षष्ठअंक

319. संकल्प सूर्योदय, वेंकट नाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक 10, पृ0 828

षष्ठ परिवर्त्त

नाटकीय अभिव्यन्जन कौशल

- ❖ भाषा एवं उसके रूप
- ❖ संस्कृत, प्राकृत
- ❖ पात्रानुकूल भाषा
- ❖ काव्यात्मक भाषा
- ❖ संवाद सौष्ठव
- ❖ संवादों में आध्यात्मिकता
- ❖ संवादों में मनोविज्ञान
- ❖ शैलीगत प्रयोग
- ❖ स्वगत कथन
- ❖ प्रतीकात्मकता

भाषा एवं उसके रूप

"साहित्य एक सामाजिक संस्था है । इसका माध्यम है भाषा, जो एक सामाजिक सर्जना है । भाषा के बिना प्रत्यक्ष अभिव्यंजना सम्भव नहीं है । भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाने वाला साहित्य कलाओं में सार्वाधिक लोकप्रिय है । भाषा क्योंकि एक ऐसा माध्यम है जो समस्त मानव – समूह के लिए पूर्णताः परिचित है, इसलिए उसके द्वारा व्यंजित कोई भी भाव निश्चय ही सर्वाधिक लोकप्रिय होगा। अतः भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग ही शैली है।

नाटक की सफलता भाषा के ऊपर ही निर्भर है। नाटक की भाषा जितनी ही सरल, सरस, प्रवाहपूर्ण, भावाभिव्यंजक एवं बोधगम्य होगी, वह उतना ही प्रभावशाली होगा। नाटककार जब पांडित्यपूर्ण भाषा का प्रयोग नाटक में करता है तो नाटक की बोधगम्यता को क्षति पहुंचती है। भाषा जब तक अपनी वास्तविक परम्परा से अपने को यथार्थ ढंग से सम्बद्ध नहीं कर लेता, वह निर्जीव कृत्रिम होता है और नाट्य साहित्य के लिये इससे हानिप्रद और कोई बात नहीं हो सकती। भाषा के सम्बन्ध में एक अन्य आवश्यक बात स्वाभाविकता की रक्षा होती है। जिस काल का कथानक चुना जाता है, भाषा उसी के अनुरूप होती है। आचार्य कृष्ण मिश्र एवं वेंकटनाथ वेदान्त देशिक ने शौरसेनी, महाराष्ट्री, मगधी और अर्ध मागुधी, प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है। इनके पद्य संस्कृत साहित्य में विशिष्ट महत्व रखते हैं। यथा 'प्रबोधचन्द्रोदय' के प्रथम अंक में काम का कथन–

"प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसंभवस्तावत
निपतंति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम्।।[1]

गत्यात्मक गतिशीलता के लिये और क्रियात्मक तीब्रता के लिये इनकी भाषा सशक्त है। गद्य और पद्य दोनों में ही इन्होंने कोमल, सरस एवं औचित्य पूर्ण पदावलि का प्रयोग किया है। भाषा भावों पर आधिपत्य नहीं जमाती अपितु भाव ही भाषा पर अपना अधिकार रखते प्रतीत होते हैं। कभी–कभी एक शब्द का प्रयोग से ही नाटककार अधिकाधिक अभिप्राय प्रकट करने में समर्थ होते हैं, कृष्ण मिश्र एवं वेंकटनाथ की भाषा सुन्दर और ओजस्विनी है। पद्य हृदय को आकृष्ट करने वाले और मधुर है। भाषा में ओजमय गद्य का समावेश है। काव्यमय लालित्यपूर्ण प्रवाह है। भावावेश के चित्रण में समर्थ है। गद्य और पद्य पर समान अधिकार है।

'प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक में भाषा सौन्दर्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

1. गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः
   उत्पथ प्रति पन्नस्य परित्यागो विधीयते[2]

2. मुक्तातंककुरङ़ काननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः
   पुण्यायायतनानि संतततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः
   यस्याः प्रीतिरमोषु सात्रभवती चाण्डालवेश्मोदर
   प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तं गता[3]

3. अन्धी करोमि भुवनं बीधरीकरोमि
   धीरं सचेतनंम चेतनतां नयामि
   कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति
   धीमानधीतमपि न प्रतिसंदघाति।।[4]

अर्थात मैं जगत को अन्धा और बहरा बना सकता हूँ, विद्वान को अधीर तथा मूर्ख कर दे सकता हूँ, जिससे उसे न तो कर्तब्यज्ञान होगा, न भलाई की बात सुनेगा, बुद्धिमान होकर भी वह पढ़ी हुई बातें भूल जाएगा। ''भंकल्प सूर्योदय''' में भाषा सौन्दर्य के कतिपय उदाहरण–

''निष्प्रत्यूहसमुन्नमन्मदसिराकण्डूलगण्डस्थली
हेलाधूननधूतभृड़ं पटलीमूर्च्छन्मृषाचामरः
मन्दान्दोलित मन्दरा चलतटी निष्ठयूतधातूच्छटा
सिन्दूरधुतिबन्धुरो विहरित स्तम्बेरमग्रामणीः।[5]

आचार्य कृष्णमिश्र एवं वेकंटनाथ देशिक के नाटक में रूपक मय पात्रों में से कुछ संस्कृत बोलते हैं। स्त्रैण आकर्षण और विशेषता वाले पात्र प्राकृत बोलते हैं इनकी भाषा में च्युतसंस्कृति दोष विरल हैं, अघोष वर्णों का घोषीकरण नहीं मिलता।

संाधरण्ये सत्यपि स्वेच्छयैव द्धघा विश्वं यद्विभूतिर्व्यभाजि।

चूडा भागे दीप्यमानों श्रुतीनौ दिव्यावेतौ दंपती मे दयेतामा के दयेताम। में अधीगर्थ–दयेशां कर्मणि सूत्र–से अधीगर्थ स्मरणार्थक–धातुओं तथा 'दय' और 'ईश' धातुओं के कर्म में शेषत्व की विवक्षा से षष्ठी विभक्ति है, नवम अध्याय के 40वे श्लोक में अनुयुगं का उल्लेख निघुष्टः में इस प्रकार है ''यानाघडें, युगः पुंसि युंग युग्मे कृतादिषु'' सप्तम अंक के 36वें श्लोक में टवर्ग का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है जो कि इस प्रकार है–

किमत्र हरिरित्यथ प्रकटितोपहासकर्मं

हिरण्यकरघट्टितात्सपदि जृम्भितः स्तम्भतः

पुरः स्फुरति संभ्रमस्फुटसटाच्छटाच्छोटन।।

त्रुटद्वनधनध्वनिद्विगुणवृंहितः सिंहराट्।।[7]

सप्तम अंक के श्लोक में दोघूयते शब्द 'धूत्र कम्पने' इति घोतोयड़ि रूप से बना है इसी प्रकार कादम्बः, शब्द ''स्त्यौष्टचै शब्द संघातयोः'' घातु से बना।

नाथे नस्तृणमन्यदन्यदपि वा तत्राभिनालिकिनी

नालीकस्यपृहणीय सौरभंमुचा वाचा न याचामहे

शुद्धानां तु लभेमहि स्थिरधियां शुद्धान्तसिद्धान्तिनां

मुक्तैश्वर्यदिनप्रभातसमयासत्ति प्रसतिं मुहुः।।[8]

सप्तमी विशेषण बहुब्रीह समास का प्रयोग कर नाट्यगत भाषा का प्रयोग किया है।

संस्कृत

संस्कृत शब्द 'सम्' पूर्वक कृ धाातु से बना हुआ है, जिसका मौलिक अर्थ है संस्कार की गई भाषा और परिमार्जित है अर्थात् जिसे वैयाकरणों ने अपने प्रयत्नों से पूर्ण बना दिया है। पाणिनि इस भाषा के विकास की सर्वोच्च अवस्था का प्रतिनिधित्व करते है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से संसार की भाषाओं में दो ही भाषाएं ऐसी हैं, जिनके बोलने वालों ने संस्कृति तथा सभ्यता का निर्माण किया–आर्य भाषा, सेमेटिक भाषा। आर्य भाषा के अन्तर्गत दो विशिष्ट शाखाएँ हैं– पश्चिमी और पूर्वी। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत योरप की सभी प्राचीन तथा आधुनिक भाषाएँ सम्मिलित हैं, ये सभी भाषाएँ मूल आर्य भाषा से ही उत्पन्न हुई हैं। पूर्वी शाखा में दो प्रधान विभाग हैं– भारतीय शाखा में संस्कृत ही सर्वस्व है। आर्य भाषाओं में यही सबसे प्राचीनतम है। आजकल भारत की समस्त प्रान्तीय भाषाएं (द्राविड़ी भाषाओं को छोड़कर) संस्कृत भाषा से ही निकली हैं। संस्कृत भाषा के दो भेद हैं–वैदिकी और लौकिक। संस्कृत में बाल्मीकीय रामायण, महाभारत, महाकाव्य, नाटकों आदि की रचना हुई। संस्कृत साहित्य का इतिहास अनेक काल विभागों में बॉटा जा सकता है। श्रुतिकाल जिसमें सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद का निर्माण हुआ, इस काल में वाक्य रचना सरल, संक्षिप्त और क्रियाबहुल हुआ करती थी दूसरा स्मृतिकाल जिसमें रामायण, महाभारत, पुराण, वेदागों की रचना हुई। तीसरा वह है जिसमें सुव्यवस्थित की गई, काव्य–नाटकों की रचना होने लगी। आचार्य अश्वघोष

के बाद संस्कृत नाटक के लिखने का श्रेय श्रीकृष्ण मिश्र को ही दिया गया है। जिन्होने रूपक कथात्मक नाटक लिखा । किसी भी वस्तु को अभिव्यक्व करने के लिए भाषा सबसे सहज माध्यम है और भाषा के माध्यम से साहित्य का मार्ग, किसी भी विषय को सरस ढ़ंग से समझाने के हेतु सर्वोत्तम स्वीकार किया गया है । धर्म और दर्शन के गूढ़ सिद्धान्त काव्य के माध्यम से सुदूर अतीत काल से ही कवि जनों के द्वारा साधारण जन गम्य होते आ रहे हैं। आचार्य कृष्णमिश्र एवं वेंकटनाथ वेदान्त देशिक की संस्कृत भाषा के कतिपय दृष्टान्त –

'प्रबोधचन्द्रोदय' के षष्ठ अंक में श्रद्धा, राजा, पुरूष का संवाद–

श्रद्धा – देव इममर्थं सैंव प्रस्तोष्यति । तदागच्छतु देवः ।

एष स्वामी त्वदागमनमेव ध्यायन्विक्तिे वर्तते'।

राजा – (उपसृत्य) स्वामिन् अभिवादय[10]

पुरूष :– वत्स, प्रकमविरूद्धोऽयं समुदाचारः । यतो ज्ञानवृद्धतयां भवानेवास्माकमुपदेशदानेन पितृभावमापन्नः । कृत :–

पुरा हि धर्माध्वनि नष्टसंज्ञा

देवास्तमर्थं तनयानपृच्छन् ।

ज्ञानेन सम्यक्परिगृह्य चैतान्

हे पुत्रका संश्रृणुतेत्यवोचन् ।।[11]

प्राचीनकाल में धर्ममार्ग में भटकते हुए देवों ने पुत्रों से उसके विषय में प्रश्न किये, उन पुत्रों ने उन्हें ज्ञान से ग्रहण करके पुत्र शब्द से ब्यवहृत कर उपदेश सुनने को कहा –

'संकल्प–सर्योदय' नाटक में संस्कृत भाषा का प्रयोग निम्नवत है देखिए–

तुम्बुरू :– (समयसंभ्रमम) अतिधोरचेस्टिः खल्वसावशेष विध्वंसनतर्षवानभर्ष । तथाहि

अपि वैरिवरूथिनीमशेष्ज्ञामपि शैलानपि सागरानपि क्षमाम् ग्रसितुं प्रभवत्ययं प्रदप्तिः प्रथितः कोपतनूनपादनूनः ।[12]

नारदः – सखे, पश्य पश्य;

जिघांसाजानिनानेन स्थिरत्रसमिदं जगत्।

बध्यघातक भावेन विभज्य विनियुज्यते।।[13]

अपिच,

कस्चरणनरवरदन्तप्रभृतिकमपि जगति सहजमितरदपि

प्रतिधसुभटस्य विवं प्रहरणमथवा विहर्तुमुपकरणम्।।[14]

अतः इन दोनों नाटककारों की संस्कृत भाषा की सरलता, अभिरामता सर्वत्र श्लाधनीय है। जिस नाट्य वाटिका में कालिदास की रसमयीं सुक्तियॉ सरस आम्रमंजरी की तरह सहृदयों के हृदय को उल्लासमय बना रही हैं, उसी प्रकार कृष्णमिश्र एवं वेंकटनाथ के नाटक रूपक प्रधान होते हुए भी इनके गद्य एवं पद्य सहज, सरस एवं सर्वग्राह्य हैं।

प्राकृत

प्राकृत मूल शब्द 'प्रकृति' से उदभूत हुआ है। प्रकृति के रूप भेद से प्राकृत व्यूत्पन्न होता है जिसका अर्थ है प्रकृति– मूल से उत्पन्न। प्राकृत भाषाएं संस्कृत की ही सीधी वंशज हैं, जो स्थान और काल की दृष्टि से परिवर्तित और परिवर्धित होती रहती हैं। या यों कहा जा सकता है ये कि भाषाएं जिस समान स्त्रोत से उद्भूत हुई हैं वह संस्कृत है।[15] काव्यालंकार के प्रसिद्ध टीकाकार नामिसाघु के अनुसार ''भाषाओं और बालियों की मूल या प्रकृति सहज 'जन भाषा' है।''[16] प्राकृत शिलालेख और प्राकृत में टंकित सिक्के लगभग आठ शताब्दियों तक चलते रहे और इस अवधि ा के उत्तरार्द्ध में सम्पर्क भाषा और सांस्कृतिक भाषा इन दोनों स्तरों पर संस्कृत से होड़ लेते रहे। इस प्रकार पालि, अर्ध–मागधी जैसी महान धार्मिक प्राकृतों में व्यापक साहित्य निर्मित होता रहा, जिसमें उन दिनों के लोगों की सामान्य सांस्कृतिक उपलब्धियों की अभिव्यक्ति की जाती रही। ये लोक भाषाएं भारत के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक इतिहास की दृष्टि से कहीं प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक महत्व की है। समय की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषा की तीन प्रमुख अवस्थाएं हैं।[17]

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (ई0पू0 1500 से 500 ई0 तक)
2. मध्य भारतीय आर्य भाषा (500 से 1000 ई0 तक) ''प्रथम प्राकृत'' में पालि साहित्य व अशोक के अभिलेख (ई0पू0 500 से ई0 के प्रारम्भ तक) ''द्वितीय प्राकृत'' (1 ई0 से 1000 ई0 तक) में महाराष्ट्री इत्यादि प्राकृतें तथा तृतीय प्रकृत (500 ई0 से 1000 ई0 तक) में अप्रभ्रंश साहित्यों की गणना की जाती है।
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का विकास अप्रभ्रंश अथवा तृतीय प्राकृत से हुआ है।

प्राकृत भाषा को कई वर्गो में विभाजित किया जा सकता है, धार्मिक प्राकृत,

साहित्यिक प्राकृत, नाटकीय प्राकृत, वैयाकरणों द्वारा वर्णित प्राकृत, भारत बहिस्थ प्राकृत, अभिलेखीय प्राकृत, लोक प्रचलित प्राकृत। धार्मिक प्राकृत के अन्तर्गत वे हैं जो दक्षिणी बौद्ध सम्प्रदायों के ग्रन्थों की तथा उनसे सम्बद्ध सम्प्रदाय– ग्रन्थों की भाषा पालि, प्राचीनतम जैन सूत्रों की भाषा 'अर्धमागधी' जिसे आर्ष भी कहते हैं। साहित्यिक प्राकृत, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची और अप्रभ्रंश। वैयाकरणों द्वारा वर्णित प्राकृत संस्कृत नाटकों और मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की 5,6 बोलियॉ जैसे महाराष्ट्री, शैरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका, पैशाची और अप्रभ्रंश तथा उनकी कुछ और बोलियाँ। भारत बहिस्थ प्राकृत खोतानी प्राकृत घम्मपद की भाषा। अभिलेखीय प्राकृत में अशोक के समय से लेकर ब्रह्मी और खरोष्ठी लिपि में लिखी गई रचनाएँ। ये प्राकृत भाषाएं समस्त भारत और श्रीलंका के भागों में मिलती हैं। इनमें ताम्रपत्र, अनुदान लेख, और सिक्का लेख भी सम्मिलित हैं। छठवीं लोक प्रचलित संस्कृत भाषा है।''[18] नाटकों में प्रयुक्त प्राकृतों में महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी, अर्ध मागधी। संस्कृत नाटकों में सामान्यतः स्त्रियॉ जो गद्य में शौरसेनी बोलती हैं, अपने गीतों में महाराष्ट्री का उपयोग करती हैं। आचार्य कृष्णमिश्र रचित 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में प्रयुक्त प्राकृत, शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी आदि हैं।

शौरसेनी प्राकृत गणिका की और प्राच्या विदूषक भी है, किन्तु यह स्पष्ट है कि प्राच्या शौरसेनी का ही एक रूप मात्र है, इसका समर्थन संस्कृत नाटकों द्वारा होता है, इन दोनों पात्रों की भाषा में वास्तविक कोई भेद नहीं है। शौरसेनी में 'र' मिलता है जो 'ल' में परिवतर्तित नहीं होता। सभी उष्मवर्ण 'स' के रूप में प्रयुक्त होते हैं। 'प्रबोध चन्द्रोदय'' नाटक में प्रथम अंक में रति का संवाद–

रतिः

अज्जउत्त, गुरूओ क्खु महाराजमहामोहस्य पडिवक्खो विवेओ त्ति तक्केमि।[19]

यहॉ 'क्ष' का 'क्ख' प्रतिपक्षों को 'पडिवक्खों' कर्ता, कारक, पुल्लिंग के रूपों में 'ओ' पाया जाता है, यहॉं पुल्लिंग गुरू मे 'ओ' का प्रयोग है।

संकल्प–सूर्योदय नाटक में

दशमोअंक में श्रद्धा का संवाद–

श्रद्धा

भट्टा अण्णाअपरमत्था इत्तिथआ वि किं वि विण्णवेभि। पहरिसजोग्गे वि

समए किं उणो अप्पा अवमाणिज्जइ। णं अच्चासण्णा खू तुम्हाणं मौक्खसिद्धी।[20]

'मोक्षसिद्धिः' के क्ष के स्थान पर 'क्ख', मूर्धन्य ष के स्थान पर स, 'प्रहर्षयोग्येऽपि' के 'ष' को पहरिसजोग्गे।

सुमति

(अग्रतोऽवलोक्य) अय्यउत्त, अअं अअंऽचंदोदओ विअ आइविसओ कोवि पआसो अग्गदो दीसई।[21]

यहाँ कर्ता, कारक चन्द्रोदय में ओ का प्रयोग।

प्रबोध चन्द्रोदय'

मति का संवाद – (विचिन्त्य) अज्जउत्त, जादिसी मादा पुत्तको वि तादिसी जेव्व जादो।[22]

सभी प्रकार के 'स' के लिये 'स' का प्रयोग– जादिसी का यादृशी। इसके अतिरिक्त 'क्ष' का 'क्ख' में परिवर्तन च्छ में नहीं होता। छर्द के स्थान पर छड्ड और मर्द के स्थान पर म्डड होता है। सश्रीकम् के स्थान पर अनियमित रूप से सस्सिरीक, जिसमें अपिनिहित स्वर के बावजूद स का द्वित्व होता है। 'भट्टा' 'भर्त्रे' के सम्बोधन का रूप है।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में श्रद्धा के द्वारा 'भट्टा' का प्रयोग –

श्रद्धा

भट्टा, बालिसबुद्धि अहअं किं वो पडिभणामि वह वि तरलसहावाए मए भणिज्जइ। चिरगअं वि उन्ततं एणिंह वि चिंताहिं आअड्ढिऊण भट्टिणा अप्पा विलपज्जई।[23]

'भट्टा' 'भर्तृ' के लिये प्रयुक्त हुआ है। इयं स्त्रीलिंग है, जैसा कि पश्चात्यकालीन इअं है, जो केवल शौरसेनी में प्रयुक्त किया जाता है, कर्ता, कारक के रूप में भवां की तुलना भव से की जा सकती है। भण का रूप 'क्रियादिगण' में चलाया गया है, 'विय' 'इव' के स्थानापन्न है 'विअ' का समरूप है और धनि (जिसमें इ का निपात–रूप में लोप हो गया है) दणिं के सदृश हैं।

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में– ''मतिः–अज्जउत्त किंणाम तक्कारणम्''[24]

किंणाम किं नाम में निपात को 'ण' का प्रयोग। शान्ति एवं करूणा के संवाद में भवतु रूप को भोदु –

करूणाः – एवं भवतु (एवं भोदु)[25]

इसे मध्य देश की भाषा होने के कारण कुछ विद्वान परिनिष्ठित भाषा मानते हैं। मध्य देश को संस्कृत का केन्द्र स्थल होने के कारण शौरसेनी अपने समय की सर्वाधिक अभिजात्य भाषा थी और अत्यन्त समादृत थी। राजशेखर ने मध्य देश के निवासी और मध्य देश की इस शौरसेनी भाषा के ज्ञाता को कवि तथा सर्वभाषानिपुण मानते हुए उनकी प्रशंसा की है–

''यों मध्ये मध्यदेशे निवसतिः सः कवि सर्वभाषा निष्णाताः।''[26] आचार्य घोष ने महाराष्ट्री को शौरसेनी प्राकृत की जननी माना है और इसके अवन्ती, अभीरी आदि स्थानीय रूपों के प्रचलन का उल्लेख किया है। रूपों की दृष्टि से शौरसेनी, संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित है। शौरसेनी की धातु केवल परस्मैपदी हैं, संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति है, जैसे उत्सव–उसव।[27]

प्रबोध चन्द्रोदय' के पात्रों में रति, मति, तृष्णा, विभ्रमावती, मिथ्यादृष्टि, मैत्री, हिंसा, करूणा, आदि शौरसेनी बोलती हैं शौरसेनी में असंयुक्त तथा दो स्वरों के मध्य आने वाले त, थ इसमें द, ध हो जाते हैं। ऋ स्वर इ बन जाता है जैसे ऋण का 'रिण' संयुक्त व्यंजनों में सरलीकरण की प्रवृत्ति रहती है।

अर्धमागधी, प्राकृत, मागधी और शौरसेनी के मध्यवर्ती क्षेत्र प्राचीन कौशल के आस पास की भाषा है। मागधी की प्रवृत्तियों को पर्याप्त मात्रा में लिये रहने के कारण ही इसका नाम अर्धमागधी है। जैन विद्वान तो इसे आर्ष (ऋषिप्रक्ति) तथा आदि भाषा नाम देते हैं। 'प्रबोधचन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय'' आदि नाटकों में भी इसका प्रयोग किया गया है। विश्वनाथ कविराज ने 'साहित्य दर्पण' में इसको एक ओर गुप्तचरों और दूसरी ओर सेठों तथा राजपुत्रों की भाषा कहा है, जिसका स्पष्ट अभिप्राय लोक जीवन से विच्छिन्न होकर आभिजात्य वर्ग तक सीमित हो जाता है।''[28] इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं– इसमें श, ष के स्थान पर स प्रायः मिलता है च वर्ग के स्थान पर कहीं–कहीं त वर्ग मिलता है, दोनों 'र' और 'ल' ध्वनियॉ मिलती हैं 'क' के 'ग' ध्वनि होने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है, गद्य और पद्य की भाषा में अन्तर होता है। गद्य में सम्बोधन रूप 'ए' से और पद्य में 'ओ' से बनता है। 'क' प्रत्यय के पूर्ववर्ती स्वर का दीर्धीकरण जैसे (वन्नीकाहि) 'तुमुन' के अर्थ में भुंजितये भुज्जिंतए भिन्नता के अनेक तत्व हैं। प्राचीन अर्धमागधी पश्चात्कालीन अर्धमागधी की अपेक्षा मागधी के अधिक सदृश थी। जो क्रमशः पश्चिमी प्राकृतों के प्रभाव में आई 'संकल्प सूर्योदय'' में दुर्वासना का संवाद–

दुर्वासना—अय्यउत्त इअम्हि। अहअं दुम्मइचलण सेवा रसपरवसहिअआ अण्णअलोअवुत्तदा पुच्छम्मि के पुरिसा काहिं इत्थिआहिं जिहंसिआ? [29]

पृच्छामि को पुच्छम्मि रूप बनता है पुरूषाः को पुरिसा।

सुमतिः — अय्यउत्त, एदेण खू आअदेण इसिणा तुह्म जान संवादो होज्ज। अहअं दाव सही अणसाहिदा संलवंती तुह्म सुमीहिदे तुरम्मि।[30]

यहाँ युष्माकं के स्थान पर 'तुह्म' 'ऋषिणा' के स्थान पर 'इसिणा' अहं के स्थान पर 'अहअं' आदि प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में दिगम्मर, क्षपणक, शिष्य आदि अर्धमागधी बोलते हैं, यथा — दिगम्बरः — ऊँणमो अलिहन्ताणम। णवदुवालग्धलमज्झे अप्पा दीवेव्व जलदि। एसो जिणवलभासिदो जंपलमत्थो मोक्ससुखदो अलेले सावका सुणद्धं।[31]

मलअश्रपुग्गलपिण्डे सअलजलेहिं वि केलिसी सुद्धी
अप्पा विमलसहाओ रूसिपलिचलणेहिं जाणव्वो

दिगम्बर के संवाद में नवद्वार पुरीमध्ये के स्थान पर णवदुवालग्धमज्झे के स्थान पर ल ध्रो के स्थान पर 'ज्झे' 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग।

क्षपणकः —

अलेले भिक्खुअ, इदो दाव। किमपि पुच्चिस्साम्[32]

पृच्छामि के स्थान पर पुच्चिस्सम। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त गद्य भागों में प्राकृत बोलियों के बीच शौरसेनी का प्रथम स्थान है। यह अधिकांशतः स्त्रियों, बालकों, नपुंसकों, ज्योतिषियों, विक्षिप्तों की भाषा रही है। मागधी का भी नाटकों में उपयोग हुआ है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत बालियों के प्रयोग की परम्परा निश्चित रूप से बहुत पुरानी है, संस्कृत के साथ—साथ प्राकृत को उपयोग का प्रमाण मिलता है। लुडर्स ने दुस्ट की बोली को मागधी, गणिका और विदूषक की बोली को प्राचीन शौरसेनी, तापस की बोली को अर्धमागधी रूप से श्रेणीवद्ध किया है।[33]

पात्रानुकूल भाषा

नाटक की भाषा पात्रानुकूलता, सरलता, शक्ति सम्पन्नता आदि से युक्त हो। नाटकों में प्रायः सभी पात्र एक ही भाषा का प्रयोग करते हैं, जो कि अस्वाभाविक प्रतीत होता है, समाज में विविध वर्ग के व्यक्ति विविध भाषाओं को प्रयोग करते हैं। जहॉ ऐतिहासिक या प्राचीन पात्र हो उनकी भाषा में आवश्यकतानुसार सत्समता रखनी चाहिए अतः पात्र की व्यकितगत वैशिष्टय बोध के लिये भाषा में भी तदनुरूप

भिन्नता होनी चाहिए। यदि पात्र गम्भीर होगा तो उससे उसके व्यक्तित्व का बोध होगा, दोनों ही परिस्थितियों में स्वाभाविकता की रक्षा होगी। हिन्दी के नाटककार जयशंकर प्रसाद के अनुसार – ''पात्रों के भागवत गाम्भीर्य एवं सारल्य के अनुसार उनसे तदवत भाषा का प्रयोग करना ही नाटककार का अभीष्ट होना चाहिए।''[34] पात्रानुकूल भाषा में श्रीकृष्ण मिश्र एवं वेकंटनाथ ने गद्य एवं पद्य का प्रयोग किया है। पात्रगण अपनी गर्वोक्ति के लिये पद्य का प्रयोग करते हैं। 'प्रबोध चन्द्रोदय'' में अहंकार का कथन–

वटुः – एवमाराध्यपादा आज्ञापयन्ति दूरदेशादागतस्यार्यास्य कुलशीलदादिकं न सम्यगस्माकं विदितम्।[35]

यहॉ अहंकार के काशी में प्रवेश के समय आश्रम में स्थित वटु के यह कहने पर कि ''गुरूदेव की यह आज्ञा हो रही है कि दूर –देश से पधारे हुए आपके कुल तथा शील को हम अच्छी तरह नहीं जान सके हैं, इस पर अहंकार का कथन–

अहंकार : – आः कथमस्माकमपि कुलशीलादिकमिदानी परीक्षित्व्यम्।

सुयताम–गौड. राष्ट्रमनुत्तमं निरूपमा तत्रापि राढापुरी।
भूरिश्रेष्ठकनाम धाम परमं तत्रोत्तमो नः पिता
तटपुत्राश्च महाकुला न विदिताः कस्यात्र. तेषामपि
प्रज्ञाशील विवेक धैर्य विनयाचारैरहं चोत्तमः।।[36]

आः क्या हमारे कुलशील की भी अब परीक्षा होगी? तो सुनें– एक अनुपम गौड़ राज्य है, उसमें निरूपम राढ़ा नगरी है, जहॉ भूरिश्रेष्ठक वास करते हैं। उन भूरिश्रेष्ठको में सर्वोत्तम हमारे पिता हैं। महाकुल प्रसूत उनके पुत्र किसे विदित नहीं हैं? उनमें भी प्रज्ञा, शील, विवेक, धीरता, विनय और आचार से मैं उत्तम हूँ। इस प्रकार के अन्य कथन भी हैं –

अहंकार

आः पाप, अस्माभिरपि दक्षिणराढाप्रदेश प्रसिद्धं विशुद्धिभिर्नाक्रमणीयमिदमासनम्। श्रृणु रे मूर्ख,।[37]

नास्मांक जननी तथाज्जवलकुला सच्छ्रोत्रिछाणां पुनः
व्यूंढा काचन कन्यका खलु मया तेनास्मि ताताधिकः
अस्मच्छयालकभागिनेयदुहिता मिथयाभिशप्ता यत
स्तत्संपर्क वशान्मया स्वगृहिणी प्रेयस्यपि प्रोज्झिता

आ पापी क्या राढा देश में प्रख्यात पवित्र विचारों वाले हम भी इस आसन पर नहीं बैठ सकते? सुन मूर्ख–

हमारी माँ उतने ऊँचे कुल की नहीं थी, लेकिन हमने वैदिकी की कन्या से विवाह कर लिया है, अतः मैं पिता जी से बडा हूँ। हमारी पत्नी के भाई के भान्जे की लडकी को झूठा कलंक लग गया, इसलिए हमने अपनी प्यारी धर्मपत्नी का भी परित्याग कर दिया। इन शब्दों से अहंकार की गर्वोक्ति अभिव्यति होती है। पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार ही भाषा का प्रयोग नाटकों में किया गया है। सुदर्शन के नाट्य सिद्धान्त के अनुसार "भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में भी नाटक लेखक को बहुत ही सावधान रहना पड़ता है। पात्र जैसा हो, उसे वैसे ही शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।"[38] पात्र क़ी बात सुनकर उसके स्वभाव़ का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग होता है, यथा 'प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक के तृतीय अंक में श्रद्धा के खो जाने पर शान्ति का विलाप जो उसके भावों के अनुसार सटीक बैठते हैं यथा --

शान्ति–

(सास्त्रम) मातः मातः क्वासि देहि मे प्रियदर्शनम् तत–

मुक्तातंककुरडंगकाननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः

पुण्यान्यायतनानि संततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः

यस्थाः प्रीतिरमीषु सात्रभवती चण्डालवेश्मोदरं

प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तंगता[39]

ये छोटे–छोटे कथन से एक तो कथानक को गति मिलती है, दूसरे वक्ता के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वास्तव में इन पात्रानुकूल संवादों में एक त्वरता, भास्वरता है। यथा 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में नारद का कथन–

नारद – (सहर्षम्) सखे,

कथ्यते न मया मिथ्या किं वा संद्रक्ष्यसे स्वयम्

दर्पणं किमपेक्षन्ते ककंणस्य निरीक्षणे।।[40]

तुम्बुरूः – (सहर्षकौतुकम्) अहो, समरारम्भस्य संदर्शनीयता। अत्र हि–

नीरन्ध्रं व्योमरन्ध्रं भवति कुलगिरिस्तोमतुड़ैंग शतागैं

जाँघटयन्ते मदान्धा खुरपुटरटितैस्त्रुटयतीव त्रिलोकी

प्रत्युड्डीयन्त एते प्रतिगतिषु मिथः पक्तर्यस्यंतक्तदेहाः[41]

नारद और तुम्बुरू के संवाद में भाषा परिष्कृत, प्राज्जल, सरस और सुकोमल,

अक्षय शब्द भण्डार, श्लाध्य शब्द शक्ति का आश्रय लिया है। इसी प्रकार रानी सुमति के माध्यम से जिज्ञासा वृति का परिचय मिलता है और स्त्री पात्रों के द्वारा प्राकृत का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है–

सुमतिः (दृष्टा स्वगतम) माणुसस्स जोइणो माणुससरिच्छे चित्तसंगो संपाअणिओ। (प्रकाशम्) अय्यउत्त, एदेण विअ तुए साअरणिमग्गा वेदा विअ मोहंघआरणिमग्गा जणा उद्धरिऊण रक्खिज्जंति। किंणाम परम पुरिसस्स एआरिसाई रूवंतराइ वि होंति ?[42]

कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'' एवं वेकंटनाथ कृत 'संकल्पसूर्योदय' के कुछ पात्र संस्कृत बोलते हैं, कुछ प्राकृत, क्योंकि बोलचाल की भाषा प्राकृत थी। पात्र की सामाजिक और सांस्कृतिक योग्यता के अनुसार ही भाषा निबद्ध की जाती है। पात्र को सदा ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा ऐसी बात न कही जाय, जो श्रोताओं की समझ में न आवे या अस्वाभाविक हो या जो उचित न हो, जिसके अनुसार अभिनय करने में अभिनेताओं को असुविधा न हो।

उत्तम प्रकृति वाला पात्र सदा उदात्त व्यापारों में ही आसक्त होता है। वह ऐसा कोई भी शब्द नहीं कहता जिससे उसकी गम्भीरता तथा सहानुभूति को कभी धक्का पहुँचे। यथा 'प्रबोध चन्द्रोदय'' में उपनिषद, श्रद्धा, शान्ति, राजा, सरस्वती आदि के संवादों में–

राजा – कथं पुनस्तर्कविद्याया भयम्।[43]

सरस्वती – वत्स, यद्यप्येवं तथापि गृहिणा मुहूर्तमप्यनाश्रम धर्मिणाा न भवितव्यम्। तदद्यप्रभृति निवृत्तिरेव ते सधर्मचारिणी।[44]

भंकल्प सूर्योदय'– संस्कार, सुमति, राजा, नारद, तुम्बुरू, विवेक व्यवसाय आदि उत्तम कोटि के पात्र हैं।

नारदः – (सहर्षसंभ्रमम्) सखे, दिष्टया वर्धसे। पश्य पश्य;

अप्रत्युढचरः सुरासुरगणैरक्षोभितो राक्षसै–
रद्य प्रत्यवरूद्धवैरिसमरोत्सेके विवेकेश्वरे।
स्वः स्थप्रत्ययितव्य दोषमलिन स्ववार्सदुर्वासना
मूलच्छेदविलीयमानमहिमा मोहस्य मोघः स्यदः।।[45]

इस नाटक में नारद को उनकी उदात्त प्रकृति के अनुसार ही चित्रित किया गया है। फलतः उनका प्रत्येक कार्य, भाषा तथा भाव, कथन तथा आचरण, सब कुछ उसी प्रकृति के अनुरूप है। वे वैदिक ऋषि, देवता हैं। उसके लिये उनके द्वारा

प्रयुक्त उपमाओं में देवत्व की अभिव्यक्ति होती है। उनके मुख से आशीर्वादवचन, यह सब कुछ पात्रानुकूल भाषा द्वारा ही सम्भव है। अधम प्रकृति वाला पात्र स्वभाव से ही नीच कर्म करने वाला होता है, अतः उसके स्वभाव अनुसार वैसी ही भाषा होती है।

यथा महामोह : — (अनादरातिशयं नाटयन्) किं नश्छिन्नम्? श्रृणुमस्तावत। दूत, ततस्ततः।[46]

शिष्यः — यदादिशति भगवान अत्र तु न किंचित सिद्धानमव र्लण्य न कदाचिदपि कथा प्रवर्तते ततः स्वामिमते कुत्र चिन्मामवस्थाययनु भगवान्।[47]

प्रबोध चन्द्रोदय'— लोभ और तृष्णा की वृत्ति के अनुसार भाषा का प्रयोग द्वितीय अंक में—

लोभः — प्रिये, श्रुयताम्—

क्षेत्रगृामवनाद्रिपत्तनपुरद्वीपक्षमामण्डल

प्रत्याशायत सूत्र बद्धामनसां लब्धाधिकं ध्यायताम्।

तृष्णे देवि यदि प्रसीदसि तनोष्यगांनि तुडंगानि चे—

तदभोः प्राणभृतां कुत्रः रामकथा ब्रह्माण्डलक्षैरपि।[48]

क्षेत्र, ग्राम, वन, प्रर्वत, नगर, द्वीप, पृथ्वीमण्डल की आशा में जिनके ह्रदय संलग्न हैं, जो प्राप्त से अधिक का ध्यान कर रहे हैं, यदि तुम कृपा करके उनके अंगों को स्थूल कर दो तो लाख ब्रह्माण का पालन करने पर भी प्राणियों को शान्ति कहॉ प्राप्त होगी।

तृष्णां — आर्यपुत्र, स्वयमेव तावदहमस्मिन्नर्थे नित्यमभियुक्ता।

सांप्रतमार्य पुत्रस्याज्ञया ब्रह्माण्डकोटयोऽपि न मे उदरं पूरीय हयन्ति।[49]

क्रोध — हिंसे, इत आगम्यताम्।[50]

इस प्रकार पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

काव्यात्मक भाषा

मानव के अन्तःस्थलं में क्षण—क्षण में उत्पन्न होनें वाले भावों के निरीक्षण तथा अभिव्यंजन में जिस कवि की वाणी रमती है, वही सच्चा कवि होता है। ब्राह्य सौन्दर्य की अपेक्षा भीतरी सौन्दर्य के वर्णन में कवि के कवित्व का सच्चा परिचय मिलता है। संस्कृत भाषा निसर्गतः बडी ही कोमल तथा मधुर है। प्रतिभा सम्पन्न कवि के हाथ में पड़कर उसमें भाव प्रकाशन की अद्‌भुत क्षमता उत्पन्न हो जाती है। आचार्य

कृष्णमिश्र एवं वेकंटनाथ में भावों की सूक्षमता और मनोविकारों की अद्भुत व्यापकता के प्रकाशन में संस्कृत भाषा नितान्त समर्थ तथा सक्षम है। शब्द का सौष्ठव तथा पदावली का मधुमय विन्यास, पदों की कोमल शय्या— संस्कृत जैसी संश्लिष्ट भाषा में जितनी सुन्दरता के साथ निबद्ध किया है, उतनी रूचिरता से किसी भी विश्लेष प्रधान भाषा में नहीं। दोनों नाटककारों द्वारा व्यवहृत अलंकार में भी एक विलक्षण सुषमा झलकती है। कृष्ण मिश्र की कविता में स्वाभाविकता का साम्राज्य है। कवि एक विशेष उद्देश्य से तत्वज्ञान से हटकर कोमल काव्यकला का आश्रय लेता है और इस कार्य में वह सर्वथा सफल है। भावों के नैसर्गिक प्रवाह का कारण कवि के आध्यात्मिक जीवन से नितान्त सम्बन्ध होता है, संसार की अनित्ययता की भावना इतनी बलवती है, कि वह इन काव्यों के मार्मिक अंशों की रचना में अदम्य उत्साह तथा श्लाघनीय स्फूर्ति दिखलाता है। घटना के वर्णन में कवि का कौशल जितना जागरूक है, उतनी ही श्लाघनीय है, उसकी तर्कों की स्वच्छ तथा सुबोध प्रकार की विन्यासचातुरी। 'प्रबोध चन्द्रोदय'' का लेखक एक महान दार्शनिक सन्यासी है। उनकी कविता अन्य दार्शनिक कवियों की भांति जटिल, नीरस, तथा प्रसादगुणहीन नहीं है। यह रचना प्रसाद गुण सम्पन्न वैदर्भी रीति में है। कथोपकथनों और छन्दों का विन्यास उच्च कोटि का है। भावों में तीब्रता लाने के निमित्त कृष्णमिश्र एवं वेकंटनाथ ने परिचित वातावरण में संगृहीत एवं हृदय पर सद्यः प्रभाव जमानेवाली, स्पृहणीय उपमाओं के प्रयोग करने में कुशलता दिखलाई है। साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर वाक्य और मनोहर छन्द, भाव एवं कला दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट हैं। कृष्णमिश्र अत्यन्त सरस, समास विहीन, वाक्य रचना में जैसे निपुण हैं वैसे ही कुछ कठिन और समासबहुल रचना में कुशल हैं। यथा निम्न लिखित पंक्तियों में —

प्रबोध चन्द्रोदय'—

''अद्याप्युन्मदयातुधानतरूणीचन्चत्करास्फलान
व्यावल्गान्नृकपालतालरणितैर्नृत्यत्पिशचागनाः
उदगायन्ति यशांसि यस्य विततैर्नादैः प्रचण्डानिल
प्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूट कुहरव्यक्तै रणक्षोणयः ।[51]

क्लमों न वाचां शिरसो न शूलं
न चित्ततापो न तनोर्विमदः
न चापि हिंसादिरनर्थयोगः
श्लाध्या परं क्रोधजयेऽहमेका । ।[52]

(अर्थात जो कि मैं वाणी को कष्ट दिए बिना, माथा दुखाए बिना, मानसिक सन्ताप सहे बिना, शारीरिक आघात सहे बिना, हत्या आदि पाप कर्म भी बिना किए अकेले ही केवल क्रोध पर विजय प्राप्त करने के कारण, परम प्रशंसा की पात्र हूँ)

धर्म का प्रचार शास्त्र की शिक्षाओं को जन साधारण के हृदय तक सरलता से पहुँचाने के लिए सामान्य जीवन की घटनाओं, वस्तुओं पात्रों का प्रयोग तुलना के निमित्त किया है। इसलिये इनकी उपमा, दृष्टान्त तथा उपक सर्वाधिक प्रभावशाली बन पड़े है। किसी पदार्थ के वर्णन में उस वस्तु की पूर्ण रूप रेखा प्रस्तुत कर देना इनकी कविता का गुण है। यथा "संकल्प-सूर्योदय" के सप्तमअंक में महावराह का वर्णन—

कपि कल्पनान्तवेशन्ते खूरदध्रे समुद्वताम
वहते मेदिनीमुस्तां महते पोत्रिणे नमः।"[53]
अपिच
नम इदमजहत्सपर्याय पर्यायनिर्यासित
भृमदमित पयोधिवेला विलोलाय कोलाकृते
पृथुविकट विटकंनिष्कम्प विष्कम्भवि श्वंभरा
भरथरणधुरीणधोणा परीणाहकोणाय ते।"[50]

सुन्दर सरस शब्दावली द्वारा महावराह का वर्णन कर अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है। हृदय के क्षण–क्षण परिवर्तनशील भावों का काव्य में विन्यास होने से, संस्कृत का एक ही पद्य उस मनोरम चित्र के समान प्रतीत होता है, जिसके अल्प कलेवर में समग्र अंगों का विन्यास बडी सरलता से किया जा सकता है। कृष्ण मिश्र का अत्यन्त प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीड़ित है। इसके अतिरिक्त शिखरणी, वसन्ततिलका, पुष्पिताग्र, वंशस्थ, हरिणी, मालिनी, पृथ्वी, इन्द्रवज्रा, स्त्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, प्रहर्षिणी, आर्या, छन्दों का प्रयोग अपने 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में किया है, कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं –

"सूर्याश्रवैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलवि क्रीडितम्

शार्दूलविक्रीडितम् –

साङंखयन्यायकणादभाषितमहाभाष्यादिशास्त्रैर्वृता
स्फूर्जन्नयाय सहस्त्रबाहुनिकरेरूद्धयोतयन्ती दिशः
मीमांसा समरोत्सुकविरभवद्धर्मेन्दुकान्ताननाा

वाग्देव्याः पुरस्त्रयीत्रिनयना काव्यायनीवापरा।''[55]

वसन्ततिलकं – ''उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः इति''

उतुड़ंपीवरकुचद्वयपीडिताड़ं

मालिड़िंगतः पुलकितेन भुजेन रत्या

श्रीमाज्जगन्ति मदयन्नयनाभिरामः

कामोऽयमेति मदघूर्णितनेत्रपद्यः।''[56]

शिखरिणी– ''रसैरीशैश्छिन्ना यमनसमला गः शिखरिणी''

अहल्यायै जारः सुरपतिरभूदात्मतनयां

प्रजानाथोऽयासीदभजत गुरोरिन्दुखलाम

इति प्रायः को वा न पदमपथेऽकार्यत मया

श्रमो मद्वाणानां क इन भुवनोन्माथविधिषु।''[57]

अमूर्त मानसिक भावों के मूर्त रूपों के चित्रण में दार्शनिक महाकवि कृष्णमिश्र ने अनुपम सफलता पाई है।

आचार्य कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक ने भाषा की प्रसादिकता के साथ–साथ अलंकार योजना से उसको अधिक रमणीय एवं आकर्षक बना दिया है। उपमा अलंकार में कृष्ण मिश्र की अपनी विशेषता है, ही। प्रत्येक पात्र को अपने वातावरण एवं स्वभाव के अनुकूल जब जहाँ जैसे वाक्य उचित होगें उसी तरह के वाक्यों को कवि ने उनके मुख से कहलाकर भाषा को स्वाभाविकता प्रदान की है। यथा प्रबोध चन्द्रोदय' की प्रस्तावना में–

''मध्याह्नार्कमरीचिकास्विव पयः पूरो यदज्ञानतः

खं वायुर्ज्वलनो जलं क्षितिरिति त्रैलोक्यमुन्मीलति

यतत्वं विदुषां निमीलति पुनः स्त्रग्भोगिथोगोपमं

सान्द्रानन्दमुपास्महे तदमलं स्वात्भावबोधं महः।''[58]

अर्थात् माला सर्प की भाँति विलीन हो जाती है, उस आनन्द स्वरूप तथा स्वप्रकाश रूप उस ब्रह्म की हम उपासना करते हैं, उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा नाटककार ने भाषा में काव्यात्मकता का निर्वाह किया है 'प्रबोध-चन्द्रोदय'' में उत्प्रेक्षा अलंकार इस प्रकार है –

सैषान्तर्दधती तमोविघटनादानन्दमात्मप्रभं

चेतः कर्षति चन्द्रचूडवसतिर्विधेव मुक्तेःपदम्

भूमेः कण्ठविलम्बिनीव कुटिला मुक्तवलिर्जाह्ववी

यत्रैवं हसतीव फेनपटलैर्वकां कलामैन्दवीम्।''[59]

कवि के द्वारा चित्रत काम और क्रोध के शब्द–चित्र हृदय को बलात आकर्षित कर लेते हैं –

उतुडंगपीवरकुचद्वयपीडिताङंग ।[60]

यथा – ''अन्धी करोमि भुवनं वधिरीकरोमि

धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि

कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति

धीमानधीतमंपि न प्रतिसंदधाति।'' ।[61]

अर्थात् मैं जगत को अन्धा और बहरा बना सकता हूँ, विद्वान को अधीर तथा मूर्ख कर दे सकता हूँ, जिससे उसे न तो कर्तब्य ज्ञान होगा, न भलाई की बात सुनेगा, बुद्धिमान होकर भी वह पढ़ी हुई बाते भूल जाएगा। दृष्टान्त के द्वारा कवि ने अपनी बात इस प्रकार कही है–

सहज मलिनवक्रभावभाजां

भवति भवः प्रभवात्मनाशहेतुः

जलघरपदवीमवाप्य घूमो

ज्वलनविनाशमनु प्रयति नाशम्।'' [62]

अर्थात घूम मेघ के रूप को प्राप्त कर लेता है तब अग्नि को नष्ट करके स्वयं भी विनाश को प्राप्त करता है। आचार्य कृष्ण मिश्र ने अपने पात्रों से विशेष–विशेष अवसरों पर अत्यन्त हृदयग्राही नीति श्लोक भी कहलवाये हैं, जो कि अत्यन्त सुन्दर और आदरणीय हैं। कृष्ण मिश्र की कविता का उद्देश्य सार्वभौमिक सत्य का उन्मेष करना भी है– डॉ0 कीथ के अनुसार 'प्रबोध चन्द्रोदय'' की महती विशेषता उसके प्रभावशाली, सुन्दर और प्रत्यक्ष नैतिक तथा दार्शनिक नियमों से सम्बन्धित पद्यों में निहित है।''[63] यथा–

शान्तं ज्योतिः कथमनुदितानस्तनित्यप्रकाशं

विश्वोत्पत्तौ ब्रजति विकृतिं निष्कलं निर्मलं च

शश्वन्नीलोत्पलदलरूचामम्बुवाहावलीनां

प्रादुर्भावे भवति नभसः कीदृशो वा विकारः।[64]

कृष्णमिश्र ने अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, उपमा, सागंरूपक, एवं

सागंपरम्परित रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है और संस्कृत की भांति प्राकृत पद्य रचना में भी वे समान सिद्ध हस्त है''–

विप्पट्टणीलुप्पललोललोअणा

नरत्थिमाला किदचालुभूसणा

विअम्बपीणत्थणाभालमन्थला

विहादि पुण्णेन्दुमुही विलासिणी। [65]

'संकल्प सूर्योदय'' नाटक में वेदान्त देशिक ने वाक्यालंकार, वाकोवाक्यलंकार, परिकर अलंकार, उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। उसके कतिपय दृष्टांत इस प्रकार हैं– अर्थान्तरन्यासलंकार काव्यार्थ की सौन्दर्य विवृति में अधिक महत्व रखते हैं, जहॉ विशेष से सामान्य, या सामान्य से विशेष अथवा कारण से कार्य, या कार्य से कारण, साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के द्वारा समर्थित होता है, वहॉ अर्थान्तरन्यास अलंकार निष्पन्न होता है।'' यथा–

इमामधर्मेण विभाण्य संप्लुतामुदन्वता द्वारवतीमिवाधुना

न भावये संयमसंपदास्पदं न कालतः कस्य गुणव्यतिक्रमः।''[66]

नामालंकार – सारः सारस्वतानां राठरिपुभणितिः शान्ति शुद्धान्तसीमा

मायामायामिनीभिः स्वगुण विततिभिर्वन्धयन्तीं धयन्ती

पारं पारंपरीतो भवजलधिभवन्मज्जनानां जनानां

प्रत्यक्प्रत्यक्षयेन्नः प्रतिनियत मासंनिधानं निधानम्।''[67]

अतिशयोक्ति – अग्रे पश्य वृषाचलं क्षितिभृतामग्यं यदग्रे हरे

मञ्जीरोदकमाविभर्ति महतीं मन्दाकिनी संपदम्

नृत्यंचन्दनगन्धवाहनियत व्यालोलचुडाटवी

शाखाताडितचन्द्रमश्च्युतसुधा धाराभिसंवर्धितम्।''[68]

अनुप्रास की योजना उनके नाटक 'संकल्पसूर्योदय' में अत्यन्त स्वाभाविक है। से नाद सौन्दर्य की प्रसूति के लिये अनुप्रास की योजना उनकी रचना में नितान्त मनोरम बन गई है। छेकानुप्रास का एक उदाहरण–

''मृदुहृदये दये मृदितकामहिते महिते

धृतविबुधे बुधेषु निहितात्मधुरे मधुरे

वृषगिरि सार्वभौमदयिते मयि ते महतीं

भवुकनिधे निघेहि भवमूलहरां लहरीम्।''[69]

प्रस्तुत पद्य में महिते–महिते, मधुरे–मधुरे, निधे–निधे की आवृति हुई है। संकल्प सूर्चोदय नाटक में सप्तम अंक के तीसरे श्लोक "विश्वप्रीणनविश्वकर्मरचनाचातुर्य कातर्यदे।"[70] आदि श्लोक में भ्रान्तिमान अलंकार का निरूपण किया गया है। अतः रूपविनोदोकि का एक उदाहरण–

सौवाकृतिस्त्तव त एव गुणानुभावः
स्यादेव सागरसुता लिखिता त्वमेव
शिञ्जानमंजुमणिनुपुर मेखलस्ते
संचार एष चतुरो यदि नान्तरायः[70]

वेदान्त देशिक ने अन्य अलंकारों के अतिरिक्त अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग अधिक किया है। वेदान्त देशिक ने उक्ति–प्रत्युक्ति के द्वारा 'वाकोवाक्य अलंकार' का प्रयोग किया यथा– कचिदतिसंकट विषये सुभयनां संमतोऽयमपसर्पः।[72]

रीति के सुवास, अलंकारों का चमत्कार, गुणों की रमणीयता, सम्प्रेषणीयता और आकर्षण वेदान्त देशिक की वर्ण्य विषय संवादिनी भाषा से आभाषित होता है। आचार्य कृष्ण मिश्र ने माधुर्य गुण का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। माधुर्य गुण का लक्षण इस प्रकार है। आचार्य मम्मट के अनुसार–आह्लादकत्वं माधुर्य श्रृडंगारे दुतिकारणम्।"[73] चित्त के द्रवीभाव के कारण और श्रृंगारे में रहने वाला जो आह्लादस्वरूपत्व है, यह श्रृंगार में एवं करूण, विप्रलम्भ (श्रंगार) तथा शान्त रस में उत्तरोत्तर अधिक चमत्कारजनक होता है। ट, ड, ढ से भिन्न वर्ण, यदि आदि में अपने वर्ग के 'पंचम वर्ण' से युक्त हो तो वे माधुर्य के व्यंजक होते हैं। लघु र, ण भी माधुर्य के उत्पादक हैं। समासरहित अथवा छोटे–छोटे कतिपय दृष्टान्त 'प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक में इस प्रकार हैं –

"ध्यायन्निमां सुखिनि दुःखिनि चानुकम्पां
पुण्यक्रियेषु मुदितां कुमतावुपेक्षाम्
एवं प्रसादमुपयाति हि रागलोभ
द्वेषादिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरात्मा।"[74]

संकल्प सूर्योदय'– इसमें भी कवि ने माधुर्य एवं प्रसाद गुण का प्रयोग किया है, मम्मट ने प्रसाद गुण का लक्षण इस प्रकार दिया है–

"शुष्केन्धनाग्निवत स्वच्छजलवत्सहसैव यः
व्याप्नोत्यन्त प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।"[75]

सूखे इन्धन में अग्नि के समान, स्वच्छ जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो, वह सर्वत्र रहने वाला प्रसाद गुण है। 'भंकल्प सूर्योदय'' में माधुर्य गुण–

मृदुहृदय दये मृदितकाममहिते महिते
धृतविबुधे बुधेषु निहितात्मधुरे–मधुरे
वृषगिरिसार्व भौमदयिते मयि ते महती
भवुकनिधे निधेहि भवमूलहरां लहरीम्।''[76]

सुनते ही जिसका अर्थ प्रतीत हो जाए ऐसे सरल और सुबोध पद्य प्रसाद के व्यंजक होते हैं। 'प्रबोध चन्द्रोदय' में प्रसाद गुण–

''संमोहयन्ती मदयन्ती बिडम्बयन्ति
निभर्त्सयन्ति रमयन्ती विषादियन्ति
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
कि नाम वामनयना न समाचरन्ति।''[77]

'भंकल्प सूर्योदय'' में प्रसादगुण–

'भंकल्प सूर्योदय'' में प्रसाद गुण का उदाहरण देखें –

''दूरे हन्त गिरां दुरासदयशा दुर्वारगर्वानल
ज्वालालुण्ड़ितजम्भकण्टकबलारण्यो हिरण्योऽसुरः
यस्यास्थानिकपाद पीठ विलुठत्कोटीरकोटी रवैः
स्वच्छन्दप्रसरं स्तुवन्ति चरितं सेवासु देवासुराः।''[78]

श्रृंगार, करूण और शान्त रसों की प्रधानता होने के कारण कृष्णमिश्र की रचना 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं वेदान्तदेशिक के 'भंकल्प सूर्योदय'' नाटकों में अन्तःकरण को द्रवित करने वाली नादमयी पदयोजना का मधुर प्राचुर्य है। प्रसाद गुण तो उसकी रचनाओं की निजी विशिष्टता है। पदों के चयन में उसकी सुरूचि एवं शिष्टता का बराबर बोध होता है। इसके लिये उन्होंने अक्षय शब्द भण्डार, श्लाध्य शब्द शक्ति का आश्रय लिया है। उनकी भाषा में विलक्षण शास्त्रीय ज्ञान तथा सुलक्षणा साहित्यिक भावनिधि दोनों की रमणीय सम्प्रेषणीयता समान रूप से समविष्ट हो जाती है। कोमलकान्तपदावली के सन्तुलित एवं समीचीन आदि अनेक गुणों के कारण उनकी भाषा में एक साथ ही साहित्य, संगीत, कला, तथा भावों के हृदयावर्जक प्रसन्नता का मनोरम समायोजन उपलब्ध हो जाता है।

संवाद सौष्ठव –

प्रसंगपदानुरूपालापः वाक्यप्रयोगश्च संवाद[79] प्रसंग, तदानुरूप आलाप हेतु किये गये वाक्य प्रयोग को संवाद कहा जाता है। नाटकीय संवाद दो या दो से अधिक व्यक्तियों के उस बात–चीत को कहते हैं, जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्ति, प्रसंग, आवश्यकता और पद के अनुरूप भाषा में बात करते हों।"[80]

नाट्यशिल्प में संवाद का अतिशय महत्व है। संवादों के अभाव में नाटक की शरीरी सृष्टि की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। पाश्चात्य और भारतीय आचार्यों ने नाट्यशिल्प के अन्तर्गत संवादों की भास्वरता को अनेक रूपों में निरूपित किया है। संवाद के तत्व इस प्रकार है–

1. एकरूपता, सादृश्य आदि के कारण चीजों, बातों आदि का आपस में ठीक बैठना या मेल खाना।
2. किसी के पास भेजा हुआ, आया हुआ विवरण या वृतान्त।
3. खबर समाचार
4. चर्चा
5. नियुक्ति
6. सहमति
7. स्वीकृति

'शब्दकल्पदुम' में संवाद का विवेचन इस प्रकार किया गया है– संवाद (सं+वद्+धञ्) संदेश वाक्यम् समाचार इति भावत् तत्पर्यायः वाचिकम्।

सन्देशः इति जटाधरः। सन्देशवाक् इत्यमरः।"[81]

संवाद के भेद – भारतीय आचार्यों ने मुख्य रूप से संवाद के तीन भेद किये गये है। श्राव्य, अश्राव्य, नियत श्राव्य। नियतश्राव्य के आचार्यों ने दो भेद किये हैं – जनान्तिक, अपवारित। नाट्याचार्यों ने नाटक के भेद प्रभेद के अन्तर्गत ही आकाश भाषित को भी स्वीकार किया है। संवादों में वाचिक रूप का ही महत्व नहीं होता। इसमें आंशिक सात्विक अभिनय का भी महत्व है। वस्तुतः आंगिक, सात्विक और वाचिक रूप मिलकर संवाद को प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं। संवाद तत्व के माध्यम से नाटककार अपनी सम्पूर्ण नाटकीय विदग्धता को अभिव्यक्त करता है। वह संवादों के माध्यम से कथावस्तु को विकसित करता है, आगे के कथानक की सूचना देता है, पात्रों के चरित्र को व्यक्त करता है, उचित वातावरण की रचना करके नाटक के

समग्र प्रभाव को दर्शक के सामने छोड़ता है। कम से कम परिस्थिति एवं पात्र के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति देना संवाद का प्रयोजन है। संवाद ही वह सशक्त उपकरण हैं, जो नाटक को देशकाल एवं अपने वातावरण के अनुरूप सिद्ध करता है। पात्रों के अनुरूप वाणी प्रदान कर युग के अनुरूप शब्द विन्यास द्वारा संवाद इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करता है। इसी प्रकार वह नाटक के उद्देश्य एवं भाषा शैली तथा रंगमंच को भी सफल बनाता है।

भारतीय आचार्यो की तरह पाश्चात्य नाट्याचार्यों ने भी संवादों की विशेषताओं पर दृष्टिपात किया। जी0पी0 बेकर ने संवाद की तीन विशेषताएं स्वीकार की हैं –

The three essentials of dialogue are clearness, helping the on word movement of the story and doing all this in character.[82]

स्पष्टता से तात्पर्य शब्दों के यथोचित सन्निवेश से है, जो वाक्य को उलझाए नहीं। भाषा की स्पष्टता के साथ कथ्य स्वतः सुस्पष्ट हो जाएगा। संवाद की निम्नलिखित विशेषताएं अंकित की जा सकती हैं –

1. संवाद में सहजता–'प्रबोधचन्द्रोदय' के प्रथम अंक में काम और रति का संवाद सहजता का उदाहरण है –

रतिः – अध किं ता एव खखस्सीए उप्पत्ती तुम्हाणं पडिवक्खाणं सम्पदा?[83]

काम – बाढम्, सा खलु विवेकेनोपनिषद्वेव्यां प्रबोधचन्द्रेण भात्रा समं जनयितव्या। तत्र सर्व एते शमदमादयः प्रतिपन्नोधोगाः।[84]

रतिः –अज्जउत्त, कहं एदेहिं अप्पणो विनासकारिणीए विज्जाए, उप्पत्ती एदेहिं दुव्विणीदेहिं सलाहिज्जदि?[84]

'संकल्प सर्योदय' नाटक के अष्ठम अंक में दुर्वासना और अभिनिवेश के संवाद में सहजता द्रष्टव्य है –

दुर्वासना– णाह, अहं उ्ण तुम्ह पिआ कहं होम्मि? [86].

अभिनिवेशः – प्रिये किं भीरूरसि त्वमपि दुरन्वयं परिब्यज्य मामेष परिचरन्ती सुसंगता चिरं जीविष्यासि।[87]

2. संवाद पात्रों की प्रकृति तथा स्थिति के अनुरूप हों।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' के द्वितीय अंक में महामोह और चार्वाक के संवाद में पात्रों की प्रकृति तथा स्थिति का एक स्वरूप दृष्टव्य है–

महामोहः – साधु संपादितम्। महत्खलुतत्तीर्थं व्यर्थीकृतम्।

चार्वाकः — देव, अन्यच्च किञ्चाप्यमस्ति।

महामोहः — किं तत्।

चार्वाकः — अस्ति विष्णुभक्तिनार्ना महाप्रभावा योगिनी। स्वभावद्धिद्वेषिणी चास्माकं दुरूच्छेधा सा। भवतु। (स्वगतम्) कार्यमत्याहितं भविष्यति। (प्रकाशम्) तत्र भद्र, अलमनया शङकया। कामक्रोधादिषु प्रतिपक्षेषु कुत्रेयमुदेष्यति।[87]

महामोह ने की प्रकृति के अनुसार महान तीर्थों व्यर्थ कर दिया, इस पर चार्वाक का कथन–महाराज कुछ और भी निवेदन करना है कि विष्णुभक्ति नाम की एक अत्यन्त प्रभावशाली योगिनी है । यद्यपि कलि ने उसका प्रचार कम कर दिया है, फिर भी उसके द्वारा कृतार्थ कुलों की ओर हम देख भी नहीं सकते हैं। आप इस पर अवश्य ध्यान दें।

'संकल्प सूर्योदय'' में राजा और व्यवसाय का संवाद पात्रों की प्रकृति एवं स्थिति के अनुरूप है–

राजा — सेनापते, किमिदमैन्द्रजालिकमिव किमप्यतर्कितोप–स्थितम्, अनिर्धारित कारणम्, अमृतपारावार पुरपर्यायप्रसरम्, आप्लावितदशदिशावकाशम्, अवदातमनोहरम्, अदृष्टपूर्वधाम।

व्यवसायः — नूनं नारदेन भगवता समागतेन भवितव्यम्। न ह्यन्यस्य कस्यचित् आम्रेडिश्रेवतद्वीप देवता द्वैत मेतादृशं तेजः।

राजा— अहो नु खलु भगवतो महामुनेः प्रायश्चित परमपुरूष– भावनाविशेषा विपश्रिचकानिनादक बुंरा विभ्रमगीति।[89]

3. संवाद का विस्तार ऐसा हो जिससे चरित्र प्रकाशन और नाटक की कथावस्तु के विकास में सहयोग मिल सके। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में महामोह का कथन उसके चरित्र पर प्रकाश डालता है एवं नाटक की कथावस्तु का विस्तार करता है।

महामोहः —

(सक्रोघम्) आः किमेवमतिमुग्धौ शान्तेरपि विभितः।

''कामादिषु प्रतिपक्षेषु कुतोऽस्याः संभवः। तथाहि
धातः विश्वविसृष्टिमात्र निरतो देवोऽपि गौरीभुजा
श्लोषानन्द विघूर्णमाननयनो दक्षाध्वरध्वंसनः
दैव्यारिः कमलाकपोलमकरीलेखकिं तोरःस्थलः
शेतेऽब्धावितरेषु जन्तुषु पुनः का नाम शान्तेः कथा।[90]

अपि च –

क्रोध – श्रुतं मया यथा शान्तिश्रद्धा विष्णुभक्तया महाराजेन प्रतिपक्षमाचरन्तीति। अहो, मयि जीवीत कथमासामात्मनि निरपेक्षितं चेष्टितम्। तथाहि–

''अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि
धीरं सचेतनम चेतनतां नयामि
कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति
धीमानधीतमीप न प्रतिसंदघाति।''[91]

अर्थात मैने सुना है कि शान्ति, श्रद्धा, और विष्णुभक्ति महाराज का विरोध कर रही हैं। अहो मेरे जीवित रहते हुए इन्होंने स्वकीय चिन्ता न कर विरूद्ध आचरण किया है। क्रोध धैर्यवान को अधीर बना देता है, जिससे वह कर्तब्य को नहीं देखता है, जिससे वह मंगल को नहीं सुनता हैं, जिससे बुद्धिमान भी पठित तत्वों को नहीं स्मरण करता है।

'संकल्प–सूर्योदय' में दशमो अंक में विष्णुभक्ति का संवाद विस्तार के साथ–साथ कथावस्तु के विकास में भी सहायक है –

विष्णुभक्ति : – देव विश्ववेदिना भवतापि विवेक मयि च
किमिति वैभवमरोप्यते पश्यतु भवानेतत्–
स्वमायाशैलूषीविहरणपरिभ्रान्ततनुभ्
त्यरित्राणो धोग प्रवणकरूणा वेशविवशः
प्रतिक्षेप्तुं तापान् प्रभुरयमपर्यन्तमहिमा
हिमानीमानीय स्वपदनतिमेनः प्रणुदति।''[92]

ततश्च –

''उपायः स्वप्राप्तेरूपनिषदधीतः स भगवान्
प्रसत्यै तस्योक्ते प्रपदननिदिध्यासनगती
तदारोहः, पुंसः सुकृतपरिपाकेन महता
निदानं तत्रापि स्वयमखिलनिर्माणनिपुणः[93]

अपिच–

ग्रस्ते पित्तेन चित्ते गलकुहरमुखे संनिरूद्धे कफेन
व्याप्ते वातेन गात्रे विलपति लपने कांदिशीके हृषीके
जड़ंघ्ले जीवितांशे जिगमिषति बले जन्तुमुदभ्रान्तबन्धुं

कस्त्रातुं चक्रहस्तादपर इह दयादत्तदृष्टिः क्षमेतः[94]

4. भाषा सर्वसामान्य के बोधगम्य हो– आचार्य कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक की भाषा और शब्द चयन सार्वजनिक तथा सर्वथा बोधगम्य है। प्रायः स्त्री पात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं क्योंकि उस समय प्राकृति जन साधारण की भाषा थी अतः बोधगम्यता के लिये प्राकृत का प्रयोग किया गया, संस्कृत शिक्षित जनों की भाषा थी। अतः संस्कृत का भी प्रयोग किया गया, क्योंकि भाषा संवादों का व्यवहार पक्ष है, संवाद हृदय के भावों का मूर्त रूप है, भाषा ही संवादों को आलोकित, विभूषित तथा प्रकाशित करने का कार्य करती है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक में प्राकृत का प्रयोग इस प्रकार है–

करूणा– सहि पेक्ख रजसस्सुदा सद्धा। जा एसा–

''विप्पट्टणीलुप्पललोललोअणा
नरत्थिमालाकिदचालुभूसणा
णिअम्बपीणत्थण भालमन्थला
विहादि पुष्णेन्दुमुही विलासिणी।''[95]

श्रद्धा– भअवं, सुलाएपूलितं भाअणम्)

उत्तम पात्रों द्वारा संस्कृत का प्रयोग–

उपनिषद– सीख, कथं तथा निरनुक्रोशस्य स्वामिनो मुखमालोकयिष्यामि। येनाहमितरजनयोषे सुचिरमेकाकिनी परित्यक्ता।

शान्ति – देवि, कथं तथाविधविपत्पतितो देव उपालभ्यते।[96]

संकल्प–सूर्योदय– में संस्कृत का प्रयोग इस प्रकार है –

विवेकः – अये, तिष्ठ तिष्ठ। यावदयमनङ् विजयिनों भवानीपतेरावासः कलधौतगिरिरवलोक्यते।[97]

'संकल्प-सूर्योदय' नाटक में सुमति, दुर्वासना, दुर्मति, चेटीं, रति, श्रद्धा, शिष्य, आदि पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। यथा–

सुमति – अय्यउत्त एणिह कहिं गओ एसो कअकज्जो महापुरिसो।[98]

5. भावानुरूप संवादों में गतिशीलता तथा मन्दता अर्थात आरोह–अवरोह होना चाहिए। प्रबोध–चन्द्रोदय में 'सरस्वती–वत्स, उपदेशसहिष्णु ते हदयं जातम्। अत एतद परमुच्यते–

''वशं प्राप्ते मृत्यों पितरि तनये वा सुहृ दिवा

वियोगो वैराग्यं द्रढ़ति वितन्वशमसुखम् ।''[99]

संकल्प सूर्योदय'–

नारदः – (सहर्षं विहस्य) तस्यैव मेघनादस्य लक्ष्मणेनेव परप्रयुक्ता खल्वियमस्य तिरस्करणी। तथाहि–

''अभिजनधन विद्यावृत्तदाक्ष्यादिरूपै
रूपधिभिरयमेकोऽनेकधा जृम्भमाणः
पृथुमहिमविवेक प्रक्षेणादुत्पन्त्या
प्रसभमधिकदृष्टया प्रापितो वीरशय्यामाफ[99]

संवादो में सजीवता होना, संवाद दो तीन व्यक्तियों में ही चलना, संवादों में आंगिक और सात्विक अभिनय के लिये व्यवस्था होंना संवाद कला की मुख्य विशेषताऐं हैं।

6. स्वगत एवं प्रकाश कथन

कृष्ण मिश्र एवं वेदान्त देशिक ने अपने नाटक 'संकल्प सूर्योदय' में स्वगत कथन का प्रयोग किया है। इनमें गहन नाटकीयता होती है। स्वगत कथन से पात्रों की मनः स्थिति तो प्रकाशित होती ही है, साथ ही साथ उनके चरित्र का भी सहज एवं मौलिक रूप अनावृत्त होता है। नाट्यशास्त्र में इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है–

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राब्यं स्वगतं मतम्[101]

सबके सुनने योग्य वस्तु 'प्रकाश' किसी के भी न सुनने योग्य वस्तु 'स्वगत' कहलाती है। यथा – प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में स्वगत कथन इस प्रकार हैं–

स्वगत– **अहंकार–** (स्वगतम्) अये, दम्भग्रहोऽयं

देश : (प्रकाशम्) भवतु । अस्मिन्नासने उपविशमि ।[102]

कापालिक : (स्वागतम्) अये, अश्रद्धाक्षिप्तमनयोरन्तः करणम । भवत्वेवं तावत्। (प्रकाशम्) श्रद्धेः इतस्तावत् ।[103]

संकल्प–सूर्योदय –

सुमति :– (दृष्टा स्वागतम्) माणुसस्स जोइणो माणुससरिच्छे चित्तसंगो संपाअणिज्जो। (प्रकाश) अय्यउत्त, एदेण विअ तुएसाअरणिमग्गा वेदा विअ मोहंधआरणिमग्गा जणा उद्वरिऊण रक्खिज्जंति । किं नाम परमपुरूषस्यैता दृशानि रूपान्तराव्यपि भवन्ति ।[104]

स्वगत कथन द्वारा पात्रों की चारित्रिक दीप्ति को और दीपित कर देते हैं ।

संवादो में आध्यात्मिकता

भारतीय संस्कृति का प्राण उसकी आध्यात्मिकता है । त्याग और संयम से अनुप्राणित नाटककार के हृदय में समाज के सुख–दुख की भावना की तरगें अनवरत उठती रहती थीं । वह प्राणियों के सच्चे सुख की खोज में विचार रत रहता था, यही कारण है कि भारतीय दर्शन केसदा आशावादी होने के कारण संस्कृत साहित्य में जितना जनता के हृदय की वस्तुओं और प्रवृत्तियों का वर्णन किया, भारतीय दर्शन के सदा आशावादी होने के कारण उतना संस्कृत साहित्य आशवादी और आनन्दवादी है । 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' रूपात्मक रूपक स्पष्ट रूप से दार्शनिक विचारों की उथल–पुथल को लेकर निर्मित हुए है । उत्पत्ति के ऊषा काल से ही विभिन्न कवियों ने साहित्य के माध्यम से नाटक ऐसी रमणीय कृति में स्वसिद्धान्तों के लिये अपने–अपने मन्तव्यों का प्रतिपादन किया1इन दोनों नाटककारों ने दर्शन के नीरस सिद्धान्तों को साहित्य की सरसता और मधुरता से सिक्त कर हृदयंगत कराने के सहज मार्ग को अपनाने का सफल प्रयत्न किया आचार्य वेंटकनाथ ने जैन, बौद्ध, दर्शन, सांख्य दर्शन, पाशुपत ,मीमांसक, और वैष्णव धर्म के दर्शन से ओत प्रोत होकर इन सिद्धान्तों को जन
साधारण सुलभ करने के लिये उसने नाटक ऐसे सरल मार्ग का वरण किया।

प्रबोध चन्द्रोदय के रचनाकार कृष्णमित्र महान दार्शनिक एवं व्याख्याता थे इसी लिये वह साहित्य में समाज का 'सत्य' 'शिव' एवं 'सुन्दर' रूप में चित्रण किया है, रूपक कथात्मक प्रबोध चन्द्रोदय में आध्यात्मिक और भौतिक वर्णन सूक्ष्मता की व्याख्या दार्शनिक गम्भीरता होने पर भी दुरूह नहीं है।

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में अनादिकाल से आगत, सनातन प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों के दो दलों (प्रवृत्तियों) का संघर्ष उपस्थित किया गया है। जिसका फल है– मानव अन्तरात्मा की अन्तिम विजय।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' दार्शनिक विषयों की जटिलताओं से ओत–प्रोत नहीं है। संसार की भौतिकता की चकाचौंध में आसक्त मनुष्य का मन सदा दुखित रहता है। इस दुख के निवारणार्थ कलत्रादिकों में आसक्त न होने के लिये वैराग्योपदेश दिये जाते हैं। नाटककार इस आध्यात्मिक सत्य को अत्यन्त सुन्दरता से उपस्थित

करता है। पुत्र मोह के विनष्ट हो जाने से दुखित मन को वैराग्य के साक्षात्कार से शान्ति की प्राप्ति होती है।

सरस्वती – (उपसृत्य) वत्स, किमेवमतिविक्लवोऽसि, ननु विदित पूर्वैवभवता भावानामनित्यता, अधीतानि च व्यैतिहासिकान्युपाख्यानानि। तथाहि–

(1) भूत्वा कल्पशतायुषोऽम्बुजभवः सेन्द्राश्च देवासुरा (2) मन्वाद्या मुनयो मही जलधयो नष्टाः परं कोटयः मोहः (3) काऽयमहो महानुदयते लोकस्य शोकावहः (4) सिन्धोः फेनसमे गते वपुषि यत्पञ्चात्मके पश्चताम्[105]

अर्थात ब्रह्मा इन्द्र सहित देवता एवं असुर मनु आदि ऋषिगण, असंख्य समुद्र तथा पृथ्वी सौ कल्पों की आयु प्राप्त करके भी नष्ट हो गये, फिर सिन्धु के फेन के सदृश पंचतत्वात्मक शरीर के पंचत्व प्राप्त कर लेने पर लोगों को शोक–उत्पादक मोह क्यों हुआ करता है?

तदभावय भावानामनित्यताम्। नित्यमनित्यवस्तु दर्शनों न पश्यति शोकावेगम्। यतः–

''एकमेव सदा ब्रह्म सत्यमन्यद्विकल्पितम्

को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।[106]

अर्थात् पदार्थो की अनिव्यता की भावना किया करो। जिसे वस्तुओं की अनिव्यता दिखने लगती है, उसे शोक का आवेग नहीं सताता है।

संकल्प–सूर्योदय–

व्यवसायः – देव, अद्यापि कथमध्यासः पुरुषः खल्विदानीं स्वशरीरे स्वात्मबुद्धिं विहाय स्वात्मनि परशरीरत्वबुद्धिमनुरून्धे।

राजा– हन्त, सिद्धप्रायमपि सर्वं सान्तः शल्यमिवाद्य संदृश्यते। तथाहि–

''तत्वज्ञाने विशुद्धे शमयति दुरितारम्भमात्मावधाने

व्यक्ताकृष्टेतराक्षे विरमति च मनोवानरे चापलात्स्वात

भस्मच्छन्नाग्निकल्पः परपरिभवनाद्यागमे दीप्यमानः

श्रलक्ष्णः संस्कारसारस्तरलयति शनैरूज्जिहानं समाधिम्।''[107]

मन के सावधान हो जाने पर चक्षुरादिको के वशीकृत हो जाने पर, वासना के शिथिल हो जाने पर, समाधि की अवस्था प्राप्त होती है।

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में मन के पुत्र दो शक्तिशाली युवराज विवेक और मोह जो जीवन सदवृति और कुवृति के विरोधी हैं। विवेक का सहचर वस्तुविचार है,

जिससे संकेत प्राप्त होता है, कि जीवन में वस्तुविचार (सत् असत विचार) तथा विवेक का अत्यन्त आपेक्षित सम्बन्ध है। विवेक की जीवन संगिनी मति है, मति का संवाद–'प्रबोध चन्द्रोदय' में इस प्रकार है –

मतिः – अज्जउत्त, जदि एवं कुलप्पहुणो दिढग्गंथिणि बद्धस्स वि बन्धमोक्खो भोदि तदो ताए विच्चानुबन्धो जेव्व अज्जउत्तों भेदुत्ति सुट्ठु में पिअम्।

राजा– प्रिये, यद्येवं प्रसन्नासि सिद्धास्तर्हास्माकं मनोरथः तथा हि–

"बद्ध्वैको बहुधा विभज्य जगतामदिः प्रभुः शाश्वतः
क्षित्वा यैः पुरूषः पुरेषु परमो मृत्योः पदं प्रापितः
तेषां ब्रह्माभिदाँ विधाय विधिवत्प्राणान्तिकं विधया
प्रायश्चित्तमिदं मया पुनरसौ ब्रह्मौकतां नीयते।[108]

अर्थात् जिन अहंकारादि ने विश्व के आदि पुरूष को बांधकर, शरीरों में अनेक प्रकार से विभक्त करके, मृत्यु के धाम पहुँचा दिया। मेरे द्वारा उन ब्रह्म भिन्न लोगों को विद्या से विधिवत प्रायश्चित कराकर उसे पुनः ब्रह्मैकता की प्रतीत करायी जा रही है।

संकल्प सूर्योदय – राजा विवेक और सुमति का संवाद

सुमति– (अग्रतोऽवलोक्य) अय्यउत्त, अअं अअंऽचंदोदओ विअ अइविसओ कोवि पआसो अग्गदो दोसइ।

राजा– सेनापते, किमिदमैन्द्रजालिकमित किमप्यतर्कितोपस्थितम्, अनिर्धारितकारणम्, अमृतपारावारपूर यर्थाथ–

पर्याय प्रसरम्, आप्लावितदशदिशावकाशम्, अवदातमनोहरम, अदृष्टपूर्व धाम।[109]

बुद्धि और विवेक का समवाय सम्बन्ध है, बिना बुंद्धि के विवेक अधूरा है, जो कि स्वाभाविक है। विवेक का प्रतिद्वन्दी मोह है, जिसके साथी काम, क्रोधादि तथा चार्वाक हैं। व्यक्ति काम क्रोधादि और असत सिद्धान्तों के कारण मोह का अनुगामी होता है। अतः सत–असत निरीक्षण में दृष्टि के सक्षम न रह जाने से व्यक्ति विवेक शून्य हो जाता है। विवेक द्वारा मोह के ऊपर विजय प्राप्त होती है । आध्यात्म विद्या अर्थात् उपनिषदों के सेवन से प्रबोध की उत्पत्ति होती है।

ईश्वर और माया के सम्बन्ध का इस जगत की सृष्टि के कारणों की समस्या, का समाधान भौतिक लौह और चुम्बक के उदाहरण से सरलता से समझाया है--

"अयः स्वभावादचलं वलाच्चल
व्यचेतनं चुम्बकसंनिधाविव
तनोति विश्वेक्षितुरीक्षितेरिता
जगन्ति मायेश्वरतेयमीशितुः।"[110]

अपिच– "स्वभावलीनानि तमोमयानि
प्रकाशयेधो भुवनानि सप्त
तमेव विद्वानतिमृत्युमेति
नान्योऽस्ति पन्था भवमुक्तिहेतुः।"[111]

उपनिषत् – ततः कर्मकाण्डसहचरी मीमांसा मया दृष्टा–

विभिध कर्माण्यधिकारभाञ्जि श्रुव्यादिभिश्रचानुगता प्रमाणैः।
अंगैर्विचित्रैरभियोजयन्ती प्राप्तोपदेशरति देशकैश्रच।[112]

मोह के वश में पड़े हुए मनुष्य स्वच्छ ज्ञान स्वरूप अमृत समुद्र का सेवन न करते हुए, मृग–तृष्णा जल की ओर आकर्षित होते हैं, तथा विनष्ट होते हैं। यथा षष्ट अंक में शान्ति और उपनिषद के वार्तालाप में–

उपनिषत् –

सखि, संप्रत्यागच्छन्ती तत्सया गीतायाऽहं रहस्युक्ता यथा भर्ता स्वामी च पुरूषस्त्वया यथाप्रश्नमुत्तरेण संभावयितव्यः यथा प्रबोधोत्पत्तिर्भविष्यतीति तत्कथं गुरूषामध्यक्षं घाष्टर्यमवलम्बिष्ये।

शान्तिः – देवि, अविचारणीयमेत द्वाक्यं भगवत्या गीतायाः अयमेव चार्थो भगवत्यां विष्णुभक्त्या विवेकस्वामिनो निरूक्तः। तदेहि। संभावय दर्शनेन भतांरमादि–पुरूषं च।[113]

आचार्य कृष्णमिश्र के नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में मोह का विवेक के द्वारा विनाश और उपनिषद सें मिलन प्रबोधोदय की उत्पत्ति एवं विष्णु भक्ति के आश्रय से मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन करते हुए, 'अद्वैत वेदान्त' तथा 'वैष्णव धर्म' का समन्वय सफलता के साथ उपस्थित किया। जो आत्म कल्याण पक्ष के उपदेश के समय सरस्वती के द्वारा रमणीयता के साथ अभिव्यंजित हुआ है।–

सरस्वती – वत्स, स्नेहदोष एषः। प्रसिद्ध एवायमर्थः स्नेहः सर्वानर्थप्रभव इति। तथाहि–

उष्यन्ते विषवल्लिबीज विषमाः क्लेशाः प्रियाख्या नरै–

स्तेभ्यः स्नेहमया भवन्ति नचिराद्वज्राग्निगर्भाड़्कुराः
येभ्योऽमी शतशः कुकूलहुतभुग्दाहं दहन्तः शैने–
र्देहं दीप्तशिखासहस्त्रशिखरा रोहन्ति शोकद्रुमाः।''[114]

अर्थात् मनुष्य, विषलता के समान भयंकर दुखदायी प्रियसंज्ञक (पुत्र स्त्री आदि) बीज बोते हैं, उनसे शीघ्र ही प्रेमरूपी विद्युत अग्नि के समान सन्तापदायक अंकुर निकल आते हैं, जिन स्नेह अंकुरों से देह को भूसी की अग्नि के समान जलाने वाली, ज्वालायुक्त सहस्त्र शिखर वाले शोक रूपी वृक्ष पैदा होते हैं। विवेक और मोह के संघर्ष में पहले विवेक पक्ष की पराजय किन्तु बाद में विष्णु भक्ति के आश्रय में विवेक की पूर्ण सफलता– परस्पर समान भौतिक और आध्यात्मिक संघर्ष है। यथा क्षपणक और कापलिक के संवाद में बौद्ध दर्शन का खण्डन इस प्रकार है –

क्षपणकः – अलिहन्त, अलिहन्त, अहो घोलपावकालिणा केणावि विप्पलधो बलाओ।

कापालिकः – (सक्रोधम्) आः पाप पाखण्डापसद, मुण्डितमुण्डचूडाकेश, केशलुंचक, अरे विप्रलम्भकः किल चतुर्दशभुवनोत्पत्ति स्थितिप्रलय प्रवर्तको वेदान्तप्रसिद्धसिद्धान्तविभवो भगवान्भवानीपतिः। दर्शयामस्तर्हि धर्मस्यास्य महिमानम्?

''हरिहरसुरज्येष्ठश्रेष्ठान्सुरानहमाहरे
वियति वहतां नक्षत्राणां रूणध्मि गतीरपि
सनगनगरीमम्भः पूर्णा विधाय महीमिमा
कलय सकलं भूयस्तोयं क्षणेन पिबामि तत्।''[115]

धार्मिक जगत में भृष्ट भिक्षु, क्षपणक और कापालिक वामपंथ की प्रबलता के कारण कामिनी कादम्ब का सेवन करने लगे थे। ''शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से राजा मोह के वश में हो जाने के कारण पुरूष अपने वास्तविक स्वरूप ज्ञान से रहित हो जाता है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' अपने युग की धार्मिक दशा का स्पष्ट चित्र उपस्थित करता हैं। एक और बौद्ध, जैन, कापालिक, सोमसिद्धान्त, अद्वैत वेदान्त और विष्णु भक्ति का विशद विवेचन प्राप्त होता है। नाटककार ने अत्यन्त सफलता के साथ आध्यात्मिक जीवन के पात्रों को, सिद्धान्तों को भौतिक जीवन के प्राणों में ढाला है।[116]

'संकल्पसूर्योदय' में दार्शनिक संवादों का प्रस्तुतीकरण बडी प्रौढ़ता तथा गम्भीरता के साथ किया गया है। प्रथम अंक में परतत्व रूपी भगवान् विष्णु के उस संकल्प की चर्चा है, जो केवल पुरूषों को संसार से मुक्त करने में समर्थ होता हैं। यथा–

राजा – देवि सत्यमेतत। यथार्थदर्शिनीयं यर्थाथवादिनी च भवती। किंच, निधुतनिखिदोषा निरवधिपुरूषार्थलंभन्प्रवणा। सत्कविभणि तिटित्वं सगुणालंकार भावरसजुष्टा। (विचित्य) प्रियेनिर्विकार पुरूष पीडियां क्रीडन्त एते काम, क्रोध, लोभादयः सुपंथानमास्थिताः; वयं पुनस्तमे वनिः श्रेयसेन योजयितु समस्त जनसां सिद्धिक सुहृदो भगवतः तापत्रयाथिहतसर्वजनसंजीव नींदयाष्वृष्टिं वाहयंतः कदध्वना परिस्थताः। अहो महानवमुत्तप्रलापः। पश्य मेत्वया सह निवर्त्त परानुवृतम्। महत्यारंभेस्मिन मधुरिपु दयासंभृतधृतिर्वहिः कव्यारातीन्। सुमुखिबहिरंतश्रच भतः शमाधावाधायक्षपित व्यजिंनक्षे क्षेत्रिणमहं परप्राप्त्याधन्यं परिणम यितुंप्राप्तनियमः[117]

सांख्योग, जैन बौद्ध पाशुपत, मीमांसक, शांकर भास्कर एवं यादवीय मतों का उल्लेख किया है, 'संकल्पसूर्योदय' एक महान विशिष्टाद्वैतवाद की कृति है, इस नाटक में परमोपेक्षित सिद्धान्त का समर्थन हुआ है। कि मानव प्रयास तथा क्रमशः योग्यताओं की प्राप्ति सफलता और मुक्ति के लिये अकाट्य रूप से आवश्यक हैं। मानव जीवन में अपनी प्रबल सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से इन्हीं दो शक्तियों से निरन्तर संघर्ष चला करता है।

पुरूष –

देव, भवत्प्रसादलभ्यां भाविनीमवस्थां प्रतिबुध्य निरूढहर्षा मुक्तकलिर्नृत्यतीव में बुद्धिः। अपुनर्भवस्तु भविष्यति न वेति संदिहानमानसो भृशं दूये कथं कल्पितोऽहमिति।

"वितमसि पदे लक्ष्मीकान्तं विचित विभूत्रिकं
सचिवगामितः संपद्याविर्भवत्सहजाकृतिः
स्फुटतदपृथक्सिद्धिः सिध्यदगुणाष्टकतत्फलो
भजति परमं साम्यं भोगे निवृन्तिकथोज्झितम्।"[118]

एक ओर उच्च आध्यात्मिक शक्ति (विवेक) अपनी अन्य सम्बन्धित शक्तियों की सहायता से उस मार्ग को ग्रहण करने का प्रयास करता है।

जो मुक्ति वा ईश्वर के साथ सम्बन्धित होने से अलौकिक आनन्द की ओर ले जाता है, तो दूसरी ओर मानव की निम्न भौतिक शक्ति मनुष्य को सारहीन भौतिक सुखों की मृगतृष्णा की ओर आकृष्ट करने का प्रयास करती है। इसी संघर्ष का चित्रण नाटककार ने नाटक में अत्यन्त सफलता के साथ किया है–

राजा– देवि, पश्य पश्य त्वदक्षिसारूप्येणाभिव्यक्तं भगवतो रूपम्

सुमतिः – (दृष्य स्वगतम्) माणुसस्स जोइणो माणुससरिच्छे चित्तसंगो संपाअणिज्जो।

अय्यउत्त एदेण विअ तुए साअरविमग्गा वेदा विअं मोहंधआरणिमग्गां जणा उद्धरिऊण रक्खिज्जंति। किं णाम परमपुरिसस्य एआरिसाई रूवंतराई वि होति?[119]

सर्व साधारण मानव जीवन में निर्गुण अद्वैत ब्रह्म का आकर्षण विशेष सफल एवं सहज नहीं। विष्णु की सगुण भक्ति के सहाय से विवेक पक्ष की विजय और पुरूष की संसार निवृति सहज हो जाती है।

संवाद में मनोविज्ञान

नाटक की नवीनतम् प्रवृत्तियों में सर्वप्रथम मनोविज्ञान का समावेश हुआ हैं। जो मनुष्य की प्रवृत्तियों का ही नहीं, उन प्रवृत्तियों की मूल प्रेरणाओं का भी अध्ययन करने में उपयोगी सिद्ध हुआ है। कारणभूत मूल प्रेरणाओं के समीचीन ज्ञान के बिना प्रवृत्तियों और घटनाओं का विश्लेषण पूर्ण नहीं हो सकता और ऐसा अध्ययन मनुष्य को समझने के लिये अपर्याप्त होगा। विशेषकर आधुनिक जीवन में जब प्रत्येक व्यक्ति को निरन्तर छोटे बडे मानसिक संघर्षों से होकर गुजरना पडता है। उसके वास्तविक स्वरूप के परिज्ञान के लिए मनोवैज्ञानिक अध्ययन नितान्त आवश्यक हैं।

जीवन प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। उसके भूत, वर्तमान और भविष्य की दशाएँ बहुत कुछ अज्ञेय हैं। ऐसे जीवन के स्वरूप को और उस जीवन के मध्य में विभिन्न प्रकार के विकारों के आघातों को सहन करने वाले अन्तर्द्वन्द्व एवं मनोवैज्ञानिक भावों का चित्रण होता है तब उसमें सूक्ष्मता आ जाती है। अतः नाटक में वर्ण विषय का चयन जीवन और समाज के यथार्थ से ही करना चाहिए। वस्तुतः 'वर्ण्य–विषय' को 'मानव–जीवन' के यथार्थ से ही उभारना चाहिए, जिसमें भाव–स्पन्दन, 'मानव–चेतना' और आधुनिकता का अभूतपूर्व सम्मिश्रण हो जिसके कारण वह अधिक सजग एवं बोधगम्य प्रतीत हो सके।

मनोविश्लेषणवादी के अनुसार– ''व्यक्ति के दो अचेतन होते हैं– एक वैयक्तिक अचेतन तथा दूसरा समस्त अचेतन। परम्परागत सांस्कृतिक भावनाओं को व्यक्ति अचेतन रूप से ग्रहण करता रहता है। उसके ग्रहण करने की इस प्रक्रिया का तनिक भी बोध नहीं होता।''[120] 'वर्ण्य–विषय' के चयन में नाटककार का समस्त अचेतन ही क्रियाशील रहता है। हमारा भारत आध्यात्मिक भावना प्रधान देश हैं। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति अचेतन रूप से अपनी संस्कृति एवं परम्परा के अनुशासन में आबद्ध रहता है। नाटककार भी भारतीय होने के फलस्वरूप अचेतन रूप से इस बन्धन में आबद्ध रहता है। नाटक की कथावस्तु अथवा वर्ण्य–विषय का आधार

उसके आस–पास का वातावरण तथा सामाजिक, धार्मिक, एवं आर्थिक परिस्थितियाँ ही होती हैं। नाटककार अपनी मानसिक भावनाओं को भाषा के माध्यम से प्रकट करते हैं।

चेतना को मनोवैज्ञानिकों ने एक अखण्ड, सतत प्रवाहशील धारा के रूप में माना है:, जिस प्रकार पानी की धारा में लहरियाँ तथा तरंगे एक दूसरे में प्रवाहित तथा मिश्रित होते हुए का एक अखंडित धारा का निर्माण करती हैं, उसी प्रकार चेतना के विभिन्न स्पन्दन एक दूसरे में प्रवाहित तथा (मिश्रित) सम्मिलित होकर, चेतना की एक अखंडित सात्तयपूर्ण धारा का निर्माण करते हैं। तथापि समझने–समझाने के लिए मानव चेतना के तीन रूपों तथा स्तरों का विचार किया जा सकता है, यथा संवेग, चिन्तन, प्रेरणाएँ। संवेग वे प्रतिक्रियाएं हैं; जो किसी उत्तेजना की उपस्थिति में आविर्भूत होती है; चिन्तन मन का सक्रिय व्यापार है; जो किसी कठिनाई अथवा समस्या के समाधान के संदर्भ में कल्पना एवं तर्कना के आश्रय से चलता है। प्रेरणाएँ वे इहाएँ तथा इच्छाएँ हैं जो मनुष्य के व्यापारों को अदृश्य किन्तु सशक्त ढंग से, प्रचोदित एवं परिचालित करती हैं। मानव जीवन में चेतना के ये ही तीन स्वरूप तथा आयाम प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होते हैं, और इन्हीं के प्रगतिशील, उत्तरोत्तर विकास पर जीवन का संतुलनमयं विकास अवलम्बित रहता हैं।

कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक एक समर्थ नाटककार हैं, शब्दों के मर्मी ज्ञाता है, नाटक में जहाँ संवादों के अनेक कार्य हैं, वही एक कार्य मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व की प्रस्तुति भी माना गया है। लेकिन सामान्य रूप से संवाद– शब्दों के माध्यम से मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों को स्वरूपित करना कोई आसान कार्य नहीं है। इस कार्य को तो कोई शब्द–मर्मी ही कर सकता है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक के संवाद मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों को प्रकट करने में सफल हैं।

''मनोवैज्ञानिक द्वन्दों की प्रस्तुति के द्वारा 'नाटककार' नाटक में कई कार्य एक साथ करता है। एक तो कथानक के विकास में सहायता मिलती है, दूसरे पात्र का चरित्र प्रकाशित होता है तथा स्थिति की विवेचना भी होती है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं वेदान्त देशिक के संकल्पसूर्योदय के ऐसे संवाद इन सभी कार्यों को करते हैं। कतिपय दृष्टान्त–

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में इस प्रकार है –

कामः – प्रिये, कुतस्तवेदं स्त्रीस्वभावसुलभं विवेकाद्भय मुत्पन्नम्। पश्य–

अपि यदि विशिखाः शरासनं वा कुसुममयं ससुरासुरं

मम जगदखिलं वरोरू नाज्ञामिदमतिलङय धृतिं मुहूर्तमेति ।[122]

कामः— ब्रह्मान यद्यप्येवं तथाप्यस्माकविदितवृतान्तों भवना् । तथाहि—

सदनमुपगतोऽहं पूर्वमम्भोजयोनेः

सपदि मुनिभिरूच्चैरासनेषूज्झितेषु

सशपथमनुनीय ब्रह्मणा गोमयाम्भः

परिमृजितनिजोरावशु संवेशितोऽस्मि् ।[125]

अहंकार — (स्वगतम्) अहो दाम्भिकस्य ब्राह्मणस्यात्युक्तिः

(विचिन्त्य) अथवा दम्भोऽयम् । भवत्वेवं तावत् ।

(प्रकाशम्) आः किमेवं गर्वायसे । (सक्रोधम्)

अरे क इव वासवः कथय कोऽत्र? पद्मोदभवो

वद प्रभवभूमयो जगति का मुनीनामपि

अवेहि तपसो बलं मम पुरन्दराणां शतं

शतं च परमेष्ठिनां पततु वा मुनीनां शतम् ।[126]

इन दोनों के संवाद में दम्भ एवं अहंकार की वृत्तियों का निरूपण किया गया हैं।

चार्वाकः — कर्ता क्रिया साधनपदार्थों के विनष्ट हो जाने पर यज्ञकर्ताओं को यदि स्वर्ग प्राप्त होता है, तो दावानल में दग्ध तरूओं में अत्यन्त फल होगें।

निहितस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते

स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हन्यते ।[127]

महामोह— (सक्रोधम्) आः किमेवमतिमुग्धौ शान्तेरपि विभितः । कामादिषु प्रतिपक्षेषु कुतोऽस्याः संभवः ।

तथाहि —

"घाता विश्रवविसृष्टिमात्रनिरतो देवोऽपि गौरी भुजा

श्लेषानन्दविधुर्ण माननयनों दक्षाध्वरध्वंसनः

दैत्यारिः कमलाकपोलमकरीलेखाङ्किंतोरःस्थलः

शेतेऽब्धावितरेषु जन्तुषु पुनः का नाम शान्तेः कथा ।"[128]

क्रोधः— श्रुतं मया यथा। शान्तिश्रद्धाविष्णु भक्तयों महारजेन प्रतिपक्षमाचरन्तीति । अहो मयि जीवीत कथमासामात्मनि निरपेक्षितं चेष्टितम् । तथाहि—

"अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि

धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि

कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति

धीमानधीतमृपि न प्रतिसंदधान्ति।''[129]

अर्थात् शान्ति श्रद्धा और विष्णुभक्ति महाराज का विरोध कर रही है। अहो मेरे जीवित रहते हुए इन्होंने स्वकीय चिन्ता न कर आचरण किया है। क्योंकि संसार का अन्धा करता हूँ, बधिर करता हूँ चेतन धैर्यवान को अधीर बना देता हूँ जिससे वह कर्तब्य को नहीं देखता है। जिससे वह मंगल को नहीं सुनता, जिससे बुद्धिमान भी पंठित तत्वों को नहीं स्मरण करता है।

लोभ '— अये मदुपगृहीता मनोरथसरित्परम्परामेव तावन्न तरिष्यन्ति किं पुनः शान्त्यादीं चिन्तयिष्यन्ति। पश्य पश्य सखे—

सन्त्येते मम दन्तिनों मदजल प्रम्लानगण्डस्थला

वातव्यायतपातिनश्रच तुरगा भूयोऽपि लप्स्येऽपरान्

एतल्लब्धमिदं लभे पुनरिदं लब्धादिकं ध्यायतां

चिन्ताजर्जरचेतसां वत नृणां मा नाम शान्तेः कथा।[130]

क्रोध— सखे विदितस्त्वया मत्प्रभावः

त्वाष्ट्रं वृत्रमघातयत्सुरपतिश्रचन्द्रार्धचूडोऽच्छिन

छेवो ब्रह्माशिरों वसिष्ठतनयानाघातयप्कौशिकः

अपिच — विधावन्त्यपि कीर्तिमन्त्यपि सदाचारावदातान्यपि

प्रोच्यैःपौरूष भूषणान्यपि कुलान्युद्धर्तुमीशः क्षणात्।[131]

प्रत्येक पात्र का अपना मनोविज्ञान होता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे साधारण मानव जीवन में प्रत्येक व्यक्ति का। मनोवैज्ञानिक नाटककार का कर्तब्य है कि, वह पात्रों का स्वरूप निर्धारित कर दे, उन्हें रंग दे दे और चारित्रिक विशेषताएँ उत्पन्न कर दें। 'प्रबोध—चन्द्रोदय' नाटक के कतिपय दृष्टान्त—

लोभः — प्रिय सुनो—

क्षेत्र ग्राम, वन, पर्वत, नगर, द्वीप, पृथ्वी—मण्डल की आशा में जिनके हृदय संलग्न हैं, जो प्राप्त से अधिक का ध्यान कर रहे हैं, यदि तुम कृपा करके उनके अंगों को स्थूल कर दो, तो लाख ब्रह्माण्ड का पालन करने पर भी प्राणियों को शान्ति कहाँ प्राप्त होगी।''[132]

तृष्णा –

आर्यपुत्र, स्वयमेव तावदहमस्मिन्नर्थे नित्यमभियुक्ता। सांप्रतमार्यपुत्रस्याज्ञया ब्रह्माण्डकोटयोऽपि न में उदरं पूरयिष्यन्ति।

हिंसा के द्वारा मनोविज्ञान इस प्रकार प्रकट किया गया है प्रिये तुमको प्राप्त कर मेरे लिये माता–पिता का वध भी सरल है, क्योंकि "राक्षसी माता कौन है? पिता कौन है? कीट तुल्य ये भांई कौन है? बन्धुओं को तडितं कर भगा देना चाहिए। इन कुटुम्बी जनों का आचरण कुटिल धूर्तों का सा है। शान्ति और करूणा का संवाद–

शान्तिः – सखी, किन्नु प्रतिकूले विघातरि न संभाव्यते तथाहि–

श्रीदेवी जनकात्मजा दशमुखस्यासीदगृहे
नीता चैव रसातलं भगवती वेदत्रयी दानवैः
गन्धर्वस्य मदालसां च तनयां पातालकेतुश्छला
दैत्येन्द्रोऽपजहार हन्त विषमा वामा विधेर्वृत्यः[133]

नाटककार अपने पात्रों की रहस्यात्मकता को खोलकर सबके समक्ष उजागर कर देता है। पात्रों के अन्तर्जगत में बार–बार अनावश्यक हस्तक्षेप करने से एक भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उससे पात्रों का स्वरूप स्पष्ट होने की बजाय निरन्तर उलझता ही जाता है। पात्रों के स्वतन्त्र अस्तित्व के साथ ही स्वतन्त्र विचार भी होने चाहिए। उससे पात्रों में स्वाभाविकता एवं सजीवता उत्पन्न होती है।

वस्तु विचार– अहो निर्विचारसौन्दर्याभिमानवर्धिष्णुना कामहतकेन वचिंतं जगत्।[134]

क्षमा – देवस्याज्ञया महामोहमपि जेतुँ पर्याप्तस्मि किं पुनः क्रोधः तदनुचरमात्रम्। तदहमचिरादेत–

"तं पापकारिणमकारणवाधितारं
स्वाध्यायदेव पितृयज्ञतपः क्रियाणाम्
क्रोधं स्फुलिड़्मिव दृष्टिभिरूद्धमन्तं
काव्यायनीव महिषं विनिपातयामि[135]

अर्थात् कुपित व्यक्ति के प्रति हंसकर, उपेक्षा का भाव दिखाना, अत्यन्त क्रोध से क्रोधित के प्रति उसे प्रसन्न करने का प्रयास करना, प्रहार करने वाले के प्रति अपने पाप नाश होने का भाव प्रकट करना, गाली देने वाले के प्रति कुशल कामना प्रकट करना और इस क्रोधी एवं इन्द्रियों के वशीभूत व्यक्ति, पर दुर्भाग्य से बड़ी भारी एवं अति दुःख दायक विपत्ति टूट पड़ी है, यह बड़े दुःख का विषय है,

इस प्रकार क्रोध के प्रति सर्वथा अपनी दया भावनाएँ ही प्रकट करने वाले व्यक्ति के हृदय में भला क्रोध की उत्पत्ति कहाँ हो सकती है?

श्रद्धाः – (विचित्य) प्रसिद्धः खल्वयं पन्थाः। यतः –

"निर्दहति कुलविशेषं ज्ञातीनां वैरसंभवः क्रोधः
वनमिव धनपवनाहततरूवरसंघट्टसंभवों दहनः।"[136]

सोदर की मृत्यु से उत्पन्न शोकानल अति दारूण होता है जिसे सौ विवेक मेघ भी नहीं शान्त कर पाते।

क्योंकि – "ध्रुवं ध्वंसों भावी जलनिधिमहीशैलसरिता–
मतो मृत्योः शीर्यतुणलघुषु का जन्तषु कथा
तथा प्यूच्चैर्बन्धुव्यसनजनितः कोऽपि विषमो
विवेकप्रोन्माथी दहति हृदयं शोकदहनः।।[136]

संकल्पः – राजन् समाश्वसिहि समाश्रवसिहि।[137]

मनः – देवि एवमतत्। तथापि–

लालितानां स्वजातानां हृदि संचरतां चिरम्
प्राणानाभिव विच्छेदो मर्मच्छेदादरूंतुदः।"[138]

अर्थात जिन्हें उत्पन्न किया, हृदय में स्थान दिया चाटुकियों से प्रमोदित करते रहे उनका वियोग प्राणों के वियोग के समान कष्टप्रद होता है। और भी–

मनः – देवि, भवत्वेवम्। तथापि दुरूच्छेधस्तु ममत्वगृन्तिः। (विचिन्व्य सोच्छ्वासम्) सर्वथा त्रातोऽस्मि भवत्या।[139]

वैराग्यम् – तात कोऽत्र शोकावेशः। यतः–

पान्थानामिव वर्त्मनि क्षितिरूहां नद्यामिव भृश्यतां
मेघानामिव पुष्करे जलनिधौ सांयात्रिकाणामिव
संयोगः पितृमातृ बन्धुतनय भातृप्रियणां यदा
सिद्धौ दूरवियोग एवं विदुषां शोकोदयः कस्तदा[140]

जीवन के यथार्थ से लिए गए पात्रो को नाटक में प्रस्तुत करते समय कल्पना और प्रतिभा के योग से वस्तु की आवश्यकतानुसार ढाल कर प्रस्तुत किया जाता है, अर्थात् किसी न किसी रूप में उसका संस्कार नाटककार द्वारा अवश्य हो जाता है।

संकल्प– सूर्योदय

कामः – साधु वसंत साधु सर्वथा विजित एवासौ विवेकहनकः पदपवधीरित त्रिविष्ट

परिहार कांतारेषु मरूहधो. पांतभागेषुमहोत्सवारंभः ।[141]

श्रद्धा — हलासमाणा चिन्तवुततणां सहित्णां नु एप आसिअंअह अंक मलाई अवणो दुं आठत्ता तुमविराअधरंपविससु ।[142]

शिष्यः — (सक्रोधं) अलमलमति गर्वेण यतीश्वर सरस्वती सुरभिना शयानां सतां बहामि चरणांवुजं प्रणाति शालिना मौलिना तदन्य मत दुर्मज्चलित चेतसां वादिनां शिरस्सुनि हितंमया पदम दक्षिणां लक्ष्यतां ।[143]

लोभः — युष्मदवष्टं भेनसर्वत्रामोधष्टन्निरस्मि यश्यसुयोधनादिवन्मत्यरि गृहीतस्य लीकस्येदानीद्वितीयपुरूषार्थे निष्टां ।[144]

वसन्तः — आयुष्मन् महामोहामाव्य धुरीणा पुनस्तधा सहायस्ते मुधा दुरंतधनदोहलग्नहिल चेतसो देहिनः[145]

अहं स्वयं में एक महान शक्ति है, जो मनुष्य के अन्त समय तक भी शान्ति से नहीं रहने देती। अहं की पूर्ति या उसकी सर्वोपरि रहने की भावना ही व्यक्ति की गतिविधि को निर्धारित करती है अहं की तुष्टि से क्रोध की सर्जना होती है।

दंभः — साधु कुहनेसाधु। अस्मत्सहधर्मचारिणी खल्वसिवहुमन्ये त्वां ब्राह्मराय प्रतिष्ठायिकांम यज्ञ पत्नीं बहु क्षेत्रिय पुत्रीं। नित्यमेव खल्व शनायों दनाभ्यां आतुरस्य मेहरिवासरेषु मयि भोजनगाविः कुर्वाणायात्वयाशय्य नेदादृशी व्रतं ।[146]

मनुष्य के अन्तस में अनेक भाव विद्धमान रहते हैं। इस प्रवृत्ति को मनुष्य स्वयं ही नहीं जानता। सुख एवं दुख के आवेग में मनुष्य अपनी इन्हीं भाव विभोर करने वाली अनुभूतियों को अपने प्रियजनों से कहता है। दुख की अवस्था व्यक्ति के लिये असह्य होती है। यदि शोक मनुष्य के मस्तिष्क पर पूर्णरूप से हावी हो जाए तो मनुष्य के चेतन मस्तिष्क में अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

तर्कः — (स्वगतम्) रत्नासानुरामणीय कलगृचितं

महाराजं प्रकान्तकार्ये संत्वरयामि। (प्रकाशम) देव, किमसौ केसरायमाण केसरशैलपरिवृतकाद्यनशिखरिकर्णि कास्थितेन भवता सर्वतः समीक्षितः क्षितिपद्यः ।[147]

दुर्वासना — महान् प्रसाद आर्यपुत्रस्य; यश्चि रसेवितस्य राज्ञो महामोहस्य विनाशेऽपि स्वयं जीवित्वा जीवितसमां मामपि रक्षितुममिनिविशसे ।[148]

महामोहः — भगवन्, धन्याः खलु वयमिदानी संवृनाः यदभगवतः पितामहस्य प्रियसुतेन चतुर्दशभुवनवैचित्रय दर्शिना सकललोकपालमौलिमालो पालालितपादपंकजेन भगवता संभावितेयं मायाभिघाना मदीया राजधानी ।[149]

महामोहः – (सक्रोधकम्पम्) भगवन् पापीयान् खल्वः सावशेष भोगनिर्मूलनोद्यतो विवेकहतकः।[150]

महामोहः– (संक्रोधम्) भगवन् इदमपि भवन्तमनुस्मारयामि

"पुरा किल निराकृतस्वपरभेद निर्धारणे

रणे विहरता मया रदनयन्त्रितश्चन्द्रमाः

अपर्वणि सुपर्णणाधिपतेः समक्षं क्षणा

दरूंतुदविद्युंतु दग्रसनवेदनामन्वभूत।[151]

नारदः – सखे आश्रचर्यम्माश्रर्यम। अदोषागमयसमयेऽप्यमृतकिरणसंदोहेन संप्लुतमिव त्रिभुवनमखिलमवलोक्यते। नूनं कयाचिदवदात प्रकाशया देवतया प्रादुर्भूतया भवितव्यम् आलक्षितोऽयमाश्चर्यसंभवः। यथा–

"सैषा पंचमुखी तुष्टिः शेषसृष्टिरिवापरा

अतर्कितमुपस्थाय ग्रसते लोभमूषकम्।।[152]

मनुष्य सदैव से परिस्थितयों का दास रहा है। इस कारण उसके अन्तर्मन में तो कुछ अन्य अभिलाषा होती है एवं ब्राह्म मन से वह कुछ अन्य प्रकार के विचार प्रकट करता है। जिनमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता है। सुख–दुख के अन्तर्द्वन्द्व के कारण मनुष्य की अन्य अवस्थाओं में भी विकृति उत्पन्न हो जाती है, निम्न दृष्टान्त देखिए –

श्रद्धा– भर्तः बालिशबुद्धिरहं किं वः प्रतिभणामि तथापि तरलस्वभावया मया भण्यते। चिरगतमपि वृतान्तमिदानीमपि चिन्ताभिराकृष्य भत्री आत्मा विलप्यते।[153]

समाज में बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियाँ मनुष्य की आत्म प्रवंचना की स्थिति यथा उसका सेवक सेव्य भाव ही उसका दूसरों के लिए दुख उठाने के लिए प्रेरित करता रहता है। कुछ ऐसे पात्रों का भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चरित्र चित्रण नाटक में उपलब्ध होता है, साथ ही अपने से लगाव रखने वाले पात्रों की परिस्थितियों से भी सम्बन्धित रहते हैं। मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्ति बडी ही प्रबल होती जिसकी पूर्ति के लिए मानव अपना सब कुछ उत्सर्ग करने को तत्पर रहता है। मनोवृत्ति सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए एक कुंजी है।

शैलीगत प्रयोग

शिल्प विधान के तीन पक्ष होते हैं, प्रथम रचनात्मक अथवा वस्तु शिल्प, द्वितीय शैली शिल्प, तृतीय अभिव्यक्ति–शिल्प। वस्तु शिल्प से अभिप्राय कथा वस्तु

की गठनात्मक योजना से है, 'शैली–शिल्प' से हमारा तात्पर्य कथ्य वस्तु को कहने के लिये अपनायी गई शैली वा पद्धति। किसी कथ्य को सीधी, प्रत्यक्ष शैली में कहा जा सकता है। वह अपने पात्रों के मुख से कथ्य का विज्ञापन करता है और स्वयं नेपथ्य में पात्रों की भणिति भंगी का नियमन करता रहता है। अभिव्यक्ति शिल्प का अभिप्राय कथ्य की अभिव्यंजना अथवा विशुद्ध कला पक्ष से है। जिसमें भाषा छन्द अलंकार, लक्षणा व्यंजना का सन्निवेश होता है।

कृष्णमिश्र के प्रबोध– चन्द्रोदय, एवं 'वेदान्त–देशिक' के 'संकल्पसूर्योदय' की शैली अत्यन्त सशक्त विकसित एवं परिष्कृत है, शब्दों का रसानुकूल मधुर प्रयोग है। वाक्य छोटे–छोटे होते हुये भी अपने में पूर्ण है, छन्दों का स्वर माधुरी एवं भाषा की समाहार शक्ति ने नाटक को अपूर्व रमणीयता प्रदान की है। जिस स्थान पर जैसा भाव या प्रेरणा है, उसी के अनुकूल सुकुमार कोमलकान्त पदावली का प्रयोग है; नाटकों में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। यथा–

''गद्य–पद्य भूषित सदा होत गृन्थ अभिराम

पूरन सुन्दर होत ज्यों गंगायमुनी काम''[154]

संस्कृत के परम्परानुगत नाट्य–विधान का समर्थन किया है। यथा–

''कल्पान्तवातसंक्षोभलड़िताशेषभूभृतः

स्थैर्यप्रसादमर्यादास्ता एव हि महोदधेः।[155]

अर्थात् प्रलयकाल के पवन से संक्षुब्ध सागर की बृद्धि में बडे–बडे पर्वत निमज्जित हो जाते हैं परन्तु प्रलय के पश्चात् समुद्र की स्थिरता प्रसन्नता तथ्य मर्यादा वही हो जाती है। नाटक के कथोपकथन छोटे–छोटे और चटकीले होने से उनके पढ़ते हुऐ, सुनते हुये पाठक तथा दर्शक दोनों का ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। निम्न दृष्टान्त देखें –

प्रत्यड़ंग कम्पपरिनर्तितकंचुकेऽस्मिन

पर्याप्तरूढ पलिते परतन्त्रपिण्डे

अक्षणि रागमजरामर जीविताशं

मामेव हन्त हसतीव ममान्तरात्मा।[156]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी शैली में जिस संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है वह अत्यन्त सरल प्रवाहयुक्त एवं अत्यन्त मनोरम है। उन्होंने अधिकांश जन साधारण में प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग विशेष रूप से किया है। इनके संवाद

संक्षिप्त एवं सरल हैं। बहुत अधिक लम्बे समासों का प्रयोग नहीं किया गया है, इनके शिष्ट पुरूष पात्रों की भाषा 'संस्कृत' रही है शेष पात्रों के द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटककार कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक कृत संकल्प–सूर्योदय में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। वैदर्भी रीति में सरस सरल कोमल शब्दों का प्रयोग आवश्यक होता है। प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में वैदर्भी रीति के कतिपय दृष्टान्त–

उदधूतपांसुपटलानुमतिप्रबन्ध
घावख्खुराग्रचंयचुम्बित भूमि भागाः
निर्मथ्यमान जलधिध्वनिधोरहेष
मेते रथं गगनसीम्नि वहन्ति बाह्मः।''[157]

अपिच –

''अभी धारायन्त्रस्खलितजल झकांर मुखराः
विभाजयन्ते भूयः शशिकररूचः सौधशिखराः
विचित्रा यत्रौच्चैः शरदमल मेघान्त विलस
तडिल्लेखालक्ष्मीं वितरित पताकाबलिरियम्।''[158]
''दिनकर इव दीव्यन्द्वष्टशक्तिस्तथासौ
मुनिपरिषदभीटे मोहभगें विवेकः
समतनुत यथैकः साधुपीडोधतानां
रजनिचरपतीनां राधवो दीर्धनिद्राम्।''[159]

अतः इनके नाटकों में सर्वत्र सरल सुकोमल भाषा एवं भावों का मनोहर चित्रण है। भाषा का प्रवाह प्रारम्भ से अन्त तक एक सा ही बना रहता है, उनकी शैली में कहीं भी दुरूहता अथवा अस्वाभाविकता का पुट दृष्टिगोचर नहीं होता है, इसलिये उनकी कृतियों में माधुर्य एवं प्रसाद गुण अपनी चरम सीमा तक पहुॅच सके हैं। इनकी शैली स्पष्ट प्रभावशाली और प्रवाहमयी है। उनके शब्दों का विन्यास परिश्रम पूर्वक संजोया हुआ प्रतीत नहीं होता है, वे व्यर्थ के शब्दाडम्वर से दूर है, उनकी शैली नाटक के अनुरूप बदलती है। क्रोध को व्यक्त करने के लिए उनके शब्दों का चयन सुन्दर है। जहॉ व्यक्ति क्रोध की मुद्रा में आता है उसके मुख से उसी प्रकार की शब्दावली निकलती है। यथा–

क्रोधः –

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि

धीरं सचेतनम चेतनतां नयामि

कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति

धीमान धीतमपि न प्रतिसंदधाति[160]

अर्थात् संसार को अन्धा करता हूँ, बधिर करता हूँ चेतन धैर्यवान को अधीर बना देता हूँ जिससे वह कर्तब्य को नहीं देखता है जिससे वह मंगल को नहीं सुनता है। जिससे बुद्धिमान भी पठित तत्वों को नहीं स्मरण करता है।

"आगर्भं यावदेषां कुलमिदमखिलं नैव निःशेषयामि

स्फूर्जन्तः क्रोधावह्नेर्न दधति विरति तावदड़ं स्फूलिड़ः।"[161]

जब तक गर्भ सहित इनके कुल का नाश नहीं कर लेता हूँ तब तक कोपाग्नि की ज्वलाएँ शान्त नहीं होंगी।

महोमोहः – (सरोषसंरम्भं दन्तान कटकटापयन्) भगवन आः कष्टम्। अश्रुतपूर्वमिदं श्रुतम्। वाचिकशेषस्तु भवतु वा मा वा । कः कोडत्र भोः? हन्यतामयं वार्ताहरः।"[162]

कथावस्तु का निर्माण उचित ढंग से हुआ है। औचित्य का सर्वत्र ध्यान रखा गया है, दर्शन जैसे नीरस विषय को भी काव्य एवं नाटक का विषय बना देना, उसमें सरलता और मनोरंजकता का समावेश कर देना, अभिनय के गुणों से भरपूर बना देना किसी सामान्य नाटककार का काम नहीं है। इस दृष्टि से ये मूर्धन्य नाटककार हैं। नाटक में स्वगतोक्ति नाटक दृष्टि से लम्बी प्रतीत होती हो, पर इसके द्वारा पात्र के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। नारदः (सान्तर्हासं स्वगतम्) किमसावुन्मत्तदशां प्राप्तः यदयं जरद्ववादिवाक्यवदपार्थ किमपि जल्पति, उपस्थितमहाविपत्ति रपि दुर्मतिमेव पुरस्कृत्य श्रगारंगर्ते निमज्जति।[163]

दूसरे स्थान पर वह मानव अनुभूमियों को अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। एक निराश महान व्यक्त्वि की प्रकृति के साथ एकमयता और एकलयता का जैसा चित्रण है, वह भावाभिव्यक्ति में बेजोड़ है। शैली में प्रशंसनीय शक्ति, ऋृजुता और प्रभावोत्पादकता है। शब्दविन्यास प्रभावशाली है। मानवीय भावों के विश्लेषण में वे सिद्धहस्त हैं–

शान्ति – (सास्त्रम्) मातः मातः क्वासि देहि में प्रियदर्शनम् तत–

"मुक्तातंककुरगं काननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः

पुण्यान्यायतनानि संततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः

यास्याः प्रीतिरमीषु सात्रभवती चण्डालवेश्मोदरं

प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तं गता।''[164]

नारदः – (सान्तर्हासं स्वगतम) हन्त समपतिता मम चक्षुषोः पारणा। सर्वथा चाहं विवेकमहामोहयोः संधि प्रतिरोत्स्यामि। अहह,

भ्रूभगेंषु पृथग्विधेषु बलिनो यस्यायतन्ते जन

तस्यासीदितरेण संधिवचनं किं कस्य वा कश्यते।''[165]

नाटकी सौष्ठव को दूषित करने वाली क्लिष्ट कल्पना, लम्बे–लम्बे समास और वर्णनों के आधिक्य से वह दूर है। धारावाहिनी गति हैं बीच–बीच में आनुषगिंक बातों में रूकना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। मानवीय भावों की गहराई में प्रवेश कर उनकी मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति करने में कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक पूर्णरूपेण कुशल हैं। जब वे किसी भाव अथवा मनोविकार का वर्णन प्रस्तुत करते हैं, तो उनका लक्ष्य यही रहता है, कि उस गूढातिगूढ़ अवस्था का वर्णन तत्तुल्य शब्दों द्वारा ही किया जाय। वे उपमा और उत्प्रेक्षा का आश्रय लेकर उस भाव सौन्दर्य को अनावश्यक आडम्बर से युक्त करना उचित नहीं समझते।

स्वगत कथन –

किसी पात्र के मानसिक संघर्ष के लिये अथवा मनोविश्लेषण के लिए स्वगतोक्ति एक कलात्मक नाट्य–रूढ़ि है। इन स्वगत कथनों में गहन नाटकीयता होती है, कहीं पर भी बोझिलता नहीं है। वह सर्वत्र सरल सहज एवं सर्वथा बोधगम्य है। इनसे पात्रों की मनः स्थति तो प्रकाशित होती है, साथ ही साथ उनके चरित्र का भी सहज एवं मौलिक रूप अनावृत्त होता है। स्वगत की नियतश्राव्य और अश्राव्य पद्धति को संस्कृत नाटकों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त रहा है। और उसमें किसी प्रकार की अस्वाभाविकता अथवा कृत्रिमता का आरोप नहीं लगाया गया, क्योंकि यह एक ऐसी नाट्य रूढ़ि थी, जिसे नाटककार एवं दर्शक दोनों ने स्वीकार कर लिया था। डॉ वीरेन्द्र कुमार शुक्ल के अनुसार ''– स्वगत भाषण नाटकीय घटना प्रवाह के विकास का पूर्व परिचय देता है, स्वगत कथन नाटकीय घटनाओं का सांकेतिक निर्देश है, जो भावी घटनाचक्र की रूपरेखा बताता है। इस उद्देश्य से संवादों में स्वगत चित्रण को अपनायां जाता है पर स्मरण रहे स्वगंत केवल संकेत मात्र ही रहे इसके आकार की अधिकता संवादों की शिथिलता का द्योतक है'' ।[166] प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने नाटकीय संवाद के तीन भेद किये थे– सर्वश्राव्य, नियत श्राव्य, अश्राव्य।

स्वगत या अश्राव्य में एक पात्र आत्मगत भाषण करता है जिसे मंच पर उपस्थित अन्य पात्र नहीं सुन सकते । नियत श्राव्य संवाद का वह भेद है। जिससे एक पात्र अन्य पात्रों से विमुख होकर एक अथवा दो पात्रों से गुप्त मन्त्रणा करता है। जिसे दर्शक तो सुन लेते हैं, किन्तु मंच पर उपस्थित अन्य पात्र उसे न सुनने का नाटय करते हैं।

''आसीम शोक में विलाप करते हुए एक लम्बा स्वगत कथन हो सकता है'' ।[167] 'प्रबोध चन्द्रोदय' में स्वग कथन इस प्रकार है –

अहंकार – (स्वगतम्) अहो दाम्भिकस्य ब्राह्मणस्यात्युक्तिः।

(विचिन्त्य) अथवा दम्भोऽयम्। भवत्वेवं तावत्।[168]

महामोहः –(सभयमात्मगतम्) आः, प्रसिद्धमहाप्रभावा सा योगिनी स्वभावाद्विद्वेषिणी चास्माकं दुरुच्छेद्या सा। भवतु (स्वगतम्) कार्यमत्याहितं भविष्यति।[169]

चार्वाक के यह कहने पर कि विष्णुभक्ति नाम की अत्यन्त प्रभावशालिनीं योगिनीं है, इस पर भय के साथ आ वह योगिनी तो अत्यन्त विख्यात प्रभावशाली है और वह प्रकृति से हमसे विरोध रखती है। उसका विनाश हमें करना होगा।

महोमोहः –(स्वगतम्) कार्यमत्याहितं भविष्यति।[170]

महोमोहः – (स्वगतं विचिन्त्य) शान्तेः कोऽभ्युपायः। अथवा अलमुपायान्तरेण। क्रोध लोभावेव तावदत्र पर्याप्तौ।[171]

कापालिकः– (स्वगतम्) अये, अश्रद्धाक्षिप्तमनयोरन्तः करणम्। भवत्वेवं तावत्।[171]

मैत्री– (स्वगतम्) अये, एषा मे प्रियसखी श्रद्धा भय समुदभ्रान्तहृदयाकलित कम्पतरलैरगैः किमपि मन्त्रयन्ती। संमुखागतामपि मा न लक्ष्यति। तस्मादालपिष्यामि तावत्।[172]

अर्थात् अरे भयातुर हृदया राह हमारी सखी श्रद्धा भय कंपित अंगों से कुछ कह रही है और समीप श्रद्धा भय कंपित अंगों से कुछ कह रही है और समीप में समक्ष आ जाने पर भी मुझे नहीं दिखाई पड़ रही है। मैं उसे बुलाऊँगी।

पात्र के मनोरहस्य एवं उसके हृदयगत द्वन्द के चित्रण के लिए नाटककार इस प्रकार की शैली अपनाते हैं, जिसमें केवल एक पात्र की वाणी मुखरित होती है। श्री विष्णु प्रभाकर ने स्वगत को विकसित रूप न मानकर उससे श्रेष्ठतर माना हैं। उनके मतानुसार इसमें पात्र स्वच्छन्द रूप से अपने मानसिक रहस्यों का उद्‌घाटन कर सकता है।

''इसमें लेखक पात्र के अन्तर्मन में उठने वाली भावनाओं का संघर्ष प्रस्तुत

करता है। पात्र एक ही होता है। इसलिये इसे कुछ विद्वान स्वगत का परिवर्द्धित रूप मानते हैं।

वास्तव में यह स्वगत से कुछ अधिक है। क्योंकि इसका पात्र मुक्त रूप से अपने अन्तर्मन के संघर्ष को प्रस्तुत करता है।''[172]

तर्कः– (स्वगतम्) रत्नसानुरामणीयकलग्रचितं महाराजं प्रक्रान्तकार्ये संत्वरयामि।[173]

सुमतिः – (दृष्टा स्वगतम्) माणुसस्स जोइणो माणुस सरिच्छे चिन्तसंगों संपाअणिज्जो।[174]

नारदः – (स्वगतम्) मूढस्वभावोऽसौ विश्वमपि विपरीतं कल्पयति। हन्त विजितमस्मन्मनोरथेन।[175]

नारदः – (सान्तर्हासं स्वगतम्) हन्त, समापतिता मम चक्षुषोः पारणा। सर्वथा चाहं विवेकमहामोहयोः संधि प्रतिरोत्स्यामि। (मूर्धानमान्दोलयित्वा विषादमभि–नयन् प्रकाशम्) अहह,

भ्रूभगेंषु पृथग्विधेषु बलिनो यस्यायतन्ते जगन्त्यासंसारमलङ्ध्यशासनगते राजन्म धीरात्मनः ब्रह्मरतम्बभटस्य मुक्तजनकद्रोहस्य मोहस्य ते तस्यासीदितरेण संधिवचनं कि कस्य व कथ्यते।[176]

नारदः – (स्वगतम्) कलहकौतुकिनामस्माकं तपांसि परिणमन्ति। ननु स्वात्मावधिरियां महामोहस्य शवमुष्टिवद गृहीतग्राहिता।

नारदः – (सान्तर्हसं स्वगतम्) किमसावुन्मत्तदशां प्राप्तः यदयं जरदग्गदिवाक्यवदपार्थ किमपि जल्पति; उपस्थितमहाविपत्तिरपि दुर्मतिमेव परस्कृत्य श्रंगारगर्ते निमज्जति।

राजाः – (स्वगतम्) हन्त कुलक्षयहेतुरयमिति कुलपति रक्षक मां कुटिलमतयः केचिदपवदितुमिच्छन्ति।

गतद्रविणदोहदं गलितमाननागौरवं
याशस्यनभिसंधिकं यमिनमव्यनुदगृहति
तिरस्करण कौतुक गृहगृहीत चिन्ते जने
गुण गृहणलालसो न खलु कच्दिालक्ष्यते।[177]

अलमलमनेन।

राजाः – (विचिन्त्य स्वगतम्) महाप्रभावैषा मम वन्दनीया।

यह तथ्य है कि आधुनिक लेखकों ने संस्कृत नाटकों में बहु–प्रचलित स्वगतोकि को हिन्दी नाट्कों के लिए अप्रसंगिक मानकर इसके परित्याग पर बल दिया है। प्रमाण स्वरूप डॉ0 दशरथ ओझा श्री देवेन्द्रनाथ शुक्ल और श्री रामचन्द्र

टण्डन के निम्न विचार हैं–

1. संस्कृत नाटकों की यह जनान्तिक शैली आज नितान्त असंगत मानी जाती है। सफल आधुनिक नाटककार इसका प्रयोग करना अनुचित समझता है।[181]

2. स्वगत–उक्ति नाटक की परम्परागत वस्तु अवश्य है परन्तु है अस्वाभाविक। अतएव उसे उड़ा देना ही अच्छा है।[178]

जहाँ एक वर्ग स्वगत भाषण के पूर्ण बहिस्कार का समर्थक हैं, वहाँ कुछ आलोचकों का अभिमत है कि इसका प्रयोग सब प्रकार से अव्यावहारिक नहीं हैं। जहाँ ये स्वोक्तियाँ कथावस्तु के पूर्व–सूत्रों की सूचना के लिये प्रयुक्त होती हैं, वहाँ ये ग्राह्य है किन्तु इस बात की चेष्टा सतत की जानी चाहिए, कि ये उक्तियाँ अति सांकेतिक रूप से प्रयुक्त हों। इनकी अधिकता से नाटकीय क्रिया व्यापार में शैथिल्य आने की सम्भावना रहती है।[179]

''स्वगत– कथन हिन्दी नाटकों की पैतृक सम्पत्ति रहने पर भी अब काम की चीज नहीं है। यह नितान्त अस्वाभाविक है कि कोई व्यक्ति अपने आप ही बोलता हुआ चला जाय। न उसके साथ आदमी हैं, न वह स्वयं आदिमियों के साथ है किन्तु वह जो मन में आता है, बोलता चला जाता है। ऐसी स्थिति में या तो हम उसे पागल कहेगें या शराबी या अफीमची।''[180]

''पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी स्वगत– कथन पर विचार हुआ है और अनेक नाट्य समीक्षकों ने रंगमंच पर अभिनेता के स्वकथन को कृत्रिम माना है।[181]

वास्तव में स्वगत भाषण नाटक का अनिवार्य तत्व है।

प्रतीकात्मकता

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिये किया जाता है जो किसी आदृश्य विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती हैं। ''रूपक कथा प्रतीकात्मक वर्णन को कहते हैं, जिसमें कहानी अथवा नाटक के पात्र वास्तविक मनुष्य न होकर अमूर्त मानवीय गुण होते हैं। जिनका मानवीयकरण कर दिया जाता है और इससे उसी तरह वार्तालाप, कार्य एवं व्यवहार कराया जाता है जैसे वे वास्तविक प्राणी हों।[182]

''जिस इतिवृतात्मक संदर्भ में प्रकृत कथा के भीतर कोई अप्रकृतकथा आभ्यन्तर जलवाली सरस्वती की भांति सतत प्रस्त्रवणशील हो, उसे रूपक कथा कहते हैं।[183]

एलेगरी शब्द ग्रीक शब्दावली से लिया गया है, तथा प्रधानतया इसका तात्पर्य रूपक के एक तारतम्य से है। शास्त्रीय कवियों ने इस आलंकारिक पद्धति को विशेष विकास की ओर प्रगति प्रदान की है। पहले यह शब्द 'मूल' रूप से संकुचित क्षेत्र में व्यवहृत हुआ था, किन्तु आधुनिक युग में कला रूपकों से युक्त चित्रों एवं चरित्रों में इसका विषय अधिक व्यापक हैं। रूपक कथा प्रस्तुतीकरण का एक ऐसा रूप है, जिसे पाठक स्वयं एक ऐसी कृति के पाने में विश्वास करता है, जिसमें थोड़ी बहुत व्याख्या की आवश्यकता रहती है। किन्तु ऐसी व्याख्या केवल उसी स्थान पर वास्तव में उपर्युक्त ठहराई जाती है, जहॉ पर उस कृति के रचयिता के मस्तिष्क में कोई गुप्त अर्थ रहता है। जैसे फाउस्ट के द्वितीय भाग में महा कवि गेटे एक अप्रस्तुत अर्थ मस्तिष्क में रखकर लेखनी चलाते हैं''[184]

ऐलगरी एक द्वयर्थक कहानी व आख्यान है जिसमें बाहरी कथा के भीतर और उसके साथ–साथ एक दूसरा सुसंगत अर्थ निष्पन्न होता जाता है। ऐसे दो अर्थों वाले आख्यान में पाठक की रूचि ऊपरी कथा एवं आभ्यान्तर गुढ़ार्थ दोंनों में समान भाव से बनी रहती है। प्रच्छन्न अर्थ भी, जो लेखक की मूल विवक्षा है ऊपरी कथा के विकास के साथ एक तारतम्यपूर्ण रीति से विकसित होता जाता है। ऐसी कहानी के पीछे और भीतर छिपा हुआ गूढ़ार्थ किसी नैतिक, सैद्धान्तिक अथवा धार्मिक प्रयोजन से बँधा होता है और उसी अभिष्ट उद्देश्य को प्रतिफलित करना लेखक अथवा नाटककार का साध्य होता है।

'गूढ़ार्थ–व्यंजक' रूपक पद्धति का प्रयोग लगभग प्रत्येक राष्ट्र के साहित्य में उपलब्ध होता है। प्रतीकात्मक पद्धति बहुत प्राचीन है और इतनी प्राचीन है कि जितना कि भावाभिव्यंजना का सर्वप्रथम प्रयोग, जो मानव ने किसी भी माध्यम से सर्वप्रथम किया होगा।

प्रतीकात्मक पद्धति में नाटककार की दृष्टि प्रस्तुत और अप्रस्तुत के व्यक्त क्षेत्र से हटकर अव्यक्त पक्ष की ओर भी संकेत करती है। जो वर्ण्य विषय ओत–प्रोत हैं, और उसका लक्ष्य भी है। स्थूल के भीतर सूक्ष्म, व्यक्त और दृश्य के भीतर अव्यक्त ओर अदृश्य व्यापार तत्व का अनुसन्धान मनुष्य का अत्यन्त प्राचीन काल से एक व्यापार रहा है। वस्तुतः यही कारण है कि निर्जीव और अमूर्त को सजीव और साकार चित्रित करने में भारतीय प्रतिभा ने संकोच नहीं किया।

''रूपककथात्मकता भाषा, धर्म, पुराण, कला, दर्शन और मानवता के प्रतिदिन

के जीवन और प्रकार के विचारों के सम्पर्क विकास के लिये साधारंण वस्तु है। भाषा वैज्ञानिकों और वैयाकरणों का कथन है कि मूलतः भाषा के शब्दों में वस्तुओं का आरोप होता है। पदों में पदार्थों का आरोप होता है। अतः भाषा भी प्रायः रूपकात्मक होती है। प्रतीकात्मक होती है''।[185] प्रतीक और रूपक विचारों और भावों के अभिव्यंजक होते हैं। साहित्य में भाषा का कलात्मक ढंग से संगठित रूप रूपक है, जो अनुकरणीयता के साथ प्रयुक्त होता है और साथ ही प्रत्यक्ष विचारों को व्यक्त करता है। नाटक साहित्य में रूपक कथा एक शैली के रूप में है, जो साहित्यिको को अत्यन्त प्रिय हैं। नाटकों में तो इस शैली के नाटकों की परम्पराएँ प्रत्येक भाषा के साहित्य में हैं, जिनमें यह शैली अपनाई हुई देखी जा सकती है यह शैली द्वयर्थक होती है जो एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर अभिप्रेत अर्थ देती है''।[186]

रूपक कथा में अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर, देवता अथवा किसी व्यक्ति का प्रतिनिधत्व उसकी प्रतिभा या अन्य कोई वस्तु करती है। अमूर्त, अदृश्य अश्रव्य और अप्रस्तुत विषय का प्रति–विधान 'मूर्त दृश्य' श्रव्य और प्रस्तुत विषय द्वारा प्रतीक करता है। यह रूपक कथात्मकता की प्रथम कसौटी है। रूपक कथा में अमूर्त को मूर्त किया जाता है और उसमें जीवन डाला जाता है।

प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है। भाषा का प्रारम्भिक रूप विविध मुद्राओं से युक्त और अनुकरण प्रधान था। पेगेट का कहना है कि ''मनुष्य की ध्वन्यात्मक मुद्राओं के प्रतीकों से शब्द, शब्दों के योग से व्याकरणयुक्त वाणी और उसके चित्रमय चिन्हों से पहले चित्रलिपि और अन्त में चित्र लिपि से वर्णलिपि का विकास हुआ है इस प्रकार सभी शब्द प्रतीक है। प्रतीकात्मकता रूपककथा की आत्मा है। प्रतीको के बिना रूपक कथा का निर्वाह असम्भव है। यथा प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में 'राजा विवेक' का प्रतीक है। 'मति' बुद्धि की प्रतीक है।

मतिः – आर्य पुत्र यातोऽसौ सहजानन्द सुन्दरस्वभावों नित्यप्रकाशः प्रस्फुरत्सकल त्रिभुवन प्रचारः परमेश्वरः श्रूयते। तत्कथमेतैर्दुविदग्धैर्वदध्वामहामोहसागरे निक्षिप्तः।[187]

अर्थात् आर्यपुत्र यह परमेश्वर आनन्द और प्रकाश स्वरूप त्रिभुवन व्यापी है। तो कैसे इन दुष्टों ने उन्हें बॉधकर महामोहसागर में डाल दिया। और भी ''आर्यपुत्र निश्चय ही जिस प्रकार सूर्य का तिरस्कार अन्धकार द्वारा सम्पन्न होता है, उसी प्रकार माया के द्वारा दीप्तमान महा प्रकाश के सागर परमेश्वर का भी अभिभव होता है।

अहंकारः –(सक्रोधम्) आः पाप, तुरूष्कदेशं प्राप्तः स्मः यत्र

श्रोत्रियानतिथीनासनपाद्यादिभिरपि गृहिणो नोपतिष्ठन्ति।[188]

दम्भ — सदनमुपगतोऽहं पूर्वमम्भोजयोनेः

सपदि मुनिभिरज्ज्ैरासनेषूजिझतेषु

सशपथमनुनीय ब्रह्मणा गोमयाम्भः

परिमृजितनिजोरावाशु संवेशितोऽस्मि।[189]

महामोहः —(विहस्य) अहो, निरकुंशा जडधियः।

आत्मास्ति देहव्यतिरिक्तमूर्तिर्भोक्ता स लोकान्तरितः फलानाम्

आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रथीयसः स्वादुफलप्रसूतौ।''[190]

अर्थात् शरीर से भिन्न स्वरूप आत्मा है, वह लोकान्तर में फल का भोग करता है, यह आशा, विशाल आकाश वृक्ष के पुष्प से मधुरफल की उत्पत्ति की आशा के समान है। यहाँ 'महामोह' 'मोह' का प्रतीक है।

क्रोध— क्रोध नामक मनोभाव का प्रतीक

श्रुतं मया यथा शान्तिश्रद्धाविष्णुभक्तयो महाराजेन प्रतिपक्षमाचरन्तीति। अहो, मयि जीवीत कथमासामात्मनि निरपेक्षितं चेष्टितम्। तथाहि—

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि

धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि

कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति

धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति।[191]

लोभः — अये, मदुपगृहीता मनोरथसरि त्परम्परामेव तावन्न तरिष्यन्ति किं पुनः शान्त्यादीश्रिचन्तयिष्यन्ति। पश्य पश्य सखे—

सन्त्येते मम दन्तिनो मदजलप्रम्लानगण्डस्थला

वातव्यायतपातिनश्च्च तुरगा भूयोऽपि लप्स्येऽपरान्

एतल्लब्धमिदं लभे पुनरिदं लब्धधिकं व्याप्तां

चिन्ताजर्जरचेतसां वत नृणां मा नाप शान्तेः कथा।[192]

'लोभ' नाटक का पात्र, 'लोभी' मनोवृति, का प्रतीक, 'मिथ्यादृष्टि', 'मिथ्या' का प्रतीक, 'शान्तिः' 'शान्ति' का प्रतीक, 'करूणा' करूणा नामक मनोभाव का प्रतीक हैं। 'कापालिक' 'सोमसिद्धान्त' का प्रतीक मनोवृत्तियों के कतिपय दृष्टान्त इस प्रकार है—

कापालिकः — (सक्रोधम्) आः पाप पाखण्डापसद,

मुण्डितमुण्डचूडाकेशलुंचक, अरे विप्रलम्भकः किल चतुदर्शभुवनोत्पत्ति

स्थिति प्रलय प्रवर्तको वेदान्तप्रसिद्धसिद्धान्तविभवों भगवान्भवानीपतिः दर्शयामस्तर्हि ध र्मस्यास्य महिमानम्?[197]

'मन' 'मन', नामक मानसिक मनोभावों का प्रतीक है। वैराग्य, उपनिषद आदि उपनिषद के प्रतीक हैं।

उपनिषद–

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासायस्यजगद्विभाति सहजानन्दोज्जवलं यन्महः
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तभपास्य यान्ति कृतिन प्रस्तौमि तं पूरूषम्

जिससे संसार उत्पन्न होता है तथा जिसमें स्थिर रहता है और फिर जिसमें लीन हो जाता है, जिसके प्रकाश से संसार प्रकाशित होता है और जिसका प्रकाश स्वाभाविक तथा उज्जवल आनन्दरूप है। शान्त, अविकारी, नित्य, भूतेश्वर तथा जिसकी शरण में विद्वान लोग द्वैत भाव को नष्ट करके जाते हैं, मैं उस पुरूष का प्रस्ताव करती हूँ।

संकल्प सूर्योदय– में काम, रति, विवेक राजा, सुमति श्रद्धा शिष्य, गुरू, क्रोध, वसन्त, लोभी, कुहना, दंभ, महामोह, दुर्भति, पुरूष संकल्प, व्यवसाय, आदि पात्रों के माध्यम से नाटक में प्रतीकात्मकता का प्रयोग किया गया है। निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा कतिपय दृष्टान्त इस प्रकार है–

क्रोध– सखे अनुकूलोहि विधिः किं नाम नानुकूलयति।[193]

वसंत – अहो निदाद्य पवन दवाग्री नामिव भवतां समागमः

किन्न सेत्स्यपति राज्ञो महामोहहस्य। मा भूदिविवेकतो भवत्थती नां रति जिघांसात नामांगल्य भूषण वैकल्यं परस्र माश्लिष्यंति।[194]

संस्कार–शिल्पी का प्रतीक है। संकल्प, भगवद्दास का प्रतीक, पुरूष– निःश्रेयस का अधिकारी के रूप में प्रतीक विष्णुभक्ति भगवद्दासी की प्रतीक शिष्य वाद का प्रतीक, गुरू सिद्धान्त का प्रतीक है। व्यवसाय, सेनापति, का प्रतीक हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार है–

व्यवसायः – (चित्रशालां दर्शयन्) आलोकयुत देवो देवी च । इह हि,

परिचयमहिमानं प्राप्य संजातभूमा
दिविषदनुविधेयो दिव्यसंस्कारशिल्पी

व्यलिखदनघरूपं विश्रवमेतघथाव

चिंरगतमपि दृश्यं चिन्तनाचित्रभित्तौ।''[195]

अभिनिवेशः – प्रिये, कामो जुगुप्सया, कोपस्तितिक्षया लोभीस्तुष्टया, अहंकार आत्मविद्यया। एवमन्येऽपि।[196]

दूतः– दूत को संवृतिसत्य का प्रतीक माना गया है। उसका कथन इस प्रकार है – अयमसौ चण्डालसदनवापिकायां चन्द्र इव प्रतिविम्बितः समीक्ष्यते देवर्षिविप्रलम्भचक्रवर्ती। अस्तु, असावपि साहायकमाचरिष्यति।[197]

पुरूषः – (सहर्षबहुमाम्) भद्रे परमयोगिबहुमतप्रभावे विष्णुभक्ते, परिव्यक्तस्वप्रयोजन्म संभवत्प्रत्युपकार मेवमुप कृत कदभयो भवदभयः परितोषानुगुणं कमपि वरं प्रयच्छामि–

विवेकोऽयं तत्वेष्ववितथविशेषगृहतनु

र्भवोदन्वद्दोषप्रतिगमनिकात्मा च सुमतिः

परप्रेमाकारा त्वमिति समवेतास्त्रय इमे

तमः पारे व्यक्तत्रिगुणमपि च त्यक्षयथ न माम्[198]

विष्णुभक्तिः – श्रूयातामिदं महाराजेन–

''निवृतमतिकश्मलो निभृतबुद्धयबुद्धीन्द्रियः

परप्रणिधि वैभवत्रुटित कर्मबन्धः कृती

विमुक्ति पथमदभुतं द्रुतमुपैति विद्वानिति

त्रिवर्गरसधस्मर स्त्रदशडिण्डिमस्ताऽयते।''[199]

संकल्प – भद्र, कथं नु भवते प्रदित्सितस्वाराज्याय सिद्धं न संवेद्यते।

अवताररहस्यतत्ववेदी विबुधग्रामटिकासु वीतरागः

अपुनर्भवनेंन निर्व्यपायं प्रतिगन्तासि पदं पदं त्रिधाम्नः।[200]

श्रद्धा –

भर्तः बालिशबुद्धिरहं किं वः प्रतिभणामि तथापि तरल स्वभावया मया भव्यतं। चिरगतमपि वृत्तान्तमिदानीमपि चिन्ताभिराकृष्य भर्त्री आत्मा विलष्यते।[201]

महामोहः – भगवन् अत्यदभुतामनोहरोऽयं भवत्स्वभावः। तथाहि–

''लास्यान्विला च ललिता च गतिस्त्वदीया

मंजुस्वना बहुगुणा च विभाति वीणा

देहश्रच दर्शयति चान्द्रमसीमभिख्यां

प्राप्तोऽसि नस्त्वमिह भोगसमृद्धि हेतुः।[202]

दुर्मति— भगवन्, इदं पाद्यम् एतदर्ध्यम् अयं मधुपर्कः।

तर्क— (रथं पाड़मुखयित्वा) देव, परमपुरूषप्रादुर्भावपवित्री— कृतक्षेत्रद्वयविपल्वे क्षेत्रान्तरेषु का प्रत्याशा तथापि स्वाभाविकसुदर्शनचिन्हभूषितशिलाकलापसूचित भगवदभिमान— विशेषः प्रागुत्तरः प्रेक्ष्येतां देशः— [203]

मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों एवं रूपकों से परिपूर्ण है। अमूर्त चिन्तन की अभिव्यंजना वह मूर्तरूप में करता है। बहुत से प्रतीक मिल कर रूपक कथा का निर्माण करते हैं। धार्मिक पौराणिक और वैदिक साहित्य में रूपकों का बहुत महत्व है। बिना रूपकों के मर्म को समझे हुए वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों और देवों को सम्यक रीति से समझा ही नहीं जा सकता । कौन किस वस्तु का रूपक है? कौन सी दैवी घटना किसी प्राकृतिक घटना का प्रतीक या रूपक है? इन सबको बिना समझे रूपक नाटकों कौ समक्षना नितान्त कठिन होगा।

प्रतीकात्मकता की उद्भावना के लिये किसी जांति की धर्मिक संस्कृति तथा परम्परागत विचार श्रंखला को भूला नहीं दिया जा सकता है, भारत में रूपक कथा बहुत कुछ धार्मिक एवं दार्शनिक आधारों पर पनपी है। ''धर्म प्रधान संस्कृति के कारण भारतीय मनीषा ने अगोचर वस्तुओं की स्थिति को भाव जगत में सरलता से स्वीकार किया है। जड़ में चेतन का आरोप और मानवीकरण भरतमुनि के लिये अत्यन्त सरल सा है।

'संकल्प—सूर्योदय' विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमूलक एक उत्कृष्ट प्रतीक नाटक है। जहाँ अमूर्त पदार्थो के द्वारा नाटक का व्यापार संचारित होता है।

मानवीयकरण—

''जिस क्रिया के द्वारा निर्जीव प्राकृतिक वस्तुओं (प्रकृति के छोटे से अंश से लेकर उसके अशेष रूप तक को) शक्तियों और रूपों, कृत्रिम पदार्थो अथवा अमूर्त विचारों एवं गुणों को एक सजीव चेतन तथा कार्यशील व्यक्तित्व के रूप में ठहराया जाता है, उसे मानवीयकरण कहते हैं।''[205]

''अमानव में मानव गुणों का आरोप करने की साधारण प्रवृत्ति या प्रक्रिया को मानवीयकरण कहा जाता है। संसार की सभी वस्तुएं सजीव हैं, जिसे आंग्ल भाषा में एनमिज्म (सर्व जीवन्तवाद) सभी वस्तुएँ मन के सहित हैं — जिसे आंग्ल भाषा में पैनसाइकिज्म तथा सभी वस्तुएँ राग—द्वेष आदि मानवगुणों से सम्पन्न हैं। जिसे आंग्ल भाषा में एन्थ्रपामामिज्म (सर्वमानववाद) कहते हैं।— इसी प्रवृत्ति के रूपान्तर

हैं और मानव के स्वभाव पर आधारित होने के कारण कला और इनके माध्यम से कई अलंकारों, गुणों और साहित्यिक रूपों का आविष्कार करते हैं"।[206]

गम्भीर भावपूर्ण दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन को आधार बना कर एक मनोरंजक नाट्क का निर्माण सरल नहीं है। फिर भी कृष्णमिश्र ऐसे प्रतिभावान व्यक्ति इस क्षेत्र में सफल हुए हैं। मानव और आत्मा के संघर्षो के सहज चित्र कथनोंपकथनों के स्वाभाविक विधान और दार्शनिकता के साथ रोचकता के कारण उत्सुकता की सतत विद्यमानता ने रूपक कथात्मक नाटकों को जीवन्त किया है। किसी भाव विशेष को गतिशील मनुष्य की तरह चित्रित करने के प्रयास में पूरी सफलता प्राप्त करना सहज नहीं है। यथार्थ चित्रण क्षमता एवं प्रौढ़ कवित्व शक्ति आदि वरदान के रूप में प्राप्त है तब तो लेखक निर्जीव भावचित्रों में उष्ण रक्त का संचार कर सकता है।

किसी भी कला में अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम स्वयं कलाकार है। उसके माध्यम से मूर्ति, चित्र, भवन आदि में अभिव्यक्त होने वाली कला, कलाकार की मानवता को भी अभिव्यक्त करती है, इसी से कलाकृति में मार्मिकता का आविर्भाव होता है। कला मानवीयक़रण के द्वारा प्रकृति को रूपान्तरित करती है। अंग्रेज, अमेरिकन और अन्य योरोपियन कवियों ने भी प्रकृति का मानवीयकरण कर उसे सचेतन रूप दे दिया।

प्रोफेसर वरदाचारी ने लिखा है कि– "प्रारम्भिक समय में आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे और उन शक्तियों को सजीव शारीरिक रूप देते थे"।[207]

कला की भांति धर्म भी धार्मिक भावनाओं के आधार के लिये प्रतीकों की सृष्टि करता है। मानवीयकरण इस प्रक्रिया का सार है। निराकार ब्रह्म केवल प्रतिभासम्पन्न ज्ञानियों और वैरागियों द्वारा ही अनुभूत हो सकता हैं, साधारण जनता के लिये तो आराधना के हेतु ऐसे देवता आपेक्षित हैं, जो रूपवान हों, जो भावों से भरे हों, सहृदय और सजीव हों। यही कारण है कि ब्रह्मा के कई अंशों का मानवीयकरण विविध रूपों वाले देवों के रूपों में हो गया। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह और वामन आदि अवतार इसी प्रक्रिया के परिणाम है। हिन्दू पैन्थन में ई0 मूर ने लिखा है कि ब्रह्मा कि तीन शक्तियों –उत्पादक, पालक और संहारक– ब्रह्मा, विष्णु और महेश के त्रिदेव में मानवीयकृत हुई है।"[215]

डॉ0 मैक्डानल के अनुसार– "मानवीयकरण की क्रमिक योजना जिसमें प्राकृतिक शक्तितयाँ देवों के रूप में विकसति हुई, ऋृग्वेद में पर्याप्त रूप से प्राप्त

होती है। ऋग्वेद के उच्च देव पूर्णतः ''प्राकृतिक शक्तियों के मानवीयकरण हैं। जैसे सूर्य, ऊषा, अग्नि और मरूत''[209] साथ ही ऋग्वेद में विचारों का विकास एक ऐसी परम्परा को भी प्रदर्शित करता है, जो मूर्त से अमूर्त और स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती है। इसका परिणाम ऋग्वेद के अमूर्त देव हैं। उदाहरणार्थ– श्रद्धा, मनु आदि देवता। अथर्ववेद में काम (इच्छा का विशद मानवीकरण और विवेचन है।यथा 'प्रबोध–चन्द्राय' एवं 'संकल्प सूर्योदय' में निम्न पात्रों का मानवीकरण किया गया है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय'– नाटक में विवेक, वस्तुविचार, सन्तोष, वैराग्य, महामोह, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, अहंकार, मन, तृष्णा, हिंसा, मिथ्यादृष्टि, विभ्रमावती, शान्ति, करूणा, वैराग्य श्रद्धा, मैत्री, क्षमा, सन्तोष, विष्णुभक्ति, उपनिषद आदि पात्रों का मानवीय करण किया गया है। यथा कतिपय दृष्टान्त–

मतिः – आर्यपुत्र, नूनमन्धकारलेखया सहस्त्ररश्मेरिस्त रस्कारों यथा तथा मायया स्फुरन्महाप्रकाशसागरस्य देवस्याप्यभिथवः।[218]

अहंकार – (स्वगतम्) अये, दम्भग्राह्योऽयं देशा।

(प्रकाशम्) भवतु। अस्मिन्नसने अविशानि।[219]

महामोह– (विहस्य) अहो, निरकुशां जडधियः।

आत्मास्ति देहव्यतिरिक्तमूर्तिभोक्ता स

लोकान्तरितः फलानाम्

आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रथीयसः

स्वादुफलप्रसूतौ [220]

क्रोधः – अन्धीकरोमि भुवनं बीधरीकरोमि

धीमानधीतमीप न प्रति संदघाति।[221]

लोभः – प्रिये श्रुयताम्–

क्षेत्रग्रामवनाद्रिप्तनपुर द्वीपक्षमामण्डल

प्रत्याशायतसूत्रबद्धमनसां लब्धाधिकं ध्यायताम्

तृष्णे देवि यदि प्रसीदसि तनोष्यगांनि तुगांनि चे–

तदभौः प्राणभृतां कुतः शमकथा ब्रह्माण्डलक्षैरपि।[222]

तृष्णा– आयु पुत्र, स्वयमेव तावदहमस्मिन्नथे नित्यमभियुक्ता। सांप्रतमार्यपुत्रस्याज्ञया ब्रह्माण्डकोटयोऽपि न में उदरं पूरयिष्यन्ति।[223]

हिंसा– एषास्मि। आज्ञातयत्वर्यपुत्रः।[224]

मिथ्यादृष्टि— सखि, किं मामलोक सौभाग्यां संभाव्य विडम्बयसि।[225]

शान्ति — सखि, किन्नु प्रतिकूले विघातरि न संभाव्यते। तथाहि—

श्रीदेवी जनकात्मजा दशमुखस्यासीदगृहे रक्षसों
दैत्येन्द्रोऽपजहार हन्त विषमा वामा विघेर्वृन्तयः[226]

करूणा— (सत्रासम्) सखि राक्षसों राक्षसः[227]

श्रद्धा— आज्ञापयतु राजकुलम्[228]

मैत्री— श्रुतंमया मुदितायाः सकाशाद्यथा महाभैरवी— सड़गृसनसंभ्रमादभगवत्या परित्राता प्रियसखी श्रद्वेति। तदुत्कण्ठितेन हृदयेन प्रियसखी श्रद्धां कदा प्रेक्षिष्ये।[229]

क्षमा— "क्रोधन्धकारविकटभृकुटीतरगं
भीमस्य सान्ध्यकिरणारूण रौद्रदृष्टेः
निष्कम्पनिर्मलगभीर पयोधिधीरा
वीराः परस्य परिवादगिरः सहन्ते।"[218]

सन्तोष— (आकाशे) अरे मूर्ख, लुब्ध दुरूच्छेदः, खल्वयं भवतो व्यामोहः तथाहि—

"समारम्भा भग्नाः कति कति न वारांस्तत्रपशो
पिपासोस्तुच्छेऽस्मिन्द्रविणमृगतृष्णार्णवजले
तथापि प्रत्याशा विरमति न ते मूढ़ शतधा
विदीर्ण यच्चेतो नियतमशनिग्रावधष्टितम्।[219]

विष्णुभक्ति— अथ तत्र किं वृतम्[220]

उपनिषद— सखि न दृष्टा·त्वया में तादृशी दशा। येनैंव ब्रवीषि।[221]

वैराग्य — (विचिन्त्य)

"अस्त्राक्षीत्रवनीलनीरजदलोपपान्तातिसूक्ष्मायत
त्वड.यात्रान्तरितामिषं यदि वपुर्नतत्प्रजानां पतिः।
प्रत्यगृक्षरदस्त्रविस्त्रपिशितगृासगृहं गृहनतो
गृध्रध्वाडंक्षवृकास्तनौ निपततः को वा कथं वारयेत्।"[222]

मन— यदाज्ञापयति देवि [223]

संकल्प— राजन समाश्रवसिहि समाश्रवसिहि[224]

मानवीय करण रूपक कथा का एक आधार है, क्योंकि रूपक कथा में निर्जीव और अमूर्तभाव सजीव मानव की भॉति चित्रित किये जाते हैं। मानववत उनसे अनुभव व्यापार

कराये जाते हैं। रूपककथा में मानवीय करण के साथ अन्तर में छिपी हुई एक अप्रस्तुत भावना व विचार— जो बहुत कुछ दर्शन और धर्म के विचारों के संस्थापक व व्यंजक के लिये होता है। मानवीकरण में अमूर्त और निर्जीव पदार्थ सजीव मानवपात्र होकर आये हैं और उनके काव्य व्यापार अर्थात इतिवृत्त के पीछे एक अप्रस्तुत इतिवृत्त अपने विशेष उद्‌देश्य के साथ हैं, अमूर्त और निर्जीव भावों गुणों विचारों एवं पदार्थों का मानवीकरण अत्यन्त आपेक्षित वस्तु है। कृष्णमिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय एवं वेदान्त देशिक के 'संकल्प—सूर्योदय' में मानवीयकरण पात्र हैं, और जो स्वाभाविक एवं प्रतीकात्मक भी हैं, इनके पीछे कोई विशेष वस्तु और उद्‌देश्य भी हैं।

अध्ययन की दृष्टि से मानवीयकरण

1. निर्जीव प्राकृतिक पंचमहाभूत— वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, अग्नि
2. प्राकृतिक शक्तियॉ और दृश्य— जैसे आकाश गंगा, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत, झंझा, मेघगर्जना।
3. प्राकृतिक जड, मूर्त वस्तुएँकाल के व्यावहारिक आधार; नदी, पर्वत, निर्झर, वन, दिन, रात्रि, प्रातः।
4. मानवनिर्मित वस्तुएँ— राज्य, प्रान्त, नगर, कोट, भवन, मन्दिर, कुंज, स्तवक; यन्त्र, शस्त्र आदि
5. अमूर्त विचार और भावनायें— जैसे इच्छा, शक्ति, ज्ञान, अज्ञान, मोह, उदारता, वुद्धि, न्याय, अधर्म, स्वास्थ्य, श्रद्धा, घृति, स्वतन्त्रता आदि इन सभी के मानवीयकरणों का ध र्म से घनिष्ट सम्बन्ध है।

यथा 'संकल्प—सूर्योदय' में मानवीय— करण के पात्र विवेक, तर्क, संसार, व्यवसाय, अभिनिवेश, दुर्वासना, दूत, विष्णु—भक्ति, संकल्प, श्रद्धा, शिष्य, गुरू, दुर्मति, वसन्तः क्रोध, कुहना, लोभ, दंभ आदि पात्रों के द्वारा मानवीय करण का प्रयोग किया गया है—

वसंत— भवतु नामैवं। भवतः समीचीन समीहित सिद्धिः। विरक्ति कपटक्रमादजिनकोटिभिर्दर्द मेयुर प्रविधिक दर्मेयतितुमेकता— नः प्रमानत्वदस्त्रगणाताऽनत्रुटितगर्व निर्वेदवानभव प्रभृति सेवितं भजति भोगवर्ग पुनः।[225]

क्रोध — सखे अनुकूलोहिविधिः किं नाम नानुकूलयति। अपिच विजेतु कामः कामंत्वानि कामइति का कथा त्वन्निवर्न्तननिः कामः सकामरत्त्वरस्थनुझिते।[226]

लोभ— अथिकं। अनुगृहयदं खल्वहंभवतां।[227]

दंभ— अपि महाश्रोत्रिय धर्मयन्निमहांनुभावा नामप्य स्मदंतेवासिनां। अत्यंतरहस्यमिदमावेदयाभि। सखीभ्यस्तहलादिभ्योनैतदुयानखलु सेनादिवदि–शेषतो विहितोपमभिचारः।[228]

कुहना— एवणाममहय्यहावाणां तुह्माणां विवेअभि आरोकि सेणोद्दजोविको. विजत्थ अहं सङ्घ म्मआरिणी होपि[229]

विवेक— (सकौतुकम दृष्टा) एवं गिरिवरं सूतमन्ये विश्वमनोहरम्

आगामिस्वर्गसृष्टीनामादिकन्दमिव स्थितम्[230]

तर्क — अये, तिष्ठ तिष्ठ। यावदयमनगं विजयिनो भवानी पतेरावासः कलघौतगिरिखलोक्यते।[231]

संस्कार— अहं खल्वनुभावमनुष्यायणः संस्कारनामा देवस्य विवेकस्य शिक्षित सर्वविधा कलापाः शिल्पी देवशिल्पिनं विश्वकर्माणमसुरशिल्पिनं मयं च विजित्य विश्रमाभिलाषी चिरमस्वाप्सम्।[232]

व्यवसाय — इतस्तहि शुद्धसृष्टिमये भगवतो विभूतिभागे देवेन देव्या च दत्तदृष्टिभ्यां भवितव्यम्। अत्र च परव्यूहान्तरपदविभक्तेषु बहुषु

त्रिघाम्नों रूपेषु स्थितिमनधिगम्यापि मनसः अवैज़ात्यं वृन्दारकनरतिर श्रवामभिनय व्यमुष्मिन्दृष्टिस्ते भवतु विभवव्यक्रिनिवहे।[233]

अभिनिवेश — प्रिये, कामो जुगुप्सया कोपस्तिविक्षया,

लोभस्तुष्टया, अहंकार आत्मविद्यया। एवमन्येऽपि। [234]

दुर्वासना — किमुत्साहमात्रेण कार्य संघटते हताशाः खल्वेताः शलभ्य इवात्मविनाशने स्वयं प्रवृताः।[236]

महामोह— देवि, दीयतास्मै देवर्षये पाद्यमर्ध्य मधुपर्कश्र–[248]

दूत— स्वयमहमपसर्पामि। (इति तिरस्करिणीमास्थाय स्वगतम्) विदितवृत्तान्तशेषः प्रतिगमिष्यामि।[249]

विष्णुभक्ति — (आलम्बनविशेषाधीनमात्मनो वैभवं निर्वर्ण्य)

अहं वैकुण्ठदास्यैकलास्यलीलाविनोदिनी

विश्वकिल्विषसंहार विभ्रमारभटीनटी।[237]

संकल्प — (सत्वरधीरोदारगतिरूपसृत्य सहस्तावलम्बमुत्था पयति)[238]

श्रद्धा— भर्तः, अज्ञातपरमार्था स्त्रयपि किमपि विज्ञापर्याप।

प्रहर्षयोम्येऽपि समये किं पुनरात्मा अवमन्यते।

नन्वत्यासन्ना खलु युष्माकं मोक्षसिद्धिः [239]

दुर्भति— आर्यपुत्र, एवं में राजकार्य प्रतिभामि– संधिव्य–पदेशेनास्मत्सकाशमासाधवां विवेकः।

तत् जीवग्राहं गृहीत्वा दृढ पीडनीयो भवते।[240]

मानवीय करण रूपक यथा के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। मानवीयकरण का अन्तिम विकसित सूक्ष्म रूप ही रूपक कथात्मक कृतियों की आधार शिला है। अमूर्त गुणों को मनुष्यों के समान जीवन, भाव, और शरीर देकर ही रूपक कथात्मक चरित्रों का निर्माण किया कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक नें। इनके नाटकों में सजीवता मानवीयकरणों की सफलता का अनुगमन् करती है। अमूर्त मानवीय गुणों की प्रस्तुत और अप्रस्तुत उभयपक्षीय व्यष्टि एवं समष्टिगत संकेतता उपयुक्त मानवीकरण से ही सिद्ध हो सकती हैं।

'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' में गुणों का मानवीयकरण करते समय उनकी मनोवैज्ञानिक भूमिका का सूक्ष्म ध्यान सतत रहा है। जिससे पात्र तदनुकूल रूपरेखा, वेशभूषा, कार्यव्यापार और वार्तालाप करते हैं।

आत्म साक्षात्कार

भारतीय दर्शन में अद्वैत दर्शन सर्वोपरि महत्व का है इसके प्रतिष्ठापक शंकराचार्य हैं, उनके अनुसार तात्विक पदार्थ निर्गुण कूटस्थ नित्य सच्चिदानन्द ब्रह्म है जीवन और ब्रह्म एक ही है अविद्या के कारण जीव और ब्रह्म में भेद दिखाई पड़ता है ये दृश्यमान जगत मिथ्या है सांख्य की भाँति अद्वैत वेदान्त भी जीवन मुक्ति की सम्भावना को स्वीकार करता है, अद्वैत के अनुसार ब्रह्म या आत्मा ही तात्विक पदार्थ है वो ब्रह्म आत्मा के प्रमाण का विषय नहीं है और न ही ज्ञान का विषय है वो साक्षात्कार का भी विषय है आत्मा सत, चित और आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म की तीन सत्ताए है पमार्थिक या तात्विक, प्रातिभाषिक या सुक्ति में रजत की सत्ता वाली, आत्माश्रयी या आत्मविषयक। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के स्चनाकार 'शंकर' के वेदान्त दर्शन के आधार पर आत्म साक्षात्कार की मान्यता को लेकर चलते हैं। स्वयं अन्तःकरण को साक्षी मानते हैं तथा शब्द के प्रमाण पर बल देते हैं वहीं दूसरी ओर वे 'वैष्णव दर्शन' के आधार पर भगवान विष्णु की आराधना को 'अद्वैत दर्शन' से समन्वित करते हैं, सन्यासं और वैराग्य भावनाओं पर आधारित विष्णु भक्ति के साक्षात्कार पर बल देते हैं विष्णु के ध्यान उपासना उनकी शरणागति और भक्ति को आत्म साक्षात्कार का आधार मानते हैं इस प्रकार बल्लभदर्शन ओर 'अद्वैत दर्शन' और दोनों के मिले जुले सिद्धान्तों के अनुसार आत्मा की सत्ता आत्म साक्षात्कार के स्वरूप का निरूपण करते हैं। विष्णु भक्ति की सर्वव्यापी अवधारणा ही मोक्षदायनी है। भक्ति से पृथक मुक्ति का कोई महत्व नहीं देते 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के रचनाकार ने आत्म साक्षात्कार का जो प्रत्यय व्यक्त किया है वो

निम्नलिखित अवतरणों से स्पष्ट रूप से पहचाना जाता है—

1. तदभावय भावानामनित्यताम्। नित्यमनित्यवस्तु दर्शनों न पश्यति शोकावेगम्। यतः—

एकमेव सदा ब्रह्म सत्यमन्यद्विकल्पितम्

को मोहस्तत्र कः शोक एमत्वमनुपश्यतः।[241]

अर्थात सदा एक ब्रह्म ही सत्य है और सभी कल्पित अतः अनित्य है तो फिर जिसे ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान हो गया है उसके लिए मोह एवं शोक का विषय नहीं रह जाता।

उष्यन्ते विषवल्लिबीजविषमाः क्लेशाः प्रियाख्या नरैः

स्तेभ्यः स्नेहमया भवन्ति नचिराद्वज्राग्निगभकिंरो

येभ्योऽमी शतशः कुकूलहुत भुग्दाहं दहन्तः शनै

देहं दीप्तशिखासहस्त्रशिखरा रोहन्ति शोकाद्रुमाः।[242]

मनुष्य विषलता के समान भयंकर दुखदायी प्रियसंज्ञक बीज बोते है उनसे शीघ्र ही प्रेमरूपी विद्युत अग्नि के समान सन्तापदायक अंकुर निकल आते हैं जिन स्नेह अकुरों से देह को भूसी की अग्नि के समान जलाने वाले ज्वलायुक्त सहस्त्र शिखर वाले शोकरूपी वृक्ष पैदा होते हैं।

क्वचिदुपकृतिः कर्तामीभिः कृता क्रियतेऽथवा

तव न च भवन्त्येते पुंसां सुखाय परिगृहाः

दधति विरहे मर्मच्छेदं तदर्थमपार्थकं

तदपि विपुलायासाः सदिन्त्यहौ वत जन्तकः।[243]

मन — लालितानां स्वजातानां हृदि संचरतां चिरम्

पाणामिव विच्छेदो कर्मच्छेदादरूंतुदः।[244]

सरस्वती का कथन पंचमोअंक में घर के पालतू मुर्गे को विलाड़ के द्वारा खा जाने पर जो दुख होता है वह ममतारहित चटकपक्षी या चूहे के खाये जाने पर नहीं होता।

वशं प्राप्ते मृत्योः पितरि तनये व सुह्यदि वा

शुचा संतप्यन्ते भृशमुदरताडं जडधियः

असारे संसारे विरसपरिणामे तु विदुषा

वियोगो वैराग्यं दृढयति वितवंशमसुखम्।[245]

अपिच

श्रियो दोलालोला विषयजरसाः प्रान्तविरसा

विपदगेहं देहंमहदपि धनं भूरि निधनम्

वृहच्छोको लोकः सततमवलानर्थबहुला

तथाप्यस्मिन्घोरे पथि वत रता नात्मनिरताः

लक्ष्मी दोला के समान चंचल है, सांसारिक सुख परिणाम में कस्टदायी है, देह विपत्ति का घर तथा धन मृत्यु है, लोक अति शोकाकुल है, स्त्रियॉ अनर्थ की जडें है फिर भी लोग इस घोर संसार में ही लगे रहते हैं आत्मा में नही रमते हैं।

वैराग्यम्– तात कोऽत्र शोकावेशः। यतः–

पान्थानामिव वर्त्मनि क्षितिरूहां नद्यामिव

मेघानामिव पुष्करे जलनिधौ सांयात्रिकाणामिव।

सयोगः पितृमातृबन्धुतनयभार्तपियाणां यदा

सिद्धो दूरवियोग एव विदुषां शोकोदयः कस्तदा।

मनः – (सानन्दम)

"निरन्तराभ्यासदृढीकृतस्य

सस्नेहसूत्रगृथितस्य जन्तोः

जानासि किंचिदभगवत्युपायं

ममत्वपाशस्य यतो विमोक्षः।

सरस्वती – पदार्थों की अनित्यता का विचार ही ममतोच्छेद का प्रथम उपाय है।

न कति पितरो दाराः पुत्राः पितृव्यपितामहा

महति वितते संसारेऽस्मिन गतास्तव कोटयः

तदिह सुह्रदां विद्युत्पातोज्जवलान क्षणसंगमान्

सपदि ह्रदये मलिनं शोकोर्मियिः क्रियते।

भगवति तव मुखशश धगलितै र्विमलोपदेश पीयूषैः

क्षालितमपि में ह्रदये भूयो–भूयो निवेश्य सुखी भव।[164]

सरस्वती – अकाण्डपातजातानामार्द्रीणां मर्मभेदिनाम्

गाढशोक प्रहाराणामचिन्तैव महौषधम्

"नित्यं स्वमरंजलदनील मुदाहार

केयूरकुण्डलकिरीटघरं हरिं वा

गृष्मि सुशीतमिव वा ह्रदमस्तशोकं

ब्रह्म प्रविश्य भज निर्वृतिमात्मनीनाम्।"

"त्वच्सगांच्छाश्वतोऽपि प्रभवलयजरोप्लुतो बुद्धिवृत्ति

ष्वेको नानेव देवो रविरिव जलधेर्वीचिषु व्यस्त मूर्तिः

तूष्णीमालम्बसे चेत्कथमपि वितता वत्स संहृत्य वृत्ती

भीत्यादर्शे प्रसन्ने रविरिव सहजानन्दसान्द्रस्तदात्मा।"[246]

शाश्वत तथा अद्वितीय होकर भी आत्मा तुम्हारे संसर्ग से जन्म–मृत्यु, जरा का भाजन तथा अन्तःकरण की वृत्तियों में नानात्व रूप से दीख पडता है जैसे समुद्र की तरंगों में सूर्य अनेक रूप में दिखाई देता है। यदि तुम अपनी वृत्तियों को समेट कर शान्त हो जाते हो तो आत्मा स्वाभाविक आनन्द रूप में प्रकाशित होने लगेगा जैसे निर्मल दर्पण में सूर्य प्रकाशित होता है।

वेदान्त देशिक की आत्म साक्षात्कार विषयक अवधारणा का आधार, 'विशिष्टाद्वैत वेदान्त' है। आचार्य रामानुज आत्म साक्षात्कार को बोधायन वृत्ति पर आधारित मानते हैं प्रकारन्तर से वे भागवत धर्म की परम्परा को अग्रसर करते हैं। तमिल के आलवार सन्तों की वाणी श्री वैष्णव सम्प्रदाय से पर्याप्त मेल खाती है।[247]

आचार्य रामानुज के अनुसार ज्ञान द्रव्य है और दृव्य दो प्रकार के होते हे। जड़ और 'अजड़' ज्ञान एक अखण्ड़ अदृव्य है,अजड़ दृव्य जो दूसरों के लिये हों, जिनमें अपने स्वरूप की चेतना का अभाव हो जिनमें अपने स्वरूप की चेतना का अभाव हो पारक कहलाते हैं। ज्ञान ऐसा ही अजड़ पराक दृव्य है। अजड उस दृव्य को कहते हैं जो स्वयं प्रकाश है, स्वयं प्रकाशता दृव्य में अपने को बिना किसी अन्य का आश्रय लिये अपनी सत्ता मात्र से प्रकाशित करने की क्षमता का नाम है।[248]

आत्मा और ज्ञान के बीच का सम्बन्ध वैसा ही है जैसे दीपक अथवा प्रकाश का, मणि अथवा मणिप्रभा का। ज्ञान प्रकाश और आत्मा दीप है। स्वयंप्रकाश असंकुचित ज्ञान ईश्वर और आत्मा का स्वरूप है। सार्वभूत ज्ञान नित्त एवं अविकारी है ईश्वर चिद चिद विशिष्ट है। चित् जीवात्मा का नाम है और अचित प्रकृति का। रामानुज ने आगम गृन्थो पुराणों और तमिल प्रबन्धों में वर्णित ईश्वर के स्वरूपों को भी उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म में स्थापित करने का प्रयास किया है। फलस्वरूप वे निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं मानते। वेदान्त देशिक भी इसी मान्यता को लेकर चलते हैं तथा प्रार्थना द्वारा ईश्वर सानिध्य को मुक्त जीव की संज्ञा देते हैं। और मुक्त जीव को भगवान के साथ तदाकार करा देते हैं। इस प्रकार

शुद्ध तत्व से निर्मित साधक को दिव्य स्वरूप प्राप्त हो जाता है और नित्य जीव भगवान के साथ उनके दिव्य वैकुण्ठ लोक में उनके परिवार बनकर निवास करते हैं। ऐसे जीव संसार में कभी नहीं आते यही आत्म साक्षात्कार की स्थिति है। वेदान्त देशिक ने आत्म साक्षात्कार की स्थिति में जन्म, मुत्यु चक्र को बन्धन और उसकी आत्यन्तिक समाप्त को मोक्ष का रूप प्रदान किया है। जन्म, मुत्यु, मैं, मेरा, तेरा अज्ञान के कारण ही है। तत्वज्ञानी या तत्वाभ्यासी जीवात्मा अपने स्वरूप को प्राप्त कर इस भवचक्र से सर्वदा के लिये मुक्ति प्राप्त कर लेता है इस प्रकार आत्मा स्वरूप का बोध ही आत्म साक्षात्कार है। वेदान्त देशिक के आत्म स्वरूप का परिचय निम्न लिखित अवतरणों से स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है।

अ— विमुक्तिपथदेशिकैर्वितथवृत्ति वैदेशिकै
र्विमृष्टशुकशौनक प्रभृति भाषितैरूज्झितम्
भिषज्यति भवं प्रभॉ पितरि शेषिणि श्रीपता
वपथ्यविनिवर्तकं किमपि भद्रमभ्यर्थये।।[249]

ब— जननविलयवृत्या जाड.धिकस्यास्य जन्तोः
समयमक्मृशन यस्तिष्ठन्ति श्रीसहायः
प्रभुरयमनुकम्पानिध्रनिर्विध्रलीलः
प्रजनयतु समाधिं स्वात्मनैव स्वलक्षम्।[250]

स— आधेयत्वप्रभृति नियमैरादिकर्तुः शरीरं
सन्तास्थेमप्रयतन फलेष्वेतदायत्तमेतत्
विश्वं पश्यन्निति भगवति व्यापकादर्शदृष्टे
गम्भीराणामकृत कगिरां गाहते चिन्तवृन्तिम्।[251]

द— स्वमाथाशैलूषी विहरणपरिभ्रान्ततनुभृ
व्परित्राणोद्योगप्रवणकरूणावेशविवशः
प्रतिक्षेप्तुं तापान् प्रभूरयमपर्यन्त महिमा
हिमानीमानीय स्वपदनतिमेनः प्रणुदति[252]

य— अंगान्यस्य मुहुर्मुहुः पुलकितान्यन्तर्मुखं मानसं
चिन्ता च द्रुतशर्कराप्रतिनिधिः शीताश्रृणी लोधने
मायासारथिगीतयोपनिषदा दृष्टक्रमं द्रागसौ
मन्ये याति मनोरथेन पुरूषो वैकुण्ठघण्टापथम्[253]

र— विवेकोऽयं तत्वेष्ववितथविशेषगृहतनु

र्भवोदन्वद्घोष प्रतिगम निकात्मा च सुमतिः

परप्रेमाकारा त्वमिति समवेतास्त्रम इमे

तमः पारे व्यक्तत्रिगुणमपि च त्यक्षयथ न माम्[254]

—संदर्भ—

1. प्रबोध चन्दोदयम नाटकम्, श्रीकृष्ण मिश्र, सं0आचार्य देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, श्लोक—4, पृष्ठ 13।
2. तदुपरिवत्, प्रथम अंक, श्लोक—21, पृष्ठ 24।
3. तदुपरिवत्, तृतीय अंक, श्लोक—1, पृष्ठ 85।
4. तदुपरिवत्, द्वितीय अंक, श्लोक—28, पृष्ठ 71।
5. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, टीकाकार कष्णमाचार्य, अड्यार पुस्तकालय, अंक—6, श्लोक—9, पृष्ठं—539।
6. तदुपरिवत्, अंक—7, श्लोक—27, पृष्ठ 634।
7. तदुपरिवत्, अंक—7, श्लोक—36, पृष्ठ 641।
8. तदुपरिवत्, अंक—10, श्लोक—50, पृष्ठ 839।

9,10,11,. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 श्री रामचन्द्र, अंक—6, श्लोक—10, पृष्ठ 118।

12. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक—8, श्लोक—68,पृष्ठ 726
13. तदुपरिवत्, अंक—8, श्लोक—69, पृष्ठ 726।
14. तदुपरिवत्, अंक—8, श्लोक—70, पृष्ठ 726।
15. प्राकृत भाषाएँ और भारतीय संस्कृति में उनका अवदान', एस0एम0कत्रे, अनु0 डा0 रमाशंकर जैतली, पृष्ठ—1।
16. 'काव्यालंकार', टीकाकार नाभिसाधु, पृष्ठ—30।
17. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 45।
18. संस्कृत नाटक, डा0 उदयभान सिंह पृष्ठ 80।
19. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक—1, पृष्ठ 15।
20. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक—10, पृष्ठ 832।
21. तदुपरिवत्, अंक—9, पृष्ठ 776।
22. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक—1, पृष्ठ 32।
23. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक—10, पृष्ठ 833।
24. प्रबोध—चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक—1, पृष्ठ 31।
25. तदुपरिवत्, अंक—3, पृष्ठ 100।
26. काव्य मीमांसा, आचार्य राजशेखर, पृष्ठ —

27. शारिपुत्र प्रकरण, अश्वघोषकृत, पृष्ठ–
28. साहित्यं दर्पण, विश्वनाथ, पृष्ठ–
29. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 669।
30. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 777।
31. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–3, पृष्ठ 91।
32. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 96।
33. प्राकृत भाषाएँ और भारतीय संस्कृति में उनका अवदान', एस0एम0कत्रे, अनु0 डा0 रमाशंकर जैतली, पृष्ठ–23।
34. प्रसाद–नाटय और रंगशिल्प, डॉ0 गोविन्द चातक, पृष्ठ 237।
35. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 46।
36. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 46।
37. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 48।
38. सरस्वती, मार्च 1931, पृष्ठ 368।
39. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–3, पृष्ठ 85।
40. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 698।
41. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 699।
42. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–7, पृष्ठ 627।
43. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–6, पृष्ठ 198।
44. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 183।
45. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 740।
46. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 683।
47. संकल्प सूर्योदय, हस्तलिखित प्रति, चन्द्रदास शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठ 12।
48. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 74।
49. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 75।
50. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 75।
51. तदुपरिवत्, अंक–1, पृष्ठ 7।
52. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 133।
53. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–7, श्लोक29, पृष्ठ 635।

54. तदुपरिवत्, अंक–7, श्लोक 30, पृष्ठ 635।

55. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–5, पृष्ठ 158।

56. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, टीका रामचन्द्र मिश्र, अंक–1, पृष्ठ 14।

57. तदुपरिवत्, अंक–1, पृष्ठ 17।

58. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, पृष्ठ 1।

59. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 146।

60. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, टीका रामचन्द्र मिश्र, अंक–1, पृष्ठ 11।

61. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 71।

62. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 181।

63. संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृष्ठ 251 से 253।

64. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–6, पृष्ठ 213।

65. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 107।

66. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, पृष्ठ 561।

67. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 583।

68. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 585।

69. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 599।

70. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 612।

71. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 632।

72. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 729।

73. काव्य प्रकाश, मम्मट, टीका विश्वेश्रर, अष्ठम उल्लास, श्लोक 68, पृष्ठ 388।

74. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–4, श्लोक 5, पृष्ठ 122।

75. काव्य प्रकाश, मम्मट, टीका विश्वेश्रर, अष्ठम उल्लास, श्लोक 70, पृष्ठ 390।

76. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, श्लोक,76 पृष्ठ 76।

77. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, श्लोक 26, पृष्ठ 31।

78. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–7, श्लोक 35, पृष्ठ 640।

79. नाट्यशास्त्र, अभिनव भारती, श्लोक 154, पृ0 ।

80. नाटककार मोहन राकेश, संवाद शिल्प, मदनलाल, पृ0 29।

81. शब्दकल्पद्रुमः, पंचमोभाग, पृष्ठ 202।

82. ड्रेमेटिक टैकनीक, जी0पी0 वेकर, पृष्ठ 407।

83. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, पृष्ठ 23।

84. तदुपरिवत्, अंक–1, पृष्ठ 23।

85. तदुपरिवत्, अंक–1, पृष्ठ 23।

86. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 670।

87. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 670।

88. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 65।

89. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–9, पृष्ठ 776–777।

90. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, श्लोक 27, पृष्ठ 68–69।

91. तदुपरिवत्, अंक–2, श्लोक 28, पृष्ठ 71।

92. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–10, श्लोक 30, पृष्ठ 820।

93. तदुपरिवत्, अंक–10, श्लोक 31, पृष्ठ 820।

94. तदुपरिवत्, अंक–10, श्लोक 32, पृष्ठ 823।

95. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–3, श्लोक 17, पृष्ठ 107।

96. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 195।

97. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, पृष्ठ 542।

98. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 878।

99. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–5, पृष्ठ 174–175।

100. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 734।

101. दशरूपक, धनंजय, प्रथम प्रकाश, कारिका 64, पृष्ठ 103।

102. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 48।

103. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 106।

104. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–7, पृष्ठ 624–625।

105. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–6, श्लोक 14, पृष्ठ 168।

106. तदुपरिवत्, अंक–6, श्लोक 15, पृष्ठ 168।

107. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–9, श्लोक 13, पृष्ठ 775।

108. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, श्लोक 30, पृष्ठ 35–36।

109. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–9, पृष्ठ 776।

110.प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–6, श्लोक 16, पृष्ठ 205।

111.तदुपरिवत्, अंक–6, श्लोक 17, पृष्ठ 206।

112. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 207।

113. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 197।

114. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 170।

115. तदुपरिवत्, अंक–3, श्लोक 13, पृष्ठ 102–103।

116. संस्कृत साहित्य में रूपक कथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 108।

117.संकल्प सूर्योदय, हस्तलिखित प्रति, चन्द्रदास शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठ 9।

118. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–10, श्लोक 61, पृष्ठ 850।

119. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 624।

120. कामायनी प्रेरणा और परिपाक, डा0 रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ 167।

121.नाटक कार मोहन राकेश संवाद शिल्प, मदनलाल, पृष्ठ 82।

122. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, पृष्ठ 15।

123. तदुपरिवत्, अंक–1, पृष्ठ 17।

124. तदुपरिवत्, अंक–1,श्लोक 25, पृष्ठ 29।

125. तदुपरिवत्, अंक–2, श्लोक 10, पृष्ठ 49।

126. तदुपरिवत्, अंक–2, श्लोक 11, पृष्ठ 50।

127. तदुपरिवत्, अंक–2, श्लोक 20, पृष्ठ 59।

128. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 68।

129. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 71।

130. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 72।

131. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 73।

132. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 74–75।

133. तदुपरिवत्, अंक–3, श्लोक 4, पृष्ठ 88–89।

134. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 126।

135. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 134।

136. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 150–151।

137. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 167।

138. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 172।

139. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 174।

140. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 177–178।

141. संकल्प सूर्योदय, हस्तलिखित प्रति, चन्द्रदास शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठ 5।

142. तदुपरिवत्, पृष्ठ 12।

143. तदुपरिवत्, पृष्ठ 16।

144. तदुपरिवत्, पृष्ठ 32।

145. तदुपरिवत्, पृष्ठ 33।

146. तदुपरिवत्, पृष्ठ 34।

147. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, पृष्ठ 541।

148. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 675।

149. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 675।

150. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 678।

151. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 705।

152. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 705।

153. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 833।

154. चन्द्रकला, भानु कुमार, निवेदन, पृष्ठ 6।

155. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, पृष्ठ 10।

156. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, श्लोक 4, पृष्ठ 532।

157. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–4, पृष्ठ 145।

158. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 145।

159. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 743।

160. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 71।

161. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 75–76।

162. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 684।

163. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 689।

164. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–3, पृष्ठ 85।

165. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–8, पृष्ठ 681।

166. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, डा0 वीरेन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 310–311।

167. नाटक संग्रह, भूमिका भाग, पृष्ठ 121।

168. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–2, पृष्ठ 48।

169. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 65–66।

170. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 106।

171. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 118।

172. अशोक तथा अन्य एकांकी, भूमिका, पृष्ठ 13–14।

173. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, पृष्ठ 541।

174. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 624।

175. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 677।

176. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 681।

177. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 869।

178. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा0 दशरथ ओझा, पृष्ठ 365।

179. साहित्य समालोचक, शिशिर वसंत, सम्वत् 1982–1983, पृष्ठ 5।

180. साहित्य समालोचना, पृष्ठ 142–143।

181. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृष्ठ ।

182. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–1, पृष्ठ 7।

183. हिन्दी साहित्य कोष्ठ, डा0 धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 670।

184. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिजीजन एण्ड इथिक्स, भाग 1, पृष्ठ 327।

185. सिम्बलिज्म ए साइकोलाजिकल स्टडी, डा0 पद्मा अग्रवाल, भूमिका, पृष्ठ 9।

186. संस्कृत साहित्य में रूपककथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 10।

187. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, पृष्ठ 28–29।

188. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 45।

189. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 49।

190. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 72।

191. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 102।

192. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 203।

193. संकल्प सूर्योदय, हस्तलिखित प्रति, चन्द्रदास शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठ 20।

194. तदुपरिवत्, पृष्ठ 32।

195. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–7, पृष्ठ 613।

196. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 669।

197. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 678।

198. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 871।

199. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 867–68।

200. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 851।

201. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 833।

202. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 675–76।

203. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 561।

204. संस्कृत साहित्य में रूपककथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 12।

205. नाट्य शास्त्र, गा0ओ0सी0 भाग 1/17, 18, भाग 1, 1926 पृष्ठ 42।

206. संस्कृत साहित्य में रूपककथात्मक नाटक एक अध्ययन, डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, पृष्ठ 25।

207. एपिक्स माइथ्स एण्ड लीजेण्डस आफ इण्डिया में उद्धत, पृष्ठ 20–21।

208. ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ 67–69

209. तदुपरिवत्, पृष्ठ 100–101।

210. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–1, पृष्ठ 29।

211. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 48।

212. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 56।

213. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 74।

214. तदुपरिवत्, अंक–2, पृष्ठ 75।

215. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 88।

216. तदुपरिवत्, अंक–3, पृष्ठ 96।

217. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 117।
218. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 132–33।
219. तदुपरिवत्, अंक–4, पृष्ठ 137।
220. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 154।
221. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 195।
222. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 177।
223. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 185।
224. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 167।
225. संकल्प सूर्योदय, हस्तलिखित प्रति, चन्द्रदास शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठ 29।
226. तदुपरिवत्, पृष्ठ 30।
227. तदुपरिवत्, पृष्ठ 32।
228. तदुपरिवत्, पृष्ठ 34।
229. तदुपरिवत्, पृष्ठ 34।
230. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–6, पृष्ठ 553।
231. तदुपरिवत्, अंक–6, पृष्ठ 442।
232. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 608।
233. तदुपरिवत्, अंक–7, पृष्ठ 619।
234. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 669।
235. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 669।
236. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 685।
237. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 795।
238. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 817।
239. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 832।
240. तदुपरिवत्, अंक–8, पृष्ठ 682।
241. प्रबोध चन्द्रोदय, श्रीकृष्णमिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक–5, पृष्ठ 169।
242. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 170।
243. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 171–173।
244. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 176।

245. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 178–179।

246. तदुपरिवत्, अंक–5, पृष्ठ 180–182।

247. भारतीय दर्शन, नन्दकिशोर, देवराज, पृष्ठ 553।

248. श्रीभाष्य, भाग 1, पृष्ठ 1/1/1।

249. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णमाचार्य, अंक–9, पृष्ठ 770।

250. तदुपरिवत्, अंक–9, पृष्ठ 771।

251. तदुपरिवत्, अंक–9, पृष्ठ 774।

252. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 820।

253. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 828।

254. तदुपरिवत्, अंक–10, पृष्ठ 871।

सप्तम परिवर्त्त

प्रेक्षागृह एवं रंगमंच

- ❖ प्रेक्षागृह प्रकार
- ❖ रंगमंच
- ❖ पूर्व रंग
- ❖ भरतमुनि के विचार
- ❖ प्रबोध चन्द्रोदय के सूत्रधार का नाट्यशाला में प्रवेश
- ❖ अभिनय तथा उसके प्रकार
- ❖ आंगिक अभिनय
- ❖ वाचिक अभिनय
- ❖ कथोपकथन
- ❖ आहार्य अभिनय
- ❖ सात्विक अभिनय
- ❖ अभिनय की दृष्टि से 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्यादय' की तुलनात्मक समीक्षा।

सप्तम अध्याय

प्रेक्षागृह प्रकार – भारतीय मनीषियों के प्रतिभा सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ ही साथ ततद व्यवहार के विवरण देने में भी समर्थ रही है। नाट्य की उत्पत्ति जिस प्रकार भारतीय नाट्याचार्यों की सैद्धान्तिक प्रतिभा का विलास है, उसी प्रकार प्रेक्षागृह की रचना उनकी व्यवहारिक प्रतिभा का निदर्शन है। भारत में समग्र साधनों से परिपूर्ण रंगमंच का उदय उतना ही प्राचीन है, जितना अभिनय का उदय। प्रेक्षागृह या रंगशाला अपने जीवन के आरम्भ में भारतीय नाट्य का अभिनय ठेठ आसमान के नीचे खुले मैदान में होता था, जिसके देखने में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था, परन्तु विघ्नों के उदय ने नाट्याचार्यो को बाध्य किया कि वे नाट्य प्रयोगों को खुले मैदानों से हटाकर बन्द स्थानों में ले जॉय। भरत के कथनानुसार प्रथम अभिनीत नाटक 'महेन्द्र विजय' था, जिसमें देवताओं की विजय तथा दानवों की पराजय दिखलायी गयी थी। पराजय के दृश्यों से दैत्यों के हृदय में प्रतिहिंसा की भावना जगाने में समर्थ हुए। फलतः नाटक के अभिनय समाप्त होने से पहिले ही दैत्यों ने वहाँ विघ्न उपस्थित कर दिया। अतः इस कलह तथा विघ्न से नाटक प्रयोग को सदा के लिए बचाने के हेतु ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वकर्मा ने प्रेक्षागृह का निर्माण किया।

भरत मुनि के कथनानुसार प्राचीन भारत के प्रेक्षागृह के नाट्यमण्डप तीन प्रकार के होते थे। इन तीनों का परिमाण तथा उपयोग भिन्न–भिन्न हुआ करता था। ये प्रेक्षागृह तीन प्रकार के हैं– विकृष्ट, चतुरस्त्र तथा त्रयस्त्र। इनमें से विकृष्ट आयताकार नाट्य गृह है, चतुरस्त्र वर्गाकार तथा त्रयस्त त्रिभुजाकार। विकृष्ट नाट्यगृह को कुछ लोगों ने मण्डलाकार माना है।[1] नाट्यशास्त्र में उल्लिखित नाप के कारण यह ठीक नहीं प्रतीत होता। तीन प्रकार के नाट्यगृहों के ज्येष्ठ, मध्य तथा अवर ये तीन प्रमाण बताए गए हैं, तथा नाम के लिए हस्त तथा दण्ड के प्रयोग की बात कही गई है। हस्त का प्रमाण 24 अंगुल तथा दण्ड का प्रमाण 4 हाथ बताया गया हैं। ज्येष्ठ नाट्यगृह का प्रमाण 108 हाथ, मध्यम का 14 हाथ तथा अवर का 32 हाथ बताया गया है। ज्येष्ठ नाट्य गृह देवताओं के लिए, मध्यम राजाओं के लिए तथा अवर सामान्य जनता के लिए बताया गया है। इनमें से मध्यम प्रेक्षागृह की प्रशंसा करते हुए नाट्यशास्त्र कहता है–[2]

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रकृष्ट मध्यमम् स्मृतम्।
तत्रं पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत्।।[3]

अर्थात् कथोपकथन तथा गायन सरलता से सुना जा सकने के कारण मध्यम नाट्य

गृह सर्वश्रेष्ठ होता है। मनुष्यों के लिए उपर्युक्त नाट्यगृह का वर्णन करते हुए नाट्यशास्त्र कहता है कि–

चतुःषष्टिकरान् कुर्यात दीर्घत्वेन तु मण्डपम्।
द्वात्रिंशतं च विस्तारात् मर्त्यानां योजयेदहि।।

अर्थात् जो नाट्यगृह मनुष्यों के लिए हों, उसे 64 हाथ लम्बा तथा 32 हाथ चौड़ा बनाना चाहिए। नाट्यशास्त्र इससे बड़ा नाट्यगृह बनाने को मना करता है। नाट्य गृह सम्बन्धी विकृष्ट, चतुरस्त्र तथा त्र्यस्त्र यही क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम तथा अवर नाट्य गृह हैं अथवा इन तीनों में से प्रत्येक की ज्येष्ठ, मध्यम तथा अवर ये तीन प्रकार होते हैं। अतः इस विषय में अभिनव गुप्त का मत है कि नाट्य गृह के ज्येष्ठ, मध्यम तथा अवर ये तीन भेद आयात, वर्ग तथा त्रिकोणादि आकारों के कारण न होकर उनके परिमाण अर्थात् नाप के कारण होते हैं। अस्तु विकृष्टादि प्रत्येक नाट्यगृह के ज्येष्ठ, मध्यम तथ अवर भेद माने जाने चाहिए। इस प्रकार नाट्यगृह के प्रकार हो जाते है और इनकी नाप हाथों और दण्डों द्वारा दो प्रकार से कही गई है। अतः नाट्यगृह के 9 प्रकार हाथों की नाप से तथा 9 प्रकार दण्डों की नाप से हो सकते हैं। इस प्रकर कुल मिलाकर 18 प्रकार के नाट्यगृह हो सकते हैं।[4]

नाम		नाप	उपयोग
1.	विकृष्ट ज्येष्ठ	908 X 64 हाथ	देवताओं के लिए
2.	विकृष्ट मध्यम	64 X 32 हाथ	राजाओं के लिए
3.	विकृष्ट अवर	12 X 16 हाथ	लोक के लिये
4.	चतुरस्त्र ज्येष्ठ	108 X 108 हाथ	देवताओं के लिए
5.	चतुरस्त्र मध्यम	64 X 64 हाथ	राजाओं के लिए
6.	चतुरस्त्र अवर	32 X 32 हाथ	लोक के लिए
7.	त्र्यस्त्र ज्येंष्ठ	108 X हाथ की भुजा वाला समित्रबाहु त्रिभुजाकार	देवताओं के लिए
8.	त्र्यस्त्र मध्यम	64 हाथ की भुजा वाला त्रिभुजाकर	राजाओं के लिए
9.	त्र्यस्त्र अवर	32 हाथ की भुजा वाला समित्रबाहु त्रिभुजाकार	लोक के लिए

1. विकृष्ट नायगृह -नाट्यशास्त्र विकृष्ट नाटयगृह की निर्माण विधि इस प्रकार बताते हैं-- चतुःषष्टिकरान कृत्वा द्विधा कुर्यात पुनश्च तान/पृष्ठतो यो भवेद भागो द्विघा भूतस्य तस्य तु सममर्ध विभागेन रंगशीर्ष प्रकव्पयेत पश्चिमे तु पुनर्भाग नेपथ्यगृहमादिशेत।।

अर्थात् 64X32 हाथ भूमि नापकर, 64 लम्बाई को दो भागो में विभक्त कराना चाहिए। इस प्रकार 32X32 हाथ के दो भाग बन जावेगें। इनमें से अगले अर्धभाग को प्रेक्षकों के बैठने के लिए सुरक्षित रखना चाहिये। पिछले अर्धभाग को पुनः दो भागों में विभक्त करके 16X32 हाथ के दो खण्ड कर लेना चाहिए। इन दोनों में से सबसे पिछले भाग में नेपथ्यगृह बनाना चाहिए तथा शेष बचे भाग में रंगशीर्ष।

इसके आगे नाट्यशास्त्र स्तम्भों द्वारों तथा भित्तियों आदि की निर्माण विधि का वास्तु–विधान के अनुसार वर्णन करता है। इसके पश्चात् मत्तवारणी का विधान अधोलिखित रूप में मिलता है–

रंगपीठस्य पार्श्वे तु कर्तव्या मत्तवारणी
चतुः स्तम्भसमायुक्ता रंगपीठप्रमाणतः
अध्यर्घहस्तोत्सेघेन कर्तव्यामत्तवारणी
उत्सेंघेन तयोस्तुल्यं कर्तव्यं रंगमण्डपम्।।

अर्थात् रंगपीठ के पार्श्व में मत्तवारी बनाई जानी चाहिये। मत्तवरणी चार स्तम्भों से युक्त और नाप में रंगपीठ के बराबर तथा डेढ़ हाथ ऊँची होनी चाहिए। उन दोनों के बराबर ऊँचा ही रंगमण्डप होना चाहिए।[5] नाट्यमण्डप पर्वत कन्दरा के आकार वाला तथा दो खण्डों, द्विभूमियों वाला होना चाहिए। ध्वनि को गम्भीर बनाने की दृष्टि से इसमें छोटी–छोटी खिड़कियाँ बनाई जानी चहिए तथा वायु–का प्रवेश न होने देना चाहिए। शिल्पियों को नाट्य मण्डप शून्य में नहीं बनाना चाहिए, जिससे कि पात्रों, गायको तथा वाद्यों का स्वर गम्भीरता को प्राप्त कर सके।

नाट्यशास्त्र में नाट्यगृह की दीवालों पर भित्तिलेप तथा सुधाकर्म करने की भी बात कही गई हैं, जो क्रमशः प्लास्टरिंग तथा पुताई प्रतीत होती है। इन पुती हुई दीवालों के ऊपर विभिन्न प्रकार के चित्र आदि बनाने का भी वर्णन यहाँ प्रतीत होता है। इन सब बातों का वर्णन विकृष्ट नामक नाट्यगृह के निर्माण के प्रसंग में किया गया हैं।

चतुरस्त्र नाट्यगृह-

तीनों रंगशालाओं में चतुरस्त्र या मध्यम प्रेक्षागृह आदर्श समझा जाता था। इसके वैशिष्ट्य के वर्णन के अवसर पर भरत मुनि की वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक पटुता का उज्जवल दृष्टान्त प्राप्त होता है। आदर्श प्रेक्षागृह के चुनाव के अवसर पर तीन बातों पर विशेष दृष्टि रखी जाती थी। दर्शकों को रंगपीठ पर होने वाले वार्तालाप (पाठय) तथा गायन (गेय) का श्रवण खूब अच्छी तरह होना चाहिए। नाट्य प्रयोगों में गीतियों का उपयोग दर्शकों के मनोरंजन के निमित्त ही किया जाता है। यदि श्रोताओं के कानों के लिए गायन अस्फुट ही बना रहे तथा पात्रों की परस्पर बातचीत स्पष्ट रूप से श्रुतिगोचर नहीं हुई तो वे उस अभिनय का आनन्द नहीं उठा सकते, रंगमंच के विशाल होने में एक महती हाँनि है। अभिनयों में सत्विक अभिनय का महत्वपूर्ण स्थान है। भिन्न–भिन्न अवस्था में भिन्न–भिन्न रसों के अभिनय प्रसंग के पात्रों के मुखमण्डल पर अभिनीत भाव अपना प्रभाव डालता है। इसका साक्षात्कार मध्यम परिणाम वाले अभिनीत भाव प्रेक्षागृहों में ही उचित रीति से हो सकता है।[10] भरत मुनि के शब्दों में–

"यश्चाप्यास्यगतो भावो नानादृष्टि–समन्वितः
स वेश्मनः प्रकृष्टत्वाद व्रजेदव्यक्तता पराम्।।
यस्मात पाठयं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यतें।।"[11]

वर्गाकार नाट्यगृह का वर्णन नाट्यशास्त्र में इस प्रकार किया गया है – चतुरस्त्र नाट्यगृह में चारो ओर बत्तीस–बत्तीस हाथ के प्रमाण वाला बनाना चाहिए तथा जो विधि लक्षण मांगलिक कृत्य आदि विकृष्ट में प्रयुक्त होते हैं, उन सबको यहाँ भी प्रयोग किया जाना चाहिए। चतुरस्त्र नाट्यगृह के निर्माण प्रसंग में ईटों से सीढ़ियों के आकार वाले एक हाथ ऊँचे पीठों (दर्शकों के बैठने का स्थान) के बनाने का भी उल्लेख हुआ है। इसके साथ ही यहाँ रंगपीठ में 10 नाट्यमण्डप के भीतरी भाग में 6 तथा बाहरी भाग में 8 इस प्रकार कुल 24 स्तम्भों की स्थापना का भी विधान हुआ है। ईटों की दीवार एक हाथ ऊँचे पीठों तथा स्तम्भों आदि का विकृष्ट अथवा त्र्यस्त्र नाटयगृह के प्रसंग में न होकर केवल यही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का विधान विकृष्ट तथा त्र्यस्त्र के भी विषय में रहा होगा। स्तम्भ विधान के विषय में शंकुक आदि आचार्यो का भी यही मत है कि इसे विकृष्ट तथा व्यस्त्र नाट्यगृहों से भी सम्बन्धित समझना चहिये, इसकी योजना अपनी बुद्धि के अनुसार कर

लेना चहिए।[12] जमीन को ठीक समतल तथा चौरस बनाने के लिए उसे हल से जोत कर ठीक करते थे। चारों कोनो पर चार प्रधान खम्भे लगाये जाते थे। दक्षिण पूर्व से आरम्भ कर इन स्तम्भों का नामकरण चारों वर्णो के नाम पर, श्वेत स्तम्भ के सामने ब्रह्मणों के बैठने का स्थान होता है, लाल स्तम्भ क्षत्रियों के लिये होता है, पश्चिमोत्तर भाग में पीले स्तम्भ के पास वैश्यों के बैठने का स्थान रहता है, उत्तर–पूर्व में शूद्रों के लिए नीला स्तम्भ होता है। चतुरस्त्र नाट्यगृह के नेपथ्यगृह से रंगपीठ में प्रवेश करने के लिए एक ही द्वार का विधान किया गया है, जो विकृष्ट–वर्णन के अनुसार नही है। इसके अतिरिक्त एक द्वार बाहर से नेपथ्यगृह में प्रवेश के लिये तथा दूसरा रंग–पीठ के सामने प्रेक्षकों के प्रवेश के लिए कहा गया है। रंगपीठ इसी की ऊँचाई का अथवा इससे कुछ ही ऊँचा हो सकता है। आयताकार नाट्यगृह में वह ऊँचा तथा वर्गाकार में सामान ऊँचाई वाला होना चाहिए।

त्र्यस्त्र नाट्यगृह- त्र्यस्त्र नाट्यगृह का वर्णन करते हुए नाट्यशास्त्र कहता है कि इसकी योजना त्रिभुजाकार में की जानी चाहिये। इसके मध्यकोण (शीर्षकोण) में रंगपीठ बनाया जाना चाहिये। इसके एक कोण पर प्रेक्षकों के प्रवेश के लिये दूसरा एक द्वार रंगपीठ के पीछे बनाया जाना चाहिये। भित्तियों तथा स्तम्भों का जो विधान चतुरस्त्र के प्रयोग में बताया गया है, वह यहाँ भी होना चाहिए।

नाट्यगृह एवं उसके भाग- नाट्यशास्त्र में नाट्यगृह तथा उसके भागों के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है, उदाहरणार्थ– नाट्यगृह, नाट्यवेश्म, नाट्यमण्डप, प्रेक्षागृह रंगशाला, रंगमण्डप, रंगभूमि, रंगशीर्ष, रंगपीठ नेपथ्यगृह तथा मत्तवारणी आदि शब्द यहाँ प्रयुक्त किये गये हैं।

नाट्यगृह, नाट्यवेश्म और नाट्यमण्डप इन शब्दों का प्रयोग अंगीरूप अर्थात् सम्पूर्ण नाट्यगृह के लिए हुआ है। इसी भाँति रंगशाला, रंगमण्डप तथा प्रेक्षागृह का प्रयोग दर्शकों के बैठने के स्थान के लिए किया गया प्रतीत होता है। रंगभूमि सम्भवता मंच के लिए प्रयुक्त हुआ है।

रंग मंच :-

भारतीय रंगमच का जैसा विस्तृत और सांगोंपांग विवेचन 'भरत' ने किया है, वैसा न तो भरत के पूर्ववर्ती किसी आचार्य ने किया और न भरत के बाद ही उत्तम पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। यद्यपि रंगशाला विषयक साहित्य हमें अधिगत नहीं होता किन्तु अनेक ऐसे विवरण अवश्य प्राप्त होते हैं जिनके बल पर कहा जा सकता है, कि पौराणिक काल में भी इसी प्रकार

रंगमण्डप अवश्य रहे होंगे। जिन पर न केवल नृत्यगीत इत्यादि का आयोजन किया जाता होगा, अपितु छोटे–छोटे नाटकों का भी अभिनय होता होगा। यद्यपि रंगशाला का विस्तृत विवेचन भरत ने ही किया है, तथापि कुछ स्फुट संकेत अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं। नाट्य मण्डप का वर्णन कतिपय पुराणों में भी आता है और कतिपय अन्य स्थापत्यकला विषयक ग्रन्थों में भी कुछ प्रकाश डाला गया है। अग्नि–पुराण के 'नगर निर्माण प्रकरण' में कहा गया है कि– वेश्याओं, नर्तकियों, नटों के लिए भवन निर्माण नगर से दक्षिण दिशा में होने चाहिए। इसी प्रकार कुछ संकेत मत्स्यपुराण, हरवंशपुराण, विष्णु–धर्मोत्तर पुराण में भी पाये जाते हैं। जैन धर्म के राजप्रेसनीय सूत्र में नाट्यमण्डप के तोरण, स्तम्भ, चित्र रचना, भित्तिलेप इत्यादि का भी विवरण दिया गया हैं।[14]

भारतीय रंगमंच में अपनी एक सुश्लिष्टता है जिसके कारण उसका प्रभाव बृहत्तर भारत (जाबा, शुमात्रा आदि द्वीपों) के रंगमंच पर कभी पड़ा था, वह प्रभाव उसी रूप में आज भी देखा जा सकता है। रंगशाला के दो मुख्य भाग होते थे जिसमें आधा भाग प्रेक्षकों के लिए निश्चिय होता था तथा दूसरा आधा भाग रंगमंच के निमित्त सुरक्षित रहता था रंगमंच के सबसे पहले भाग का नाम था 'रंगशीर्ष', जो 8 हाथ लम्बा तथा 4 हाथ चौड़ा होता था और नेपथ्यगृह कहलाता था। रंगशीर्ष में अभिनय के रक्षक देवी–देवताओं की विशिष्ट पूजा होती थी तथा नेपथ्य गृह तो स्पष्टता पात्रों की वेशभूषा को सजाने तथा परिवर्तन के निमित्त पृथक प्रयोग में आता था। नाटय शास्त्र के द्वितीय अध्याय में अभिनव ने इस प्रकार व्याख्या की है–

"चतुःषष्टिहस्तं दैर्घ्यात विस्ताराच्च द्वात्रिंरात्करं क्षेत्र गृहीत्वा मध्ये सूत्रं विस्तरेण ददयात। तत्र यत प्रयोक्तुः पृष्ठगं भविष्यति तदेव पृष्ठम्। तस्य मध्ये विस्तारेण सूत्र दघात्।

ततः षोडशहस्तौ द्वौ भागौ भवतः तत्राग्रगतं भागमर्घेन विभव्य रंगपीठं मुख्यं ततोऽष्टहस्तं रंगशिरः। प्रविशतां पात्राणां चान्तःस्थानम्। नाट्मण्डपस्य ह्युतान सुप्तवदव स्थितस्य रंगपीठ मुख्यम्। तदष्टहस्तं शिरः। तत्पृष्ठे तु दैर्ध्याद्वि षोडशहस्तं नेपथ्यगृहं भवति। विस्तारात्त द्वात्रिंशत्करमेव तत।[15]"

अर्थात् 64x32 हाथ के क्षेत्र को बीच से आधा करके 32X32 हाथ के दो भाग कर लें। इन भागों में से जिधर पात्रों की पीठ रहती है, उधर वाले भाग के 16X32 हाथ के पुनः दो विभाग करें। इन दोनों विभागों में से आगे वाले विभाग के पुनः 8X 32 हाथ के दो अनुभाग कर लें। इनमें से सबसे आगे वाले 8 X 32 हाथ के अनुभाग में रंगपीठ तथा पीछे वाले 8 X 32 हाथ के अनुभाग में रंगशीर्ष बनावें। यह रंगशीर्ष नेपथ्य से रंगपीठ पर आने वाले पात्रों

के लिए एक बीच का स्थान होता है, तथा यह ऊत्तान सोए हुए मनुष्य के समान नाट्यगृह के सिर की भांति होता है। इसके पीछे 16 X 32 हाथ वाले विभाग में नेपथ्यगृह बनता है। "इस प्रकार मंच का अगला भाग रंगपीठ कहा गया है। जहाँ पात्र गण अभिनय करते हैं तथा पिछला भाग रंगशीर्ष है, जहाँ वादकगण वाद्यों के साथ बैठते हैं तथा जो पात्रों के विश्राम तथा रंगपीठ की शोभा के लिए बनाया जाता है। अभिनव गुप्त के अनुसार रंगशीर्ष से एक प्रयोजन और सिद्ध होता है कि मच पर प्रवेश करने वाले पात्र सहसा प्रेक्षकों की दृष्टि से बचे रहते हैं। प्रो0 मनकण आदि विद्वानों ने भी रंगपीठ तथा रंगशीर्ष को अलग ही माना है परन्तु कुछ लोग ऐसा न मानकर रंगपीठ तथा रंगशीर्ष को एक ही मानते हैं। इनको एक मानने वालो में से नाट्यशास्त्र के सम्पादक तथा अंग्रेजी अनुवादक श्री मनमोहन घोष हैं।[16]

रंग शीर्ष से नेपथ्य गृह में आने के लिए दो दरवाजे बनाये जाते थे। नेपथ्य गृह से आगे होता था रंगपीठ, जिस पर पात्रों के द्वारा समग्र अभिनय दिखलाया जाता था। रंगपीठ से होकर नेपथ्य–गृह में जाने के लिए एक दरवाजा होता था और इसी का उपयोग पात्र अपने प्रवेश तथा निर्गम के लिए किया करते थे। रंगपीठ के दोनों बगल में डेढ़ हाथ ऊँची मत्तवारणी बनायी जाती थी। "रंगशीर्ष के बनावट का जो विधान पाया जात है उसके अनुसार इसे न तो कूर्मपृष्ठ (कुछये की पीठ की तरह) की तरह होना चाहिए और न मत्स्य पृष्ठ की तरह) की तरह होना चाहिए, बल्कि दर्पण के समान समतल तथा चिक्कण होना चाहिए। भरत मुनि के अनुसार –

कूर्मपृष्ठं न कर्तव्यं मत्स्यपृष्ठं तथैव च।
शुद्धदर्शतलाकारं रंगशीर्ष प्रशस्यते।।[17]

नाट्यमण्डप पर्वत की गुफा के आकार का होना चाहिए। उसमें दो खण्ड (द्विभूमि) होते हैं–

कार्यशैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः।
मन्दवतायनोपेतो निर्वातो धीरशब्दवान।।[18]

ऊपरी खण्ड में देवताओं से सम्बद्ध घटनाऐं प्रदर्शित की जाती थीं तथा निचले खण्ड में मानवी घटनाओं का अभिनय किया जाता था। नाट्यमण्डप की दीवालों को नाना प्रकार के चित्रों से सजाया जाता था, जो सामयिक तथा विषय से सम्बद्ध होने से नितान्त उपयुक्त थी। रंगमंच की रचना विवाद (विशेष हवादार) स्थान में नहीं होनी चाहिए, अन्यथा, आवाज गम्भीर न होगी और न शब्दों की श्रुति ही ठीक–ठीक श्रोताओं को हो सकेगी।

"दर्शकों के बैठने के स्थानों की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की जाती थी। दर्शकों के निवेशन,

अर्थात् बैठने के स्थान सोपानाकृति (सीढ़ीनुमा गैलरी) होते थे। जमीन से सीढ़ियाँ एक हाथ ऊँची रखी जाती थीं तथा इनका निर्माण लकड़ी तथा ईट की सहायता से किया जाता था। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि बैठने के ये समग्र स्थान रंगपीठ से देखने योग्य होते थे।

"यूनानी रंगशला से भारतीय रंगशाला की तुलना करने पर इसकी सर्वांगीणता तथा वैज्ञानिकता का पता लग सकता है। प्राचीन यूनान की रंगशाला एक साधारण सी वस्तु होती थी। अत्यन्त प्राचीन काल में रंगपीठ के लिए एक ऊँचा स्थान होता था जिस पर वाद्यमण्डली तथा एक दो पात्र बैठते थे। दर्शकों के लिए कोई व्यवस्था नहीं होती थी। अभिनय प्रायः पहाड़ के बगल में नीची जमीन पर होता था जहाँ दर्शक अपने बैठने के लिए ऊँचा-नीचा स्थान खोज लिया करते थे। बहुत पीछे गैलरी बनी। रोमन काल में ही रंगपीठ के पीछे नेपथ्य-गृह के लिए भी विशिष्ट मकान बनाया गया तथा पूरे रंगमंच के लिए सुव्यवस्थित प्रकार की योजना सम्पन्न हुई। भारतवर्ष में प्रेक्षागृह का निर्माण नाट्यकला के प्रभातकाल में ही सम्पन्न हुआ और वह भी एक बार ही सर्वांगीण सुव्यवस्थित रूप में। आधुनिक रंगशाला इस प्रचीन प्रेक्षागृह का ही विकसित रूप है। जिसमें पश्चिमी नाट्यकला से छोटी-मोटी चीजें नवीन परिस्थिति के अनुसार यत्र-तत्र निविष्ट कर ली गई हैं।[19] रंगपीठ में घृणा या उद्वेग के जनक दृश्यों का प्रदर्शन सर्वथा वर्जित था। आजकल जिन दृश्यो का प्रदर्शन उचित माना जाता है। उनमें से अनेक प्राचीन काल में वर्ज्य थे, जैसे रंगपीठ पर शुद्ध प्रदर्शन, भोजन, शयन आदि तथापि आवश्यकतानुसार घोड़े, हाथी, रंगमंच पर दिखलाये जाते थे उस समय घास-फूस के बने पदार्थो के चाम से मढ़कर प्रदर्शित करने की पृथा थी।

प्राचीन रंगमंच के ध्वंन्सावशेष-

प्राचीन भारत में स्थायी रंगमंच नहीं होते थे, कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का यह मत ठीक नहीं है। भरत ने पर्वत के समान अविचल स्तम्भों, भित्तियों इत्यादि का जैसा वर्णन किया है।,वह अस्थायी प्रबन्ध नहीं हो सकता। उदाहरणस्वरूप मध्यप्रदेश के छोटा नागपुर में रामगढ़ पर्वत की एक गुफा मिली है। भरत प्रतिपादित शैलगुहाकार नाट्यमण्डप से इसका आश्चर्यजनक रूप में साम्य है। सरगुज राज्य में सीतावेगा और जोगीमारा गुफाओं के नाट्य मण्डप प्राप्त हुए है। जिनमें प्रेक्षकों के बैठने के सोपनाकृतिमण्डप बनाए गए हैं उस पर रंगमंच बनाया गया है।[20]

पारसी रंगमंच :-

8वीं शती में मुस्लिम आक्रान्ताओं ने पारसियों को स्वदेश छोड़ने पर विवश कर दिया और पारसी लोग भागकर भारत के निवासी बन गए, पारसी रंगमंचों ने भारतीय नाट्य परम्परा को अत्यधिक प्रभावित किया। व्यवसायिक रंगमंचों की स्थापना इनकी अपनी विशेषता थी। प्रिन्स थियेट्रिकल कम्पनी, इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी, अलेग्जेंड्रा कम्पनी इत्यादि इन कम्पनियों के रंगमंच स्थायी नहीं होते थे। ये भ्रमणशील कम्पनियाँ होती थीं और पूरे साज–सामान के साथ सैकड़ो व्यक्तियों के लिए हुए यात्रा किया करती थीं। अपने साथ रंगशाला बनाने के सभी उपकरण रखती थीं यहाँ तक कि दर्शकों के बैठने की कुर्सियाँ इत्यादि अपने साथ रखते थे। रंगमंच इस प्रकार बनाया जाता था कि रंगमंच का पिछला पर्दा अनेक रंग–बिरंग चित्रों से चित्रित होता था। अगला पर्दा भी बहुत अच्छा होता था। बीच में कतिपय अन्य साधारण पर्दे रहते थे, जो दृश्य परिवर्तन के काम में आते थे। अगला पर्दा नाटक के प्रारम्भ में उठता था और या तो मध्यान्तर में गिरता था, या नाटक की समाप्ति पर। अन्य कार्यकलाप बीच के पर्दो से काम चलाये जाते थे। इन अभिनयों की विशेषता थी। अनेक असम्भव घटनाओं को रंगमंच पर दिखलाना। कभी–कभी पर्दे ही इस प्रकार के बना लिये जाते थे कि उससे राजमहल बन जाता था, देवीमन्दिर बन जाता था कोई कुटी बन जाती थी। मंच पर चोर दरवाजे होते थे जिसमें कोई देवता या कोई अन्य व्यक्ति आसानी से प्रकट हो जाता था। इन मंचों पर नदी की धारा बहती दिखलायी जा सकती थी। प्रहलाद का आग में जलना आदि सरलता से दिखलाया जा सकता था।

लोक रंगमंच-

भारतीय कला राजाओं और सामन्तों के आश्रय में पनपी है। भारतीय नाट्य कला और नाट्य साहित्य भी उच्च अभिजात्य वर्ग तथा शिक्षित समाज का ही प्रतिनिधित्व करता है। किन्तु जन समाज और निम्न वर्ग में कला का अपना स्वरूप था और उनके आमोद–प्रमोद के अपने साधन लोकगीत, लोकनृत्य या लोकनाट्य इत्यादि थे। लोकनाट्य के लिए खुले मैदान या वृक्षों की छाया देखकर दो चार तखत लाकर चटपट मंच तैयार कर लिया जाता है। उसी पर आ कर सभी कलाकार जम जाते है। दर्शकों के लिए सुविधानुसार दरी इत्यादि बिछा दी जाती है। रात के 8, 10 बजे से नाटक का शुमारम्भ हो जाता है। इस प्रकार की रंगशाला के लिए न भरत की आवश्यकता है और न विशेष साधन ही अपेक्षित है। धार्मिक यात्रा नाटक, यक्षगान कुचिपुड़ी, नौटंकी, भवाई नाटक, स्वांग आदि इसी प्रकार के लोकनाट्य है।

धार्मिक रंगमंच-

धार्मिक नाटक में रामलीला अत्यन्त प्रसिद्ध लोकनाट्य है। शरदऋतु के आरम्भ में गाँव-गाँव में इसका आयोजन किया जाता है। रामलीला में दर्शक चारो ओर बैठते हैं और बीच में अलग-अलग मंच बना लिये जाते हैं। कोई मंच अयोध्या का द्योतक होता है। कोई लंका का और कोई किष्किन्धा का, वन का मंच होता है। रामचरित मानस की कथा को विभाजित कर प्रत्येक दिन का अभिनेय-वस्तु निश्चित कर ली जाती है। अधिकांश पुरुष ही स्त्री पात्र का भी अभिनय करते हैं। आवश्यकतानुसार मंच का स्वरूप बदलता रहता है।

यात्रा रंगमंच -

यात्रा नाटक की परम्परा अत्यन्त समृद्ध और अति प्राचीन है। वस्तुतः यात्रा की परम्परा भारतीय धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई है। जगन्नाथ की यात्रा, शक्ति की यात्रा, आदि अत्यन्त प्रसिद्ध यात्रायें हैं। इन यात्राओं में समूह बनाकर साज-सामान के साथ लोग सम्मिलित होते हैं और उस समय चारो ओर धार्मिक वातावरण तैयार हो जाता है। मार्ग में कीर्तन भजन चलते रहते हैं, जहाँ वे पड़ाव डालते हैं, वहाँ नित्यकर्म के पश्चात् वे छोटा सा मंच तैयार कर लेते हैं। इन सब में बंगाल की यात्रा सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यात्रा नाट्य का प्रथम उल्लेख हमें 'ललित-विस्तर' में मिलता है।

यक्षमान और कुचिपुड़ी :-

दक्षिण के लोक नाटयों में मैसूर और आन्ध्र के यक्षमान और कुचिपुड़ी अत्यन्त प्रसिद्ध है ये वस्तुतः नृत्य नाट्य है, जिनका सम्बन्ध मन्दिरों से रहता है। यक्षमान कर्णाटक का लोकनाट्य है, जिसकी परम्परा बहुत प्राचीन प्रतीत होती हैं, इनकी मण्डलियां स्थापित हैं। ऐसे नाट्यों का अभिनय खुले रंगमंच पर होता है। जो प्रायः किसी चबूतरे पर हुआ करता है। चबूतरे पर बाँस गाड़कर फूस का अच्छादन बना लिया जाता है। जिससे वह छत वाला दिशाओं से अनावृत रंगमंच बन जाता है। चबूतरे के तीन ओर दर्शकों के बैठने का स्थान होता है और चौथी ओर वाद्य यन्त्रों के लिए साजिन्दे खड़े होतें हैं।

यक्षगान से मिलत-जुलता लोक नाट्य 'कुचिपुड़ी' है। इसका अभिनय खुले आकाश के नीचे केवल रात में ही होता है। इस नृत्य नाट्य का प्रधान उद्देश्य भक्तिभाव है। इसमें भगवान की लीलायें प्रस्तुत की जाती है। नृत्य नाट्य के विशेष स्थल मन्दिर भी हैं। बड़े-बड़े आयोजनों में तो खुले मैदान में चबूतरों को रंगमंच के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है और उसके चारों ओर दर्शकों के बैठने का स्थान रहता है। किन्तु छोटे-छोटे अभिनय और नृत्य

मन्दिर के प्रागंण में ही हो जाते हैं जिनमें दर्शकों के लिए दरी बिछा दी जाती हैं, एक ओर छोटा सा मंच बनाया जाता है।[21]

भारत का लोकनाट्य अत्यन्त समृद्ध तथा व्यापक क्षेत्र वाला है। इसमें लोक जीवन का पर्याप्त प्रतिनिधित्व देखा जाता है।

आधुनिक रंगमंच-

भारत में आधुनिक रंगमंच का प्रथम उदय बंगाल में हुआ। वहाँ 'कलकत्ता'' थियेटर नाम का एक नाच घर बनाया गया, इसके तत्वावधान में अंग्रेजी नाटकों का अभिनय प्रस्तुत किया जाता था। बहुत से विदेशी अभिनेता भारत आकार अभिनय में भाग लेते थे। अंग्रेजी शैली का यह प्रथम थियेटर था, बाद में इसी प्रकार के थियेटर देश के अन्य भागों में खुले। आज इनकी संख्या बहुत अधिक है। शिमला का एमेच्योर ड्रैमेटिक क्लब बहुत पुरानी संस्था हैं। नेशनल थियेटर के अतिरिक्त स्टार थियेटर, मिनर्वा थियेटर, मनमोहन थियेटर, बंगाली थियेटर भी सत्ता में आये।

हिन्दी रंगमंच-

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक कहे जाते हैं। इनके साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने के पहले से ही रंगमंच हिन्दी जगत में प्रवेश कर चुका था। भारतेन्दु की नाट्यकला में प्राचीन रंगमंच, लोकनाट्य और पाश्चात्य नाट्यकला तीनों का प्रभाव था एक ओर इनमें आमुख, नान्दीपाठ, सूत्राधार इत्यादि का समावेश रहता था, दूसरी ओर पद्यात्मक संवाद, रहस इत्यादि का भी समावेश रहता था, और परदे चित्र, रंगमंच की सजावट, से सब बाते भी उनमें पर्याप्त मात्रा में पाई जाती थी। भारतेन्दु एक ऐसे रंगमंच को जन्म देना चाहते थे, जिसमें कलात्मक प्रौढ़ता के साथ रंगमंच की उदारता और भारतीय जनजीवन की आकांक्षाओं का प्रतिफलन भी विद्यमान हो।[22] इन्हीं आदर्शो पर नाटकमण्डलियों ने जन्म लिया। रामलीला मण्डली, हिन्दी नाट्य समिति, भारतेन्दु नाट्य मण्डली, काशी नागरिक नाट्यमण्डली इत्यादि सत्ता में आती रही इनके रंगमंचों पर आगाहस्त्र काश्मीरी, पं० राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद बेताब प्रमृति नाटककारों की नाट्य कृतियां प्रस्तुत की जाती रहीं। इन मण्डलियों के रंगमंचों पर पारसी थियेटर का पर्याप्त प्रभाव था।

दक्षिणात्य रंगमंच :-

तमिल प्रदेश में रंगमचीय संस्थाए स्थापित हुई, जिनमें विनोदनी सभा, सगुण विलास सभा, म्यूजियम थियेटर, कन्हैयालाल एण्ड कं० तथा बाल विनोद नाटक सभा आदि प्रमुख हैं।

प्रारम्भ में तमिल के रंगमंच में स्वभाविकता की कमी थीं। अनावश्यक रूप में भड़कीले कपड़े, नाच का आवश्यकता से अधिक प्रयोग और लम्बे चौड़े सम्बाद स्वाभाविकता के प्रतिरोधी थे। राजमणि कम्पनी भारत में सर्वाधिक तड़क–भड़क की कम्पनी है। इसी प्रकार सेवास्टेज और नेशनल थियेटर में भी किया जाता है। चलचित्रों के प्रभाव से ये रंगमंच भी बहुत कुछ दब गये हैं।

लोकनाट्य परम्परा तेलुगू प्रदेश में बहुत प्राचीन है। किन्तु नवीन शैली के थियेटर यहां भी इस शताब्दी के प्रथम या द्वितीय शतक में ही इस प्रदेश में भी प्रविष्ट हुए। सबसे पहले संस्कृत और अंग्रेजी के अनुवाद रंगमंच पर आये, बाद में सामाजिक नाटकों का भी अभिनय प्रारम्भ हो गया। 'कन्याशुल्कम्' एक प्रसिद्ध सामाजिक नाट्क है। जिसका अभिनय पर्याप्त सफलता पा सका। व्यवसायिक कम्पनियाँ ऐतिहासिक पौराणिक नाटकों का अभिनय प्रस्तुत करती है। आन्धनाटक कला परिषद तेलगू लिटिल थियेटर तथा आन्ध्र प्रदेश फेडरेशन कतिपय प्रतिष्ठित नाट्य कम्पनियाँ हैं, जो तेलुगू रंगमंच के सुधार और उद्धार के लिए प्रयत्नशील है।

भरतनाट्यम भी दक्षिण का एक विशिष्ट नाट्य है जो भरत की नाट्य परम्परा में आता है। इस शैली को मन्दिरों की धार्मिक भावना ने विशिष्ट रूप से सुरक्षित रखा है।

पूर्व रंग :-

नाट्य कला समस्त लोकोपरंजक, लोकानुकारक और लोकोपकारक महत्वपूर्ण कला है। ऐसी कोई विद्या नहीं, ऐसी कोई कला नहीं, ऐसा कोई शास्त्र नहीं तथा ऐसा कोई व्यवहार नहीं जिसका उपयोग इसमें न होता हो।

''नाट्य की मुख्य वस्तु का प्रारम्भ करने के पहले अभिनेताओं को पर्याप्त तैयारी करनी पड़ती है। नेपथ्य, विधान से लेकर रंगमंच की साजसज्जा तक ऐसे अनेक स्तर होते है। जिसे सूत्रधार या अभिनेता को पार करना पड़ता है। उसे स्वरूप भरने पड़ते हैं, तथा और भी ऐसी बहुत सी बातें करनी पड़ती हैं। सामग्री संकलित, करनी पड़ती है, थोड़ा सा प्रायोगिक अभ्यास भी करना पड़ता है जिससे अभिनय यथार्थ जैसा हो और दर्शकों को निर्विहन रूप में रसास्वादन करा सके।[23] इस प्रकार नाटक प्रारम्भ होने के पूर्व अभिनेताओं को इस तैयारी में जुट जाना पड़ता है और कभी–कभी तैयारी में इतना वक्त लग जाता है, कि नाटक सही समय पर प्रारम्भ ही नहीं हो पाता अतः दर्शकों और परिशीलकों में इतना सब्र नहीं होता कि

वे इतनी देर तक प्रतीक्षा कर सकें, नाटक 10 बजे प्रारम्भ होने वाला हो तो दर्शक 8 बजे से ही एकत्र होने लगते है। इस प्रकार उमड़ती हुई भीड़ को नियन्त्रित करने का भी व्यवस्थापकों के सामने प्रश्न उपस्थित हो जाता है।

अभिनय की सफलता के लिए देवताओं की शक्ति उपार्जित कर मनोबल प्राप्त करना और रंगपीठ के सामने समय से बहुत पहले आये हुए दर्शकों और परिशीलकों का मनोरंजक करना। जिससे वे सुव्यवस्थित होकर मुख्य अभिनय के प्रारम्भ के पहले समय को सुविधानुसार व्यतीत कर सके ये दो उद्देश्यों की सिद्धि के लिये नाट्याचार्यों ने ऐसा कार्यक्रम बनाया इस कार्यक्रम को पूर्वरंग की संज्ञा दी गई। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–

यन्नाट्यवस्तुन : पूर्व रंगविघ्नोपशान्तये
कुशीलवा : प्रर्वन्ति पूर्व रंगः स उच्यते।।[24]

अभिनेतव्य वस्तु से पहले रंगविघ्न की उपशांति के लिए 'पूर्वरंग' का विधान किया गया 'शिशुपालवधम्' में नाटकीयवस्तु के प्रंसगोपस्थापन के लिये किये जाने वाले तत्व को पूर्वरंग कहा गया है। कीथ महोदय के अनुसार– पूर्वरंग तत्वतः लोक प्रचलित उपासना पद्धति है। इसका प्रस्तावना से निकट सम्बन्ध है उसमें अपनी निजी निश्चित एवं स्वतन्त्र विशेषता सूत्रधार तथा मुख्य अभिनेत्री नटी के सम्वाद में पाई जाती है, पूर्वरंग छोटे–छोटे लगभग 20 नृत्यगीत को समूह होता है जिसमें देवाराधन की प्रधानता होती है, और जिसका मन्तव्य होता है रंगशालानुरंजन। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति है कि चिर अतीत में पूर्वरंग ही एकमात्र नाट्य–प्रक्रिया थी और उसका धर्म से सम्बन्ध था।

पूर्वरंग की भरत-सम्मत प्रक्रिया- नाट्यशास्त्र में पूर्वरंग वास्तविक नाटक आरम्भ करने के पहले पूर्वरंग विधि का पालन आपेक्षित है। उसका प्रयोग अभिनय की निर्विघ्न समाप्ति के लिए देवताओं की कृपा करना है, पूर्वरंग–विधि हमें संगीत–मिश्रित, आरंभिक नाटय की स्मृति दिलाती है।[25] भरत के अनुसार नाट्य की प्रक्रिया के दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– 9 विधियाँ परदा उठने के पहलें सम्पन्न की जाती है शेष लगभग 11 विधियाँ परदा उठने के बाद की जाती है। परदे के अन्दर की विधियों का रंगमंच से सम्बन्ध नहीं होता। सबसें पहले ढ़ोल या तुरही बजाकर नाट्यारम्भ (या पूर्वरंगारम्भ) की सूचना दी जाती है। वादक वृन्द अपने–अपने स्थान ग्रहण करते हैः अपने–अपने साजों को लेकर सुर भरते हैं और उनकी संगति को ठीक रूप में लाने की चेष्टा करते है। फिर अलग–अलग वृत्तियों का अभ्यास करते है। इसका भी अभ्यास नेपथ्य के अन्दर ही किया

जाता है। इसके बाद एक साथ सभी वाद्ययन्त्र इस रूप में बजाये जाते हैं, जिससे एक समा–सी बँध जाती है। इस प्रकार रंगमच पर देवपूजन की तैयारी पूरी हो चुकती है।

इन समस्त तैयारी में विभिन्न स्तरों पर जिन कार्यो को किया जाता है उनके नामकरण भरतभुमि ने इस प्रकार दिये हैं–

प्रत्याहारोऽवतरणं तथा ह्यारम्भ एव च
आश्रावणा वक्त्रपाणिस्तथा च परिघट्टना
संघोटना ततः कार्या मार्गासारितमेव च
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि तथैवासारितानि च
एतानि तु बहिर्गीतान्यन्तर्यवनिकागतैः
प्रयोक्तृभिः प्रयोज्यानि तन्त्रीभाण्डकृतानि च।।[25]

प्रत्याहार, अवतरण, आरम्भ, आश्रवणा, वक्त्रपणि परिघट्टना, संघोटना, मागसािरित, आसारित। ज्येष्ठ, मध्य एवं कनिष्ठ इन अंगो को परदे के भीतर बिना गींतो के तत्री वीणा और भाण्ड चर्मावनद्ध वाद्यों को बजाते हुए प्रयोक्ता लोग प्रयोग करें। इनके लक्षणों की व्याख्या क्रमशः इस प्रकार है

प्रत्याहार- सर्वप्रथम घोषणा के बाद वाद्ययन्त्रों को अपने स्थान पर रखना।

अवतरण- तथावरंण प्रोक्तं गायिकानां निवेशनम्।[26]

गायक वृन्द का अपना–अपना स्थान ग्रहण करना है या गायिका स्त्रियों के निवेश यानी प्रवेश को अवतरण कहा है।

आरम्भ :- परिगीतक्रियारम्भ आरम्भ इति कीर्तितः।[27]

जब गायक कंठगति का अभ्यास (अलाप करे) प्रारम्भ करते हैं तब वह स्थिति आरम्भ कहलाती है।

आश्रावणा -आतोद्यरंजनार्थ तु भवेदाश्रावणाविधिः।[28]

अभिनव गुप्त के अनुसार– "आतोद्य वाद्यों के द्वारा सामाजिकों को खुश करने के लिए आश्रवण का विधान किया जाता है। भरतमुनि के अनुसार कंठगीत के अभ्यास के बाद जब यन्त्र वाद्यों को स्वर तालनुसार सुव्यवस्थित करने का अभ्यास किया जाता है। तब वह आश्रवणा विधि कहलाती हैं।[29]

वक्त्रपाणि :- विभिन्न शैलियों और विधियों में संगीत यन्त्रों का अभ्यास करन वक्त्रपाणि कहा जाता है। अभिनव गुप्त की अभिनव भारतीनुसार वाद्यवृत्ति विभागार्थ वक्त्र

पाणिर्विधीयते।[32] वाद्यों की वृत्तियों का विभाग करने के लिए वक्त्रपाणि की विधि की जाती है।

परिघट्टना- तत्तयोजःकरणार्थ तु भवेद्य परिघट्टना।[31]

तन्त्री वीणा के तारों में ओज करने के लिए ध्वनि की सुस्वरता के लिए सारणा करने के लिए परिघट्टना होती है।

संघोटना :- 'तथा पणिविभागार्थ भवेत्संघोटनाविधिः।[32]

समपाणि, अवपाणि एवं उपरिपाणि के रूप में पाणियों के विभाग के लिए संघोटना की विधि होती हैं। भरत के अनुसार तन्त्री अर्थात् वीणा में अंगुलियाँ चलाने का संघोटना कहते हैं

मार्गासारित – "तन्त्रीभाण्डसमायोगान्मार्गासारितमिष्यते।[33]

तन्त्री तथा भाण्ड वाद्यों के साथ–साथ प्रयोग को मार्गासारित कहा जाता है।

आसारित :– "कलापातविभगार्थं भवेदासारितक्रिया।[34]

कला एवं पातों के विभाग के लिए ज्येष्ठ, मध्य एवं कनिष्ठ आसारितों की क्रिया की जाती है। अर्थात् कलाओं का पृथक–पृथक छोटे–बड़े और मझोंले गीतों में अभ्यास करना आसारित शब्द से अभिहित किया जाता है।[35]

ये गीत अधिकांशतः देवपूजन विषयक होते हैं।ये 9 प्रयोग नेपथ्य के अन्दर रंगमंच पर देव पूज्य के लिए सूत्रधार के प्रवेश के पहले किये जाते हैं। भरत में संगीतप्रकरण में इनका पर्याप्त विस्तार किया है।[36]

उक्त विधि जब नेपथ्य के अन्दर पूरी कर ली जाती है तब परदा उठा दिया जाता है और रंगमंच का पूर्वरंग सम्बन्धी अभिनय प्रारम्भ हो जाता है। परदा उठ जाता है और रंगमंच पर शारीरिक नृत्य पाठ्य और गीत प्रारम्भ कर दिया जाता है। इसमें या तो मद्रक राम का उपादान होता है, जो गीतों का एक वर्ग है अथवा वर्धमानक वर्ग के गीत गाये जाते है। जिसमें गीतों के साथ नृत्य भी सम्मिलित रहता है। इसके बाद रंगमंच पर सूत्राधार का प्रवेश होता है, सूत्रधार जर्जर को उठाता हैं, उसके साथ दो अनुचर रहते हैं– एक के हाथ में जलपूर्ण पवित्र घट होता है, दूसरे के हाथ में ध्वजा रहता है। सूत्रधार स्वेत वस्त्र पहने रहता है, वह स्वेतपुष्पों को बिखरते हुए रंगमंच पर परिक्रमा करता है। स्वर्णघट से जल लेकर अपने को पवित्र करता है; लोकपालों की वन्दना और स्तुति की जाती है। उसके बाद नान्दी पाठ

प्रारम्भ होता है। जिसमें आशीर्वाद दिया जाता है। फिर जर्जर की पूजा की जाती है, अब चेष्टायें और सार्थक शब्दों का अभिनय प्रारम्भ हो जाता है। अभिनय की इन चेष्टाओं में श्रृंगारिक कोमल भी होती है और रौद्र सम्बन्धी कठोर भी। परदा उठने के पहले के गीतों को बहिर्गीत कहा जाता है और रंगमंच पर गाये जानें वाले गीतों और अभिनयों को अन्तर्गीत कहा जाता है। क्योकि इनका प्रदर्शन रंगमंच पर होता है। जिस प्रकार बहिर्गीतों के विभिन्न खण्डों के विभिन्न नाम हैं, उसी प्रकार इन खण्डों के भी पृथक–पृथक नामकरण किये गये है।

"ततश्चोत्थापनं कार्यं परिवर्तनमेव च
नान्दी शुष्कावकृष्टा च रंगद्वारं तथैव च
चारी चैव ततः कार्या महाचारी तथैव च
त्रिकं प्रोचना चापि पूर्वरंगे भवन्ति हि।[37]

उत्थापना, परिवर्तन तथा नान्दी, शुष्कावकृष्ट, रंगद्वार, चारी एवं महाचारी को करना चाहिए। इसके बाद प्ररोचना और त्रिक भी पूर्वरंग में होते हैं।

उत्थापना :- "यस्मादुत्पापयन्त्रयैन्त्र प्रयोगं नान्दिपाठकाः।
पूर्वमेव तु रंगेस्मिस्तस्मादुत्थापनं स्मृतम्।। [38]

सर्वप्रथम रंगमंच पर जो अभिनय प्रारम्भ होता है और आशीर्वाद इत्यादि दिये जाते हैं। यह पहला अभिनय का प्रारम्भ होता है। इसे उत्थापना की संज्ञा दी जाती है।

परिवर्तन :- यस्मात्र लोकपालानां परिवृत्य चतुर्दिशम्
वन्दनानि प्रकुर्वन्ति तस्मात्र पविर्तनम्।।[39]

जब कि चारों दिशाओं में परिवर्तन भ्रमणः करते हुए अभिनेता गण लोकपालो की वन्दना करते हैं इसलिए यह परिवर्तन है। इसके बाद नान्दी का विधान आता है।

नान्दी :– आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मानान्दीति संज्ञिता।[40]

नान्दी की परिभाषा नाट्य शास्त्र में इस प्रकार कही गई हैं, नान्दी में प्रयुक्त किये जाने वाले मधुर शब्दों तथा आशीर्वचनादि से प्रेक्षक नंदित अर्थात् आनन्दित होते हैं, अतएव उसे नान्दी कहा जाता है।[41] नान्दी में संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का आश्रय लेकर प्रेक्षकों को अनेक प्रकार से आनन्दित किया जाता है। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के 36वें अध्याय में भी नान्दी की विशेषताएं इस प्रकार है कि 'नान्दी में प्रयुक्त प्रिय शब्द गीतों तथा वाद्यों आदि से देवता असुर तथा मानव सभी आनंदित होते हैं और विघ्न बाधा आदि दूर होते है। विवाहों

एवं यज्ञ आदि में भी नान्दी पाठ करने की बात कही गई और उसे वेद पाठ के समान पवित्र कहा गया हैं उदाहरणस्वरूप नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में देवासुर–संग्राम के अभिनय के प्रसंग में केवल नान्दी के ही प्रयोग का उल्लेख हुआ है। 'अमृत मन्थन' के अभिनय प्रसंग में भी नान्दी का उल्लेख हुआ हैं। पूर्व रंग का उल्लेख नाट्यशास्त्र में वर्णित तीसरा अभिनय, त्रिपुरदाह के प्रसंग में हुआ है।

शुष्काकृष्ट :- जर्जर के यश का गान जिसमें हो उसे शुष्कावकृष्टा कहा गया है। अर्थहीन वर्णो का उच्चरण किया जाता हैं।इसमें जर्जर की प्रशंशा में भी पद्य गाये जाते हैं।

रंग द्वारा :- आंगिक तथा वाचिक अभिनय की प्रथम अवतावरणा को रंगद्वारा कहा जाता है। सूत्रधार उच्च स्वर में एक श्लोक पढ़ता है। इसमें उस देवता की स्तुति की जाती हैं जिसके उद्देश्य से अभिनय किया जा रहा हैं फिर एक श्लोक पढ़ता हैं या राजा की स्तुति की जाती हैं या ब्रह्मा की, ये जर्जर श्लोक कहलाते हैं, जर्जर श्लोक के बाद उसे नीचा किया जाता है और उसके झुकाने में अवसर के अनुकूल एक और श्लोक पढ़ा जाता हैं यह सब रंगद्वारा की प्रक्रिया है।

चारी :- इसमें आंगिक तथा वाचिक दोनों प्रकार के अभिनय रहते है।। इसमें ऐसा अभिनय किया जाता है। जिसमें रंगमंच पर इधर–उधर संचरण से श्रृंगार की प्रतीति होती है।

महाचारी- दूसरे प्रकार का संचरण रौद्र की प्रतीति कराने वाला महाचारी कहलाता हैं

त्रिगत - सूत्रधार पारिपार्शिवक और विदूषक तीनो मिलाकर जो बातचीत करते हैं।

प्ररोचना - सूत्रधार द्वारा तर्क–वितर्क के साथ वस्तु निर्देश करना प्ररोचना कहलाता है।

'प्रबोध चन्दोदय' नाटक में पूर्व रंग इस प्रकार है –

मध्याह्मर्कमरीचिकस्विव पयः पूरो यदज्ञानतः
खं वायुर्ज्वलनो जलं क्षितिरति त्रैलोक्यमुन्मीलति
यतत्वं विदुषां निमीलति पुनः स्त्रग्भोगिभोगोपमं।
सान्द्रानन्दमुपास्महे तदमलं स्वात्मावबोधं महः।।[42]

अर्थात् मध्यान्ह सूर्य की मरीचिका में जलराशि की भांति जिसके अज्ञान से गगन, अनिल, अनल, सलिल एवं धरिणी इस क्रमानुसार त्रैलोक्य प्रकट होता है तथा जिसके ज्ञान से माला सर्प की भांति विलीन हो जाती है, उस आनन्दस्वरूप तथा स्वप्रकाशरूप उस ब्रह्म की हम उपासना करते हैं। यहाँ पूर्वरंग का 'उत्थापना' नामक अंग हैं।

अपि च

अन्तर्नाडीनियमितमरूल्लड्ंघ तब्रह्मरन्ध्रं
स्वान्ते शान्तिप्रणायिनि समुन्मील दानन्दसान्द्रम्
प्रत्यग्जोतिर्जयति यमिनः स्पष्टलालटनेत्र
व्याजव्यक्तीकृतमिव जगद्व्यापि चन्द्रार्धमौलेः। [43]

अर्थात् सुषुम्ना नाडी मे प्राणों को नियमित करके ब्रह्मन्ध्र में प्रविष्ट करने के लिए शान्तिपूर्ण अन्तःकरण में आनन्द रूप से आविर्भूत होने वाली, संयमी भगवान शंकर के तृतीय नेत्र के रूप में अभिव्यक्त विश्वव्यापी शिव की प्रत्यक्ष ज्योति की जय हो। इसमें लोकोपालों की वन्दना करते हैं। इसलिए यह 'परिवर्तन' नामक पूर्वरंग का अंग एवं नान्दी हैं। नान्दी पाठ

'नान्द्याः रंगविघ्नोपशान्तये विधीयमानाया।
आशीर्नमस्क्रियाद्यन्यतमभेदभूतमंगलाचरणरुपायाः।[44]

नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार नान्दी का पाठ करता हैं नान्दी पाठ मंगलाचरण रूप होता है।

'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में पूर्व रंग एवं नान्दी इस प्रकार है :–

यदभक्तिप्रचायात्मके दिनमुख दृष्टिक्षमः क्षेत्रिणः
क्षिप्रं संसृतिशर्वरीं क्षिपति यत्संकल्प सूर्योदयः
तत्वरैस्त्रविभूषणौरधिगतः स्वाधीननित्योन्नतिः
श्रीमान्स्तु स मे समस्तविपदुत्तराय नारायणः।[45]

अपि च

लक्ष्ये यत्र श्रुतिमितगुणाकृष्टिलब्धावधानैः
प्रत्यग्बाणः प्रणवधनुषा सत्त्ववदभिः प्रयुक्तः।
मध्यवेक्षः स्फुरति महासा पत्रलः कौस्तुभात्मा
पद्याकान्तः स भवतु दयादुग्धसिन्धुः श्रियैवः।।[46]

इस प्रकार पूर्व रंग के पश्चात प्रस्तावना का वर्णन नाट्य में किया जाता है। आलोच्य नाटकों में शास्त्रीय नाट्य विषयक सामग्री का प्रयोग पूर्णरुपेण, सुसंगत एवं नाट्य निर्देशों के अन्तर्गत पाया जाता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि, रचनाकार अपने पूर्ववर्ती नाट्य परम्परा को भलीभांति अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित करने में समर्थ हुआ है।

प्रस्तावना–

आज जितना भी प्राचीनतम नाट्य साहित्य मिलता है उसमें सम्भवतः कहीं भी पूर्वरंगविधि का उल्लेख नहीं मिलता। पूर्वरंगविधि सिकुड़ कर केवल नान्दीपाठ तक ही सीमित रह गई जो कि पूर्वरंग का ही एक नाम था। संक्षिप्त या विस्तृत नान्दी पाठ के बाद प्रस्तावना का प्रारम्भ होता है। 'नाट्यशास्त्र में प्रस्तावना पर जो विचार व्यक्त किये गये है। उनको कई उपखण्डों में विभाजित किया जा सकता है–[47]

1. स्थापक का प्रवेश और उसकी प्रक्रिया तथा क्रियाकलाप
2. भारतीवृत्ति का आश्रय और उसके अंग
3. बीथी के अंक
4. प्रहसन के अंग
5. सूच्य तत्व और
6. प्रस्तावना के भेद।

प्रस्तावना के भेद–

प्रस्तावना अथवा आमुख की आवश्यक विशेषता किसी व्यक्तिगत विषय पर पारिपार्शिवक नटी अथव विदूषक के साथ सूत्रधार का संवाद है जो अप्रत्यक्ष रूप से नाटक के विषय में संकेत करता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार धनंजय ने प्रस्तावना के तीन प्रकार बताए हैं–

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्ष वाऽथ विदूषकम्
स्वकार्य प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम
प्रस्तावना वा तत्र स्युः कथोद्धातः प्रवृत्तकम्
प्रयोगातिशययश्चाय वीथ्यंगानि त्रयोदश।[48]

जिस स्थल पर सूत्रधार नटी, मार्ष अर्थात् पारिपार्शिवक अथवा विदूषक के साथ वार्तालाप करते हुए उक्ति वैचित्र्य के द्वारा प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप कर कथावस्तु को संकेतित करते हुए, अपने कार्य को वर्णित करे, उसे आमुख अथव प्रस्तावना कहते हैं। इसके तीन अंग होते हैं। कथोद्धात, प्रवृतक और प्रयोगातिशतय। वीथी के तेरह अंग कहे गये हैं।

वीथी– जहाँ स्थापक या सूत्रधार के वाक्य या उसके अर्थ को लेकर पात्र प्रवेश हो वहाँ कथोद्धात होता है।

1. कथोद्धत का लक्षण

'स्वेतिवृतसमं वाच्यमर्थं वायत्र सूत्रिणः

ग्रहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्धातो द्विधैव सः'' ।[49]

प्रवृतक— 'कालसाम्यसमाक्षिप्त प्रवेशः स्यात्प्रवृतकम् । ।[50] (कालदर्पण) ऋतु वर्णन की समानता के आधार पर जहाँ श्लेष से किसी पात्र के प्रवेश को सूचित किया जता है, वहाँ प्रवक्ता होता है। उदाहरण— स्वरूप प्रियदर्शिका में दिया गया है।

प्रयोगातिशय—

'एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधार प्रयोगतः

पत्र प्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः ।[51]

प्रयोगातिशय 'यह वह है' इस प्रकार के वचन के प्रयोग से जहाँ सूत्रधार किसी पात्र का प्रवेश का उल्लेख करता है, वहाँ प्रयोगातिशय आमुखांग माना गया है। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् के आरम्भ में जहाँ वह नटी को यह कह कर आश्वस्त करता है कि 'तवास्मि गीतरागेण, हारिणा प्रसभं हतः एष राजेव दुष्यन्तः, सारंगेणातिरंहसा[52] और तभी दुष्यन्त प्रवेश करता है। साहित्यदर्पण में उद्धात्यक और अवगलित ये दो भेद और किये है।

स्थापक का प्रवेश—

सूत्रधार के रंगमंच से चले जाने के बाद स्थापक का प्रवेश होता है यह आकृति एवं गुणों में तो सूत्रधार जैसा ही होता है। आचार्य भरत के अनुसार वह वैष्णव स्थान से प्रवेश करता है उसके अंगो में सौष्ठव होता है, वह सुमधुर वाक्यों का प्रयोग करता है, जिसमें नाना रस एवं भाव सम्मिलित रहते हैं। सर्वप्रथम उसका कार्य होता है, रंगस्थल को प्रसन्न करना इसके लिए उसे संगीत की योजना भी करनी पड़ती है। यह संगीत अधिकतर किसी ऋतु के विषय में होता है। तत्पश्चात वह कवि का नाम बतलाता है, फिर काव्य की प्रस्तावना करता है। काव्य यदि देव–विषयक हुआ तो स्थापक दिव्य रूप धारण कर उसका परिचय देता है, यदि मर्त्य विषयक हुआ, तो मर्त्य बनकर उसका परिचय देता है और यदि दिव्य अथवा मर्त्य दोनों के सम्मिलित रूप से उसका सम्बन्ध हो तो दोनों में से कोई भी रूप स्थापक धारण कर सकता है। इन सभी क्रियाओं में स्थापक या सूत्रधार ही नहीं होता अपितु उसके साथ नटी भी होती है और कभी–कभी पारिपार्श्विक भी होता है और कभी–कभी विदूषक भी साथ

देता है। इस प्रकार के उदाहरण संस्कृत नाटकों में सवर्त्र पाये जाते है। वार्तालाप में विचित्र प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया जाता है जिसमें अधिकांशतः हास्यव्यंजक वाक्य होते है। कभी गम्भीर वाक्यों का भी प्रयोग किया जाता है। द्वयर्थक शब्दों के प्रयोग की भी कभी–कभी बहुतायत रहती है। समस्त संवाद को धीरे–धीरे ऐसे स्थान की ओर ले जाया जाता है , जिसमें मुख्य कथा का संकेत मिलता है और मुख्य नाटक का अभिनय प्रारम्भ हो जाता है।

प्रस्तावना में भारती वृत्ति– प्रस्तावना में भारती वृत्ति होती है, भारती वृत्ति का सामान्य अर्थ है– वाग्व्यापार। प्रस्तावना में संस्कृत का अधिक प्रयोग किया जाता है, जिससे उपस्थित जन समूह अधिक से अधिक व्यक्ति इसे समझ लें। भारतीवृत्ति के जो चार अंग या भेद बतलाये गये हैं उनमें प्ररोचना और आमुख शुद्ध रूप में प्रस्तावनागत ही रहते हैं। शेष वीथी और प्रहसन रूपक के विशिष्ट प्रकार हैं। प्रस्तावना कलात्मक दृष्टि से इतनी प्रौढ़ होनी चाहिए कि उसमें विशिष्ट अभिनय देखने जैसा आनन्द प्राप्त हो। भारती वृत्ति का पहला भाग प्ररोचना है, जिसमें दर्शकवृन्द की रूचि बढ़ाने के लिए कवि और काव्य की प्रशंसा की जाती है।

प्रस्तावना में वीथी के अंग–

> उदधात्यकावलगिते प्रपंच त्रिगते छलम्
>
> वाक्केल्यधिब्रले गण्डमवस्यन्दितनालिके
>
> असत्प्रलाप व्यवहारमृदवानि त्रयोदशा।[53]

उदधात्यक, अवलगित, प्रपंच त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिवल, गण्ड, अवस्यन्तिदत नालिका, असत्प्रलाप, व्याहार, मृदव।

प्रबोध–चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय में प्रस्तावना–

नाट्यकला की सफलता उसकी विषयवस्तु और उपस्थापन पद्धिति तथा अभिनय की विशेषता पर तो निर्भर है ही, उसके निर्माता के व्यक्तित्व पर भी बहुत कुछ आधृत रहती है। किसी नवीन काल्पनिक पात्र के प्रति किसी भावना की उदभावना किंचित दुष्कर होती है। सर्वसाधारण के मन में राम, कृष्ण, बुद्ध, युधिष्ठिर, अर्जुन, शिव इत्यादि पात्रों के प्रति एक बद्धमूल धारणा बनी हुई होती है। इनके प्रति एक आस्था एक श्रद्धा अथवा इनके व्यक्तित्वों के प्रति एक विशिष्ट विचारधारा अनादिकाल से भारतीय–समाज के मनोमुकुर में प्रतिबिम्बित होती रही है और परम्परा

प्राप्त होने के कारण बद्धमूल हो गई है। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि दर्शकों को पहले से ही कवि का नाम भी बतला दिया जाय और उसकी विषयवस्तु की ओर भी मुख्य अभिनय प्रारम्भ होने के पहले ही परिचय दे दिया जाय अतः प्रबोध चन्द्रोदय में सूत्रधार इस प्रकार प्रस्तावना करता है। ''समस्त सामन्त लोग स्वकीय मस्तक स्थित रत्नों से जिनके चरण पूजते हैं, जिन्होंने अजेय अरियों के विशाल वक्षस्थलों के विदीर्ण करने में नृसिंह रूप धारण किया है, जिन्होंने बलवान राजसमूह रूपी महासमुद्र के प्रताप सलिल में निमग्न पृथ्वी के उद्वार में महावाराह का रूप धारण किया है, अशेष दिशारूप ललनाओं के कर्णपूर का स्थान जिसके यश को प्राप्त है, निखिल दिग्गजों कर्णताल जनित पवन से प्रेरित होकर जिसका प्रतापानल नृत्य करता है, ऐसे श्रीमान गोपाल ने आज्ञा दी है कि इस सहजस्नेही राजा कीर्तिवर्मा की दिग्विजय की यात्रा के सन्दर्भ से ब्रह्मानन्द पराडंमुख होकर हमने विविध विषय रसों से कलुषित दिवस बिताए हैं, इस समय हम कृतकृत्य हो गये है।''[54]

> नीताः क्षयं क्षितिभुजो नृपतेविपक्षा
> रक्षावती क्षितिरभूत्प्रथितैरमात्यैः
> साम्राज्यमस्यविहितंक्षितिपालमौलि
> मालार्चितं भुवि पयोनिधिमेखलायाम्।[55]

और भी–

> अस्ति प्रत्यर्थिपृथ्वीपतिविपुलबलारण्यमूर्च्छित्प्रताप
> ज्योतिर्ज्वालावलीढत्रिभुवनविवरो विश्वविश्रान्तकीर्तिः
> गोपालो भूमिपालान्प्रंसभमसिलता मात्र मित्रेणजित्वा
> साम्राज्ये कीर्तिवर्मा नरपतितिलको येन भूयोऽभ्यषेचि।[56]

अर्थात् शत्रु राजाओं के सेना रूपी वन में प्रतापानल को विशद करके उस प्रताप की ज्वालाओंसे त्रिभुवन–विवर को व्याप्त करनें वाले जगत विदित कीर्ति तथा केवल खडग की सहायता से निखिल शत्रु राजाओं को विजय कर कीर्तिवर्मा को पुनः राज्यासीन करने वाले गोपाल नामक नरेश हैं। उपर्युक्त छन्दों के माध्यम से सूत्रधार ने महाराज की प्रशंसा की है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इसे प्रशस्ति के अंतर्गत रखा गया है।

भारतीवृत्ति के चार अंगो में प्ररोचना, वीथी, प्रहसन तथा आमुख ये चार भागों

में यहाँ प्ररोचना का निर्वाह किया गया है।

उन्मुखीकरण तत्र प्रशंसातः प्ररोचनः' ।[57]

प्रशंसा के द्वारा सामाजिकों को उसकी और उनमुख करना। इसमें दर्शकवृन्द की रूचि बढ़ाने के लिए कवि और काव्य की प्रशंसा की जाती है। विषय वस्तु का निर्देश विवेकेनेव निर्जित्य कर्ण मोहमिवोर्जिहम्
श्रीकीर्तिवर्मनृपतेबोधस्येवोदयः कृतः ।।[58]

जिस प्रकार विवेक ने बलशाली मोह को विजय कर प्रबोध को उदय प्रदान किया। उसी प्रकार गोपाल भूपाल ने राजा कर्ण को जीतकर कीर्तिवर्मा को उदय दिया है। नेपथ्य में आःपापी, नीच नट, हमारे जीवित रहते हुए स्वामी महामोह की विवेक से पराजय का वर्णन करता है। इसके पश्चात नाटक का प्रारम्भ होता और रति और काम का प्रवेश होता है।

''अद्याप्युन्मदयातुधानतरूणीचंचत्करास्फलन
व्यावल्गन्नृकपालतालरणितैर्नृत्यत्पिशचांगनाः
उदगायन्ति यशांसि यस्य वितर्तनीदैः प्रचण्डानिल
प्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूटकुहरव्यक्तै रणक्षोणयः ।।''[59]

अर्थात् अब वह शान्ति के उपासक हो रहे हैं, उन्होंने आत्मविनोदार्थ 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अभिनय करने की आज्ञा दी है। नटी (विस्मय के साथ) आर्यपुत्र आश्चर्य है आश्चर्य है जिसने अपने प्रचण्ड बाहुओं के पराक्रम से निखिल राजमण्डल को पराभव दिखाया, शत्रु समुद्र में कर्ण पर्यन्त आकृष्ट धनुष से शरवृष्टि करके तरंगोपम तुरंगो को जर्जर कर दिया, अनवरत गिरने वाले तीक्ष्ण बाणों तथा अन्य विशाल शस्त्रों से महान पर्वतों के समान ऊँचे सहस्त्रों गजराजों को छिन्न–भिन्न कर दिया भुजदण्डरूपी मन्दर पर्वत घुमाकर सकल पदैल सेना रूपी जलौध को नचा दिया, इस प्रकार कर्ण सेना सागर का मंथन कर समर विजय लक्ष्मी का वरण किया जैसे विष्णु ने समुद्र मथ कर लक्ष्मी प्राप्त की थी। अब वही मुनियों द्वारा प्रशंसित शान्ति के उपासक कैसे बन गए?

स्वभावतः शान्त ब्रह्मतेज किसी कारणवश विकृति को प्राप्त कर पुनः स्वकीय स्वभाव का आश्रय कर लेता है। गोपाल नरेश ने सभी नरेशों को कष्ट देने वाले चेदिराज का आश्रय कर लेता है चेदि राज से समुन्मुलित कीर्तिवर्मा को पुनः पदस्थ

करने के लिये ही इस प्रकार का कोपमय व्यवहार किया था–

कल्पान्तवात संक्षोभलंघिताशेषभूभृतः

स्थैर्यप्रसादमार्यादास्ता एव हि महोदधेः ।[60]

और भी भगवान नारायण के अंश से उत्पन्न संसार के लिये, हित के पराक्रम से सुशोभित उस प्रकार के नरश्रेष्ठ पृथ्वी में अवतार लेकर तथा अपना कर्त्तव्य पूरा कर फिर शान्ति में ही लीन हो जाते हैं जैसे परशुराम को ही तुम देखो–

परशुराम मे वाकलयतु भवती तावत

येनत्रिसप्तकृत्वो नृपबहुलवसामांसमस्तिष्कपकं

प्राग्भारेऽकारि भूरिच्युतरूधिरसरिद्वारिपूरेऽभिषेक

यस्यस्त्रीबालवृद्वावधि निधनविधौ निर्दयो विश्रुतोऽसौ

राजन्योच्चांसकूटकथनपटुरटद्धोरघारः कुठारः ।[61]

सोऽपि स्ववीर्यादवतार्य भारं भूमेः समुत्खाय कुलं नृपाणाम्

प्रशान्तकोपज्वलनस्तपोभिः श्रीमान्मुनिः शाम्यति जामदग्न्यः ।।[62]

उसी प्रकार यह भी इस समय निखिलकनिकर अत्यान्तिक शान्ति में स्थिर हैं। भारतीय वृत्ति के चार अंग होते हैं– प्ररोचना, वीथी, प्रहसन, आमुख। 'सकंल्प–सूर्योदय' नाटक में प्ररोचनादि का प्रयोग इस प्रकार किया गया है–

1. **प्ररोचना**– 'पात्र' प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं को उन्मुख करना प्ररोचना है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में प्राचनों का प्रयोग निम्नलिखित दृष्टान्त में देखा जा सकता है–

देवो नः शुभमातनोतु दशधा निर्वर्तयन् भूमिकां

रगें धामानि लब्धनिर्भररसैरध्यक्षितो भावुकैः

यदभावेषु पृथग्विधेष्वनुगुणान भावान् स्वयं विभ्रती

यद्धर्मैरिह धर्मिणी विहरते नानाकृतिर्नायिका ।।[63]

2. **वीथी**– वीथी के तेरह अंगो में उदधात्मक नामक वीथी का अंग 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में इस प्रकार है–

गम्भीरभीषणगर्तिरिखण्डनादौ

स्त्रोतांसि दर्शयति किं न सुरस्त्रवन्ती ।।[64]

जब दो पात्रों का परस्पर वार्तालाप या तो गूढार्थ पद तथा उसके पर्यायों का माला

के रूप में होता है, वहाँ दो प्रकार का उद्धात्यक होता है। वीथी का दूसरा अंग अवलगित में जहाँ एक कार्य में समावेश करके दूसरा कार्य सिद्ध किया जाता है, वह दो प्रकार का अवलगित होता है। 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में अवलगित का प्रयोग इस प्रकार है–

अथवा ताद्वशान सभ्यान मत्वाजगति दुर्लभान
शकें शान्तिरसोल्लासमशक्यमभिमेनिरे।।[65]

इस प्रकार वीथी के तेरह अंग, व प्रहसन आदि का प्रयोग प्रस्तावना में किया गया है, प्रस्तावना का एक अन्य भेद आमुख इस प्रकार है।

3. आमुख– जहाँ सूत्रधार विचित्र उक्ति के द्वारा नटी, पारिपार्श्विक, विदूषक प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप करने वाला अपना कार्य बतलाता है, 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में आमुख इस प्रकार है–

नटी– (सविनयम्) अय्य एसह्यि। आणविज्जउ पिअप्पेसणो एसो परिअणो।

सूत्रधारः – किं न जानासि संकल्प सूर्योदयाख्यं नायकीकृतविवेकं नवीनं नाटकम्?

भावं विदन्ति परमत्र परावरज्ञाः
प्रज्ञाधनाः प्रगुणनूतनसंविधानम्
यस्मिन गुणास्तनुभृतः सदसत्प्रकाशः
पात्रीभवन्त्यनुगुणैरधिदैवतैः स्वैः।।[66]

सूत्रधार के इस कथन तक आमुख अंग है। आमुख के तीन भेद होते हैं– कथोद्घात, प्रवृत्तक, प्रयोगातिशय। वीथी में होने वाले तेरह अंग हैं। उनमें प्रयोगातिशय आमुख का अंग 'संकल्प–सूर्योदय' नाटक में इस प्रकार है–

सूत्रधार– (कर्ण दत्वा सानन्दम्) आर्ये सम्यगवधार्य तामस्मदवृत्तिमापवर्गिकीं वृत्तिं च तन्त्रयन्तीयम् औद्वातिकी गीतिः। ततश्च–

दुर्जनं प्रतिपक्षं च दूरदृष्टिरयं जनः
विवेकश्च महामोहं विजेतु प्रभविष्यतः।[67]

सूत्रधार के इन कथनों के पश्चात् काम और रति के प्रवेश से नाटक प्रारम्भ होता है।

अभिनय तथा उसके प्रकार–

अभिनय शब्द 'अभि' पूर्वक 'नी' धातु से बना है जिसका अर्थ है किसी तत्व को सामने ले आना। परिशीलकों को रसास्वादन कराने के लिए लौकिक जीवन की वास्तविक

परिस्थितियों पर आधारित किसी वस्तु को विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं,वचनों,हाव–भावों द्वारा इस रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें एक सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है और परिशीलकों को अपनी ओर आकर्षित करते हुए, उनको रसास्वादन कराने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। नाट्य शास्त्र में अभिनय की व्युत्पिति इस प्रकार बताई गई है।

"अभिपूर्वस्तुणीञ धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये।
यस्मात्पदार्थान्नयति तस्मादभिनयः स्मृतः।।[69]

अभिपूर्वक णीञ् धातु है, जिसका निर्णय अभिमुख्य अर्थ में है। जबकि सामाजिकों के सम्मुख पदार्थों को प्राप्त कराते हैं इसलिए यह अभिनय कहा जाता है।

अभिनय में दो बातों का ध्यान रखा जाता है, पहला प्रस्तुतीकरण इस रूप में हो कि दर्शक उसे लौकिक जीवन का प्रतिरूप समझें, और उसमें लौकिक जीवन की अपेक्षा कुछ सुन्दरता अधिक हो। यदि दर्शक अभिनय को स्वाभाविक तथा लौकिक जीवन से मेल खाता हुआ नहीं समझेंगे, तो उन्हें असत्य का प्रतिभास होने लगेगा और वे उससे वितृष्ण हो जायेंगे और न उसमें रस ही मिल सकेगा। अभिनवगुप्त ने नाट्य का अर्थ किया है रस। उनका कहना है कि यद्यपि लौकिक जीवन को प्रस्तुत करने के लिये अभिनेता को अनेक विभावादिकों की अवतारणा करनी पड़ती है, उनमें कुछ तो जड़ होते हैं, कुछ चेतन। जड़ों का चेतन में विलय हो जाता है। चेतनों का मुख्य पात्र की मनोवृत्ति में विलय हो जाता है और वह मनोवृत्ति ही रसरूपता में परिणत होती है। अतः अभिनय में नटों को स्वभाविकता के साथ सौन्दर्य का भी ध्यान रखना पड़ता है।

अभिनय प्रकार–

"आंगिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राः चतुर्धा परिकल्पतः।[70] अभिनय को आंगिक, वाचिक, आहार्यिक एवं सात्विक चार प्रकार का होता है। विविध प्रकार के रूपक इन चारों प्रकार के अभिनयों के द्वारा ही प्रयुक्त किये जाते हैं। अभिनयों के द्वारा ही सहृदय प्रेक्षक नाट्यार्थ को ग्रहण करके रस की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार अभिनय नाट्य का प्रमुख अंग है।

आंगिक अभिनय–

नाट्यशास्त्र में शरीर के अंगो द्वारा किये जाने वाले अभिनय को आंगिक कहा गया है। आंगिक अथवा कायिक अभिनय के भरतमुनि ने सर्वप्रथम 3 भेद किये है–

अंगो, उपांगो तथा चेष्टाओं द्वारा अभिनय इस प्रकार है– अंग 6 माने गये हैं– शर, हाथ, छाती, पार्श्व कमर और पैर तथा 6 उपांग माने गये हैं– नेत्र, भौं नासिका, अधर, कपोल और चिबुक। नाट्यप्रयोक्ताओं को शाखा, नृत्त और अंकुर इन तीन प्रकारों को भी जानने का निर्देश किया गया है।

आंगिकस्तु भवेच्छाखा ह्मंकुरः सूचना भवेत्
अंगहारविनिष्पन्नं नृत्तं तु करणाश्रयम्।।[71]

जिनमें आंगिक अभिनय शाखा है। नाट्य विषयक सूचना अंकुर है। और करणों के आश्रय पर अंगहारों से सम्पन्न होने वाला नृत्य है।

शिर तथा उसके उपांग–

आकम्पित, कम्पित, धुत, विधुत, परिवाहित, उदवाहित, अवधुत, अंचित, निंहचित, परावृत्त, उत्क्षिप्त, अधोगत, लोलित। सर को ऊपर नीचे धीरे–धीरे हिलाना आकम्पित सर कहलाता है। संकेत देने, शिक्षा देने, प्रश्न पूछने और स्वाभाविक बातचीत करने में इस प्रकार का प्रयोग किया जाता है। और जब सर को ऊपर नीचे जोर–जोर से हिलाया जाता है तब वह कम्पित सर कहलाता है। क्रोध में, तर्क करने में किसी बात को जोर देकर कहने में, धमकी देने में, बीमारी में और असहनशीलता प्रकट करने में इसका प्रयोग किया जाता है। सर को इधर–उधर धीरे–धीरे हिलाना 'धुत' कहलाता है, जिसका प्रयोग अनिच्छा, दुख विस्मय विश्वास, इधर–उधर देखना आदि। सर को बहुत तेजी से इधर उधर हिलाना 'विधुत' कहलाता है। शीत ग्रस्तता, भय आतंक, ज्वर पीड़ा और शराब पीने की प्रथम अवस्था को प्रकट करने के लिये इसका प्रयोग होता है। सिर के दोनों ओर के मुड़ने को 'अपिवाहित' कहते हैं। इस चेष्ठा का प्रयोग आश्चर्य, उल्लास, स्मरण, असहिष्णुता एवं श्रंगार आदि को अभिनीत करने के लिए किया जाता है। आधूत स्थिति में सिर एक बार ऊपर की ओर उठता है एवं इसका प्रयोग गर्व आदि के प्रदर्शन के लिए किया जाता है। अवधूत स्थिति में सिर को एक बार नीचे झुकाया जाता है। इस स्थिति के द्वारा सन्देश एवं आवाहन आदि का प्रदर्शन किया जाता है। जिसमें सिर गरदन पर एक ओर कुछ झुका रहता है उसे अंचित कहते हैं। इसका प्रयोग व्याधि, मूर्च्छा एवं मत्तावस्था को व्यक्त करने के लिये किया जाता है। सिर की 'निहंचित' स्थिति में दोनों कन्धे कुछ उठे रहते हैं गरदन किंचित एक ओर झुकी रहती है एवं साथ ही भौंह भी थोड़ी सी सिकुड़ जाती है। स्त्री पात्रों

के द्वारा गर्व, मान, विलास बिब्बोक, किलकिंचित, मोटायित, कुट्टमित तथा स्तम्भ आदि के अभिनय में इसका प्रयोग किया जाता है। मुख घुमा लेने को परावृत्त कहा जाता है। इससे मुख को फेर लेना तथा पीछे देखना आदि का अभिनय किया जाता है। 'उत्क्षिप्त' सिर में मुख थोड़ा सा ऊपर उठाया जाता है। इसका प्रयोग उच्च अभिप्राय आदि को अभिनीत करने के लिए किया जाता है। अधोगत स्थिति में सिर नीचे की ओर रहता है। इसके द्वारा लज्जा एवं दुःख को व्यक्त किया जाता है। जब सिर का चालन समस्त ओर होता है, तो उसे ललित कहते हैं।

अभिनय में सर्वाधिक महत्व दृष्टि का है। दृष्टि ही एक वह दर्पण हैं जिसमें मनुष्य का हृदय प्रतिफलित हो जाता है। दृष्टि का तीन रूपों में विवेचन गया है– 8 रस दृष्टियाँ हैं–

कान्ता भयानका हास्या करूणा चादभुता तथा
रौद्री वीरा च वीभत्सा विज्ञेया रसदृष्टयः।[72]

भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में रस भाव तथा संचारियों के प्रदर्शन में प्रयुक्त दृष्टि चेष्टाओं की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। नाट्यदर्पणकार ने इन्हीं का अनुकरण किया है, दृष्टि के 36 भेद हैं। आठ स्थायी भाव दृष्टियाँ हैं– स्निग्धा ह्रस्टा च क्रुद्धा दृप्ता भयान्विता जुगुप्सिता विस्मिता च स्थायि भावेषु दृष्टयः स्निग्ध, ह्रष्टा, दीना, कुद्धा, हप्ता, भयान्विता, जुगप्सिता विस्मिता। शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जान्विता, ग्लानां, शंकिता, विषण्णा मुकुला, कुंचिता, अभितप्ता, जिह्वा, ललिता, वितर्किता, अर्धमुकुला, विभ्रानता, विप्लुता, आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता, मदिरा। स्निग्धा दृष्टि अधिक विस्तरित नहीं होती, जिसमें मधुरता होती है नेत्र पलक स्थिर होते हैं, जिनसे आनन्दाश्रु निकलते रहते हैं, 'स्निग्ध दृष्टि' कहलाती है। 'दीना दृष्टि' में पुतलियाँ आँसुओं से भरी रहती है। यह शोक स्थायी भाव का धीरे–धीरे संचरण करती है। 'ह्रष्टा' नामक दृष्टिनिक्षेप में दृष्टि चंचल रहती है एवं पुतलियाँ अर्धोन्मीलित रहती है। 'क्रुद्धा–दृष्टि' में भौंहे कमान की तरह टेढ़ी हो जाती है। यह दृष्टि क्रोधभाव की व्यंजना करने के लिए प्रयुक्त होती है।

एक दृष्टि कई भावों को व्यक्त करती है और एकभाव कई दृष्टियों से व्यक्त किया जाता है। उदाहरण स्वरूप ग्लाना दृष्टि अपस्मार, व्याधि और ग्लानि इन तीन भावों में होती है। शून्य की ओर ध्यान देने वाली 'दृष्टि शून्या' कही जाती है। 'मलिना

दृष्टि' में बरौनियाँ स्फुरित होती है एवं किनारे के भाग मलिन रहते हैं। 'श्रान्ता दृष्टि' में पुतलियाँ झुकी रहती हैं। 'ग्लाना दृष्टि' में भौहें पलके तथा बरौनियाँ ग्लान होती है। 'शंकिता दृष्टि' में पुतलियाँ चकित रहती हैं, 'विपष्णा दृष्टि' में दुःख के कारण पलकें फैलकर अलग हो जाती है। 'मुकुला दृष्टि' में सुख के कारण पुतलियाँ उन्मीलित रहती है। 'कुंचिता दृष्टि' में पुतलियाँ संकुचित रहा करती है। 'अभितप्ता दृष्टि' में पुतलियों का संचार मन्दगति से होता है। यह व्यथा एवं संतान को व्यक्त करती है। 'जिह्मा–दृष्टि' में पुतलियाँ छिपी सी रहती है। 'ललिता दृष्टि' में भ्रू–संचालन होता है। जब तर्कना के कारण पलकें ऊपर उठी रहती हैं एवं पुतलियाँ उत्फुल्ल रहती हैं, तब उसे 'वितर्किता दृष्टि' कहते हैं।

दृष्टि के साथ भरत ने पुतली नेत्रपुट और भौंहों का भी वर्णन किया है। उनके भी भेद किये हैं–

भरतमुनि ने नेत्रतारकों की नवस्थितियाँ मानी है–

वलनं गमनं तयस्त्रं पातनं स्त्रस्तता तथा

चलनं कम्पनं ज्ञेयं प्रवेशोऽन्तः प्रवेशनम्।।[74]

भ्रमण, वलन, पातन, चलन, सम्प्रवेशन, विवर्तन, समुद्धर्तन, निष्क्रामण एवं प्राकरण। पलकों के अन्दर तारामण्डल की आवृत्ति 'भ्रमण' है। तिर्यक घूमना 'वलन' है। स्त्रस्त होना 'पातन' है। कम्पित होना 'चालन' है, अन्दर प्रविष्ट होना 'प्रवेशन' है, कटाक्ष की स्थिति में होना विर्वतन है। ऊपर उठना 'समुदवृत' है, बाहर आना 'निष्क्राम' है। स्वाभाविक स्थिति में होना 'प्राकृत' है। इन चेष्टाओं का प्रयोग रसों के अनुसार ही करना चाहिये। भ्रमण, वलन, उद्‌वृत, निष्क्राम का वीर और रौद्र रस में, निष्क्राम और 'चालन' का भयानक रस में, 'प्रवेस्य' का हास्य और वीभत्स रस में, 'पातन' का करूण रस में, 'निष्क्रम' का अदभुत रस में, विर्वतन का श्रृंगार रस में, सामान्य स्थितियों में 'प्राकृत' का प्रयोग करना चाहिये।[75]

अक्षि पुटों के भी नव भेद हैं– उन्मेष, निमेष, प्रसृत कुंचित, सम, विवर्तित, स्फुरित पिहित और विताड़ित। निमेष, उन्मेष एवं विवर्तित का प्रयोग क्रोध की स्थिति में किया जाता है, प्रसृत का प्रयोग विस्मय, हर्ष एवं वीर रस में 'संगत' का। 'कुंचित' का प्रयोग अनिष्ट दर्शन में, अनिष्ट गन्ध, अनिष्ट रस तथा अनिष्ट स्पर्श के अभिनयार्थ किया जाता है।

भ्रू के सात भेद किये हैं–

उत्क्षेप, पातन, भ्रकुटी, चतुर, कुंचित, रेचित, सहज।

नासिका के छः भेद किये हैं– भरतमुनि ने–

नता मन्दा विक्रष्टा च सोच्छवासा च विधूर्णिता
स्वाभाविकी चेति बुधैः षडिवधां नासिका स्मृता।।
नता मन्दा विकृष्टा सोच्छवासा विकुचिंता स्वाभाविका।[76]

नासिका की नता चेष्टा में नासापुट निरन्तर स्फुरित रहते है। इससे दुःख के निःश्वास का अभिनय किया जाता है। जब नासापुट शान्त रहता है तब मन्दा कहते हैं इसका प्रयोग निर्वेद, उत्सुकता चिन्ता तथा शोक आदि में किया जाता है। विकृष्टा चेष्टा में नासापुट फूले रहते हैं। इसके द्वारा तीव्रगंध, रौद्र तथा वीर भाव अभिनीत होता है।जब वायु अन्दर खीची जाती है। तब उसे सोच्छवासा कहते हैं। यह मधुर गन्ध तथा गहरी सांस लेने में प्रयुक्त किया जाता है। स्वाभाविका चेष्टा में नासिका अपनी सहज स्थिति में रहती है।

गण्ड के छः भेद– क्षाम, फुल्ल विस्तरित, कम्पित, कुंचित और सम। क्षाम कपोलों से दुःख की अभिव्यंजना 'फुल्ल कपोलों' से हर्ष की, विस्तरित कपोलों से उत्साह तथा गर्व की अभिव्यक्ति, कम्पित कपोलों, से रोष तथा हर्ष की कुंचित कपोलों से रोमांच, स्पर्श शीत भय एवं ज्वर की अभिव्यक्ति, सम से सामान्य अवस्थाओं की अभिव्यक्ति होती है।

चिबुक– चिबुक के सात भेद हैं कुट्टन, खण्डन, छिन्न, चुक्कति, लेहित, सम, दृष्ट। दाँतों के संघर्ष, से चिबुक की कुहन नामक चेष्टा, जिससे भय, शीत, ज्वर, तथा बीमारी की स्थितियाँ व्यक्त होती है। जिससे प्रार्थना अध्ययन कथन तथा खाने का अभिनय किया जाता है खण्डन चेष्टा होती है। दोनों ओठों के गाढ़ मिलन होने पर चिबुक की छिन्न चेष्ठा होती हैं, जिससे व्याधि भय, शीत व्यायाम रूदन तथा मत्यु अभिव्यक्ति होती है। चुक्कति चेष्टा में जँभाई लेने में प्रयुक्त किया जाता है।

ग्रीवा – ग्रीवा के नव भेद इस प्रकार हैं– समा, नता, उन्नता, वयस्त्रा, रेचित, कुंचित, अंचित, वलिता और विवृता। जितनी भावाभिव्यक्ति उपांगों से होती है, उतनी अंगो से नहीं हो सकती। चेहरे को देखकर किसी व्यक्ति के क्रोध, भय, स्नेह इत्यादि का जिस मात्रा में परिज्ञान हो सकता है, उस मात्रा में हाथ पैर को देख कर नहीं होता। पूर्ण

नाटक में भावाभिव्यक्ति के लिये अंगों का सहयोग कम लिया जाता है। उपांगों का अधिक। मूकनृत्य में जहाँ हाथों और पैरों के इशारे से ही उस प्रकार की आकृतियाँ बना कर स्त्रियों के प्रसाधन जलानयन इत्यादि को अभिनय के द्वारा प्रदर्शित किय जाता है, भरत ने अंग 6 माने हैं– सर, हाथ, हृदय, पार्श्व कमर और पैर। पैर के साथ जघन और उरू भी सम्मिलित कर लिये जाते हैं तथा कमर के साथ पेट भी आ जाता है, इनमें सबसे अधिक महत्व सर का है, जिसके उपांगो से ही विशिष्ट भावाभिव्यक्ति होती है। इसके बाद हस्ताभिनय आता है। इसको सर्वप्रथम तीन भागों में विभाजित किया है– असंयुक्त या एकाकी हाथ, संयुक्त या दोनों मिले हुए हाथ, नृत्त हस्त।

असंयुक्त हस्त– ये 24 प्रकार के बतलाये गए हैं। पताक, त्रिपताक, कर्त्तरीमुख, अर्धचन्द्र, अराल, शुकतुण्ड, पुष्टि शिखर, कपित्थ, खटकामुख, सूच्यास्य, पद्यकोश, सर्पशिरा मृगशीर्षक, काङगुलक, अलपद्य, चतुर, भ्रमर, हंसास्य, हंसपक्ष सन्दंश, मुकुल, ऊर्णनाभ, ताम्रचूड। इसमें हाथ की अंगुलियाँ परस्पर मिली हुई तथा आगे की ओर फैली रहती है, और अंगूठा नीचे की ओर कुछ झुका रहता है। चाँटा मारने, किसी को प्रेरित करने तथा धूप, हर्ष और गर्व का अनुभव करने में इस स्थिति के हाथ को मस्तक के बराबर ऊँचा उठाया जाना चाहिए। इसके प्रयोग अन्य भी कई अर्थों के प्रदर्शनार्थ किये जा सकते हैं।[77]

संयुक्त हस्त– आचार्य भरत ने तेरह संयुक्त हस्त के 13 भेद किये हैं–

''अंजलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा
खटकावर्धमानश्च ह्युत्संगो निषधस्तथा
दोलः पुष्पपुटश्चैव तथा मकर एव च।।[78]

अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, खटकावर्द्धमान, उत्संग, निषध, दोल, पुष्पपुटं, मकर, गजदन्त, अवहित्थ, वर्धमान ये तेरह संयुक्त हस्त हैं।'' दोनों हाथों को पताका की स्थिति में करके जब एक साथ जोड़ दिया जाता है, तो अंजलि की मुद्रा बन जाती है। इसका उपयोग गुरूजनों के अभिवादन आदि के अभिनय में किया जाता है। देवताओं को प्रणाम करते समय अंजलि सिर पर रहती है, गुरूजनों को प्रणाम करे समय मुख के समक्ष।

पार्श्व भाग– इसके के पाँच भेद हैं– दोनों पार्श्वों की नत, समुन्नत, विवर्तित तथा अपसृत ये पाँच स्थितियाँ कही गई हैं। हृदय के आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित

और सम ये पाँच भेद किये गये हैं। सम्भ्रम, विषाद, मूर्च्छा, शोक, भय, वयाधि, स्तम्भ, मान, विस्मय इत्यादि भावों का प्रदर्शन करने के लिये किया जाता है। और पेट तीन प्रकार का होता है,– क्षाम, खलव और पूर्ण।

कटि– इसके पाँच भेद किये गये हैं छिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता और उद्वाहिता।

उरू– इसकी भी पाँच अवस्थायें होती हैं– कम्पना, वलन, स्तम्भन, उर्द्धतन, विवर्तन।

जँघा– इसके भी पाँच कर्म हेते हैं– अविर्तित, नत, क्षिप्त, उद्वाहित और परिवृत।

पाद– इसके भी पाँच कर्म हैं–उद्वीहत, सम, अग्रतलसंचर, अंचित और कुंचित।

अभिनय में जंघा, उरू और पैर का सामंजस्य बहुत आवश्यक होता है।[79] अभिनय में विभिन्न अंगों का महत्व तो है ही किन्तु एक–एक अंग के द्वारा पृथक–पृथक अभिनय उपर्युक्त नहीं हो सकता। जब विभिन्न अंगों की सामंजस्यपूर्ण विनियोजन क्रिया है, तब उसे चारी की संज्ञा प्राप्त होती है। इसमें विशेष रूप से कमर उरू, जंघा और पैर की चेष्टाओं का समानीकरण किया जाता है। साथ ही हाथ, सर और वक्षस्थल का भी सामंजस्य अभीष्ट होता है। अभिनय में चारी का सर्वाधिक महत्व है। एक पैर के संचालन से जो अभिनय किया जाता है वह चारी कहलाता है। दो पैरों के संचालन के द्वारा जो अभिनय किया जाता है उसे करण कहते हैं। दो, तीन, चार करणों का एक साथ सामंजस्य खण्ड कहलाता है और तीन चार खण्डों के सम्मिलन से मण्डल की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरत ने चारियों को दो वर्गों में विभाजित किया– भौमी चारी, आकाश की चारी। 16 प्रकार की भौमी चारी और दूसरी आकाश की चारी 16 प्रकार की मानी गई है।

आचार्य भरत न्याय दर्शन का अनुसरण करते हुए सभी आंगिक अभिनयों को गति की संज्ञा प्रदान की है। गति के तीन भेद हैं– धीरा, मध्यमा और द्रुता। उत्तम पात्रों ककी गति 'धीरा' होती है, मध्यम पात्रों की 'मध्यमा', निम्न कोटि के पात्रों की 'द्रुता' होती है।

उपर्युक्त सभी अभिनय इष्ट, मध्यम, तथा अनिष्ट तीन प्रकार का होता है। 'इष्ट' अभिनय का प्रदर्शन मन की प्रसन्नता, शरीर रोमांच नेत्रों के विकास आदि के द्वारा होता है। अभिनय में स्वाभाविक, प्रसन्न रक्त एवं श्याम चार प्रकार का 'मुखराग' होता है। अतः भरत का आंगिक अभिनय का विवेचन बहुत ही सांगोपांम तथा परिपूर्ण है।

प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय में आंगिक अभिनय– शिर तथा उसके उपांग के अन्तर्गत प्रबोध चन्द्रोदय में अधोगत शिर का उदाहरण इस प्रकार है–

राजा– (सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)[80]

रति– शान्तं पापम्। आर्यपुत्र किं तादृशं पाप विद्वेषमात्रेण तैरारब्धम्। भवतु। अस्योपायः को वा मन्त्रितः?[81] में प्रश्न पूछने आदि के कारण अकम्पित सिर का अभिनय है।

सुमति– आर्यपुत्र, लक्ष्मीस्वयंवरणयोग्यताद्दशसौकुमार्यनिधेः कथमेतादृशं कठिनत्वमासीत्।[82]

महामोह– (सभयोत्कम्पम्)

घोरानारकपालकुण्डलवतीं विधुच्छटां दृष्टिभिःपश्यन्त्या इव मे मनः कदलिकेवाद्यात्यहो वेपते[83] में कम्पित सर का प्रयोग किया गया है।

शान्तिः – (सरवेदम्) हा धिक् धिक् पुनरपि तामेव संसार वागुराम भिपतितः स्वामी। 'धुत' शिर कहलाता है।[84]

दुर्वासना– (सविषादम्) यद्येवं महामोहपर्यन्तानास्मत्प्रभूणां विनाशो भवेत।[85]

दृष्टि का अभिनय–

विष्णुभक्तिः – (निमीलित दृष्टिःप्रविधानमभिनीय) नूनमनिकेतो यत्रसायंगृहत्वमास्थितो यथा–लब्धवृत्तिर्योगी।[86]

विवेकः – (सकौतुकं दृष्टा)[87]

विवेकः – (परितो दत्तदृष्टिः परामृश्य)[88]

विवेकः – (सर्वतो दृष्टिं प्रसार्य) इयामिह भगवती भागीरथी। अत्र च।।[89]

विवेकः – (मधुरां पश्चन) अत्र खलववतीर्णमवनिभरमपजिहीर्षता सपर्यकन वासुदेवेन।[90]

विवेकः – (परितोऽवलोक्य सविषादम्) इमां मधुरपानीयां दक्षिणापथजाहवीम चौरैः परिवृतो मन्ये विद्यां कुमतिविप्लुताम्।[91]

विवेकः– (सकौतुकमवलोक्य सविमर्शम्) सूत सह्मपर्वत प्रत्यासत्तेरसह्मपवनसंक्षोभ–संत्रासितस्य दुर्वलबुद्धेः कथमत्रावकाशः।[92]

राजा– (विश्वतो दृष्टिं प्रसारयन) देवि दृश्यता मिदमपूर्वमदभुतम् यस्य पुनः स्वेन विना नोपमानान्तरमुपलभामेह।[93]

हस्त के अभिनय–

महामोहः – (सहस्तास्फालनं विहस्य) तदिदं सहस्त्रकिरणस्य तेजोवरदानं, वैश्रवणस्यवा किमप्यैश्वर्यप्रदानम्, यदाजानसिद्धंनिरवधिकवैभवस्य में विल्कवेन विवेकेन

विभूतिविभागभोगलेशाभ्यनुज्ञानम्।[94]

नारदः – (हस्तेन वारयन्) संपन्नो ममासौ सत्कारः। अद्य खल्वौपवस्तं माया व्रतमंगीकृतम्। यावदिह तुलसीवनवासिनीं द्वादसी संभावयामि, तावन्न किंचित्कुतश्चित्प्रतिगृह्यामि।[95]

नेत्रतारक के अभिनय–

राजा– (सहर्षविस्फारिताक्षमवलोकयम्)

पारावारपयोविशोषणकलापारीणकालानल
ज्वालाजालविहारविशिखव्यापारघोरक्रमः
सर्वावस्थसकृत्प्रपन्नजनतासंरक्षणैकव्रती
धर्मो विग्रहवान धर्मविरति धन्वी स तन्वीत नः।[96]

अक्षिपुट के अभिनय– विवेक (सहर्षपुलकोदगम्)[97]

विवेक– (सहर्षभक्तिपुलकोदगम्)[98]

निरंजनमयं जनः किमपि नेत्रमुन्निद्रय
न्नमस्यति शठद्विषे नरकवैरिजीवातये
अगस्त्यगिरिनिम्नगासुभगवीचिकासोदर
स्वलक्षणसरस्वतीसुरभिकेसरश्लाधिने।[99]

स्मित के अभिनय– अंगकुरत्स्मितमकेवलेक्षणं भंगुरुभ्रूवदनं नतभ्रुवाम् अंचिताधरमवंचितादरः पंचबाणसुभटः समीक्षते।[100]

विष्णुभक्तिः – (स्मितं कृत्वा) यद्येव स्यात्सर्व एव वयं कृतकृत्या भवामः। पुरूषचा परां निवृतिमापत्स्यते। किंतु कुतस्तस्य दुरात्मनो जीवत्यागः?[101]

दन्त के अभिनय– महामोहः – (सरोषसंरम्भं दन्तान् कटकटापयन्) भगवन् आः कष्टम्। अश्रुतपूर्वमिदं श्रुतम्। वाचिकशेषस्तु भवतु वा, मा वा। कः कोऽत्र भोः हन्यतामयं वार्ताहरः।[102]

दृष्टि क अभिनय– राजा– (सानन्दमालोक्य)

सैषान्तर्दधती तमोविघटनादानन्दमात्मप्रभं
चेतः कर्षति चन्द्रचूडवसतिर्विद्येव मुक्तेः पदम्
भूमेः कण्ठविलम्बिनीव कुटिला मुक्तावलिर्जाह्वी
यत्रैवं हसतीव फेनपटलैर्वक्रां कलामैन्दवीम्।[103]

हस्त के अभिनय– (हस्तौ निष्पीडरय)

आगर्भं यावदेषां कुलमिदमखिलं नैव निः शेषयामि

स्फूर्जन्तः क्रोधवहेर्न दधति निरति ब्रावदंगे स्फुलिंगाः[104]

वाचिक अभिनय–

यदि अभिनय नाट्यकला का प्राण है तो अभिनय का प्राण है वाचिक अभिनय। वाचिक अभिनय के अभाव में मूक नाट्य में न तो भावाभिव्यक्ति उतनी तीव्र हो सकती है ओर न दर्शकों को उस मात्रा में आनन्द ही आ सकता है। वाचिक अभिनय में नटों तथा पात्रों का विधान रहता है, पाठ्य के द्वारा ही कोई पात्र अपनी भावना अभिव्यक्त करता है तथा अन्य पात्रों के साथ कथनोपकथन में प्रवृत्त होता है। इसलिये भरत ने इसे 'नाट्य का शरीर' माना है– वाचि यत्नस्तु कर्तव्यों नाट्यत्येयं तनुः स्मृता।[105] इस प्रकार वाचिक अभिनय नाट्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है और अन्य अभिनय चित्रवत है। इसकी सबसे बड़ी इकाई है भाषा। उसके अन्दर आने वाले सभी तत्व शब्द, छन्द, अलंकार, लक्षण, दोष, गुण वाचिक अभिनय में ही समाहित हो जाते हैं। पाठ्यगुण भी इसी का एक अंग है।

शब्द भाषा की महत्वपूर्ण इकाई है। आचार्य भरतमुनि ने वाणी का महत्व प्रतिपादित करते हुए, वाचिक अभिनय का स्वरूप इस प्रकार दिया है–जिसमें प्रतिपदिक, क्रिया, निपात, उपसर्ग, समास और तद्वित विद्यमान हों और जो सन्धि तथा विभक्ति से युक्त हो। आचार्य भरत ने पद की परिभाषा पाणिनि–सम्मत ही दी है– विभक्त्यन्त शब्द को पद कहा जता है। पद दो प्रकार के होते हैं– चूर्ण और निबद्ध। चूर्ण पद वे हैं जिनमें न तो मात्राओं और वर्णों की संख्या नियत होती है, न लय और यति इत्यादि का उनमें कोई नियम होता है। और शब्द योजना की दूसरी विद्या निबद्ध शब्द योजना इस पद्य (पद+यत) की संज्ञा दी जाती है क्योंकि इसमें संगीत की गति होती है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' में निबद्ध शब्द योजना का सर्वत्र प्रयोग किया गया है यथा–

अन्तर्नाडीनियमितमरूल्लंघितब्रह्मरन्ध्रं

स्वान्ते शान्तिप्रणयिनि समुन्मीलदानन्दसान्द्रम

प्रत्यग्ज्योतिर्जयति यमिनः स्पष्टलालाटनेत्र

ब्याजव्यक्तीकृतमिव जगद्व्यापि चन्द्रार्धमोलेः।।[106]

किसी विशिष्ट परिमाण में प्रयुक्त पद्य कहलाते हैं। इनमें अक्षरों या मात्राओं की

संख्या नियत होती है विरामों पर टूट होती है जिन्हें यति कहा जाता है। इनके द्वारा अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति की जाती है। अतः इस श्लोक में प्रथम अर्ध भाग में महामोह एवं उनकी सेना का, तृतीय पाद में ससैन्य विवेक का, चतुर्थ चरण में दोनों सेनाओं के विलय के पश्चात अपने स्वरूप का साक्षात्कार प्रस्तुत है। आचार्य भरत का मत है कि ऐसा कोई शब्द नहीं होता जो छन्द तथा लय से सर्वथा शून्य हो और ऐसा कोई छन्द नहीं होता, जिसमें शब्द योजना न हो। छन्द तीन प्रकार के होते हैं– सम, अर्धसम और विषम। इन छन्दों की संख्या 26 मानी गई है और नाट्य शास्त्र में एकाक्षर छन्द से लेकर 26 अक्षरों वाले छन्दों का उल्लेख किया है।

गद्य या चूर्ण शब्दों का प्रयोग संवाद के लिए उपयोगी होता है, जबकि छन्दों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति का समुचित साधन है। जब मन भावनाओं से भर जाता है। और वे भावनाएं रोके नहीं रुकती, तब संगीत स्वतः फूट पड़ता है और छन्द के रूप में साहित्य जगत में अवतरित होता है। धीरगम्भीर वातावरण की सृष्टि के लिए शर्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त किया जाता है। आचार्य कृष्णमिश्र का अतयन्त प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है। वे वसन्ततिलका छन्द में भी प्रभावशाली रचना करते हैं।'प्रबोध चन्द्रोदय'में अनुष्टुप, आर्या, इन्द्रवज्रा, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शालिनी, वंशस्थ, शिखरिणी छन्दों का प्रयोग कर अभिनय को पूर्णता प्रदान की गई है। शार्दूलविक्रीडित छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार है–

जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्रं कलत्रं कुलं
पुत्रा मित्त्रमरातयो वसु बलं विद्याः सुहृद्धान्धवाः
चित्तस्पन्दित कल्पनामनुभवन्विद्धानविद्यामयीं
निद्रामेत्य विधूर्णितो बहुविधान् स्वप्नानिमान्पश्यनि।[108]

अलंकार वाणी में सौन्दर्य का आधान कर उसे ग्राह्य तथा आकर्षक बनाते हैं। अतः इनका उपयोग काव्य और नाट्य में एक समान होता है। आचार्य कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' में उपमा, दृष्टान्त, अतिश्योक्ति, निदर्शना आदि अलंकारों का भली–भांति प्रयोग किया है निदर्शना अलंकार का प्रयोग मिश्र जी को अतिप्रिय है। उदाहरण स्वरूप–

आत्मास्ति देहव्यतिरिक्तमूतिर्भोक्ता स लोकान्तरितः फलानम्। आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रथीयसः स्वादुफलप्रसूतौ।[109]

इन अलंकारों के माध्यम से वाचिक अभिनय की सफल अभिव्यक्ति हो सकी है। जहाँ उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत तथा विलम्बित इन छः को स्वरों के अलंकार कहा गया है। इनमें से सिर से निकलने वाले तार स्वर को उच्च कहते हैं जिसका प्रयोग दूरस्थ व्यक्ति से भाषण, दूराहवान तथा त्रासन आदि में किया जाना चाहिये।

विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन तथा प्रशमन इन छः को पात्रों द्वारा प्रयुक्त पाठ अथवा भाषण को अंग कहा गया है। भाषण के अन्तर्गत लिये जाने वाले विराम को विच्छेद कहते हैं। अर्थ का अनुदर्शक होने के कारण विराम को आवश्यक माना गया है—

कार्यो विरामः पादानते तथा प्राणवशेन वा
शेषमर्थवरोनैव विरामं सम्प्रोजयेत्।।[110]

छन्द के पदान्त में अथवा जहाँ एक साँस समाप्त हो, वहाँ विराम लिया जाना चाहिये। जहाँ अर्थ की समाप्ति हो, वहाँ तो विराम लिया ही जाना चाहिए। प्रबोध चन्द्रोदय में यथा रति का कथन है— शान्तं पापम्। आर्यपुत्र, किं तादृशं पापं विद्धेषमात्रेण तैराध्मम्। भवतु। अस्योपायः को वा मन्त्रितः?[111]

लीलापूर्वक मधुरस्वर में अपने भाषण के भावों का समर्पण, प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुतीकरण ही अर्पण कहलाता है। विसर्ग वाक्य की समाप्ति को कहते हैं प्रबोध चन्द्रोदय में यथा— श्रृद्धा का कथन—

ततो वस्तुविचारेण कामोहतः, क्षमया क्रोधपारुष्यहिंसादयो निपातिताः, सन्तोषेण लोभतृष्णादैन्यानृतपैशुन्यवाक्स्तेयासत्प्रतिग्रहादयो निगृहीताः, अनसूयया मात्सर्य जितम्, परोत्कर्षसंभावनया मदो निषूदितः परगुणाधिक्येन मानः खण्डितः।[112]

एक ही साँस में वोले जाने वाले वाक्यांश में विराम न लेना, अनुबन्ध कहलाता है। प्रबोध चन्द्रोदय में मिथ्या का कथन—सँखि, एकवल्लभापि या स्त्री भवति तस्या अपि निद्रा दुर्लभा किं पुनरस्माकं सकललोकवल्लभानाम्।[113]

अतः पात्र को चाहिए वह पाठय का अशुद्ध पाठ न करे और न छन्द की गति ही भंग करे। उसे न तो अयोग्य स्थल पर विराम ही लोना चाहिए। पात्रों को चाहिए कि वे दोषों से रहित तथा लक्षणों, गुणों, स्वरों और अलंकारों से युक्त पाठ्य का सुन्दर रूप में प्रयोग करें।

'संकल्प सूर्योदय' में वाचिक अभिनय इस प्रकार है—

लास्यान्विता च ललिता च गतिस्त्वदीया
मंजुस्वना बहुगुणा च विभाति वीणा
देहश्च दर्शयति चान्द्रमसीमभिख्यां
प्राप्तोऽसि नस्त्वमिह भोगसमृद्धिहेतुः ।[114]

विराम का प्रयोग–

नारदः – (हस्तेन वारयन्) संपन्नो ममासौ सत्कारः। अद्य खल्वौपवस्तं मया व्रतमंगीकृतम्। यावदित तुलसीवनवासिनीं द्वादशीं सभावयामि, तावन्न किंचित्कुतश्चित्प्रतिगृहामि।[115]

महामोहः – (सरोषसंरम्भं दन्तान् कटकटापयन्) भगवान् आः कष्टम्। अश्रुतपूर्वमिदं श्रुतम्। वाचिकशेषस्तु भवतु वा, मा वन। कः कोऽत्र भोः हन्यतामयं वार्ताहरः।[116]

संवादो में विसर्ग वाक्य की समाप्ति को कहते हैं और विराम न लेना अनुबन्ध कहलाता है। यथा महामोह का कथन–

महामोह– प्रिये संपति संसार संततिनिदानभूतसंभोगारम्भसमयसूचिका प्रजापतिपरिमुक्तपूर्वा प्रवर्तते पितृप्रसूरियमपरा संध्या।[117]

नाट्यशास्त्र में यह भी कहा गया है कि वाक्यों में आने वाले ए, ऐ, ओ तथा औ से युक्त वर्णो के उच्चारण को कुछ लम्बा खींचा जाना चाहिए, पाठ्य को न तो अयोग्य स्थल पर विराम ही लेना चाहिए न दीनता की स्थिति में दीप्त का प्रयोग ही करना चाहिये। पात्रों को चाहिए कि वे दोषों से रहित तथा लक्षणों गुणों स्वरों और अलंकारों से युक्त पाठ्य का सुन्दर रूप में प्रयोग करें।

वाचिक अभिनय में भाषा का स्वरूप–

नाट्यभाषा को दो दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखते हुए किया जाना चाहिए– एक तो पात्रों की भाषा स्वाभाविकता लिए हुए होनी चाहिए, दूसरे उस भाषा को अधिक समूह में समझा जा सके। इसके अतिरिक्त शिक्षितों और अशिक्षितों की भाषा में भी भेद रखना पड़ता है, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति का पता चलाया जा सके।

भाषाओं में संस्कृत का स्थान सर्वदा विशिष्ट रहा है। यह सर्वदा पढ़े–लिखे लोगों की भाषा रही है और सामाजिक प्रतिष्ठा पाये हुए व्यक्ति इसका सर्वदा प्रयोग करते रहे हैं। यद्यपि संस्कृत भाषा को बोलते तो पढ़े लिखे लोग ही थे किन्तु जनसाधारण में इसको स्वाभाविक रूप से ही समझा जाता था।

प्राचीन भाषा को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। संस्कृत एवं प्राकृत

नाटकीय प्रयोगों में आने वाली भाषा के चार भेद हैं– अतिभाषा, आर्यभाषा जातिभाषा और योन्यन्तरी भाषा। देवगण अतिभाषा का प्रयोग करते हैं एवं राजा लोग 'आर्यभाषा' का प्रयोग करते हैं। 'जातिभाषा' म्लेच्छों की भाषा है। ग्राम्य ओर वन्यपशुओं के लिए योन्यन्तरी भाषा का प्रयोग करते हैं। जातिभाषा के दो भेद हैं– संस्कृत और, प्राकृत। उद्दत, ललित, शान्त एवं उदात्त कोटि के पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं और उत्तम कोटि के पात्र भी, जब संकटों से आपन्न रहते हैं, प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं और प्राकृत भाषा के कई भेद हैं, मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शैरसेनी, अर्धमागधी, वाह्मीक एवं दाक्षिणात्या आदि। शकार, अभीर, चाण्डाल, शबर, द्रमिड़ आन्ध्र और वनचर आदि के लिए भी भाषाएँ नियत हैं। विदूषक एंव धूर्त क्रमशः प्राच्या और आवन्ती भाषा का प्रयोग करते हैं। नायिका और उसकी सखियाँ शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग करती है। यथा वेदान्त देशिक कृत 'संकल्प सूर्योदय' नाटक में नायिका सुमति शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग करती हैं।

सुमति–

णाह अचिंतणिज्जमहाप्पाए ईसररस्स विअ तुह सतीए इअरदुध्घडं सव्वं संघडिज्जइति किं अंचरिअं ।[118]

शौरसेनी प्राकृत मध्यवर्तिनी होने के कारण पूर्व और पश्चिम उभयत्र समझी जा सकती थी। अतः संस्कृत साहित्य में उसी का महत्व था। नायिका की सखियाँ भी शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग करती हैं। सुमति एवं श्रृद्धा का संवाद इस प्रकार है– हलासमाणा चित्रकुततणां सहित्रणां नु एव आसि अं अह अंकमलाई अवणा दुं आठता तुम विराअधरं पविससु।

नायक पात्र प्रायः संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। चेट राजपुत्र एवं श्रेष्ठी आदि अर्धमागधी में वार्तालाप करते हैं। 'संकल्प सूर्योदय' में चेटी की भाषा का रूप–

भट्टिणि, एसो महाराजो सेणवइणा सह इदो भट्टिणीए आअमणं पडिपालेंतो ठाइ। ता तुवरिअं एव उबसपपउ भट्टिणी।

इसी प्रकार जैन श्रमणो, भिक्षुओं बालकों ग्रह–ग्रहीतों, स्त्रियों तथा नीच जनों आदि से प्राकृत ही प्रयुक्त करानी चाहिए। आचार्य भरत के अनुसार प्रधान नायक की भाषा संस्कृत ही होती है। कृष्णमिश्र एवं वेदान्त देशिक इन दोनों ने इसका ध्यान अपने नाटक में रखा है। अवसर के अनुसार रानी गणिका, कारीगर स्त्री इत्यादि भी

संस्कृत बोल सकती हैं। यथा प्रबोध—चन्द्रोदय नाटक में नायिका पात्र रति का संवाद इस प्रकार है— अद्य किं ता एव श्क्रवस्सीए उप्पली तुम्हाणं पडिवक्रवाणां सम्पदा? मति का संवाद— अज्जउत्त किंणाम तक्कारणम्?) 119

कृष्णमिश्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में 41पात्र हैं, जिनमें लगभग 16 पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। नाटकीय पात्रों की भाषा जो जिस कर्म से सम्बन्धित होता है, उसका उसी कर्म आदि की उपाधि से संकीर्तन होता है। 'संकल्प—सूर्योदय' के लगभग तीन चार पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इस नाटक की नायिका सुमति प्राकृत भाषा का प्रयोग करती है। नाटक का नायक संस्कृत भाषा का प्रयोग करता है—अत्र किल विश्वतश्रित्रे विश्वचित्रे। अशुद्धसृष्टिविषयं भागं भवभृदाश्रयम् अधिकप्रतिकोटिस्थं दृष्टिस्तव दिदृक्षते।।[120]

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में नटी, रति, मति, शिष्य, तृष्णा, हिंसा विभ्रमावती, मिथ्यादृष्टि, करूणा, दिगम्बर, श्रृद्धा, क्षपणक मैत्री, प्रतिहारी आदि प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, और उत्तम कोटि के पात्र भी जब संकटों से आपन्न रहते हैं तब प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं— यथा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में पुरूष पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग इस प्रकार करता है— पुरूष— हग्गे उक्कलदेसादो आगदोम्हि। अत्थि तत्थ साअलतीलसण्णिवेसे पुलिसोत्तमसग्गिदं देवदाअवणम। तस्मिं मदमाणेहिं भट्टकेहिं महालाअसआसं पेसिदोम्हि। एसा वालाणसी। एदं लाअउलम्। जावप्पविसामि। एसो भट्टको चब्बाकेण सद्धंकिंवि अन्तअन्तो चिट्ठदि। ता उवसप्पामिणम। जेदु—जेदु भट्टको। एदं पतं जावं विलुप्पअमाणं पेवखदु भट्टको)।[121]

इस नाटक में नायक विवेक संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करता है नाटककार का संस्कृत भाषा पर स्वाभाविक अधिकार था। अतः दोनों नाटकों की भाषा कहीं भी जटिलता, दुरूहता एवं अस्पष्टता के दोषों से आक्रान्त नहीं है भाषा प्रसाद गुणमयी है—

ज्ञातुं वपुः परमितः क्षमते त्रिलोकीं
जीवः कथं कथय संगतिमन्तरेण
शक्नोति कुम्भनिहितः सुशिखोऽपि दीपो
भावान्प्रकाशयितुमप्युदरे गृहस्थ।।[122]

'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में भिक्षु के कथन में गतिशीलता सरलता एवं प्रभावशीलता

सर्वत्र परिलक्षित होती है। भावों की अभिव्यक्ति में भी वह सर्वत्र समर्थ हैं। अतः वाचिक अभिनय में तपस्वी, अर्च्य एवं विद्वान पात्र को 'भगवान' शब्द से सम्बोधित करते हैं प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में– मन का संवाद देवी सरस्वती के लिये– भगवति शब्द का प्रयोग किया गया इसी प्रकार 'संकल्प सूर्योदय' में तुम्बुरूः नारद को भगवन शब्द से सम्बोधित करते हैं–

तुम्बुरूः – भगवन दुर्जयोऽसौ कोपः कथं नाम निर्जित इति विसमियाविद्धं मामकं चेतः इसी प्रकार विष्णुभक्ति आदि पात्र सम्बोधित करते हैं। नृप को 'महाराज' एवं नीच पात्रों द्वारा राजा को 'महिन' कहा जाता है यथा 'संकल्प–सूर्योदय' में विष्णुभक्ति द्वारा महाराज सम्बोधित करना। राजा की प्रजा राजा को देव शब्द से सम्बोधित करती है 'प्रबोध चन्द्रोदय' में श्रृद्धा एवं विवेक को देव शब्द से सम्बोधित करती है और संकल्प सूर्योदय में विष्णुभक्ति द्वारा देव सम्बोधित किया जाता है। अधमपात्र के द्वारा मन्त्री को आर्य कहा जाता है और नटी व सूत्रधार परस्पर एक दूसरे को आर्य व आर्ये इस तरह सम्बोधित करते हैं। प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्प सूर्योदय नाटकों में भी नटी व सूत्रधार परस्पर आर्य व आर्ये सम्बोधन करते हैं यथा– सूत्रधार– आर्ये इतस्तावत्। संकलप सूर्योदय– नाटक में नटी का कथन इस प्रकार है– सूत्रधार आर्ये अंलकातंर्य्येण। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में रति एवं मति कामदेव को आर्यपुत्र से सम्बोधित करती हैं। संकल्प सूर्योदय में परिपार्श्विक जो सूत्रधार की अपेक्षा न्यून गुणों से युक्त रहता है, सूत्रधार के द्वारा 'मार्ष' कहा जाता है। और अवस्था एवं गुणों में समान पात्र परस्पर मित्र, सखा, सखि, सखे सम्बोधित करते हैं। यथा 'प्रबोध चन्द्रोदय' में मिथ्यादृष्टि विभ्रमावती को करूणा, शान्ति को सखि सम्बोधित करती है। इसी प्रकार संकल्प सूर्योदय में नारद तुम्बुरू को, कुहना को लोभ सखे शब्द से सम्बोधित करते हैं। ब्राह्मण अपनी इच्छानुसार राजा को उसके नाम से सम्बोधित कर सकता है और राजा मन्त्रियों को अमात्य या सचिव कहता है और सेनापति को सेनापति से सम्बोधित करता है– यथा 'संकल्प सूर्योदय' राजा का कथन– सेनापते! पश्य पश्य।

शिष्य या पुत्र गुरू अथवा पिता के द्वारा 'पुत्र' 'वत्स' तात शब्द से पुकारा जाता है 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में सरस्वती मन को वत्स शब्द से सम्बोधित करती हैं और अहंकार, दम्भ को, विष्णुभक्ति श्रृद्धा को, वत्से सम्बोधित करते हैं और वटुः अहंकार को ब्रह्म शब्द से सम्बोधित करता है और शिष्य चार्वाक को आचार्य शब्द से

सम्बोधित करते हैं।

स्त्रियों को कभी–कभी उनके पिता या पुत्र के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। कुल शील वय एवं अवस्था आदि में समान स्त्रियाँ परस्पर 'हला' शब्द का प्रयोग करती हैं। कुलीन स्त्री सेविका को 'हंजे' कहती हैं।

'संकल्प सूर्योदय' नाटक में राजा का संवाद– राजा अहो नु खलु भगवतो महामुनेः प्रपश्चितपरम पुरूष भावनाविशेषा विपश्चिकानिनादकुर्बुरा विभ्रमगीतिः ।।
प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में प्रबोध का कथन –

मैत्री अहो हताशा घोरदर्शना। अथ तयागतया किं कृतम्। तपस्वी तथा शान्त मनुष्यों को साधु तथा युवराज को स्वामिन तथा भद्रमुख कहकर सम्बोधित किया जाना चाहिये यथा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में विष्णुभक्ति का श्रृद्धा के प्रति कथन इस प्रकार है– विष्णुभक्ति– साधु–साधु संपन्नम। अथ महामोहस्य को वृतान्तः संकल्प सूर्योदय में पुरूष का श्रृद्धा के प्रति कथन इस प्रकार है–
पुरूषः – भद्रे, भविष्यत्यपि परमपुरूषार्थे दृष्टिं प्रतिरूणद्धि मे दुर्वारासौ दोषानुवृत्तिः। अपने परिजनों से राजपत्नी 'भट्टिनी' 'स्वामिनी' देव' शब्दों से सम्बोधित होती है। 'संकल्प– सूर्योदय' नाटक में राजा के कथन द्वारा देवि शब्द का प्रयोग इस प्रकार है– राजा– देविअस्माभिर नया च महाप्रभावया विष्णुभक्त्या नित्यप्रत्यूढनिखिलान्तरायस्य तातस्य किं नाम संप्रति काड़क्षित विलम्बकारणम् पश्यः पश्य। श्रृद्धा के द्वारा भर्ता का प्रयोग इस प्रकार है– श्रृद्धा, भर्तः अज्ञात परमरमार्था स्त्रयपि किमपि विज्ञापयति। 'प्रबोधचन्द्रोदय' में शान्ति के द्वारा पुरूष को सम्बोधित करना, शान्ति– स्वामिन! एषोपनिषददेवी पादवन्दनायागता। राजा के अन्तः पुर में रहने वाले मागधी भाषा बोलते हैं, दास राजपुत्र और सेठ 'अर्धमागधी' बोलते हैं, विदूषक आदि प्राच्या का व्यवहार करते हैं, नायिकाओं और सखियों की भाषा शौरसेनी होती है। शौरसेनी ही विभिन्न प्रदेशों की विशेषतायें तथा उच्चारणविधि लेते हुए बोली जाती है। पात्र के देश का भाषा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक हैं, किन्तु इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अधिक विस्तृत क्षेत्र में भाषा को सर्वजनसंबेद्य बनाने के लिये उसी में विभिन्न प्रदेशों के शब्द सम्मिलित कर विभिन्न प्रदेशों की भाषा बना ली जाती थी।

नाटक की भाषा सरल तथा चरित्रों के अनुकूल होनी चाहिये।[125] भाषा का

सरल होना जनसाधारण के लिये आवश्यक है। रूपकों और नाटकों को सार्ववणिक कहा गया है, ऐसी स्थिति में यदि इसमें सरलता तथा पात्रानुकूलता न होगी तो उसे जन–साधारण न समझ सकेगा।[126]आलोच्य नाटकों में कथोपकथन इस प्रकार है–

कथोपकथन

'संवाद नाटक की सीढ़ी है, जिस पर चढ़कर पात्र अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। एक तरह से यों कहना चाहिए कि नाटक की सफलता उसकी संवाद–प्रौढ़ता है।''[127] संवादों के द्वारा ही नाटक का कथानक आगे बढ़ता है और अपनी सिद्धि को प्राप्त करता है। संवाद के विषय में नाट्याचार्यों ने बड़ी उपादेय बातें विस्तार के साथ लिखी हैं। आचार्य भरत के अनुसार ''नाटक मृदु तथा ललित पदों से युक्त तथा अस्पष्ट शब्द अर्थ से हीन होना चाहिए। बुद्धिमानों को सुख देने वाला, बुद्धिमानों के द्वारा खेला जा सकने वाला, बहुत से रसों को व्यक्त करने का मार्ग खोलने वाला, ठीक सन्धियों से सधा हुआ ही नाटक दर्शकों के लिए उपयोगी होता है। अतः इसका ताप्पर्य यह है कि भरत मुनि ने संवाद योजना के विषय में तीन बातें स्पष्टतः प्रतिपादित की है। पहला तो यह कि संवाद कहीं भी ऐसा न होना चाहिए कि जिसके अर्थ समझने में श्रोताओं को कठिनाई हो। संवाद सुनते ही वक्ता का भाव स्पष्ट हो जाना चाहिए, दूसरा यह है कि उन संवादों से दर्शकों को रसानुभूति होनी चाहिए, बल्कि रस से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है और तीसरी बात यह है कि बुद्धिमान लोग ही उसे खेल सकते हैं। भरत की सम्मति में संवाद की योजना करते समय नाटककार को अलंकार के प्रपंच में नहीं पड़ना चाहिए, उसे सदा ध्यान रखना चाहिए कि उसमें ऐसी बातें न आवे जो श्रोताओं की समझ में न आवे, या अस्वाभाविक हो या जो उचित न हो और जिसके अनुसार अभिनय करने में अभिनेताओं को असुविधा हो।''[128] आचार्य कृष्ण मिश्र एवं वेंकट नाथ ने भाव भंगिमा तथा संवाद दोनों को नाटक के लिये उपयोगी और अनुपेक्षणीय उपकरण माना है। हिन्दी के कवि जयशंकर प्रसाद के अनुसार– ''कोई भाषा अपने विनय और शील तथा सदिच्छा की अभिव्यक्ति के लिए गौरव कर सकती है और उस शिष्टाचार का प्रथम सोपान भावभंगी और कथोपकथन में नाटक के कथोपकथन बहुत कुछ हाथ बँटाते हैं।''[129]

कथोपकथन नाटक की कथा को विकसित करने के प्रमुख साधन है। भाषा में सौष्ठव उत्पन्न करने में भी नाटक के संवाद सहायक होते हैं, क्योंकि नाटकीय

कथोपकथन की भाषा सामान्य स्तर की न होकर उच्चस्तरीय होती है।

नाट्यधर्म की दृष्टि से वस्तु के तीन प्रकार बताए गए हैं– सबके ही सुनने योग्य, नियत जनों के ही सुनने योग्य, किसी के भी न सुनने योग्य–
'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्'[130] सबके सुनने योग्य वस्तु 'प्रकाश' तथा किसी के भी न सुनने योग्य वस्तु 'स्वगत' कहलाती है।

किसी पात्र के मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए अथवा मनोविश्लेषण के लिए स्वगतोक्ति एक कलात्मक नाटय–रूढ़ि हैं।स्वगत की नियतश्राव्य और अश्राव्य पद्धति को संस्कृत नाटकों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त रहा है। स्वगत–भाषण नाटकीय घटनाओं का सांकेतित निर्देश है, जो भावी घटना चक्र की रूपरेखा बताता है। इस उद्देश्य से संवादों में स्वगत चित्रण को को अपनाया जाता है।[131] आचार्य कृष्ण मिश्र ने 'स्वगत–संवाद' अहंकार, महामोह, कापालिक, मैत्री आदि के द्वारा कहलवाया है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक के पात्र महामोह का स्वगत कथन–
महामोह–(स्वगतं विचिन्त्य) शान्तेः कोप्युपायः। अथवा अलमुपायान्तरेण। क्रोधलोभावेव तावदत्र पर्याप्तौ। (प्रकाशम) कः कोऽत्र भोः।[132] असीम क्रोध में कभी–कभी हृदय में भावों का अत्यधिक आवेग हो जाने पर, एक दो वाक्य मुख से निकल जाते हैं। ये स्वोक्तियाँ कथावस्तु के पूर्व सूत्रों की सूचना के लिये प्रयुक्त होती है, देखिये–
कापालिक– (स्वगतं) अये, अश्रद्धाक्षिप्तमनयोरन्तः करणम्। भवत्वेवं तावत। आचार्य कृष्ण मिश्र एवं वेंकटनाथ ने नाटक में 'स्वगत' का कुशल प्रयोग किया है। 'संकल्प सूर्योदय' में राजा, सुमति, तर्क, नारद, संकल्प, वसंत, रति, शिष्य, दर्प, महामोह, दंभ आदि के द्वारा स्वगत कथन कराया है। अष्टमोऽंक में नारद के चार स्वगत कथन है, जो इस प्रकार है–
नारद– (स्वगतम्) कलहकौतुकिनामस्माकं तपांसि परिणमन्ति। ननु स्वात्मावधिरियं महामोहस्य शवमुष्टिवद् गृहीत ग्राहिता।[134] प्रथम अंक में वंसतः के कथन में स्वगत कथन इस प्रकार है–
वंसत– (स्वगतम्) स खलु संकल्प–सूर्योदयः निर्मूलनरस्त्वेषनः इति शेष अन्यथा तु पूरयामि।[135] और सबके सुनने योग्य संवाद 'प्रकाश' कहलाता है। आलोच्य नाटकों में 'प्रकाश' का प्रयोग इस प्रकार है–
नारद– (प्रकाशम) महाराज त्वमेव खल्वत्यदभुतः। यदुत पुष्कर पलाशवन्निर्लेपस्वभावं

पुरुषमनन्तान् भोगाननुभावयसि।[136]

प्रबोध चन्द्रोदय में प्रकाश का प्रयोग मैत्री पात्र में इस प्रकार है–

मैत्री– (प्रकाशम) प्रियसखी श्रद्धे, किमिहि त्वमुत्कलित हृदया मामपि न विलोकयसिं।[137]

अहंकार, महामोह, कापालिक, मैत्री आदि के संवादों में, 'प्रकाश' का प्रयोग किया गया है। 'संकल्प–सूर्योदय' में सुमति, राजा, तर्क, नारद, दूत, संकल्प, रति, वंसन्त, शिष्य दर्प महामोह, दंभ आदि द्वारा 'प्रकाश' का प्रयोग कराया गया है।

नियतश्राव्य–जनान्तिक और अपवारित के भेद से दो प्रकार का होता है– वार्तालाप के सन्दर्भ में जो त्रिपताक रूप हाथ के द्वारा अन्यों को बचाकर बहुत से जनों के मध्य में दो पात्र आपस में बात–चीत करते हैं वह जनान्तिक हैं।

अपवारित– रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परातृत्यापवारितम्।[138] जहाँ मुँह फेरकर दूसरे व्यक्ति से गुप्त बात कही जाती है वह अपवारित संवाद कहलाता है। 'आकाशभाषित' जहाँ कोई पात्र अकेला दूसरे पात्र के बिना तथा किसी के बिना कहे भी मानो सुनकर ही क्या कहते हो, इस प्रकार कथन आकशभाषित है।

संवाद के लिये औचित्य का बहुत ही अधिक महत्व होता है– क्या कहना चाहिए, कब कहना चाहिए, कैसे कहना चाहिए? कवि को नाटक में बलपूर्वक खोजकर अलंकारों का विधान नहीं करना चाहिए, अन्यथा भाषा दुरूह अस्वाभाविक क्लिष्ट तथ दुर्बोध बन जाती है।''रंगमंच के नाटकों के लिए संवाद संक्षिप्त और चुभते हुए होने चाहिए। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को व्यक्त करने वाली प्रभावशालिनी भाषा हो जिससे हृदय पर पात्र की पूरी छाप पड़ सके। संस्कृत के नाटकों में संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं का मिश्रण रहता है, जो पात्र की सामाजिक और सांस्कृतिक योग्यता के अनुसार ही निबद्ध की जाती है। संवाद के लिये प्रसाद और कौतूहल दो गुण आवश्यक होते हैं। प्रसाद के द्वारा वक्ता की बात श्रोता के हृदय तक पहुँचती है। वह उसे भली भाँति समझता है और उसका आनन्द लेने की ओर प्रवृत होता है। आलोच्य नाटकों में कतिपय दृष्टान्त इस प्रकार है–

चार्वाकः – धूर्तप्रणीतागमप्रतारितानामाशामोदकैरियं तृप्तिर्मूर्खाणाम्।

चार्वाकः – (विहस्य) आः दुर्बुद्धिविलसितमिदं नरपशूनाम्।

त्याज्यं सुखं विषयसंगमजन्म पुसां

दुःखोपसृष्टमिति मूर्खविचारणैषा

व्रीहींज्जिहासति सित्तोत्तमतण्डुलाढयान

को नाम भोस्तुषकणोपहितान्हितार्थी । ।[139]

संकल्प–सूर्योदय के संवादो में 'कौतूहल' का प्रयोग इस प्रकार है–

तुम्बुरुः – (साश्चर्यम) भगवन् किमयमिदानीं मेघनाद इव तिरस्करणीं विद्यामास्थितः यदसाविदानीमेवास्माभिदृष्टिः क्षणान्तरे न दृश्यते ।[140]

पुरूष– भद्रे भविष्यत्यापि परमपुरूषार्थे दृष्टि प्रतिरूणद्धि मे दुर्वारासौ दोषानुवृत्तिः । तथाहि–

सकृदपि विनतानां सर्वदे सर्वदेहि

न्यूपनिषदभिघेये भागधेये विधेये

विरमति न कदाचिन्मोहतो हा हतोऽहं

विषमविषयचिन्तामेदुरा में दुराशा ।[141]

आचार्य कृष्णमिश्र एवं वेंकट नाथ ने भाषा तत्व तथा काव्य तत्व पर गम्भीर विचार प्रस्तुत किया जिसका उपादेय नाटक को रोचक बनाने के लिए उपर्युक्त है ।आलोच्य नाटकों में अहार्य अभिनय को महत्व दिया गया है। बाह्म वस्तुओं से किया जाने वाला वर्ण आदि का अनुकरण आहार्य अभिनय कहलाता है– ''वर्णाद्यनुक्रियाऽऽहार्यः बाह्य वस्तु निमित्तः ।''[142] किसी भी नाटककार को नाट्य की सफलता के लिए इस अभिनय की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार के अभिनय के लिए पात्रों के नेपथ्य चार प्रकार का होता है पुस्त, अलंकार अंग रचना और सजीव पुस्त के अर्न्तगत पर्वत, वाहन, प्रसाद, आयुध एवं कवच आदि जिनका प्रयोग नाट्य में किया जाता है। पुस्त के अनेक भेद प्रभेद पाए जाते है। शरीर में धारण करने योग्य महिलाएँ, एवं आभूषण आदि जिनसे शरीर के विभिन्न भाग संवारे जाते हैं, अलंकार कहलाते है। माल के पाँच प्रकार हैं– वेष्टित, वितन, संधात्यक, ग्रंथिम् और प्रलम्बित। अन्य विद्वानों ने अभूषणों के चार भेद बताए हैं जो इस प्रकार हैं– आवेध्य, बन्धनीय, प्रक्षेप्य, आरोप्य, पुरूषों के लिये निम्न आभूषण हैं। चूड़ामणि और मुकुट शिर के आभूषण हैं, कुण्डल एंव मोचक कर्ण के आभूषण हैं। मुक्तावली एवं सूत्र ग्रीवा में पहने जाते हैं, फटक अंगुलियों का आभूषण है, वलय बाहुनाली का आभूषण हैं। प्रबोधचन्द्रोदय, एवं संकल्पसूर्योदय नाटकों में आहार्य अभिनय का सफल प्रयोग किया गया है। स्त्रियों के आभूषण में चूड़ामणि, शिखापास, शिखाजाल, मकरिका और मुक्ताजाल आदि शिर के

आभूषण हैं। वाहुकंकण भुजा का, प्रवोध चन्द्रोदय नाटक में देवी उपनिषद के द्वारा अहार्य अभिनय का प्रयोग दृष्टव्य है–

वाह्योर्भग्ना दलितमणयः श्रेणयः कंकणानां

चूड़ारत्नग्रहनिंकृतिभिर्दूषितः केशपाशः।[143]

हमारे वाहुकंकण की मणियाँ टूट–फूट गईं, चूड़ामणि के अपहरण से केशपाश दूषित कर दिय गया और भी मिथ्यादृष्टि के वर्णन में–"दोषान्दोलनलोलकंकण परणत्कारोत्तरं सर्पति।"[144] कुण्डल, शिखीपत्र, कमल, मोचकं, कर्णिक, कर्णवलय और कर्णपूर्ण आभूषण हैं। कांची, कुलक मेखलां, रसना, कलापं श्रोणि के आभूषण हैं। नूपुरू किंकिणी और रत्नजाल आदि घुटिका के आभूषण हैं। 'प्रबोध चन्द्रोदय' की नायिका पात्र विभ्रमावती चरण नूपुरझंकारमुखय्या" चरणों के नूपुरों की झंकार से मुखरित में नुपूरो का प्रयोग किया गया है। अंहकार वटु को देखकर वटु की निन्दा करता है। इस दृश्य में आहार्य अभिनय इस प्रकार हैं–

"भिक्षामात्रगृहीतयतिव्रता मुण्डितमुण्डाः पण्डितंमन्यावेदान्तशास्त्रं व्यावुलयन्ति।"[145] केवल भिक्षा के लिये सनयास की वशे भूषा धारण किये हैं, मुण्डन कराये हैं, दण्ड को अलंकृत करके कमण्डल लिये अक्षसूत्र के प्रत्येक दाने पर अंगुलियों को फिराते हुए। शाक्य, श्रोत्रिय निर्ग्रन्थ तपस्वी एवं धार्मिक कार्यों में संलग्न लोगों का सिर केशविहीन होना चाहिए। तपस्वी की कन्या सिर पर एक वेणी ही धारण करती है, परन्तु उसे बहुत अलंकृत नहीं होना चाहिए। देवतागृह जाते समय, किसी धार्मिक उत्सव के समय अथवा विवाहादि अवसर पर श्वेत वस्त्रों को धारण करना चाहिए–

मृद्विन्दुलांछितललाटभुजोदरोरः

कण्ठोष्ठपृष्ठचिबुकोरूकपोलजानुः

चूड़ाग्रकर्णकटिपाणिविराजमान

दर्भांकरः स्फुरति मूर्त इवैष दम्भः।[146]

ललाट, बाहु, उदर, कण्ठ, ओष्ठ, पीठ, कपोल आदि स्थानों पर चन्द्राकार चन्दन धारण किये तथा शिखा, कर्ण, कटि देश और करों में कुश लिये हुये यह तो शरीरधारी दम्भं सा प्रतीत हो रहा है–

अस्पृष्टचरणा हास्यं चूड़मणिमरीचिभिः

नीराजयन्ति भूपालाः पादपीठान्तभूतलम्।[147]

पुस्त के अन्तर्गत, 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में– स्फटिक शिला निर्मित वेदिकाओं का संस्कार करिए। मणियों से दीप्त तोरणों की पंक्तियाँ सर्वत्र अवलम्बित हों प्रसादों पर इन्द्रधनुष के समान चित्रवर्ण ध्वजायें फहरायें का निर्देश है। देवता, दानव यख, गर्न्धव, नाग, राक्षस, भूपति एवं श्रृंगारप्रिय व्यक्तियों को रंग विरंगा वस्त्र पहनना चाहिए। कुन्चुकी, अमात्य, सेनाध्यक्ष, पुरोहित, सिद्ध, विद्याधर, व्यापारी, शास्त्रों में प्रवीण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और स्थानीय का वस्त्र श्वेत होना चाहिए, पागल उन्मत्त एवं आपत्तियों से घिरे हुये पुरूषों के वस्त्र मलिन होते हैं। तपस्वी, निर्गन्ध, शाक्य एवं श्रोत्रिय आदि की साम्प्रदायिक वस्त्रों का ही प्रयोग कराया गया है। दोनों नाटकों में। व्यक्ति की परिस्थितियों के अनुसार श्मश्रु के चार भेद है– शुद्ध, श्याम, विचित्र रोमश, जो व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके, दुःख और आपत्तियों से घिरे हुए हो उनकी श्मश्रु श्याम वर्ण की दिखाई गई है। नेपथ्य के चौथे भेद संजीव में मंच पर जीव जन्तु का प्रवेश दिखलाया जाता है।

भारतीय रंगमंच कलात्मक दृष्टि को प्रमुख महत्व देता है। इसमें यथार्थ जीवन को स्वीकार किया गया है। 'संकल्प सूर्योदय' नाटक में मणि, नूपुर, मेखला का आहार्य अभिनय में प्रयोग किया गया है–

शिज्जानमंजुमणिनुपुरमेखलस्ते
संचार एष चतुरो यदि नान्तरायः।[148]
चलघुरूघुरूमालाश्लेषवाचालजड़घः
शर इव निरपायश्चारूचण्डातकश्रीः
अयमिह रूचिराभिः स्त्रग्भिरून्नद्धमौलि
स्त्वरितमुपसमेति स्वेदभिन्नः सुगन्धिः।[149]

उक्त में घुंघरू, माला आदि का वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र में भिन्न–भिन्न जाति के व्यक्तियों के रंगों का भी उल्लेख आता है। गौर–वर्ण में सजाए जाने का निर्देश मिलता है। रंगो के मिश्रण के भी अच्छे प्रयोग बतलाये गये हैं। भिन्न स्थिति के व्यक्तियों के बालों तथा मूछों की सजावट की भी विधि दी गई है। विदूषक गंजा दिखलाया जाता है। शिरोभूषा तथा मुकुट का भी पूरा वर्णन मिलता है।[150]

सात्विक अभिनय

सत्व का प्रदर्शन ही सात्विक अभिनय के नाम से जाना जाता है– अव्यक्तरूपं सावं

हि विज्ञेयं भावसंश्रयम्द यथास्थानरसोपेतं रोमांचास्त्रादिभिर्गुणैः।[151] सात्विक अभिनय का तात्पर्य विभिन्न भावों का प्रदर्शन ही है। एकाग्र मन को सत्व कहते हैं। इस अभिनय में स्वरभेद, कम्पन, स्तम्भ, रोमांच, मूर्च्छा विवर्णता, अश्रु निःश्वास एवं हिक्का आदि अनुभावों का प्रदर्शन रस तथा उत्तम, मध्यम एवं अधम आदि प्रकृतियों के औचित्य के अनुसार किया जाता है। भावों का प्रदर्शन तो आंगिक तथा वाचिक अभिनयों द्वारा भी होता है। अस्तु यह सात्विक अभिनय वहाँ भी विद्यमान रहता है। इस प्रकार यह अभिनयों में एकरूपता लाने का कार्य करता है।

मन की स्थिरता न होने पर नटस्वरभेद आदि का प्रदर्शन नहीं कर सकता इस प्रकार के अभिनय को वाचिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह शब्दानुकरण रूप नहीं हुआ करता है।

श्रृंगार सम्बन्धी अनेक प्रकार के भावों तथा हेलाओं आदि का वर्णन प्राचीन काल में नाटक में प्रेम कथाओं का ही प्रधान्य होने के कारण विशेष रूप से स्त्रियों के ही भावादि के अभिनय के वर्णन का प्रधान्य मिलता है। देहात्मक सत्व से भाव की उत्पत्ति कही गई है, जो कवि के अर्न्तनिहित भाव को भावित अर्थात् प्रकाशित करने वाला होता है। भाव से ही हाव की उत्पत्ति कहीं गई है। जिसमें ग्रीवा भंगिमा तथा भ्रू विक्षेपादि के द्वारा चरित्र के हृदयगत श्रृंगार की सूचना मिलती है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में सात्विक अभिनय के उदाहरण रति के संवाद में दृष्टव्य हैं–

रति (सभयम्) हा धिक्। हा धिक। कथमऽस्माकं कुले राक्षसीति वेपते मे हृदयम।[152]

कम्पन– सात्विक अभिनय दिखलाया गया है–

रति– (सत्रासोत्कम्पम्) आर्यपुत्र, परित्राहि परित्राहि। [153]

आलिंगन– (इति भर्तारमालिंगति)

लज्जा सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्न दृष्टान्त में देखिए–

राजा– (सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)[154]

सात्विक अभिनय विहस्य का उदाहरण महामोह के इन्द्रलोक से काशी आगमन पर इस प्रकार है–

महामोह– (विहस्य) अहो निरकुशा जडधियः।[155] आत्मास्ति देहव्यतिस्किमूर्तिर्भोक्ता स लोकान्तरितः फलानाम् आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रर्थायसः स्वादुफलप्रसूतौ।

इसी प्रकार चार्वाक का कथन– आः दुर्बुद्धिविलसितमिदं नरपशूनाम्। त्याज्यं सुखं

विषयसंगमजन्म पुंसां।[156]

प्रबोध चन्द्रोदय के तृतीय अध्याय में श्रृद्धा के अपहृत हो जाने पर अश्रु सात्विक अनुभाव का प्रयोग इस प्रकार है——

शान्ति— (शास्त्रम्) मातः मातः क्वासि देहि में प्रियदर्शनम्

मुक्ततंककुरंकाननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः
पुण्यान्यायतनानि संततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः
यस्याः प्रीतिरमीषु सात्रभवती चण्डालवेश्मोदरं
प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तंगता।[157]

शान्ति और करूणा के द्वारा श्रृद्धा के अन्वेषण पर आनन्द का रूप इस प्रकार है—

करूणा— (सानन्दम) सखि, दिष्ट्या वर्धसे विष्णुभक्त्या देव्याः पार्श्ववर्तिनी श्रृद्धेति।[158]

विषाद— विषाद सात्विक अभिनय का दृष्टान्त इस प्रकार है—

कापालिक— (सविषादम्) अहो महत्कष्टमापतितं महारजस्य।

तथाहि—

मूलं देवीं सिद्धये विष्णुभक्ति
स्तां च श्रृद्धानुव्रता सत्वकन्या
कामान्मुक्तस्तत्र धर्मोऽप्यभूच्चे
त्सिद्धं मन्ये तीद्ववेकस्य कृत्यम्।[159]

सभयोत्कम्प— चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में मैत्री और श्रृद्धा के संवाद में

श्रृद्धा— (सभयोत्कम्पम्)

घोरां नारकपालकुण्डलवतीं विधुच्छटां दृष्टिभि
र्मुंचनतीं विकरालमूर्तिमनल ज्वालापिशंगैः कचैः।
दृष्ट्राचन्द्रकलांकुरान्तरललज्जिहां महाभैरवीं
पश्यन्त्या इव मे मनः कदलिकेवाद्याप्यहो वेपते।[160]

उच्छ्वास सात्विक अभिनय इस प्रकार है—

श्रृद्धा— (विलोक्य सोच्द्धवासम्) अये, मे प्रियसखी मैत्री

कालरात्रि करालास्यन्दतान्तर्गतया मया
दृष्टासि सखि सैव पुनरत्रैव जन्मनि।[161]

प्रसन्नता पूर्वक—

राजा— (सप्रसादम्) तत्सज्जीभवतु भवांशत्रुविजयाय।[162]

नाट्य के पंचम अध्याय में, काम, क्रोध, हिंसा, लोभ, तृष्णा, मिथ्या आदि के नष्ट होने पर विष्णुभक्ति के मनोभाव में हर्ष का प्रयोग इस प्रकार किया गया है—

विष्णुभक्ति— (सहर्षम्) साधु—साधु संपन्नम्। अथ महामोहस्य को वृतान्तः।[163]

दुःख —

शान्ति— (सखेदम) हा धिक् हा धिक् पुनरपि तामेव संसारवागुराम भिपतितः स्वामी।[164]

आहलाद— षष्ठ अंक में प्रबोधोदय के उदित होने पर सात्विक अभिनय का प्रयोग इस प्रकार है—

पुरूष— (साह्लादम्) एहिपुत्र, परिष्वजस्व माम्।[165]

'संकल्प सूर्योदय' में सात्विक अभिनय के कतिपय उदाहरण इस प्रकार है—

राजा— (सकौतुकमवलोक्य) देवि, द्वश्यतां स एष त्रिगुणपरिणतिरूपोऽपि परमपुरूषपरिग्रहात्परिशुद्धतरः पारावारः। अपि च सुरभिसुरद्रुमचिन्तामणि प्रभृतिपात्रसात्करणजनित हर्ष प्रकर्षस्ताण्डवोद्यत इवायमकूपारस्तरंगमण्डलेन।[166]

रोमांच सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्नवत है—

राजा— अहो महत्तरमदभुततरं च महीघरमिदं रूपम्।

(अज्जलिं वद्वा सहर्षभक्तिरोमांचगंगदम्)

कापि कलपान्तवेशन्ते खुरदघ्रे समुद्धताम्

वहते मेदिनीमुस्तां महते पोत्रिणे नमः।[167]

विषाद सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्नवत है—

दुर्वासना— (सविषादम्) यद्येवं महामोहपर्यन्तानामस्म त्प्रभूणां विनाशो भवेत।[168]

कम्पन सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्नवत है—

महामोह— (सक्रोधकम्पम्) भगवन, पापीयान् खल्व सावशेष भोगनिर्मूलनोद्यतो विवेकहतकः। मोधारम्भक्षपितमनसा मोहवीरस्त्रिलोकी वेलाभेदस्वरसरसिकों विभ्रमप्राणमित्रम् ब्रह्मस्तम्बप्रसृतनिगमस्तोमशाखाविभंग क्रीडचण्डः कृपण भवता किं न दृष्टः श्रुतोवा।[169]

हर्ष सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्नवत है—

तुम्बुरुः — (सहर्षम) भगवन् संप्रति लोभविध्वंसनेन लुप्तलोकायतमिव लोकमवलोकयामि।

प्रशस्तिं विन्दन्ति प्रशमसुखदिव्यामृतरस

प्रलीनोदन्यानां परिषदि न संपत्तिसरितः

अमित्रोपक्षेपक्षणविगलदात्मीयपृतना

दृढामंत्रस्यदद्रीभिऽभटजडधाजवभृतः ।।[170]

सहास सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्नवत है–

नारदः – (सहासम्) किमस्यानेन दुर्भेदयुवति यूथण्यूहकल्पनेन ।[171]

आश्चर्य सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्नवत है–

तुम्बुरूः – (साश्रचर्यम्) भगवन्, किमयमिदानीं मेघनाद इव तिरस्करणीं विद्यामास्थितः यदसाविदानीमेवास्माभिर्दृष्टः क्षणान्तरे न दृश्यते ।[172]

अदभुत सात्विक अभिनय का प्रयोग निम्न प्रसंग में देखें–

तुम्बरूः – (सहर्षादभुतम) भगवान्, इदं पुनरिह महामोहस्य मौलिताडनम। अत्र हि– निरूद्धरिपुडम्बरो निगमघोषनिष्पादित प्रतिश्रुतिरनुद्रुतप्रलयसिन्धुधीरध्वनिः त्रिवर्गपुटभेदन– प्रथमकम्पकर्णजपो विवेकसुभटाग्रतो विजयदुन्दुभिस्ताडयते ।[173]

निश्वास सात्विक अभिनय का प्रयोग इस प्रकार है–

नारदः – हतजीवजीवितेशां विषादमूर्च्छाप्लुिप्तनिश्वासाम् तृष्णादयः सकुल्या दुर्मतिमभितो निपत्य विलपन्ति ।[174]

रोमांचय सात्विक अभियन निम्नवत है–

व्यवसाय– देव, विक्रमादपि गरीयांस्तवासौ विनयगरिमा।

(सादभुतमरोमांचम) देव,

दर्पोदग्रनियुद्धतावक भुजानिर्धातपातोदितं

स्फारासृक्परिवाहगंगदग्खो मोहः पतन्नग्रतः

अद्यापि स्मृतिमभ्युपैति मथनक्षोभक्षरंगैदरिक

स्त्रोतः सप्लुतमन्दरक्षितिघस्रोपक्षणाक्षेपकः ।[175]

गदगद सात्विक अभिनय इस प्रकार है–

पुरूषः – (सहर्षगंदगम) अहो नु खलु धनयोडयमनन्यशरणो जनः, यमेनमनिदंप्रथमसंपदा भगवदनुकम्पया प्रचोदितस्तत्र भवान् प्रसीदन् प्रेक्षते। कश्च त्वदीक्षितः समीहितसिद्धौ संदिग्धे निर्धारितश्च निगमान्तनिरूढबुद्धिभिस्त्वदनुभावः ।[176]

निश्वास सात्विक अभिनय इस प्रकार है–

राजा– न किंचिदपि (सनिश्वासम)

विषतरूफलपाकदर्शनीयैर्विषयरसैः पुरूषं निरूद्धदृष्टिम् अलभत किमसौ फलं विचेता

विषमगुणा गुणिनं विलोम्य माया।[177]

उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'प्रबोध चन्द्रोदय' और 'संकल्प सूर्योदय' दोनों नाटकों के रचना कारों ने सात्विक अभिनयों पर विशेष बल दिया है। सात्विक अभिनयों के प्रयोग में 'प्रबोध चन्द्रोदय' के नाटककार श्री कृष्ण मिश्र की अपेक्षा 'संकल्प सूर्योदय' के रचनाकार वेंकटनाथ वेदान्त देशिक को अधिक सफलता प्राप्त हुई है। 'संकल्प–सूर्योदय' के सात्विक अभिनयों के निरूपण में नाटककार को आचार्य कोटि की अद्‌भुत सफलता मिली है।

सन्दर्भ–संकेत

1. मनकद, ऐंशन्ट इन्डियन थियेटर, पृ0 25

2. आचार्य भरत, शिवशरण शर्मा, पृ0 55

3. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि 23/7

4. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 57

5. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 57,58

10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बल्देव उपाध्याय, पृ0 479

11. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 23/7

12. अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, व्याख्या 2–93

13. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 84

14. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 209

15. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त, द्वितीय अध्याय श्लोक 36, 39

16. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 66

17. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 2/79

18. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 2/87

19. संस्कृत साहित्य का इतिहास, अचार्य बल्देव उपाध्याय, पृ0 480

20. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 212

21. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 231, 232

22. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 248

23. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 67

24. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ0 52

25. संस्कृत नाटक, डॉ0 उदयभान सिंह, पृ0 363

26. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, श्लोक 9, 10, 11, पृ0 506,507

27. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, श्लोक 17, पृ0 509

28–29. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, श्लोक 18, पृ0 511,1513

30. भारतीय नाट्यशास्त्र एवं रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 71

31–32. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, श्लोक 19, पृ0 513

33,34,35. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, श्लोक 20,21 पृ0 514,515

36,37. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 71

38. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती प्रथमभाग, पंचम अध्याय, श्लोक 14,15 पृ0 508

39. 40. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, पंचम अध्याय, श्लोक 22,23, पृ0 520,521

41. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत अभिनव भारती, प्रथमभाग, पंचम अध्याय, श्लोक 14,15, पृ0 508

42. अचार्य भरत डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 150

47. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 80

48. दशरूपक, धनंजय, डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, तृतीय प्रकाश श्लोक 7,8, पृ0 183

49. दशरूपक, धनंजय, डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, तृतीय प्रकाश श्लोक 9 पृ0 183

50,51. दशरूपक, धनंजय, डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, तृतीय प्रकाश श्लोक 10,11 पृ0 184,185

52. अभिज्ञान शाकुन्तलम् कालिदास, बाबूराम त्रिपाठी, प्रस्तावना, पृ0 112, श्लोक 5

53. दशरूपक, धनंजय, टीका श्री निवास, तृतीय प्रकाश, पृ0 215

54,55. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पृ0 3,4, श्लोक 3

56. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पृ0 3,4, श्लोक 4

57. दशरूपक, धनंजय, डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, श्लोक 7, पृ0 182

58. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, प्रथम अंक, पृ0 12 श्लोक 9

59. तदुपरिवत, पृ0 7, श्लोक 5

60. प्रबोध चन्द्रोदय, प्रस्तावना, पृ0 10, श्लोक 6

61. तुदुपरिवत, पृ0 10, श्लोक 7

62. तुदुपरिवत, पृ0 11, श्लोक 8

68. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग, अष्टमोध्याय, श्लोक 6, पृ0 842

70. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग, अष्टमोध्याय, श्लोक 9, पृ0 842

71. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग, अष्टमोध्याय, श्लोक 15, पृ0 543

72,73. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग, अष्टमोध्याय श्लोक, 40,41, पृ0 846,847

74. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग, अष्टमोध्याय, श्लोक 100, पृ0 855

75. संस्कृत नाट्य सिद्धान्त, डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 120

76. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग, अष्टमोध्याय, श्लोक 130, पृ0 859

77. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 155

78. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त प्रणीत, अभिनव भारती, द्वितीयभाग

79. भारतीय नाट्यशास्त्र एवं रंगमंच, डॉ0 रामसागर त्रिपाठी, पृ0 124

80. प्रबोध चन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पृ0 33

81. तदुपरिवत्, पृ0 20

82. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामार्चायेण, सप्तमोऽक, पृ0 627

83. प्रबोध चन्द्रोदय, चतुर्थोऽक, पृ0 117

84. तदुपरिवत् ,षष्ठोऽक, पृ0 192

85. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामार्चायेण, पृ0 670, अष्टमोऽक

86. तदुपरिवत, पृ0 878, दशमोऽक

87—91. तदुपरिवत, षष्ठोऽक, पृ0 543, 542, 552, 558, 572

92—99. 'संकल्प सूर्योदय', वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कृष्णामाचार्येण, अंक 6, पृ0 571, 576, 580, 652, 584, 718, 720 .

100. प्रबोध चन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पृ0 163, पंचमोऽक

101. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, अष्टमोऽक, पृ0 627

102. प्रबोध चन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, पृ0 163, चतुर्थोऽंक

103. तदुपरिवत्, पृ0 75, 76

104. तदुपरिवत्, द्वितीयऽंक

105. नाट्यशास्त्र, अभिनवगुप्त, अभिनव भारती, चतुर्दशोऽध्यायः, श्लोक 2, पृ0 1/49

106. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, श्लोक 2, पृ0 3

107. टिप्पणी प्रतापरूद्रीय, प्रबोध चन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, पृ0 4,

108. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, टीकाकार श्रीरामचन्द्र मिश्रा श्लोक 29 पृ0 37

109. प्रबोध चन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, टीकाकार श्रीरामचन्द्र मिश्र, श्लोक 16, अध्याय द्वितीय, पृ0 56,

110. नाट्यशास्त्र, भरत 16/68

111. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ0 20, प्रथमअंक

112. प्रबोध चन्द्रोदय, पंचमोऽंक, पृ0 162

113. प्रबोध चन्द्रोदय, द्वितीयोऽंक, पृ0 78

114. संकल्प सूर्योदय, अष्टमोऽंक, पृ0 676, 676, 684, 690, 7/616

119. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पृ0 31, प्रथमऽंक

120. संकल्प सूर्योदय, श्लोक 8, सप्तमोऽंक

121,122. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पृ0 99, श्लोक 11,अध्याय तृतीय।

123. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचारी, पृ0 755

124. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सम्पादक देवनन्दन शुक्ल, पंचमोऽंक, पृ0 162

125. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, 6/158–159

126. कालिदास और भवभूति के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, सुरेन्द्र देवशास्त्री, पृ0 232

127. रूपाभ, नवम्बर 1938, पृ0 48

128. संस्कृत आलोचना, बल्देव उपाध्याय, पृ0 93

129. तेरहवाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कानपुर, कार्यविवरण 1922, पृ0 108

130. दशरूपक, धनंजय, प्रथम प्रकाश, पृ0 103

131. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, डॉ0 वीरेन्द्र शुक्ल, पृ0 310,311

132,133. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अध्याय 2/105, 3/106

134. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, पृ0 683

135. तदुपरिवत्, प्रथमअंक, पृ0 11

136. तदुपरिवत्, पृ0 677, अष्टमोऽंक

137. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, चतुर्थ अंक, पृ0 118

138. दशरूपक, धनंजय, प्रथम प्रकाश, पृ0 105, श्लोक 66

139. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, अंक 2, श्लोक 22,पृ0 60,61

140. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, पृ0 734

141. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, अंक 10, पृ0 832

142. नाट्यदर्पण, पृ0 169

143–147. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, टीका देवनन्दन शुक्ल, 6/196, 2/82, 42, 45, 47

148. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, सप्तमोऽंक, पृ0 632

149. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, पृ0 678,

150. भरत, नाट्यशास्त्र, 21/115,140–143

151. आचार्य भरत, डॉ0 शिवशरण शर्मा, पृ0 170

152–165. प्रबोध चन्द्रोदय, श्री कृष्ण मिश्र, सं0 देवनन्दन शुक्ल, 1/21, 22, 23, 2/56, 1/61, 3/85, 3/114, 115,4/118, 119,130, 5/163, 6/192, 221

166–177. संकल्प सूर्योदय, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक, सं0 कष्णामाचार्येण, 7/629, 635, 670, 8/687, 706, 613, 734, 738, 745, 9/753, 843, 864

अष्टम परिवर्त्त

उपसंहार

उपसंहार

''प्रबोध–चन्द्रोदय'' और ''संकल्प–सूर्योदय'', दोनों आध्यात्मिक चेतना से परिपूर्ण नाटक हैं। विष्णुभक्ति और मुक्ति को लक्ष्य मानकर इन नाटकों की रचना हुई है। वेदों, उपनिषदों, गीता एवं विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों के चिंतन का निष्कर्ष लेकर इन नाटकों की रचना की गयी है। ''प्रबोध–चन्द्रोदय'' अद्वैत दर्शन तथा 'संकल्प–सूर्योदय' विशिष्टाद्वैत दर्शन का आधार लेकर लिखा गया है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' कीर्ति वर्मा की विजय के उपलक्ष्य में प्रथमबार अभिनीत हुआ था। बुन्देलखण्ड के प्रख्यात शैवतीर्थ 'कालंजर' में कीर्ति वर्मा कर्ण को पराजित कर विजयी हुआ, किन्तु नाटककार एक दूसरे युद्ध का वातावरण प्रस्तुत करना चाहता है और यह युद्ध बाहरी विजय से भी महत्वपूर्ण है। यह विजय आंतरिक प्रवृत्तियों की विजय है, इसमें महामोह को पराजित करना है। विवेक को विजयी होना है। युद्ध की विभीषिका से बचाकर मनुष्य को और राजाओं को आत्मा के विकास की ओर ले चलना 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का लक्ष्य है। शान्ति स्थापना के लिये सैनिक जीवन की अपेक्षा आध्यात्मिक सैनिक बनाने की चेष्टा है। आत्मा की शान्ति मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आत्म–विजय का यही संदेश नाटक में व्याप्त है।

'संकल्प–सूर्योदय' में निर्वेद की कामना, चित्त की अवस्था, विक्षेप, वीतराग पुरुष की सम्यक प्रज्ञा, निःश्रेयस सुख, वेदना का अभाव, अहंवाद का विर्जसन आदि का निरूपण है। विश्वव्यापी चेतना की मुक्ति और मानवतावाद को एक नया आध्यात्मिक धरातल प्रदान किया है।

विशिष्टाद्वैत दर्शन जगत को अनित्य नहीं मानता, वह दुःख से विमुक्त होने के लिये आन्तरिक चेतना में संघर्षरत् रहने का आदेश देता है। दार्शनिक चिन्तन की पीठिका वेदान्त देशिक के नाटकों में मुख्य वस्तु है। यही कारण

है कि वे स्थूल कथावस्तु को नहीं चुनते। भौतिक और आर्थिक घटनाचक्र के स्थान पर वे विचारों, अवधारणाओं का ही मार्मिक निरूपण करते हैं। वे दर्शन तथा नैतिक साधन, त्याग और कर्तव्य की भावना को ही मुख्य मानते हैं। तीर्थों के महत्व का वर्णन करके भी 'हृदयगुह्य' को ही सबसे पवित्र तीर्थ की संज्ञा देते हैं। उनकी दृष्टि बहिरंग तीर्थों पर नहीं, अंतरंग भक्ति और योग, ध्यान और समाधि पर केन्द्रित होती है।

मानव की सुख–शान्ति के लिये वे नैतिक मूल्यों पर बल देते हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' का रचनाकार 'प्रबोध–चन्द्रोदय' से परिचित था। उसकी रचना की प्रतिस्पर्धा भी स्पष्ट है किन्तु 'प्रबोध–चन्द्रोदय' की प्रतिकृति 'संकल्प–सूर्योदय' को नहीं कहा जा सकता। 'संकल्प–सूर्योदय' के रचनाकर की मौलिक प्रतिभा, उसका दार्शनिक चिंतन सर्वथा स्वतंत्र है। उनकी नाट्य कृति में कोई एक प्रतिमा ऐसे नहीं निकाली जा सकती जिसे 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का शब्दानुवाद या भावानुवाद कहा जा सके।

दुर्भाग्य यह है कि अभी तक आलोचकों का ध्यान इन दोनों नाटककारों की नाट्यकृतियों की ओर गया ही नहीं। कथा के स्थूल तत्वों की चर्चा करके भी, उनकी विचारधारा, अंतर्निहित चेतना का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ। दोनों के पात्रों, चरित्रों, वस्तु तथा दार्शनिक चेतना का साम्य–वैषम्य भी नहीं उद्घाटित किया गया। पात्रों में समानता अवश्य मिलती है, किन्तु दर्शन की भिन्नता के कारण दोनों का प्रयत्न मौलिक महत्व का है। दार्शनिक पाण्डित्य का जैसा अभिव्यंजन वेदान्त देशिक ने किया है, वैसा श्रीकृष्ण मिश्र में नहीं। अध्यात्म के क्षेत्र में, चेतना के विकास में एक नई उद्भावना लेकर 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' संस्कृत नाट्य क्षेत्र की विशिष्टतम उपलब्धियाँ हैं। दोनों में समनाताएं दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु दोनों में पर्याप्त

वैषम्य भी है। दोनों ने विष्णु भक्ति को आदर्श बताया है। दोनों ने भारतीय दर्शन पर विश्वास व्यक्त किया है। दोनों ने आनंद को स्वीकृति दी है। दोनों ने अमूर्त पात्रों का मानवीकरण किया है। दोनों के नाटकों में 'विवेक' नायक और 'महामोह' प्रतिनायक है। दोनों में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक प्रेरणा विद्यमान है।

मनोवैज्ञानिक पात्रों पर आधारित नाटक मनुष्य की अर्न्तयामी यात्रा के परिणाम हैं। यों किसी भी काल के श्रेष्ठ साहित्य के पात्रों में मनोवैज्ञानिक संगति मिलती है और इस प्रकार मनोविज्ञान तथा अध्यात्मपरक नाटकों का मनोविश्लेषणवाद अपने विशिष्ट अर्थ में नई वस्तु है। मनोविश्लेषणात्मक नाटकों में सामान्य समाज की गतिविधियों के साथ ही अन्तर्जीवन या अन्तर्मन के यथार्थ को अध्ययन विश्लेषण का केन्द्र बनाया जाता है। ऐसे नाटकों के पात्र अपने भीतर वासना, प्रेरणाओं से निर्मित, संचालित एवं प्रभावित होते हैं। ये अन्तरंग चरित्र प्रधान होते हैं। इस प्रकार अंतरंग चरित्र प्रधान होने के कारण नाटकों के शिल्प में परिवर्तन आ जाता है।

'प्रबोध–चंद्रोदय' एवं 'संकल्प–सूर्योदय' के नाटककारों ने मानव मन के चेतन, उपचेतन तथा अवचेतन इन तीन भागों में से अपने–अपने ढंग से अवचेतन को अधिक प्रेरक और समर्थ माना है। मानव व्यक्तित्व में प्रवाहित होने वाले हिमशैल के भीतर छिपी हुई अवचेतन धाराओं को, मनुष्य की आदिम वासनाओं को, जिन्हें 'फ्रायड' यौन वासनाएं, 'एडलर' हीनता की भावनाएं और 'युंग' जीवनेच्छाएं कहते हैं। नाटककारों ने मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुये इन्हें दमित करने में नहीं भक्ति भावना एवं शोध साधना में परिवर्तित करने में बल दिया है।

सामाजिक अस्वीकृत के भय से मानव के अवचेतन में जो वृत्तियाँ अतृप्त

रहकर कुंठाओं एवं ग्रन्थियों में रूपान्तरित होती हैं, उनसे मनुष्य की अन्तर्रात्मा का यथार्थ अन्तर्विरोधों से ग्रस्त होकर असामान्य, जटिल और रहस्यमय हो उठता है। काम, अहंमय आदि की मनोग्रन्थियों से प्रेरित आचरण भी सहज और सामंजस्यपूर्ण, सुखप्रद जीवन को छोड़कर असहज, असामान्य और कष्टप्रद जीवन जीते हैं। इस प्रकार मनुष्य वह नहीं रह जाता जो ऊपर से दिखाई देता है।

दुर्बल स्वभाव, पशु सुलभ वृत्तियों से ग्रस्त पात्रों को चिन्हित करके नाटककारों ने खल चरित्रों का जैसा उद्‌घाटन किया है, वह नाटककारों के शिल्पगत प्रयोगों का ही परिणाम है।

नाट्‌य शिल्पियों की दृष्टि गहरी है, वे बौद्धिक धरातल पर एक ऐसी दृष्टि का विस्तार करना चाहते हैं, जो मानवीय आध्यात्मिक मूल्यों को संरक्षा प्रदान करें। नाटककार खल चरित्रों के प्रति अपनी संवेदना नहीं प्रकट करता बल्कि उनके पतनशील वृतान्तों पर व्यंग करता हुआ, हास्य आदि माध्यमों से उन पर कटाक्ष करता है। आध्यात्मिक जीवन के लक्ष्यों के विपरीत जो वृत्तियां कार्य करती हैं, उनमें आत्मविश्लेषण का अभाव है। तभी वे अपने को पहचान नहीं पाते। आत्मसाक्षात्कार के अभाव में खल पात्र जीवन का अर्थ अभिप्राय नहीं समझ पाते। वे जीवन के प्रति मूल्यवान दृष्टि नहीं रखते। वे अहंकार और आत्मविश्वास में अन्तर नहीं कर पाते। वे काम और राम का अन्तर नहीं जान पाते। प्राणी की प्राण–सत्ता का उन्हें बोध नहीं हो पाता। दूसरे शब्दों में वे गलत आदतों को बढ़ावा देते हैं। स्वप्न, सम्मोहन, रति–विलास, भोग को ही जीवन का सर्वस्व मान बैठते हैं।

चरित्रों के उद्‌घाटन तथा अध्ययन के लिये नाटककार ने आध्यात्मिक उद्धरणों की शैली को महत्व दिया है। उन्होंने व्रत, उपवासों, धार्मिक–कृत्यों,

सत्संग, गुरु–महिमा आदि का भी आश्रय लिया है।

पात्रों एवं चरित्रों की आन्तरिक प्रेरणाओं पर अधिक बल देने के कारण मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रूपक प्रधान नाटकों में देशकाल गौण उपकरण हो जाता है। वे एकदेशीय न होकर सार्वजनिक हो जाते हैं। फिर भी नाटकों के माध्यम से अपने देशकाल का परिचय तो मिलता ही रहता है। शिव–पार्वती के प्रसंग हों या रति–काम के, उनमें भारतीय पौराणिकता की गंध तो आती ही है, भले ही वे पात्र प्रतीक रूप में विश्व के विराट को भाषित करते हों।

आध्यात्मिक रूपक प्रधान नाटकों में कथा तत्व का ह्रास हुआ है। यहाँ बाह्य कथा की जगह चरित्र कथा होती है और उसका विकास पात्रों की मनोगति को निर्धारित करता है। स्थूल घटनाचक्र की अपेक्षा सूक्ष्म घटनाचक्र को लेकर चलता है। कथा प्रायः लघु कलेवर वाली होती है किन्तु विश्लेषण की अधिकता के कारण वह बढ़ जाती है। विश्लेषण की सुविधा के कारण आत्मकथा शैली, स्वगतकथन शैली एवं अभिव्यंजना शैलियों का भी विस्तार परिलक्षित होता है। रंजन और प्रयोजन दोनों की संयुक्त सिद्धि हेतु बीच–बीच में अवांतर चक्रों की रचना की गयी है।

प्रतीकात्मक और रूपकात्मक प्रविधियों से निरूपित होने के कारण नाटक की रचना प्रक्रिया में सर्वत्र एक नव्य शैली का दर्शन होता है।

श्रीकृष्ण मिश्र ने नाटक के क्षेत्र में रूपात्मक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रयोग किये थे, जिनकी प्रतिस्पर्धा में वेंकट वेदान्त देशिक ने अगली कड़ी के रूप में एक और अध्याय जोड़ा है। सर्जक प्रयोगों की दृष्टि से, शिल्प वैशिष्ट्य की दृष्टि से, भाषा और अभिव्यंजना की दार्शनिक उपलब्धि के कारण, अमूर्त पात्रों की मानवीय पात्र योजना के कारण, सरस, ललित, नाट्य शैलियों के कारण 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' उपदेशाख्यान बनकर नहीं रह

गए। एक नई शैली विशेष के कारण वे एक परम्परा भी बनाते हैं, परम्परा के अंग भी बनते हैं, भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं अध्यात्म को आत्मसात करते हैं। इस अर्थ में वे एक बड़ी सीमा तक मौलिक हैं।

श्री कृष्ण मिश्र को ये चरित्र बने बनाये नहीं मिल गये, उन्होंने इन चरित्रों को गढ़ा है, विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों में वर्णित आख्यानों को लेकर चरित्रों का उद्घाटन किया है। हिन्दी नाट्य क्षेत्र में वेदान्त देशिक को ये चरित्र श्रीकृष्ण मिश्र से मिले हैं, किन्तु उन्होंने उन चरित्रों में विस्तार किया है उनमें विशिष्टाद्वैत के रंग भरे हैं। जीव और जगत को अर्थपूर्ण बनाया है। संस्पर्श संवेदन प्रदान किये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'प्रबोध चन्द्रोदय'-संकल्प सूर्योदय,' का तुलनात्मक अध्ययन सप्त परिवर्त्तों में विभक्त है।

प्रथम परिवर्त्त में *काव्य भेदों में नाटक*, काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य आदि का शास्त्रीय विवेचन किया गया है तथा नाटकों की व्युत्पत्तिपरक अर्थ एवं आचार्य भरत से लेकर धनंजय तक प्रमुख नाट्यशास्त्र के आचार्यो के मत–मतान्तरों का उल्लेख संक्षिप्त रूप से किया गया है। रुपकों के अन्तर्गत रूपकों तथा उनके प्रकार–नाटक, भाण, प्रकरण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन आदि पर विचार किया गया है। उपरूपकों के अन्तर्गत–तोटक, नाटिका, सट्टक, रासक, उल्लाप्य, शिल्पक, कर्ण, दुर्गभल्लिका, भणिका, भाणी, हल्लीस नाट्यरासक उल्लाप्य तथा प्रेक्षण आदि पर विचार किया गया है। नाटक कवित्व की चरम सीमा है, आदि सन्दर्भो पर तथ्यपरक एवं शोधपरक सामग्री प्रस्तुत की गई है। प्रतीक नाट्य परम्परा पर विचार करते हुए कंसवध, बलिबन्ध, त्रिपुरदाह, अमृतमन्थन आदि रूपक, जिनका उल्लेख महाभाष्य एवं नाट्यशास्त्र में

मिलता है, उन पर भी चर्चा की गयी है। प्राचीनतम वैदिक संवाद सूक्तों तथा महावृत, अनुष्ठानों में प्रतीकात्मक नाटकीय तत्वों की विवेचना की गई है। ऋग्वेद के संवाद सूक्त आदि पर विचार करते हुए बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ लिखे गये अश्वघोष के नाटकों तथा ताड़पत्रों पर लिखित हस्तलिखित नाटकों पर विचार करते हुए मध्य एशिया के तुरफान से मिली नाटकों की मूल प्रतियाँ, जो कूची लिपि में लिखी गई हैं, उन हस्तलिपियों तथा ईसा पूर्व के प्रतीक नाटकों पर गम्भीर चिन्तन करते हुए बुन्देलखण्ड के प्रख्यात कालंजर तीर्थ, जहाँ भगवान नीलकण्ठेश्वर की आदिकाल की प्रतिमा पाई जाती है, वहीं के ऐतिहासिक भव्य देवालय में 'प्रबोध–चन्द्रोदय' जैसी रूपक कथात्मक नाटक की रचना पर विचार किया गया है और 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के रचनाकार ने जिन परवर्ती नाटककारों को रूपक प्रधान कृतियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया, उनमें यशपाल कृत 'मोहराजपराजय', वेदान्त देशिक कृत 'संकल्प सूर्योदय', कवि कर्णपूर कृत, 'चैतन्य चन्द्रोदय', भूदेव शुक्ल कृत 'धर्मविजय', वादिचन्द्रकृत 'वान सूर्योदय' तथा जैन रचनाकार यशपाल कृत 'मोहराज पराजय' आदि नाट्यकृतियों पर विचार किया गया है। रूपक नाट्यकृतियों की एक लम्बीपरम्परा प्राप्त होती है जो 'प्रबोध–चन्द्रोदय' से प्रेरित होकर लिखी गई। उनमें विद्या परिणय एवं जीवानन्दन, श्रीदामन चरित, जीवनमुक्तिकल्याण एवं चित्तवृत्तिकल्याण, पुरंजन चरित, यतिराजविजय, सौभाग्य महोदय, विद्वन्मोदतरंगिणी, पूर्णपुरुषार्थ चन्द्रोदय, शिवलिंग सूर्योदय, चिकित्सालोक आदि रूपक कथात्मक नाटक हैं, जो प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं, और हमारे आलोच्य नाटककारों के प्रभाव को परिलक्षित करते हैं।

प्रथम परिवर्त्त के अन्तर्गत 'प्रबोध चन्द्रोदय' एवं 'संकल्प सूर्योदय'

उसकी कथावस्तु, उसके पात्र तथा उसकी लोकप्रियता आदि बिन्दुओं को लेकर नाट्य कृति का परिचय दिया गया है। इस प्रकार प्रथम परिवर्त मे जहाँ एक ओर भारतीय नाट्यशास्त्र को एवं उसमें उपलब्ध नाट्य सामग्री को सन्दर्भ के रूप में प्रयुक्त किया गया है, वहीं वैदिक परम्परा से सूत्र गृहण कर 'प्रबोध चन्द्रोदय' और 'संकल्प सूर्योदय' नाटकों के विकास क्रम और उसकी विषय सामग्री को अध्ययन के अन्तर्गत स्वीकृत किया गया है।

द्वितीय परिवर्त्त *व्यक्तित्व एवं कृतित्व* से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत 'प्रबोध चन्द्रोदय' के रचनाकार श्रीकृष्ण मिश्र और 'संकल्प सूर्योदय' के रचनाकार वेंकटनाथ वेदान्त देशिक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन गवेषणात्मक शैली में किया गया है। आलोच्य नाट्यकारों के जीवनवृत्त आदि के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य में उपलब्ध इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त ऐतिहासिक ग्रन्थों, बुन्देलखण्ड एवं दक्षिण भारत के इतिहास ग्रन्थों तथा नाटककारों से सम्बन्धित राजाओं के प्राचीन ऐतिहासिक शिलालेखों, मुद्राओं व आर्कीयोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया तथा हस्तलिखित संग्रहालयों एवं दुर्लभ पाण्डुलिपियों में उपलब्ध तथ्यों और सन्दर्भो को आधार बनाकर प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विस्तार की अपेक्षा सामासिक शैली का प्रयोग किया गया है, क्योंकि व्यक्तित्व पर स्वतंन्त्र शोधकार्य की भी सम्भावना है। हमारा अभिप्राय तो आलोच्य नाटककारों के कृतित्व और उनके व्यक्तित्व के अन्तरंग सम्बन्धों की विवेचना आदि से सन्दर्भित है। प्रस्तुत अध्याय में रचनाकारों की प्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थों की तालिका तथा चन्ददास शोध संस्थान बांदा (बुन्देलखण्ड) और आड्यार लाइब्रेरी, आड्यार मद्रास आदि से उपलब्ध दुर्लभ पाण्डुलिपियों की तालिका भी प्रस्तुत की गई है।

तृतीय परिवर्त्त *विषयवस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन* से सम्बन्धित है। प्रस्तुत अध्याय में वस्तु भेद तथा उसके अन्तर्गत आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु की शास्त्रीय विवेचना करते हुए, आलोच्य नाट्यकृतियों की कथावस्तु का विश्लेषण किया गया है। आलोच्य नाटककारों की शास्त्रीय दृष्टि के लिए अर्थ प्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकारी और कार्य), कार्यावस्थाओं (आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम), सन्धियों में 'मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण' तथा उनके उपभेदों की चर्चा के साथ गहन समीक्षा की गयी है और इस निष्कर्ष पर गवेषिका ने ये निष्कर्ष निकाला है कि दोनों नाट्यकार भारतीय आचार्यो की परम्परा से परिचित थे साथ ही 'संकल्प–सूर्योदय' के रचनाकार वेंकटनाथ वेदान्त देशिक का 'संकल्प–सूर्योदय' तो नाट्यशास्त्र के नए–नए निर्देश प्रदान करने वाला ग्रन्थ सिद्ध होता है।

चतुर्थ परिवर्त्त *पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन* शीर्षक से सम्बन्धित है। इस परिवर्त्त के अन्तर्गत नायक और नायिका के शास्त्रीय लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए, आलोच्य नाटकों में आए हुए नायक–नायिकाओं, प्रतिनायक, प्रतिनायिकाओं पर विचार किया गया है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' के पात्रों का पौराणिक, पुरुष, नारी, अमूर्त, सात्विक प्रवृत्तियों पर आधारित, प्रकृतिमार्गी एवं निवृत्त मार्गी आदि पात्रों एवं चरित्रों पर विचार किया गया है दोनों नाटकों के पुरुष पात्र विवेक और दोनों नाटकों के प्रतिनायक महामोह के चरित्र को मूर्त तथा अमूर्त स्तर पर उद्घाटित करने की चेष्टा की गई है। दोनों नाटकों के पात्र अमूर्त हैं। दोनों नाटकों के पात्रों की अन्तर्यात्रा मानसिक और आध्यात्मिक है। दोनों नाटकों के प्रतिनायक और उनके सहयोगी काम, क्रोध, लोभ, दंभ, अहंकार,

प्रतिनायक, महामोह को सम्बल प्रदान करते हैं उसी प्रकार विवेक महानायक को वस्तु विचार, सन्तोष, उपनिषद्, वैराग्य, पुरुष, श्रद्धा, शान्ति, विष्णुभक्ति, सरस्वती आदि सम्बल प्रदान करते हैं। काम रति और वसन्त की भूमिका प्रायः रागात्मक प्रवृत्तियों को विलास की ओर उन्मुख करने वाली है। आलोच्य नाट्य–पात्रों का तुलनात्मक मूल्यांकन भी इस परिवर्त्त के अन्तर्गत किया गया है।

पंचम परिवर्त्त *भाव एवं रस निरूपण* से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत शास्त्रीय दृष्टि से आचार्य भरत के 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगादृष्टिनिष्पत्ति' सूत्र को आधार मानकर विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव आदि रसाँगों और रस–सामग्री का प्रामाणिक विवेचन किया गया है। विभाव के अन्तर्गत आलम्बन एवं उद्दीपन, आलम्बन के अन्तर्गत विषय और आश्रय, उद्दीपन के अन्तर्गत विषयगत एवं बहिर्गत भेदों की चर्चा करते हुए उद्दीपन विभावों पर विचार किया गया है। अनुभावों के अन्तर्गत नाट्य एवं प्रेक्षकों के सन्दर्भ से वाचिक, सात्विक और आंगिक भेद किये गये हैं। आचार्य भरत के इस नाट्य–भेद के अतिरिक्त शारदातनय के वर्गीकरण मन का आरम्भानुभव, वागारम्भानुभाव और बुद्ध्यारम्भानुभव आदि वर्गीकरण पर विचार किया गया है। आलोच्य नाटकों में करुणा, शान्त और श्रृंगार से सम्बन्धित रस और रसांगो का अनुशीलन किया गया है तथा तुलनात्मक दृष्टि से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' दोनों शान्त रस प्रधान नाट्य कृतियाँ हैं। भक्ति और मुक्ति को प्राप्ति के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए दोनों नाटककारों ने शान्त और भक्ति रस की सन्धि के भी प्रयोग किये हैं। दोनों नाटकों की रसचर्वणा में एक मूलभूत अन्तर यह है कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' शान्ति के साथ करुण

और श्रृंगार को लेकर चलता है वहीं 'संकल्प–सूर्योदय' प्रधान रस शान्त के साथ वीर रस का सफल प्रयोग करते हैं। रस के क्षेत्र में 'संकल्प–सूर्योदय' के रचनाकार की मौलिक प्रतिपत्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। उनके द्वारा सूत्रधार से ये कथन कहलाना कि जिन लोगों को मुरारि कृत अनर्धराघव तथा कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम् जैसे श्रृंगार प्रधान नाटकों से अभिरुचि हो, वे लोग अपने–अपने घरों में बैठे रहें, ऐसे लोगों को न तो श्रीरंगम् आने की आवश्यकता है और न ही 'संकल्प–सूर्योदय' को देखने के लिए आवश्यकता है। उनकी ये भी मान्यता है कि श्रृंगार रस से लोग लोक को ठग लेते हैं। ऐसे लोगों को मेरे यहाँ कौन सी मणि रत्न प्राप्त हो जाएगी ? इसी प्रकार 'वेदान्त देशिक' का ये कथन भी रस विषयक मौलिक चिन्तन का परिचायक है, जिसके अनुसार उन्होंने यह कहा कि श्रृंगार रस प्रायः असभ्यों का रस होता है। असभ्य लोग ही श्रृंगार प्रधान नाटकों में रुचि लेते हैं। शान्त रस को सांसारिक रसों को शान्त करने वाला बताया है। आचार्य धनंजय ने नाटकों में शान्त रस का विरोध किया है। श्रृंगार को प्रधान रस स्वीकार किया है। आचार्य श्रीकृष्ण मिश्र और श्री वेदान्त देशिक दोनों ने नाटक में शान्त रस को अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठा दी है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' युद्धोन्माद तथा विजय पर्व के उल्लास के लिये तथा तत्कालीन राजा को शान्ति प्रदान करने के लिए लिखा गया है। 'संकल्प–सूर्योदय' श्री रंगम् में अभिनीत हुआ तथा शान्त रस के भावकों द्वारा सभा में देखा गया।

षष्ठ परिवर्त्त भाषा और शिल्प से सम्बन्धित है। इस अध्याय में भाषागत चिन्तन करते हुए संस्कृत, प्राकृत भाषाओं के रूपों पर चर्चा की

गई है। लेखकों द्वारा पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग, सामाजिक और सांस्कृतिक योग्यता के अनुसार पुरुष और नारी पात्रों द्वारा पृथक–पृथक भाषाओं का प्रयोग, नाट्य में काव्य भाषा का सौन्दर्य, भाषा में सुकोमल छन्द योजना– शार्दूलविक्रीड़ित, वसन्ततिलका, शिखरणी आदि छन्दों का प्रयोग रस, अलंकार एवं समस्त रीतियों से गुम्फित शैलियों का सम्मिश्रण भी अध्ययन का विषय रहा है। संवाद योजना, स्वगत एवं प्रकाश कथन, मानवीकरण आदि शैलीगत प्रयोगों का अध्ययन किया गया है। कृष्णमिश्र ने जहाँ वैदर्भी रीतियों का प्रयोग किया है, वहीं वेदान्त देशिक ने वैदर्भी, पांचाली एवं गौणी रीति की मालाएं पिरोने का भी संकेत किया है। प्रबोध चन्द्रोदयकार ने भाषा पर कोई गर्वोक्ति नहीं की किन्तु 'संकल्प–सूर्योदय' के रचनाकार ने भाषा के सम्बन्ध में मनु और वेदव्यास का आदर्श स्वीकार करते हुए अमृत सिंचित वाणी के ब्याज से स्वतः की अमृतमयी भाषा का संकेत किया है।

सप्तम परिवर्त्त *प्रेक्षागृह एवं रंगमंच* से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत प्रेक्षागृह और उसके प्रकार–विकृष्ट, चतुरस्त्र, त्र्यस्त नाट्यगृहों का शोधपरक अनुशीलन किया गया है तथा उनसे सम्बन्धित चित्रों का भी संयोजन किया गया है। रंगमंच पर विचार करते हुए प्राचीन रंगमंच, लोक रंगमंच, धार्मिक, यक्षमान और कुचिपुड़ी, आधुनिक रंगमंच तथा हिन्दी रंगमंच, दक्षिणात्य रंगमंचों का विश्लेषण किया गया है। आलोच्य नाट्यकारों से सम्बन्धित बुन्देलखण्ड के कालंजर और उसमें प्रख्यात नीलकंण्ठेश्वर के समक्ष बने मण्डप तथा दक्षिण भारत के श्रीरंगम् रंगमंच का भी नवीन उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में पूर्वरंग, नान्दी, प्ररोचना, प्रस्तावना आदि से सम्बन्धित दुर्लभ सामग्री को विश्लेषित किया गया है, साथ ही अभिनय के अन्तर्गत आंगिक, अभिनय तथा उसके उपांगो का, वाचिक अभिनय, कायिक

अभिनय आदि से सम्बन्धित नाट्यविषयक सामग्री को प्रस्तुत किया गया है। अभिनय के विभिन्न सामाजिक स्थितियों के प्रभाव का अध्ययन भी शोध की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

तुलनात्मक अनुसंधान से प्राप्त होने वाले निष्कर्ष –

'प्रबोध–चन्द्रोदय' और 'संकल्प–सूर्योदय' नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से जो महत्वपूर्ण शोध निष्कर्ष ज्ञात हुए हैं, वे इस प्रकार हैं–

(अ) आलोच्य दोनों नाटक रूपक प्रधान हैं।

(ब) दोनों नाटकों में अंगी रस 'शान्त' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

(स) प्राचीन कथाओं के विन्यास में दोनों नाटककारों ने पर्याप्त नवीन प्रयोग किए हैं।

(द) कथावस्तु को वैदिक सम्वाद सूक्तों से ग्रहण किया गया है, किन्तु दोनों नाटककारों ने अपनी मौलिक प्रतिभा से मानव जीवन के लिए मूल्यवान सन्देश प्रदान किया है।

(य) दोनों नाटकों में अमूर्त पात्रों का मूर्तिकरण किया गया है।

(र) दोनों नाटकों का नायक विवेक और प्रतिनायक महामोह है।

(ल) दोनों नाटकों में रति, काम, मोह आदि को मानवीय पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(व) दोनों नाटकों के अभिनय के पाठ में संस्कृत और प्राकृत का समान प्रयोग किया गया है।

(श) दोनों नाटकों में विष्णु भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

(ष) दोनों नाटकों में मानव जीवन का आन्तरिक संघर्ष चित्रित है।

(स) दोनों नाटककार भारतीय संस्कृति के अग्रदूत सिद्ध होते हैं।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' तथा 'संकल्प–सूर्योदय' में वैषम्य–

'प्रबोध–चन्द्रोदय' तथा 'संकल्प–सूर्योदय' में पर्याप्त साम्य होने के बावजूद भी जो भिन्नताएं हैं, वे इस प्रकार हैं–

1– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का रचनाकार अद्वैत दर्शन से प्रभावित है। 'संकल्प–सूर्योदय' का रचनाकार विशिष्टाद्वैत से अनुप्राणित है।

2– श्रीकृष्ण शंकराचार्य के मतानुयायी हैं, वेंकटनाथ वेदान्त देशिक रामानुजाचार्य के मतानुयायी हैं।

3– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का सन्दर्भ इतिहास से है। कालंजर के सम्राट कीर्तिवर्मा की विजय तथा उनके सेनापति गोपाल की प्रशंसा नृसिंह और महावाराह आदि उपमानों से की गई है। 'संकल्प–सूर्योदय' में दक्षिण के श्रीरंगम तथा भगवान श्री वेंकटेश की प्रशस्ति वर्णित है।

4– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में दरबारी संस्कृति का भी प्रभाव परिलक्षित होता है और वह राजाश्रित नाट्यकृति कही जा सकती है और 'संकल्प सूर्योदय' राजाश्रित नहीं, लोकाश्रित नाट्यकृति है।

5– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' 6 अंको में विभक्त है और 'संकल्प–सूर्योदय' 10 अंको में विभक्त है।

6– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक के दर्शक महाराज कीर्तिवर्मा तथा उसके सभासद आदि हैं। 'संकल्प–सूर्योदय' के दर्शक या सामाजिक विशिष्ट बौद्धिक क्षेत्र के तथा साधु प्रकृति के सभ्य नागरिक हैं।

7– 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में ज्ञान, भक्ति, कर्म का समन्वय है। 'संकल्प–सूर्योदय' में ज्ञान, भक्ति, कर्म के अतिरिक्त पुरुषार्थ तथा योग, ध्यान समाधि आदि का भी निरूपण किया गया है।

8– ‘प्रबोध–चन्द्रोदय’ ऐतिहासिक सन्दर्भ से धार्मिक नाट्यकृति है। ‘सकल्प–सूर्योदय’ लोक और धर्म की समवेत नाट्य प्रस्तुति है। ‘प्रबोध–चन्द्रोदय’ में श्रृंगार रस को सामाजिक नहीं कहा गया है। ‘संकल्प–सूर्योदय’ में इसे असभ्यों का रस कहा गया हैं।

9– ‘प्रबोध–चन्द्रोदय’ में मध्य देश की पांचाली शैली का मुख्य रुप से प्रयोग किया गया है। ‘संकल्प–सूर्योदय’ में दक्षिणात्य विदर्भ शैली की प्रमुखता है।

10– ‘प्रबोध–चन्द्रोदय’ नाटक के पौराणिक पात्रों में सरस्वती उपनिषद् का उल्लेख है। ‘संकल्प–सूर्योदय’ में नारद तुम्बुरू का उल्लेख है। ‘प्रबोध–चन्द्रोदय’ में दर्शन, काव्य का उत्कष्ट रुप है। ‘संकल्प–सूर्योदय’ में दर्शन और काव्य के अतिरिक्त नाट्य सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री भी है।

शोध–निष्कर्ष एवं मौलिक उदभावनाएँ–

शोध प्रबन्ध में कतिपय मौलिक उदभावनाएँ भी पाई जाती हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ हैं–

1– श्रृंगार रस को असभ्यों का रस घोषित करना।

2– शान्त रस को अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित करना।

3– भामह, दण्डी, धनज्जय, धनिक, शारदातनय जो शान्त को नाट्य का रस नहीं मानते, उनके मतों का खण्डन।

4– शान्त रस को मानव और समाज की समस्याओं का स्थायी निदान घोषित करना।

5– भरत ने नाट्य को पंचम वेद घोषित किया है किन्तु अधिकांश आचार्यो ने नाट्य में शान्त रस का विरोध किया है।

आलोच्य नाट्यकार वेदान्त देशिक ने व्यंग्य करते हुए कहा है कि नाट्य को पंचम वेद मानना उचित होगा किन्तु नाट्य से शान्त रस को उपेक्षित रखना उचित नहीं है। शान्त रस के सामाजिकों का तिरष्कार अर्थात् शुद्ध, बुद्ध और चैतन्य हृदय वाले सामाजिकों को पृथक कर कोई कला नाट्य वेद की श्रेणी में कैसे रखी जा सकती है ? वेद तो ज्ञान के संवाहक है, अतः शान्त रस को नाट्य शास्त्र से पृथक रखना या उसे अस्पृश शमझना वेद विरुद्ध है।

6– सामाजिकों को अर्थात् पुरुष और स्त्रियों को अर्ध–नारीश्वर के रुप में मानकर दृश्यकाव्यों का मंचन किये जाने का उद्घोष।

7– प्रकृति में अन्त–प्रकृति का निबन्धन।

8– तीर्थो और देवालयों के वर्णन में हृदय तीर्थ की स्थापना।

9– महर्षि वेद व्यास और मनु की वाणी को अमृत वाणी की संज्ञा देना।

10– नाटककार मुरारि के अनर्धराधवम् तथा महाकवि कालिदास की अभिज्ञान शाकुन्तलम् जैसी नाट्य कृतियों में श्रृंगार रस की प्रधानता पर आलोच्य नाटककारों की चिन्ता।

11– उत्तर और दक्षिण की संस्कृतियों का समन्वय।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' कालिंजर के भगवान नीलकण्ठेश्वर के मण्डल कालंजर (कालींजर ऐतिहासिक दुर्ग) में अभिनीत होने वाली, 11वीं शताब्दी की अमर कृति है। नीलकण्ठेश्वर का मन्दिर जहाँ शिल्पकला की प्रतिमाएँ खजुराहों शैली से कुछ भिन्नता लिए शिवार्चन के रूप में अंकित है, जहाँ काल–कापालिक, भूत–भैरवी मुद्राएँ हैं। सप्त मात्रिकाओं के साथ नीलकण्ठेश्वर अधिष्ठित है। आज भी जहाँ कार्तिक की पूर्णिमा में 'चन्द्रोदय' के उदित होने पर अमृत का पान करने के लिए

जनसमुद्र उमड़ता है। ऐसी धरती में 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का उदय और महानीलकण्ठेश्वर के ललाट पर अंकित 'चन्द्रोदय' का साम्य कितना अद्भुत है। उसी प्रकार सरस्वती और श्रीरंगम् के वरद् पुत्र 'घण्टावतार' जिन्हें श्रीरंगम् मन्दिर के 'घण्टावतार' के रुप में मान्यता है, जिन्होने संस्कृत तथा मणि–प्रवाल तमिल शैली में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की, जिन्होंने महाकवि कालिदास और मुरारि के श्रृंगार परक नाटकों पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया, जिन्होंने नाट्य क्षेत्र से उपेक्षित शान्त रस को पहली बार प्रतिष्ठित कर दिया। अज्ञान के अन्धकार को चीर कर, साम्प्रदायिक प्राचीरों को बेधता हुआ, ज्ञान का जो महान सूर्य प्रभात का जागरण लेकर उदित हुआ, ऐसे बैकटनाथ वेदान्त देशिक का 'संकल्प–सूर्योदय' विशिष्टाद्वैत दर्शन की अमर कृति है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' जिसकी जर्मन कवि गेटे ने भी भूरिशः प्रशंसा की थी, ऐसी नाट्यकृति को श्रृंगार परक कृति घोषित करके शान्त रस प्रधान नाट्यकृति की श्रेष्ठता घोषित करना, आलोच्य नाटककार की प्रतिभा, मौलिकता और शान्त रस के प्रति निष्ठा को प्रमाणित करती है।

'संकल्प–सूर्योदय' विशिष्टाद्वैत दर्शन पर आधारित भारतीय वृहद्त्रयी और 'तमिल प्रबन्धम्' का सार–गर्भित सन्देश देने वाली महान नाट्य–कृति है। 'भरत' के नाट्यशास्त्र की भाँति जो वरेण्य है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' से अनुप्राणित होकर भी मौलिक है। वस्तुतः इन दोनों महान नाटककारों के कर्तृत्व ने मानव जीवन को परतन्त्रता के बन्धनों से मुक्त कराकर, विश्वचेतना को कृतार्थ कर दिया। दोनों नाटककार दुर्वासनाओं को जीवन से खदेड़ने वाले महान योद्धा हैं। श्रुति के बाणों से संधान करने वाले, सात्विक सामाजिकों के प्रचेता हैं। वेदान्त चक्रवर्ती हैं, संस्कृति के उद्धारक हैं। विजयोपरान्त आन्तरिक शान्ति हेतु जीवन को महतोमहीयान सन्देश देने

वाले हैं। अविद्या को नष्ट करने वाले महान प्रायोजक हैं। मैं अन्त में निष्कर्ष रूप में कहना चाहूँगी कि ''भरत का नाट्यशास्त्र इन्द्रलोक का ध्वजोत्सव है, तो 'प्रबोध–चन्द्रोदय' महान कालंजर के नील कण्ठेश्वर का विषपान महोत्सव। 'संकल्प–सूर्योदय' प्रस्थानत्रयी और तमिल प्रबन्धम् की समवेत भाव भूमि पर भक्ति तथा मुक्ति की तरलित तरंगमान अन्तरंग तरंगावली को लिए हुए श्रीरंगम् के जयति घण्टोत्सव में घटाटोप 'घण्टावतार' की घन घनाती हुई सार्वदेशिक, सर्वतन्त्र–स्वतंन्त्र जयति जय की आत्मजयी मुक्ति संवर्धिनी, विश्वविजयनी जयति जन जागरणम् की असंख्य लोक कण्ठी अनाहत ध्वनि।

अनुसंधानकर्त्री
कु0 अनामिका दीक्षित
एम0ए0 संस्कृत,
एम0ए0 हिन्दी, स्वर्णपदक विजयनी
प्रभारी, भारतीय साहित्य,
दर्शन एवं पाठालोचन संकाय
चंददास साहित्य शोध संस्थान, बांदा

सन्दर्भ-ग्रन्थावली

1. कीथ ए0बी0 (हिन्दी रूपान्तरकार डॉ मङ्गलदेव शास्त्री) : संस्कृत साहित्य का इतिहास : मोतीलाल बनारसीदास : प्रथम संस्करण (1960)
2. गैरोला वाचस्पति : संस्कृत साहित्य का इतिहास : चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1, प्रथम संस्करण (2017)
3. भगवतदत्त वैदिक वांगमय का इतिहास : शारदा मन्दिर, बनारस : पंचम संस्करण (1935)
4. उपाध्याय बलदेव : संस्कृत साहित्य का इतिहास : शारदा मन्दिर, बनारस : पंचम संस्करण (1958)
5. वरदाचार्य वी0 (हिन्दी भाषान्तरकार –द्विवेदी कपिलदेव) : संस्कृत साहित्य का इतिहास : रामनारायन लाल, इलाहाबाद ।
6. पाण्डेय चन्द्रशेखर तथा व्यास शान्तिकुमार नानुराम : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : साहित्य निकेतन कानपुर पंचम संस्करण (1958)
7. सक्सेना द्वारिकाप्रसाद : संस्कृत साहित्य का इतिहास : विनोद पुस्तक मन्दिर,आगरा : तृतीय संस्करण (1960)
8. गुप्त सुधीरकुमार : संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास : भारतीय मन्दिर 31 सी नई बस्ती, खुर्जा : द्वितीय संस्करण (195
9. व्यास भोलाशंकर : संस्कृत कविदर्शन :चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी : प्रथम संस्करण (संवत् 2012)
10. अग्रवाल हसंराज :संस्कृत साहित्य का इतिहास ।
11. कालिदास (सम्पादक कान्तानाथ शास्त्री) : अभिज्ञानशाकुन्तल : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी : तृतीय संस्करण (1955)

12. कालिदास (सम्पादक डॉ0 कपिल द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तल रामनारायन इलाहाबाद : प्रथम संस्करण (1958)

13. कालिदास (लक्ष्मण सदाशिव देशमुख, शिवकुमार शास्त्री) अभिज्ञानशाकुन्तलम् : शारदा भवन, काशी : प्रथम संस्करण (1134)

14. कालिदास (काले0 एम0 आर0) अभिज्ञानशाकुन्तलम् , बम्बई (1934) ।

15. कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् : साहित्य पुस्तक भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ ।

16. भरतमुनि : नाट्यशास्त्र : (पं0 वटुनाथ शर्मा एम0 ए0 तथा पं0 बलदेव उपाध्याय द्वारा सम्पादित) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस बनारस सिटी (1929)

17. '' : नाट्यशास्त्र (अभिनवगुप्त विरचित निवृत्ति साहित) भाग । : सेन्ट्रैल लाइब्रेरी, बड़ौदा : (1926)

18. नाट्यशास्त्र (अभिनवगुप्त विरचित निवृत्ति साहित) भाग 2 : औरेयण्टल इन्सिटीट्यूट, बड़ौदा : (1934)

19. '' : '' '' '' '' '' '' भाग 3 (1954)

20. धनञ्जय : दशरूपक : निर्णय सागर प्रेस बम्बई : पंचम संस्करण (1941)

21. '' : (व्याख्या0 डा0 गोविन्द त्रिगुणायत) : दशरूपक साहित्यनिकेतन, कानपुर ।

22. विश्वनाथ : (टीकाकार शालीग्राम शास्त्री) : साहित्य दर्पण : नवलकिशोर प्रेस, बम्बई लखनऊ, द्वितीय संस्करण (1991) सम्वत् ।

23. विश्वनाथ : (टीकाकार द्विवेदी, दुर्गाप्रसाद) : साहित्य दर्पण : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई तृतीय संस्करण (1915) ।

24. मम्मट : (व्याख्या0 बाचार्य विश्वेश्वर) : काव्यप्रकाश : ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी (1960) ।

25. '' : काव्यप्रकाश : भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ।

26. शारदातनय : भावप्रकाशनम् : गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज नं0 45 बड़ौदा (1930)

27. सम्पादक- सातवलेकर : ऋग्वेद : भारतमुद्रणालय, सतारा (1940) ।

28. ,, ,, : शुक्ल यजुर्वेद संहिता (वाजसनेयि) स्वाध्यायमण्डल ओधसतारा, प्रथम संस्करण (1948) सम्वत् ।

29. शर्मा रघुनन्दन : वैदिक सम्पत्ति ।

30. मनु (टीकाकार कुलूकभट्ट) मनुस्मृति : चौखम्बा-वाराणसी (1935) ।

31. ,, (सत्यभामावाई पाण्डुरङ्ग) मनुस्मृमि : निर्णयसागर प्रेस बम्बई (1946) ।

32. मनु : स्मृति संदर्भ : प्रथम भाग : रूलियाराम गुप्त, बंगाल प्रिंटिग वर्क्स-। सीनाबाग स्ट्रीट, कलकत्ता-1 प्रथम संस्करण (1952)

33. बाल्मीकि : रामायण : निर्णसागर प्रेस बम्बई (1824)

34. ,, ,, : रामचन्द्रगोविन्द एण्ड सन्स कालवादेवी रोड, बम्बई तृतीय संस्करण (1921)

35. ,, ,, : (मूल) चौखम्बा-बनारस ।

36. पतंजलि : महाभाष्यम् ।

37. पाणिनि : अष्टाध्यायी ।

38. संकल्प सुर्योदय नाटक भाग 1, वि0 वि0 श्री निवासन्, मद्रास 1948

39. प्रबोध चन्द्रोदा नाटकम् , नि0 सा0 वे0 बम्बई 1935

40. संकल्प सूर्योदय नाटकम् , अड्यार प्रस्तकालय , मद्रास 1948

41. प्रबोध चन्द्रोदय के विभिन्न संस्करण , सम्पादक भवानी चरण शर्मा कलकत्ता ,1832 सम्पादक एच0 ब्रोकाहास लिपजिग , 1825, स0 वि0 एल0 पंसीकर, निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1898, अनुवादक जे0 टेलर बम्बई 1886, इंगलिश अनुवाद टी0 गोल्ड स्टकर कोनिग्सवर्ग 1842, जर्मन अनुवाद, अनु0 जी0 डेवेज पेरिस, 1899 , फ्रेन्च अनुवाद सं0 पं0 रामचन्द्र मिश्र बनारस 1955 ।

42. सामदेव : कथासरित सागर : निर्णयसागर प्रेस बम्बई, चतुर्थ संस्करण (संवत् 1852)

43. कालिदास (सम्पादक-चतुर्वेदी) सीताराम) : कालिदास ग्रन्थावली भाग-1-2-3, अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी, द्वितीय संस्करण (2007)

44. चतुवेर्दी सीताराम : समीक्षाशास्त्र : अखिल भा0 वि0 प0 काशी (2010 वि)

45. देवधर सी0आर0 (सम्पादक : भासनाटकचक्रम् : औरिन्टल बुक ऐजेन्सी, पूना (1937)

46. शूद्रक : मृच्छकटिकम् : चौखम्बा-बनारस (2011) सम्वत् ।

47. वाणभट्ट : (व्याख्या0 पाठक जगन्नाथ) हर्षचरितम् : चौखम्बा-बनारस (1958)

48. वाणभट्ट : कादम्बरी : बांकीपुर सिद्धान्त यन्त्र में मुद्रित : द्वितीय सं0 (1847 शक संवत)

49. श्रीहर्ष : (व्याख्या0 उपाध्याय बलदेव) : नागानन्द नाटक : चौखम्बा-बनारस तृतीय संस्करण (1956)

50. भट्टनारायण (टीका शास्त्री गुरूप्रसाद) : नैषधचरितम् भार्गव पुस्तकालय गायघाट बनारस, प्रथम संस्करण (1936) ।

51. जयदेव : प्रसन्नराघव नाटक : मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स कचौड़ीगली बनारस सिटी, प्रथम संस्करण (1947)

52. भास : स्वप्नवासवदत्तम् : मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, लाहौर : द्वितीय सं0 (1991 संवत्)

53. माघ शिशुपालवधम् : चौखम्बा-बनारस (1985 संवत्)

54. मत्स्यपुराण (मूलमात्र) चौखम्बा बनारस ।

55. पद्मपुराण (") " " ।

56. विष्णुपुराण " " ।

57. भगवतपुराण " " ।

58. शतपथ ब्राह्मणम 1-5 भाग ।

59. आचार्य चाणक्य : (अनुवादक शास्त्री गंगाप्रसाद) : कौटिलीय अर्थशास्त्र कार्यालय, मालीवाड़ा, देहली, द्वितीय संस्करण (2010 वि0) ।

60. दशरूपक अवलोक : निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई
61. दशरूपक : डॉ० त्रिगुणायक, साहित्य निकेतन, कानपुर।
62. संस्कृत आलोचना : आचार्य बल्देव उपाध्याय।
63. प्रताप रूद्र यशोभूषण, मुम्बई
64. आर्चाय भरत : डॉ० शिवशरण शर्मा
65. नाट्य दर्पण : रामचन्द्र-गुणचन्द्र।
66. संस्कृत ड्रामा पीठ
67. अश्वघोष : रॉयल एसियाटिक सोसायटी, बंगाल।
68. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास : गोरेलाल
69. सुरेन्द्र देव शास्त्री : कालीदास नाटको का तुलनात्मक अध्ययन।
70. न्याय सिद्धांजन, वेदान्त देशिक, सं०पंडित श्री नील मेघाचार्य सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि०वि०, वाराणसी।
71. 'प्रबोध चन्द्रोदय' टीकाकार श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा, विद्या भवन वाराणसी
72. नाट्य दर्पण : डॉ० वी० भट्टाचार्य गा०ओ०सी०
73. एस०के० डे : वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेन्ट एण्ड बंगाल
74. बी०कृष्णमाचार्य : हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर।
75. डॉ० राघवन जे० ओ०आर० : ऑन दि नेम दशरूपक।
76. दास गुप्ता और डे : हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर।
77. मैकडालन : इण्डियॉज पास्ट।
78. बी०ए० स्मिथ : इण्डियन एन्टी क्वेरी।
79. कनिंघम : आरकियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डियाटेर इन दी सेन्ट्रेल।
80. ए०डी० स्वामी : कन्नू पिल्लई
81. इण्डियन एफरमिरिस, वेल्यूम-1
82. इन्साक्लोपीडिया आर्फ रिलिजन एण्ड एथिक्स भाग-1
83. डॉ० पद्मा अग्रवाल : सिम्बलिज्म ए साइकोलाजिकल स्टडी।
84. मनकढ़ : ऐन्सियन्ट इण्डियन थियेटर।
85. एपिक्स माइथ्स एण्ड लीजेन्ड एण्ड इण्डिया।
86. जर्नल ऑफ बेकटेश्वर ओरियन्टल इस्टीट्यूट।
87. संस्कृत ड्रामा आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी।
88. दि एज ऑफ इमपीरियल यूनिवर्सिटी।

श्री अभिनवगुप्त के अनुसार विकृष्ट (आयताकार) नाट्यगृह ६४ ३२
(वर्गाकार मत्तवारणी के साथ)
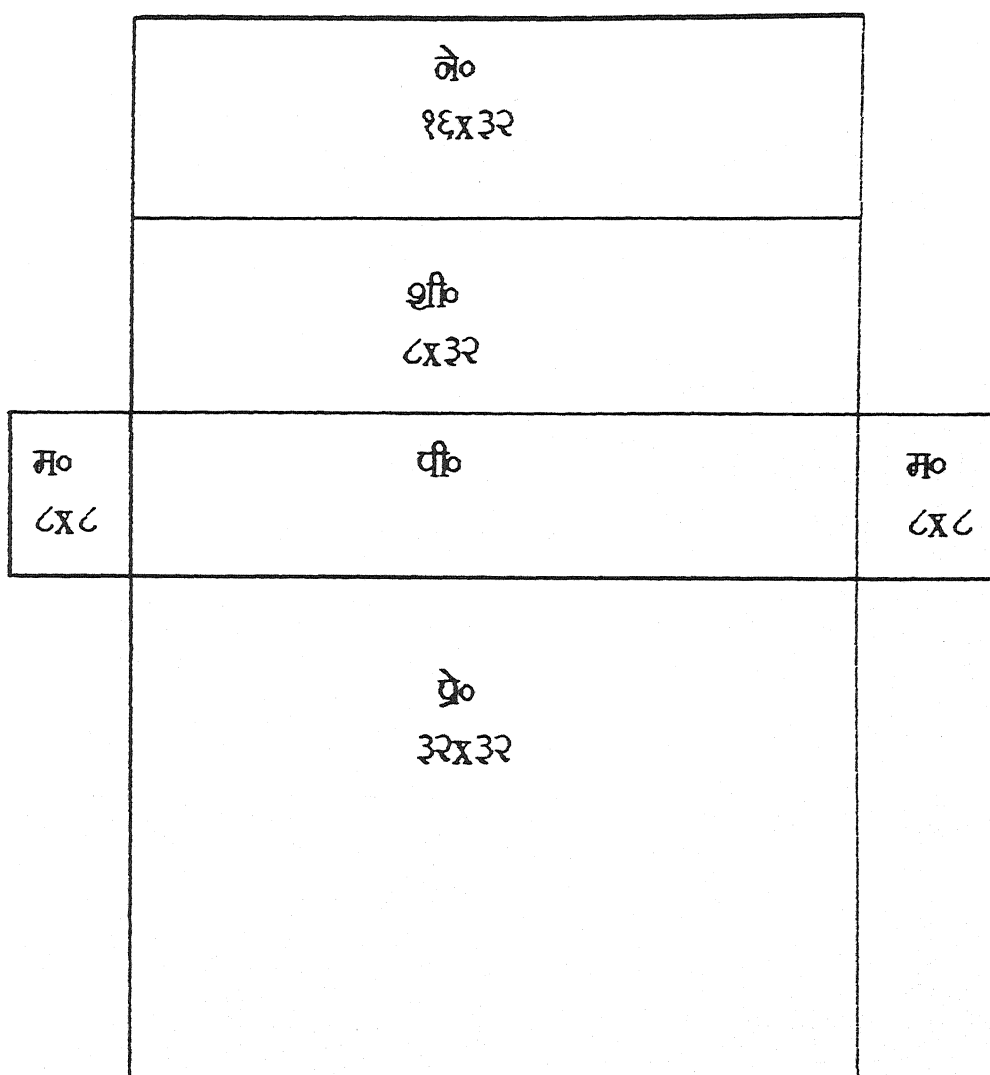
ने०
१६x३२

शी०
८x३२

म०
८x८

पी०

म०
८x८

प्रे०
३२x३२

पैमाना १ सेण्टीमीटर = ४ हाथ

संकेत=: ने०= नेपथ्यगृह, शी०= रंगशीर्ष
म०= मंतवारणी, प्रे०= प्रेक्षाकोपवेश
पी०= रंगपीठ.

श्री अभिनव गुप्त के अनुसार विकृष्ट आयताकार नाट्यगृह ६४x ३२
(आयताकार मत्तवाणी के साथ)

ने०
१६x३२

शी०
८x३२

म०
८x१६

म०
८x१६

पी०
८x३२

प्रे०
३२x३२
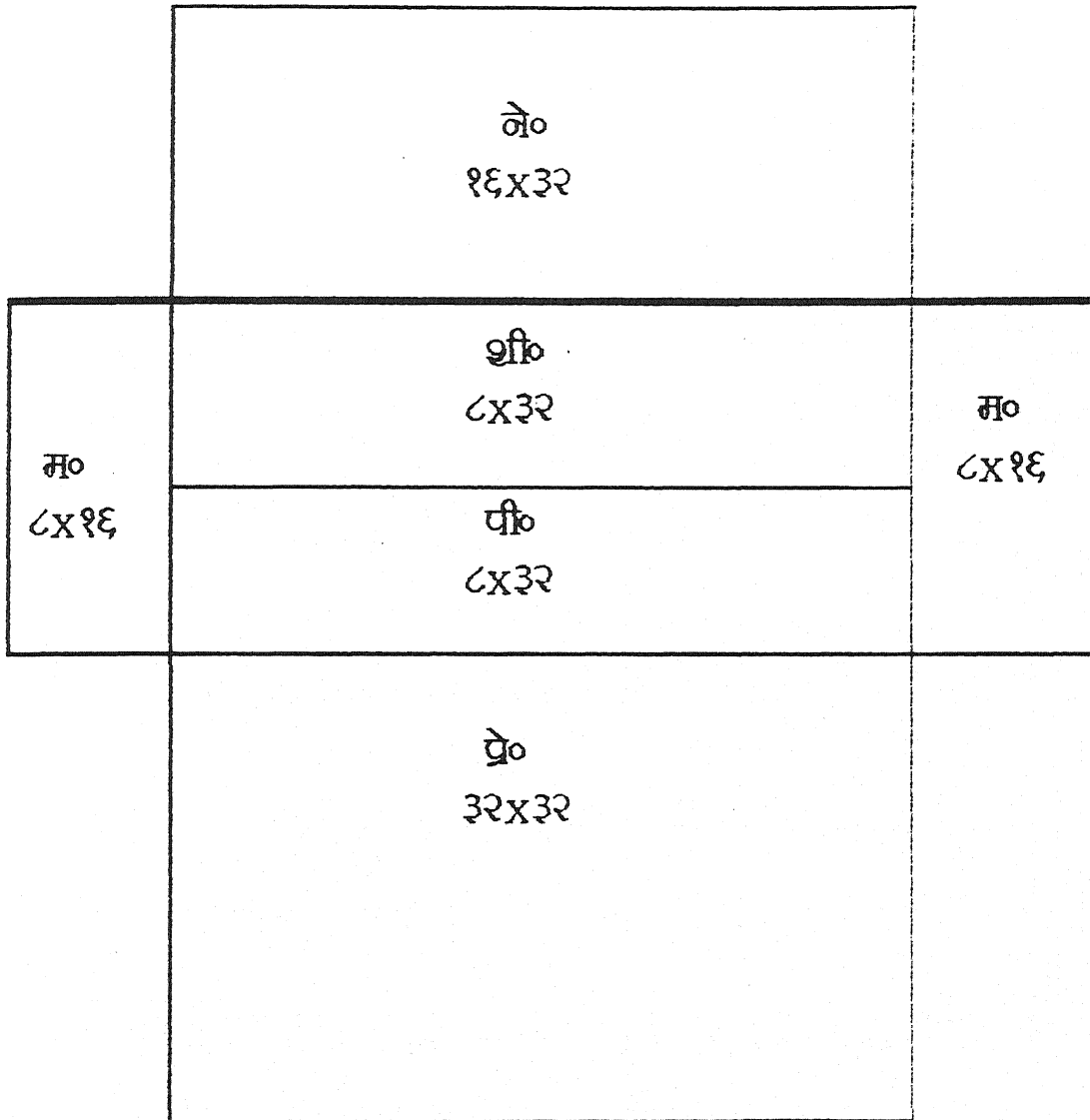
पैमाना = १ सेण्टीमीटर = ४ हाथ

संकेत= ने०= नेपथ्यगृह शी०= रंगशीर्ष म०=मत्तवारणी
पी०= रंगपीठ प्रे० = प्रेक्षाकोप्रवेश

श्री डी॰आर॰ मनकद के अनुसार विकृष्ट (आयताकार) नाट्यगृह ६४x३२
हाथ का रेखा चित्र

<table>
<tr><td colspan="3">ने॰
१६x३२</td></tr>
<tr><td colspan="3">शी॰
८x३२</td></tr>
<tr><td>म॰
८x८</td><td>पी॰
८x१६</td><td>म॰
८x८</td></tr>
<tr><td colspan="3">प्रे॰
३२x३२</td></tr>
</table>

पैमाना- १सेण्टीमीटर =४ हाथ

संकेत- ने॰ = नेपथ्यगृह
म॰ = मत्तवारणी
शी॰ = रंगशीर्ष
प्रे॰ = प्रेक्षकोपवेश
पी॰ = रंगपीठ

श्री डॉ० मनमोहन घोप के अनुसार विकृष्ट (आयताकार) नाट्यगृह (६४x३२) हाथ का रेखाचित्र

पैमाना=: १सेण्टीमीटर=४ हाथ

संकेत=: म०= मत्तवारणी
पी०=रंगपीठ
ने०=नेपथ्यगृह
प्रे०=प्रेक्षाकोपवेश

ने०
८x१६

म०
८x८

पी०
८x१६

म०
८x८

प्रे०
४८x३२

श्रीगणेशाय नमः ॥ रामं विनायकं वंदे सच्चिदानंदगुणाकरं संसारतापसंहारकारणं विघ्नवारणं १ अथ कश्चिन्महाविशिष्टो ध्यायितवेदं

तसिद्धांतमपि तत्राववोधपरं प्रबोधचंद्रोदयाख्यं नाटकमेतत् ... महाकवि श्रीकृष्णमिश्राः प्रबोधचंद्रोदयाख्यनाटकव्याजेन तत्त्वबोधयिषवस्तद्रच २सिर्क

यंतिस्म तत्राद्यपद्यरूपे नांदीसंज्ञके निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं मंगलं निबध्नंति नांदीसंज्ञकं तत्र नांदीस्वरूपं नंदंति काव्यानि कवींद्रवर्गाः

कुशीलवाः पारिषदाश्च संतः यस्मादलं सज्जनसिंधुहंसी तस्मादियं सा कथितेति नांदी इति नांदीस्वरूपं तल्लक्षणं च आशीर्नमस्क्रियावस्तु

श्लोकः काव्यार्थसूचकः नांदीति गद्यते इति पदैर्द्वादशभिरष्टभिस्तथेति नांदीस्वरूपलक्षणलक्षितमाद्यपद्यरूपं तत्राद्यं पद्यं व्याख्यायते म

मध्याह्नार्कमरीचिकास्विव पयःपूरो यदज्ञानतः खं वायुर्ज्वलनो जलं क्षितिरिति त्रैलोक्यमुन्मीलति यत्तत्त्वं विदुषां निमीलति रिति

पुनः स्रग्भोगिभोगोपमं सांद्रानंदमुपास्महे तदमलं स्वात्माववोधं महः १

ध्याहेति वयं तदेव नित्यं महस्तेज उपास्महे सेवया

तः कीदृशं महः सांद्रानंदं सांद्रो नितिविडो नित्योयमानंदस्तद्रूपं पुनः कीदृशं महः अमलं अविद्यातत्कार्यादिदोषरहितं पुनः कीदृशं स्वात्मा

ववोधं स्वात्मैव ... स्वस्वरूपमेवाववोधः प्रकाशो यस्य स्वप्रकाशमित्यर्थः तत्किं यदज्ञानतो यस्याज्ञानादिति इदं त्रैलोक्यमुन्मीलति प्रादुर्भ

वति इदं किं तत्राह खमित्यादि अज्ञानात्प्रपंचोत्पत्तिं लोकदृष्टांतेनाह मध्याह्नार्कमरीचिकासु पयःपूर इव यथा मध्याह्ने सिकतादिप्रतिफ

लितेष्वर्ककिरणेषु तद्विषयाज्ञानात् पयःपूरज्ञानं जायते तथा सत्यानंदादिरूपब्रह्माज्ञानात् प्रपंचजनिरित्यर्थः एवं चेत्कथमनर्थनिवृ

त्तिरित्याशंक्य सदृष्टांतमाह यत्तत्त्वं यस्य त्रैलोक्यस्य तात्त्विकं स्वरूपं विदुषां ज्ञानिनां पुनर्निमीलति नश्यति आत्मस्वरूपातिरिक्तं न भव

श्रीकृष्णमिश्राः तव्यांते आशीर्वचनं मंगलमाचरंति॥ तथाप्येतदस्तु पर्जन्यः इति पर्जन्यो जलवर्षणे पयः आस्मिन्
ति अस्याभूमौ महतीं इच्छां समये यावद्देवेच्छितां इच्छामिति यदेव्याति वृष्टिं निजास्थपति विघ्नाकरोतु गलितो नष्टः उप
द्रवो देशराज्याद्युपद्रवो येभ्यस्ते राजानः रक्षां पृथिवीं पालयंतु संसारिण्य आपि विवादत्यागानिनो विदद्यातिमहितः साधि
नस्त्वत्प्रसादात् संसाररूपाब्धिः समुद्रस्तं तरंतु कीदृशो समुद्रं विषयाः स्वर्गादयः ममतामम त्याभिमानः प्राणिकोभयं एतान्ये
वपंकः कर्द्दमो यस्मिन् तं कीदृशाः महांतः तेत्यानां तु ज्ञेयः साक्षात्कारस्तस्माद्भुपहतं विनाशितं तमः अज्ञानं ये षांते विष्णु
भक्तैः प्रसादात् सर्वे प्राप्यन इति भावः अंकसमाप्तिं द्योतयति इति निष्क्रांताः सर्वे इति अंके समाप्तौ सर्वेषां निष्क्रमणमित्यर्थः
इति श्रीभट्टविनायकात्मजदीक्षितरामदासविरचिते प्रकाशाख्ये प्रबोधचंद्रोदयनाटकव्याख्याने जीवन्मुक्तिनिरूपणं
नाम षष्ठोंकः ६ समाप्तम् संस्कृतमत्र किंचित् व्याख्यायां तासर्वमवर्णि किंचित् तत्राप्यशुद्धं यदि किंचिदस्ति तच्छोधनीयं
विबुधैर्न मूर्खैः लिखितमिदं पुस्तकं स्वयंप्रसादरामजी भ्यां श्रीकाममताना यो पयन्य कायां तुलसीचरणे संवत् १८६२ समये
माघशुक्ले पूर्णमायां शास्त्र ... आदित्यवासरे शुभं भवतु ग्रंथ ३७७६ श्रीरामकृष्णहरे मुकुंद सीताराम राधाकृष्ण हरे हरे

सीता०

७१

निःप्रत्यूह भगवदनुकंपावलंबितः पुरुषः॥ सर्वदोषाकरंसंसारसागरं प्रविशति चपरंपदं॥ किंतेभूयः प्रियमुपहरामि
राजा॥ भगवति महानुभावे॥ किंततः प्रियंपरमतः प्रतिपादनीयंयस्याःप्रसादपदपरमजुषाभवत्या॥ यद्याभिवत्युरुष
मेवमपास्तपंकराकापशशांकमिवराहुमुखाद्विमुक्तं॥ अपिच॥ अज्ञानरूपयोमायामोहस्यलीमधिकाधितःस्फुरति
मुरभिद्रुजितिद्रियाभवत्यनुपद्रवा॥ सरलीमदनःप्रत्याहतिंभजत्यनघःप्रमाद् किमिहवहुभिःक्रीउत्यगेसमीहि
तमधनःकिमन्यदहमिहभवत्याःसकाशादाशंसे॥ भरतवाक्यं॥ अंगीकुर्वंत्ववकलुषधियोनित्यमध्यात्मवि
धामाद्योधर्मःस्यप्रातुवसुधामाध्रिधःपारवर्ती॥ देवःश्रीमान्निरवधिदयासिंधुरस्मिन्प्रबंधेवज्ञाश्रोतावचन
विषयःप्रीयतांवासुदेवः॥ इतिनिःक्रांताःसर्वे॥ इतिश्रीकविताकिंकसिंहस्यसर्वतंत्रस्वतंत्रस्यश्रीमद्वेंकटनाथस्यवेदां
ताचार्यस्यकृतिषुसंकल्पसूर्योदयेनिःश्रेयसलाभोनामदशमोंकः॥१०॥ कवितार्किकसिंहायकल्याणगुणशालिने श्री
मतेवेंकटेशायवेदांतगुरवेनमः॥१॥ स्तोतुंनिंदितुमस्मदुक्तिमपवासोढुंसमर्थंजगत्किंनःक्षिन्नमनंतचिंतनरसेधु
स्येपरंतस्युषां प्रिक्षाःक्षिक्षितवुद्धयःश्रुतिपथेयेषांवपंयेचनःतसंतोषसमर्घ्यणाहमनिदंसाउंवरैःकिंवरैः॥२॥ शुभंभ
वतु॥ श्रीरामःपायात